इकाई–1 व्यावसायिक पर्यावरण : आशय एवं प्रकार

(Business Environment; Meaning and Type)

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 व्यवसायिक पर्यावरण का अर्थ
1.3 व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषायें
1.4 व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषतायें
1.5 व्यावसायिक पर्यावरण की प्रकृति
1.6 व्यावसायिक पर्यावरण के प्रकार
1.6.1 व्यवसाय का सूक्ष्म पर्यावरण
1.6.2 व्यवसाय के सूक्ष्म पर्यावरण के घटक
1.6.3 व्यवसाय का व्यापक पर्यावरण
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 बोध प्रश्न
1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.11 स्वपरख प्रश्न
1.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- व्यावसायिक पर्यावरण की व्याख्या कर सकें,
- व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषताओं एवं प्रकृति को जान सकें,
- व्यावसायिक पर्यावरण के प्रकारों को बता सकें,
- व्यावसायिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले घटकों एवं तत्वों का विश्लेषण कर सकें।

1.1 प्रस्तावना

व्यावसायिक पर्यावरण दो शब्दों–व्यवसाय एवं पर्यावरण के संयोग से बना है। व्यवसाय, विद्यमान पर्यावरण में रहकर अपनी क्रियाओं को संचालित करता है। व्यवसाय को पर्यावरण प्रभावित करता है और व्यवसाय पर्यावरण को प्रभावित करता है। अतः दोनों ही अन्तर्सम्बन्धित हैं। वास्तव में व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी परिस्थितियों, घटनाओं एवं कारकों का योग है जो व्यवसाय पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

1.2 व्यवसायिक पर्यावरण का अर्थ (Meaning of Business Environment)

व्यवसाय का शाब्दिक अर्थ मनुष्य को व्यस्त रखने वाली क्रियाओं से है। एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि व्यवसाय में उन्हीं मानवीय आर्थिक क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो समाज की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए की जाती है। खेलना–कूदना, खाना–पीना, यात्रा करना, विश्राम करना जैसी अनार्थिक क्रियाओं को व्यवसाय में शामिल नहीं किया जाता। मैकनॉटन (Mc Naughton) के

शब्दों में,, "व्यवसाय शब्द से तात्पर्य, पारस्परिक हित के लिए वस्तुओं, मुद्रा अथवा सेवाओं के विनियम से है। (The term business means the exchange of goods, money or services for mutual benefits)। व्यवसाय को परिभाषित करते हुए उर्विक (Urwick) का कहना है, "यह एक ऐसा उपक्रम है जो समुदायों की आवश्यकता की पूर्ति हेतु वस्तुओं या सेवाओं का निर्माण, वितरण तथा इन्हें उपलब्ध कराता है।" (Business is any enterprise which makes, distributes or provides articles or services which other members of the community needs) व्यवसाय को परिभाषित करते हुए एल.एच. हैने (L.H. Haney) ने लिखा है, "व्यवसाय से तात्पर्य उन मानवीय क्रियाओं से है जो वस्तुओं के क्रय–विक्रय द्वारा धन उत्पादन या धन प्राप्ति के लिए की जाती है।" (Human activity directed towards producing or acquiring wealth through buying and selling goods is called business) इन परिभाषाओं के निष्कर्ष स्वरूप स्पष्ट है कि "व्यवसाय से तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन, वितरण एवं विनियम सम्बन्धी क्रियाओं से है जिनके फलस्वरूप उपभोक्ताओं एवं समाज की आवश्यकताएँ पूरी होती है।" व्यावसायिक पर्यावरण जटिल एवं अनियंत्रित बाह्य, आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा तकनीकी घटकों का योग है जिनके अन्दर एक व्यवसाय को कार्य करना पड़ता है। पर्यावरण ही व्यवसाय को नये आकार, नयी भूमिका तथा नये तेवर ग्रहण करने को बाध्य करता है।

1.3 व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषाएँ (Definitions of Business Environment)

व्यवसाय की समस्त क्रियाएँ राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, वैधानिक, प्रौद्योगिकीय, नैतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण या पर्यावरण के सन्दर्भ में निर्धारित होती है। इसलिए व्यावसायिक पर्यावरण के अर्थ को भली–भाँति जान लेना अति आवश्यक हो जाता है। सामान्यतः व्यावसायिक वातावरण से तात्पर्य उन समस्त कारकों (factors) से होता है, जो व्यवसाय के संचालन को प्रभावित करती है। व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषा विभिन्न विद्वानों द्वारा निम्न प्रकार दी गयी है–

डेविक (Devic) के अनुसार, "व्यावसायिक वातावरण उन सभी परिस्थितियों, घटनाओं एवं कारकों का योग है जो व्यवसाय पर प्रभाव डालते हैं।"[1]

ग्लूक व जॉक (Gluek and Jouck) के शब्दों में,, "पर्यावरण में फर्म के बाहर के घटक शामिल होते हैं, जो फर्म के लिए अवसर एवं खतरा पैदा करते हैं। इनमें सामाजिक, आर्थिक, प्रौद्योगिकीय व राजनैतिक दशाएँ प्रमुख हैं।"[2]

शॉल (Schoell) के कथनानुसुसार, "यह उन समस्त तत्वों का योग है, जिनके प्रति व्यवसाय अपने को अनावृत करता है तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करता है।"[1]

---

[1] Business Environment is the sum of such situation, incident and factors which affect the business. **–Devic**

[2] In Environment there are external factors, which constantly spin out opportunities and threats to the business firm. **-William Glueck Jouck**

रिचमैन एवं कोपन (Richman and Copen) के मतानुसार, "पर्यावरण में दबाव व नियन्त्रण होते हैं, जो अधिकांशतः वैयक्तिक फर्म एवं इसके प्रबन्धकों के नियन्त्रण के बाहर होते हैं।"[2]

विभिन्न विद्धानों द्वारा व्यावसायिक पर्यावरण की दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण के पश्चात् निम्नलिखित बातें परिलक्षित होती है–

- व्यावसायिक पर्यावरण अनेक जटिल व अनियन्त्रित बाह्य आर्थिक, सामाजिक, भौतिक एवं तकनीकी घटकों का योग है, जिसकी परिसीमा में व्यवसाय को संचालित करना होता है।
- वातावरण या पर्यावरण ही व्यवसाय को नये आकार, नयी भूमिका, मान्यता व नये स्वरूप ग्रहण करने के लिए बाध्य करता है।
- कोई अकेली व्यावसायिक फर्म अपनी क्रियाओं या गतिविधियों द्वारा पर्यावरण को प्रभावित नहीं कर सकती है।
- व्यवसाय के लिए पर्यावरण बाह्य तत्व होते हैं।
- नये अवसरों की खोज में पर्यावरण द्वारा व्यवसाय में प्रोत्साहन व नयी ऊर्जा का संचार होता है।
- विभिन्न व्यावसायिक फर्म अपनी सामूहिक क्रियाओं या गतिविधियों द्वारा पर्यावरण को प्रभावित कर सकती है।
- व्यावसायिक पर्यावरण के परिवर्तन में व्यवसाय भी महत्वपूर्ण घटक होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि "व्यावसायिक पर्यावरण विभिन्न गतिशील, जटिल व अनियन्त्रित वाह्य आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, भौतिक एवं तकनीकी घटकों का योग है, जिसके अन्दर ही रहकर व्यवसाय को कार्य करना पड़ता है।" यह वतावरण, व्यवसाय को नये आकार, प्रकार, स्वरूप, नयी चुनौतियाँ, नयी भूमिका, मान्यताएँ व नये तेवर ग्रहण करने को बाध्य करता है। भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में नये व सर्वोत्तम अवसरों की खोज के वातावरण से व्यवसाय को प्रोत्साहन व एक नयी ऊर्जा प्राप्त होती है। साथ ही साथ व्यवसाय भी वातावरण के परिवर्तन में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक सिद्ध होता है। किसी भी व्यवसायी को आर्थिक क्षेत्र में अनेक आर्थिक निर्णय लेने होते हैं, जिसमें उत्पाद का आकार–प्रकार, उत्पाद की किस्म, मूल्य, लागत, संरचना, उत्पाद प्रणाली, वितरण श्रृंखला (distribution channel), पूँजी प्रबन्धन, आय प्रबन्धन आदि प्रमुख होते हैं। खुली या स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में इस प्रकार के निर्णय व्यवसाय के स्वामी द्वारा स्वयं लिये जाते हैं, जबकि बन्द अर्थव्यवस्था (closed economy) में ऐसे निर्णय सरकार द्वारा लिये जाते हैं। व्यवसायी वर्ग व्यावसायिक निर्णय, गतिशील वातावरण तथा भविष्य के वातावरण को ध्यान में रखकर लेता है। व्यवसाय की समस्त क्रियाएँ, राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक, राजैनतिक, वैधानिक, प्रौद्योगिकीय, नैतिक व सांस्कृतिक

---

[1] The Environment of business consists of all those external things to which it is exposed and by which it may be influenced, directly. **-Reineek & Schoell, Introduction to business, P.43.**

[2] There are lot of pressures and controls which are mostly outside the control of individual firm and its managers. **-Richman and Copen**

वातावरण के सन्दर्भ में निर्धारित होती है। एक सतर्क एवं जागरूक व्यवसायी या साहसी अपने परिवेश या वातावरण या पर्यावरण की उपेक्षा नहीं करता है, बल्कि व्यावसायिक परिवेश या पर्यावरण के समक्ष आने वाली बाधाओं, सीमाओं, अवसरों एवं चुनौतियों को स्वीकार करके सकारात्मक एवं सर्वोत्तम व्यावसायिक निर्णय लेता है।

1.4 व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषताएँ (Characteristics of Business Environment)

व्यावसायिक पर्यावरण के अर्थ एवं पहलुओं का अध्ययन करने के उपरान्त इसमें कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ परिलक्षित होती है। इन विशेषताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

- व्यावसायिक पर्यावरण मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित होता है।
- व्यावसायिक वातावरण क्षेत्र, देश या विश्व के भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक वातावरण से मुख्यतया प्रभावित होता है।
- व्यवसाय का आर्थिक वातावरण सरकार की नीतियों, निर्णय या नियमों द्वारा निर्धारित होता है।
- व्यावसायिक वातावरण पर आधारभूत सुविधाओं (बिजली, पानी, परिवहन, संचार आदि) का प्रभाव पड़ता है।
- जनता या उपभोक्ता का दृष्टिकोण भी व्यावसायिक वातावरण के निर्धारक तत्वों में शामिल होता है।
- समाज में धन या आय के वितरण का स्वरूप भी व्यावसायिक वातावरण पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालता है।
- व्यावसायिक वातावरण आर्थिक विचारधारा जैसे– पूँजीवादी (Capitalistic), समाजवादी (Socialistic) साम्यवाद (Communistic) तथा मिश्रित (Mixed) अर्थव्यवस्थाओं से भी प्रभावित होता है।
- नियोजित अर्थव्यवस्था (Planned Economy) भी व्यावसायिक वातावरण की दशा एवं दिशा तय करने में सहायक होता है।
- पूँजी उपलब्धता की सीमा भी व्यावसायिक वातावरण को तय करती है।
- किसी भी समाज में जनता का नैतिक मूल्य भी व्यवसाय के वातावरण की दिशा को तय करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यावसायिक वातावरण समाज में घटने वाली समस्त बड़ी घटनाओं से प्रभावित हो सकता है, जिसका प्रभाव किसी व्यवसाय पर सकारात्मक या नकारात्मक पड़ सकता है, जो व्यवसाय के आकार, प्रकार एवं सीमा पर निर्भर होता है।

1.5 व्यावसायिक पर्यावरण की प्रकृति (Nature of Business Environment)

व्यावसायिक पर्यावरण अत्यन्त विशाल एवं जटिल है। यह विभिन्न घटको का जालसूत्र होने के साथ–साथ प्रतिपल परिवर्तित होने की क्षमता भी रखता है। किसी भी व्यवसाय की प्रगति एवं विकास दो तत्वों पर निर्भर करता है– पहला व्यवसाय की अपनी किस्म (The quality of the business itself) तथा दूसरा बाह्य

परिवेश, जिसमें यह पोषित एवं विकसित होता है। व्यावसायिक वातावरण की व्यापकता को दृष्टिगत रखते हुए इसे आर्थिक, भौगोलिक, राजैनतिक, शासकीय, सामाजिक–सांस्कृतिक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय, वैधानिक एवं न्यायिक आदि घटकों में मुख्यतया विभाजित किया जा सकता है। इन प्रमुख घटकों का संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा निम्नलिखित है–

1.6 व्यावसायिक पर्यावरण के प्रकार (Types of Business Environment)

व्यावसायिक पर्यावरण मुख्य रूप से आन्तरिक एवं बाह्य पर्यावरण के योग से बनता है। आन्तरिक पर्यावरण के घटक है जो एक फर्म के नियंत्रण में होते हैं। इस प्रकार के घटक फर्म के संसाधनों, नीतियों एवं उद्देश्यों से सम्बन्धित होते हैं। लेकिन जब हम व्यवासायिक पर्यावरण के उन घटकों की बात करते हैं जो गतिशील एवं स्वतंत्र होते हैं या जो नियंत्रण योग्य नहीं है तो उसे हम बाह्य पर्यावरण कहते हैं। व्यवसाय के बाह्य पर्यावरण को पुनः दो भागों में बांटा गया है। 1. सूक्ष्म (Micro) पर्यावरण 2. बृहद (Macro) पर्यावरण। व्यवसाय या फर्म के आस–पास दिखने वाले घटकों को हम सूक्ष्म (Macro) पर्यावरण कहते हैं जैसे आपूर्तिकर्ता, ग्राहक, श्रमिक, विपणन मध्यस्थ, प्रतियोगी आदि। व्यवसाय के वृहद (Micro) पर्यावरण में हम उन घटकों का अध्ययन करते हैं जो नियन्त्रण योग्य नहीं है। इन्हें हम 1. आर्थिक पर्यावरण 2. अनार्थिक पर्यावरण के रूप में जानते हैं।

व्यावसायिक पर्यावरण के संघटकों को निम्नांकित चार्ट द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

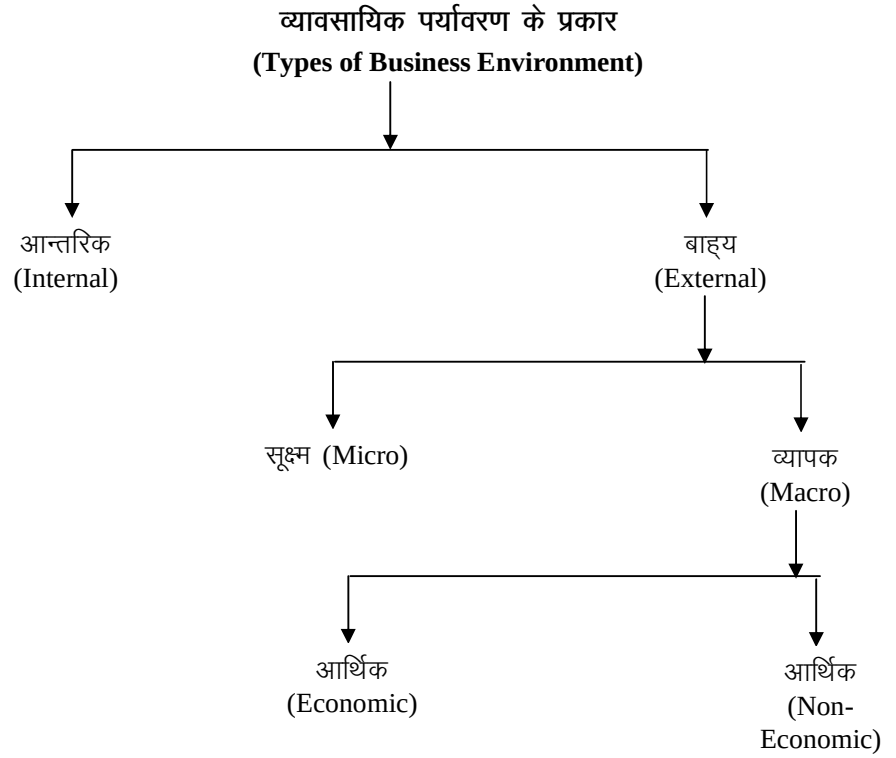

व्यवसाय का आन्तरिक पर्यावरण (Internal Environment of Business)– व्यवसाय के आन्तरिक पर्यावरण में अग्रलिखित घटकों का समावेश किया जाता हैः (1) व्यवसाय के उद्देश्य एवं लक्ष्य (2) व्यवसाय से सम्बन्धित विचारधारा एवं

दृष्टिकोण, (3) व्यावसायिक एवं प्रबंधकीय नीतियाँ, (4) व्यावसायिक संसाधनों की उपलब्धि तथा उपादेयता, (5) उत्पादन व्यवस्था, मशीन एवं यन्त्र तथा तकनीकें, (6) कार्यस्थल का समग्र पर्यावरण, (7) व्यावसायिक क्षमता एवं वृद्धि की सम्भावनायें, (8) पूँजी का उपयुक्त नियोजन, (9) श्रम एवं प्रबंध की कुशलता, (10) व्यावसायिक संगठन की संरचना, (11) व्यावसायिक योजनाएं एवं व्यूहरचनाएं, (12) केन्द्रीयकरण, विकेन्द्रीयकरण तथा विभागीकरण, (13) श्रम संघ व समूह तथा दबाव, (14) सामाजिक दायित्वों के प्रति दृष्टिकोण, (15) प्रबन्ध सूचना प्रणाली तथा संदेशवाहक व्यवस्था, (16) व्यावसायिक दृष्टि।

व्यवसाय के आन्तरिक पर्यावरण पर व्यवसायी आसानी से नियंत्रण रख सकता है। लेकिन इसमें निरंतर बाधायें सामने आती रहती हैं। व्यावसायिक पर्यावरण के आन्तरिक पर्यावरण की पहचान करना तथा उसे पूर्णरूप से समझना व्यवसायी का अहम दायित्व हो जाता है। सामान्यतया व्यवसाय का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। इसके बावजूद विभिन्न उद्योगों के उच्च पदस्थ अधिकारी 'कुछ मूल्यों' (Some Values) को मान्यता देते हैं जिससे उनकी नीतियाँ, व्यवहार तथा सम्पूर्ण आन्तरिक पर्यावरण प्रभावित होता है। इसी के फलस्वरूप व्यवसाय में श्रम कल्याण कार्यों की ओर ध्यान दिया जाता है।

वर्तमान में किसी कम्पनी के प्रबंध की शक्ति मुख्य रूप से कम्पनी के अंशधारियों, संचालक मण्डल के सदस्यों तथा उच्च अधिशासी अधिकारियों के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर करती है। संचालकों में मतभेद उत्पन्न होने पर कम्पनी में अंशधारियों का विश्वास कम होता है। इससे कम्पनी की आन्तरिक कार्यदशायें कुप्रभावित होती है। इसके विपरीत परिस्थिति में जब आन्तरिक पर्यावरण या कार्यदशाएं उत्तम होती हैं, कम्पनी सफलता की ओर अग्रसर होती है।

व्यवसाय का बाह्य पर्यावरण (External Environment of Business)– कम्पनी के बाहर कार्यरत शक्तियाँ, दशायें एवं संगठन व्यवसाय के बाह्य पर्यावरण में शामिल किये हैं। ये व्यवसाय पर पृथक रूप से तथा सामूहिक रूप से प्रभाव डालते हैं। अतः व्यावसायिक निर्णयकर्ताओं को पर्यावरण के प्रभावों को ध्यान में रखते हुए योजनायें बनानी चाहिए। व्यवसाय के बाह्य पर्यावरण को दो वर्गों में रखा जा सकता हैः (1) व्यवसाय का सूक्ष्म या विशिष्ट पर्यावरण (Micro Environment of Business), तथा (2) व्यवसाय का व्यापक या समष्टि पर्यावरण (Macro Environment of Business)

1.6.1 व्यवसाय का सूक्ष्म पर्यावरण (Micro Environment of Business)

व्यवसाय के अन्तर्गत अनेक उद्योग और अनेक फर्में कार्य करती हैं। प्रत्येक का अपना व्यावसायिक प्रबन्ध होता है। एक उद्योग में कार्यरत फर्मों में विशिष्ट अथवा सूक्ष्म पर्यावरणीय घटकों का समान प्रभाव नहीं होता है। एक फर्म के पर्यावरणीय घटक दूसरी फर्म पर प्रभाव नहीं डालते हैं, क्योंकि प्रत्येक फर्म की अपनी–अपनी विशिष्टता होती है। अतः एक फर्म की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने विशिष्ट पर्यावरण के संघटकों (Components) को किस प्रकार से प्रयोग में लाकर सफलता प्राप्त करती है।

1.6.2 व्यवसाय के सूक्ष्म पर्यावरण के घटक (Factors of Micro Environment)

एक कम्पनी की व्यावसायिक क्रियाओं की दृष्टि से सूक्ष्म पर्यावरण अति महत्वपूर्ण है। फिलिप कोटलर (Philip Kotler) के शब्दों में, ''एक कम्पनी के आस–पास दिखायी पड़ने वाले घटकों को सूक्ष्म पर्यावरण में शामिल किया जाता है।'' (The micro environment consists of the factors in the company's immediate environment) सूक्ष्म पर्यावरण के प्रमुख संघटकों या निर्धारकों में निम्नलिखित को शामिल किया जाता है।

(i) कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता (Supplier of Raw Materials)– वस्तुओं की कम उत्पादन लागत पर कम्पनी की सफलता निर्भर करती है। इसके लिए कच्चे माल की निरन्तर आपूर्ति होते रहना आवश्यक है। व्यवसाय के सुव्यवस्थित संचालन के लिए विश्वसनीय आपूर्ति साधन का होना अति आवश्यक है। यदि आपूर्ति में तनिक भी अनिश्चितता होती है तो कम्पनी को अतिरिक्त कच्चे माल का संग्रहण करना पड़ता है जिस पर अतिरिक्त लागत वहन करनी पड़ती है। अतः आवश्यक है कि एक ही आपूर्तिकर्ता पर निर्भर न रहा जाय। ऐसी व्यवस्था होना आवश्यक है कि एक आपूर्तिकर्ता से कच्चामाल प्राप्त न होने पर दूसरे आपूर्तिकर्ता से इस कमी को पूरा कर लिया जाय।

(ii) ग्राहक (Customers)– सूक्ष्म पर्यावरण में ग्राहकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। एक कम्पनी के कई प्रकार के ग्राहक हो सकते हैं, जैसे–थोक ग्राहक, फुटकर ग्राहक, औद्योगिक ग्राहक, विदेशी ग्राहक, सरकारी निकाय ग्राहक इत्यादि। इन लोगों की वस्तु में रूचि उससे मिलने वाली संतुष्टि
पर निर्भर करती है। जब तक वस्तु विशेष ग्राहकों की आवश्यकता को पूरा करती है, तब तक उसकी माँग की जाती है। यहाँ महत्वपूर्ण है कि किसी एक ग्राहक वर्ग पर निर्भर रहना कम्पनी के लिए काफी जोखिम पूर्ण होता है। अतः सुदृढ़ विपणन प्रणाली से कम्पनी को अधिकतम वर्ग के लोगों को अपना ग्राहक बनाये रखना चाहिए। व्यवसाय की सफलता के लिए ग्राहकों की रूचि को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

(iii) श्रमिक एवं उनके संघ (Workers and their Unions)– श्रम उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है, इसके अभाव में उत्पादन होना लगभग असम्भव है। श्रम श्रमिकों या कर्मचारियों द्वारा प्रदान किया जाता है जो संगठित हो सकता है या असंगठित। यदि श्रमिक असंगठित है तो कम्पनी श्रमिकों को अति अल्प मजदूरी स्वीकार करने हेतु बाध्य कर सकती है। लेकिन वर्तमान समय में अधिकांश कम्पनियाँ अपने को सुदृढ़ अवस्था में इसलिए नहीं पाती क्योंकि श्रमिक कम्पनी में रोजगार पाते ही श्रम संघ की सदस्यता ग्रहण कर लेते हैं। कुछ श्रम संघ कम्पनी से टकराहट की नीति अपनाते हैं जबकि कुछ इस स्थिति से बचने का प्रयास करते हैं। श्रमिक एवं प्रबंध के मध्य लगातार संघर्ष दोनों के ही हित में नहीं होता है। व्यवसाय के हित में कम्पनी व श्रमिकों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होना आवश्यक है।

(iv) विपणन मध्यस्थ (Marketing Intermediaries)– एक कम्पनी के सक्ष्म पर्यावरण में विपणन मध्यस्थों जैसे–फुटकर विक्रेता, अभिकर्ता, वितरक इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है। ये कम्पनी तथा अन्तिम उपभोक्ता के मध्य एक कड़ी का कार्य करते हैं। इनका गलत चयन होने पर कम्पनी को भारी हानि का सामना करना

पड़ सकता है। उपयुक्त विपणन व्यवस्था के अभाव में कम्पनी अपने उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुँचाने में अत्यन्त असमर्थ पाती है। वितरण फर्में जिनमें भण्डारगृह तथा परिवहन फर्में शामिल की जाती हैं, वे कम्पनी के माल को स्टॉक करने तथा इनके मूल स्थान से उपभोग–स्थल तक पहुँचाने में सहायता करती हैं।

(v) **प्रतियोगी (Competitiors)**– प्रतियोगियों की भी व्यवसाय संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रतियोगियों के व्यवहार को ध्यान में रखते हुए व्यवसाय को अपनी विभिन्न गतिविधियों का संचालन करना पड़ता है और उनमें परिवर्तन लाने पड़ते हैं। प्रतियोगिता कई प्रकार की हो सकती हैः

(अ) इच्छाओं की प्रतियोगिता (Desire Competition)– इस प्रतियोगिता का मूल उद्देश्य इच्छाओं को प्रभावित करना होता है। किसी फर्म की प्रतियोगिता केवल एक जैसी वस्तु का उत्पादन करने वाली फर्मों से ही नहीं होती बल्कि उन सभी फर्मों से होती है जो उपभोक्ता की सीमित आय को अपनी ओर खींचना चाहती है। उदाहरणार्थ–टेलीविजन कम्पनी की प्रतियोगिता फ्रिज निर्माता, स्कूटर, कम्प्यूटर निर्माता तथा अन्य कम्पनियों जो बचत व विनियोग योजनायें चलाती हैं, से भी होती हैं क्योंकि ये सभी उपभोक्ता की सीमित आय को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

(ब) जनन प्रतियोगिता (Genetic Competition)– वैकल्पिक वस्तुओं पारस्परिक प्रतियोगिता किसी विशेष प्रकार की इच्छा को संतुष्ट करने वाली प्रतियोगिता को जनन प्रतियोगिता कहते हैं। उदाहरणार्थ– एक व्यक्ति अपनी बचत को बैंक में या डाकघर में रख सकता है अथवा अंशों का क्रय कर सकता है। इस प्रकार विभिन्न निवेश योजनाओं के बीच होने वाली प्रतियोगिता जनन प्रतियोगिता कहलाती है।

(स) उत्पादन स्वरूप प्रतियोगिता (Product Form)– इस प्रतियोगिता में उपभोक्ता को उत्पाद के विभिन्न स्वरूपों में से चयन करना पड़ता है, जैसे यदि कोई उपभोक्ता टेलीविजन खरीदना चाहता है तो उसे निर्णय लेना होता है कि बड़ा टी0वी0 लेगा या छोटा, इसके साथ ही यह भी निर्णय करना होता है कि वह रंगीन टेलीविजन लेगा अथवा ब्लैक एण्ड व्हाइट।

(द) ब्रांड प्रतियोगिता (Brand Competition)– एक ही उत्पाद का उत्पादन अनेक कम्पनियाँ अलग–अलग ब्रांड नाम से करती है। अतः उपभोक्ता को उनमें से चयन करना पड़ता है कि वह कौन से ब्रांड का क्रय करें। रंगीन टेलीविजन क्रय करने का निर्णय करने के पश्चात उसके सामने प्रश्न उठता है कि वह कौन सा ब्रांड खरीदें, जैसे–फिलिप्स, वीडियोकॉन, बी0पी0एल0 या सैमसंग इत्यादि।

(vi) जनता (Public)– कम्पनी के पर्यावरण में जनता भी शामिल है। फिलिप कोटलर (Philip Kotler) के अनुसार ''जनता व्यक्तियों का वह समूह है जो किसी संस्था के हितों को प्राप्त करने की योग्यता पर वास्तविक अथवा सम्भावित प्रभाव रखता है'' जनता के प्रमुख उदाहरण है– पर्यावरणवेत्ता, उपभोक्ता, संरक्षण समूह, मीडिया (डमकपं) से सम्बन्धित लोग एवं स्थानीय जनता, ऐसी कम्पनियाँ जो अपनी उत्पादन प्रक्रिया से पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं, उनके विरूद्ध अनेक कदम उठाये जाते हैं। अब पर्यावरणवेत्ता सरकार के साथ मिल सामान्य जनता के हित में न्यायालय में प्रदूषण सम्बन्धी मामले ले जाते हैं। मीडिया के लोग भी व्यवसाय को बड़ी सीमा तक प्रभावित कर सकते है। व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न

सूचनाओं को इनके द्वारा प्रकाशित व प्रसारित करवाया जा सकता है। पर्यावरण प्रदूषण के विरूद्ध अनेक बार स्थानीय जनता द्वारा आन्दोलन चलाये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप कम्पनी को अपनी व्यवसाय नीति तथा उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन करना पड़ता है।

1.6.3 व्यवसाय का व्यापक पर्यावरण (Macro Environment of Business)

कोई भी फर्म अथवा व्यवसाय विशिष्ट अथवा सूक्ष्म पर्यावरण को अपनी सूझ–बूझ से नियन्त्रित कर लेता है। जहाँ तक व्यवसाय के व्यापक पर्यावरण अथवा वातावरण का प्रश्न है, यह अकेले एक व्यवसायी के नियन्त्रण की सीमा से बाहर की बात है। व्यापक पर्यावरण एक चुनौती के रूप में व्यवसायी के सामने आता है, उसे इस चुनौती का सामना करना पड़ता है। व्यवसाय के व्यापक वातावरण में उन क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है जिन पर सूक्ष्म घटकों की तुलना में निंयत्रण रखना कठिन होता है व्यवसाय के व्यापक पर्यावरण को दो वर्गों में रखा जा सकता
है :–

- आर्थिक पर्यावरण
- अनार्थिक पर्यावरण।

I. व्यवसाय का आर्थिक पर्यावरण (Economic Environment of Business)

व्यावसायिक पर्यावरण में आर्थिक पक्ष का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक व्यवसायिक इकाई बाजार में अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है। एक व्यवसाय का व्यवहार आर्थिक प्रकृति का होता है। व्यवसायिक जीवन चक्र के लगभग सभी कार्यकलापों में आर्थिक पहलू की प्रधानता होती है। किसी भी देश के आर्थिक पर्यावरण को निर्मित करने में तीन महत्वपूर्ण घटकों की भूमिका होती हैः

- उस देश की आर्थिक प्रणाली,
- उस देश की आर्थिक नीति, तथा
- उस देश में विद्यमान आर्थिक दशाएँ
- **आर्थिक प्रणालियाँ (Economic Systems)**– किसी दशे की आथिर्क प्रणाली उस देश की आर्थिक विचारधारा, आर्थिक संरचना तथा आर्थिक स्वतंत्रता को व्यक्त करती है। आर्थिक प्रणालियाँ मुख्य रूप से तीन प्रकार की हैः–

(i) पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली (Capitalist Economic System)– इस आर्थिक प्रणाली में सभी साधनों पर निजी क्षेत्र का स्वामित्व होता है। क्या, कैसे, कब तथा किस प्रकार उत्पादन किया जाय, ये सभी निर्णय पूँजीपतियों द्वारा स्वयं लिये जाते है। इसीलिए पूँजीवाद को 'स्वतंत्र अर्थव्यवस्था, 'अनियोजित अर्थव्यवस्था' या 'बाजारोन्मुखी' अर्थव्यवस्था भी कहते हैं। इस अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ हैंः आर्थिक स्वतंत्रता, निजी सम्पत्ति, निजी लाभ, स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा, व्यवसाय चयन की स्वतंत्रता, सरकार की सीमित भूमिका, उत्पादन के साधनों में पूँजी को सर्वोच्च स्थान, उपभोक्ता सम्प्रभुता का महत्वपूर्ण स्थान इत्यादि।

(ii) समाजवादी आर्थिक प्रणाली (Socialist Economic System)– समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व पाया जाता है।सामान्यत्या आर्थिक निर्णय एक केन्द्रीय सत्ता द्वारा लिये जाते हैं। इस व्यवस्था में संसाधनों का आंवटन, विनियोजन स्वरूप, उत्पादन, उपभोग, वितरण आदि सरकार द्वारा निर्देशित होते हैं। इस व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार हैः अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका में वृद्धि तथा व्यापक हस्तक्षेप, केन्द्रीय नियोजन की प्रधानता, आय वितरण में समानता पर बल, केन्द्रीय इकाइयों की प्रधानता, उपभोक्ता सम्प्रभुता की अवहेलना, स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा का अभाव, व्यवसाय व रोजगार चुनने में स्वतंत्रता का अभाव इत्यादि।

(iii) मिश्रित आर्थिक प्रणाली (Mixed Economic System)– मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी तथा समाजवादी दोनों अर्थव्यवस्थाओं का सह–अस्तित्व रहता है। इसमें दोनों क्षेत्र आपसी प्रतियोगिता समाप्त करके मानव कल्याण में वृद्धि करने का प्रयास करते हैं। इस अर्थव्यवस्था में दोहरे बाजार की स्थिति पायी जाती है अर्थात् कुछ कीमतें माँग तथा आपूर्ति के आधार पर बाजारी ताकतों द्वारा तय की जाती हैं तो कुछ वस्तुओं के ऊपर सरकार का नियंत्रण रहता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें ये हैंः निजी एवं लोक क्षेत्र का सह–अस्तित्व, केन्द्रीय नियोजन, निजी क्षेत्र को पर्याप्त प्रोत्साहन, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सरकार द्वारा संचालन, आर्थिक क्रियाओं पर सरकार द्वारा नियंत्रण व विनियमन इत्यादि।

- **आर्थिक नीतियाँ (Economic Policies)** – देश में व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण को निर्धारित करने में सरकार की आर्थिक नतियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आर्थिक नीतियों को मुख्यतया चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता हैः (i) औद्योगिक नीति, (ii) व्यापार नीति, (iii) मौद्रिक नीति, तथा (iv) राजकोषीय नीति।

(i) औद्योगिक नीति (Industrial Policy)– विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में, व्यवसाय से प्रत्यक्ष एवं निकटतम सम्बन्ध रखने वाली क्रिया औद्योगिक क्रिया है। इसलिए व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण का विश्लेषण करते समय सरकार को औद्योगिक नीति का सावधानीपूर्वक परीक्षण करना आवश्यक है। सन् 1956 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक तथा निजी दोनों क्षेत्रों को औद्योगिक विकास की जिम्मेदारी सौंपी गयी। वर्ष 1991 में नयी औद्योगिक नीति लागू होने के पश्चात विभिन्न नियंत्रणों को समाप्त करने का व्यापक कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। सुरक्षा, सामरिक महत्व और पर्यावरण की दृष्टि से संवेदनशील 'उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी औद्योगिक परियोजनाओं के लिए लाइसेंस की अनिवार्यता समाप्त कर दी गयी है।

(ii) व्यापार नीति (Trade Policy)– प्रारम्भ में भारत की व्यापार नीति का मुख्य उद्देश्य देश के विकास की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए आयात को नियमित करना था तथा आयात–प्रतिस्थापन उपायों के माध्यम

से घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहित करना था। परन्तु उदारीकण का दौर शुरू होने के बाद व्यापार के जरिए विश्वव्यापीकरण तथा अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए निर्यात को मुख्य हथियार बनाने के महत्व को मान्यता दी गयी। सामान्यतः व्यापार नीति दो प्रकार की होती है। प्रथम 'संरक्षणवादी नीति' जिसमें सरकार अपने नये एवं छोटे उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से बचाने हेतु आयात पर रोक लगा देती है, तथा द्वितीय, 'स्वतंत्र व्यापार नीति' के अन्तर्गत निर्यात या आयात पर सरकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है। 1 अप्रैल, 2001 से भारत ने विश्व व्यापार संगठन (WTO) की शर्तों के मुताबिक स्वतंत्र व्यापार नीति घोषित कर दी है। अब वे वस्तुएँ भी आयात की जा सकेंगी जिन पर पहले प्रतिबन्ध लगा हुआ था। आम उपभोक्ता एवं कृषि से सम्बन्धित कतिपय उत्पादों पर सरकार भारी आयात शुल्क लगायेगी, ताकि स्थानीय लघु उद्योगों तथा कृषकों के हितों पर विपरीत प्रभाव न पड़े। इस विवेचन से स्पष्ट है कि देश के व्यवसायिक पर्यावरण पर सरकार की व्यापार नीति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

(iii) **मौद्रिक नीति (Monetary Policy)**– मौद्रिक नीति से तात्पर्य, केन्द्रीय बैंक की उस नियंत्रण नीति से है जिसके द्वारा केन्द्रीय बैंक सामान्य आर्थिक नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्यों से मुद्रा की पूर्ति पर नियंत्रण करता है। भारत में यह कार्य रिजर्व बैंक द्वारा सम्पादित किया जाता है। यह बैंक मौद्रिक एवं साख नीति का निर्धारण करता है जिससे साख–नियंत्रण के उपाय किये जाते हैं। देश का आर्थिक विकास तथा मूल्यों की स्थिरता इस नीति के उद्देश्य माने जाते हैं। हाल के वर्षों में बाह्य प्रतियोगी पर्यावरण में भारतीय अर्थव्यवस्था का खुलापन, विश्व व्यापार में देश के निर्यात में वृद्धि तथा वाह्य ऋणों को कम करने के लिए घरेलू कीमत स्तर को स्थिर रखने की आवश्यकता होती है और यह कार्य सामान्यतः मौद्रिक नीति से किया जाता है। मौद्रिक उपाय ही आर्थिक तथा व्यवसायिक कार्यकलापों को उचित दिशा निर्देश देते हैं, इसीलिए इसे आर्थिक नीति का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

(iv) **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)**– राजकोषीय नीति का संचालन वित्त मंत्रालय द्वारा किया जाता है। इस नीति के अन्तर्गत सरकारी आय–व्यय, सार्वजनिक ऋण (बाजार ऋण, क्षतिपूर्ति एवं अन्य ऋणपत्र, रिजर्व बैंक, राज्य सरकारों व वाणिज्यिक बैंकों आदि को जारी किये गये ट्रेजरी बिल, विदेशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से लिए गये ऋण इत्यादि) तथा घाटे की अर्थव्यवस्था को शामिल किया जाता है। राजकोषीय नीति के प्रमुख उद्देश्यों में पूँजी निर्माण, विनियोग–निर्धारण, राष्ट्रीय लाभांश तथा प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, स्थिरता के साथ विकास तथा आर्थिक समानता लाना, इत्यादि होते हैं।

(v) **आर्थिक दशाएं (Economic Conditions)**– देश में विद्यमान आर्थिक दशायें वहाँ के आर्थिक विकास एवं स्तर को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है। व्यवसाय के लिए आर्थिक दशाओं का महत्व व्यावसायिक सम्भावनाओं तथा अवसरों की पूर्ति से जुड़ा है। आर्थिक दशाओं को नियोजन एवं विकास का आधार मानकर उस देश की सरकार अनेक

आर्थिक कार्यक्रमों को संचालित करती है। आर्थिक दशाओं में अग्रलिखित घटकों को शामिल किया जा सकता है। (i) देश में प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, (ii) मानवीय संसाधनों की उपलब्धता, किस्म तथा उपयोग, (iii) बचतों की स्थिति तथा पूँजी निर्माण की मात्रा, (iv) राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय आय तथा वितरण व्यवस्था, (v) विदेशी पूँजी का आकार, (vi) देश में उद्योगों की स्थिति, प्रकार तथा उत्पादन की मात्रा, (vii) देशवासियों के उपभोग का स्तर, (viii) देश में लोक कल्याणकारी कार्य, (ix) विदेशी व्यापार की स्थिति तथा विदेशी मुद्रा अर्जन, (x) देश की मौद्रिक नीति, बैंकिग व्यवस्था तथा ब्याज की दरें, (xi) उद्यमशीलता तथा साहस का स्तर, (xii) शोध एवं अनुसंधान, (xiii) देश में प्रचलित सामान्य मूल्य स्तर, (xiv) आर्थिक विकास तथा प्रगति की दर।

II. व्यवसाय का अनार्थिक पर्यावरण (Non-Economic Environment of Business)- व्यवसाय एक आर्थिक क्रिया है। इसके बावजूद यह अनार्थिक पर्यावरण से प्रभावित होती है। अनार्थिक पर्यावरण को सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनैतिक, कानूनी, तकनीकी, जनसांख्यिक पर्यावरण में वर्गीकृत कर सकते हैं।

(i) सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण (Socio-Cultural Environment)– व्यवसायिक फर्में सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण में संचालित की जाती हैं, इसीलिए उनकी नीतियाँ इस घटक को ध्यान में रखकर बनायी जाती है। संस्कृति से तात्पर्य समाज में रहने वाले लोगों द्वारा किये गये सभ्य आचरण से हैं। इसमें रीति–रिवाजों, मान्यताओं, परम्पराओं, रूचियों, प्राथमिकताओं इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है, जिनकी अवहेलना करने पर फर्मों को बड़े दुष्परिणामों का सामना करना पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा का स्तर, भाषा, आदतें भी व्यवसाय पर व्यापक प्रभाव डालती हैं। व्यवहार में सामान्यतया देखने को मिलता है कि एशिया व अफ्रीका के देशों की तुलना में यूरोपीय देशवासी अपने स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरूक होते हैं, अतः वहाँ स्वास्थ्य हेतु हानिकर उत्पादों को सफलतापूर्वक बाजार में उतारना सम्भव नहीं होता है। इसी प्रकार बहुत से मुस्लिम देशों में अभी भी पर्दा प्रथा विद्यमान है अतः वहाँ श्रृंगार सामग्री तथा आधुनिक फैशनेबुल कपड़ों का बाजार सीमित है। भारतीय समाज में धीरे–धीरे उदारता का विकास हो रहा है और नयी–नयी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ देश में प्रवेश कर रही हैं। इससे लोगों की रूचि, फैशन, आदतों में परिवर्तन आया है। पारम्परिक पैंट तथा सलवार कुर्ता के स्थान पर आज भारतीय लड़के–लड़कियाँ नीली जीन्स को प्राथमिकता देते हैं। अतः स्पष्ट है कि एक देश में सफल व्यवसाय की रणनीति बिना उस देश के सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण को ध्यान में रखे नहीं बनायी जा सकती है।

(ii) राजनीतिक पर्यावरण (Political Environment)– एक व्यवसाय की सफलता के लिए कुशल तथा स्वच्छ राजनैतिक पर्यावरण होना आवश्यक है। व्यवसाय की विभिन्न संरचनाओं के मूल में राजनीतिक निर्णय होते हैं। कुछ राजनीतिक निर्णय व्यवसाय विशेष के लिए लाभप्रद हो सकते हैं, जबकि कुछ के लिए हानिप्रद। राजनीतिक निर्णय को प्रभावित करने में कई घटकों का हाथ होता

है, जैसे–विचारधारा, जनसेवा, चिन्तन, राजनैतिक दबाव, अन्तर्राष्ट्रीय दबाव व प्रभाव, राष्ट्रीय एकता व सुरक्षा इत्यादि। व्यवसाय के साथ ही प्रशासकीय वर्ग आता है। राजनैतिक निर्णयों की अनुपालना प्रशासनिक स्तर पर की जाती है। निर्णयों का जितनी शीघ्रता से पालन किया जायेगा उतना ही जनहित में रहेगा। किन्तु जहाँ तक हमारे देश का प्रश्न है, धीमी गति, भ्रष्टाचार, मनमानी आदि ऐसी समस्या हैं जो प्रगति के मार्ग को अवरूद्ध करती हैं। किसी देश के व्यवसायिक विकास हेतु राजनैतिक स्थिरता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक है। जितनी अधिक स्थिरता होगी, उतना ही अधिक सरकार में जनता का विश्वास होगा जिस का व्यवसाय तथा उद्योगों पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इससे आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति में सुधार होगा। देश में शान्ति व सुरक्षा का वातावरण होना भी आवश्यक है ताकि विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ तथा विदेशी पूँजी आकर्षित हो सके। यदि देश में सुरक्षा तथा न्याय की समुचित व्यवस्था है तो लोगों में बचत की प्रवृत्ति होगी जिससे पूँजी निर्माण में सहायता मिलेगी तथा व्यवसाय के विकास को प्रोत्साहन मिलेगा।

(iii) वैधानिक पर्यावरण (Legal Environment)– वैधानिक पर्यावरण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इससे आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन प्रभावित होता है। जहाँ तक व्यवसाय व उद्योग का प्रश्न है, इनके अलग–अलग पक्षों के लिए अलग–अलग अधिनियमों का निर्माण किया गया है। इसके साथ ही न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों की पृथक व्यवस्था है जो इस बात का प्रयास करते हैं कि विभिन्न अधिनियमों व कानूनों का पालन हो तथा पीड़ित पक्षकार को न्याय मिल सके। देश में व्यवसाय तथा उद्योगों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कुछ अधिनियम निम्नलिखित हैं:–

- भारतीय कारखाना अधिनियम, 1948
- औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947
- भारतीय कम्पनीज, अधिनियम, 1956
- आयात एवं निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947
- उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951
- विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम (फेमा), 1999
- मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936
- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948
- कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
- बोनस भुगतान अधिनियम, 1965
- कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952
- श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923
- प्रशिक्षु अधिनियम, 1961
- ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986
- बिजली नियामक आयोग अधिनियम, 1948

- अन्य–खान अधिनियम, बागान अधिनियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम, पेटेन्ट्स अधिनियम इत्यादि।

(iv) तकनीकी पर्यावरण (Technological Environment)– औद्योगिक परिवर्तन तथा क्रान्ति मुख्यतया तकनीकी पर्यावरण पर निर्भर करती है। वैज्ञानिक शोधों से नयी–नयी प्रणालियों का अविष्कार होता है तथा प्रौद्योगिकी उन प्रणालियों का उपयोग करके व्यवसाय जगत में आमूल–चूल परिवर्तन ला देती है। राष्ट्र का तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी विकास उत्पादन की प्रणालियों, नयी वस्तुओं, नये कच्चे माल के स्रोत, नये बाजार, नये यन्त्र व उपकरण, नयी सेवाओं इत्यादि को प्रभावित करता है। विकसित देशों में तकनीकी परिवर्तन तेजी से होते हैं क्योंकि वहाँ नयी तकनीक शीघ्रता से उपलब्ध हो जाती है। ये देश नयी तकनीक के उपलब्ध होते ही पुरानी तकनीक को शीघ्रता से त्याग देते हैं। किसी भी व्यवसायिक इकाई को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए नवीनतम तकनीक को अपनाना अनिवार्य है संरक्षण प्राप्त बाजार तकनीकी परिवर्तन धीमी गति से होते हैं और बहुत सी फर्में बिना कोई परिवर्तन के वर्षों अपना उत्पादन करती रहती हैं। इसका एक प्रमुख कारण प्रतियोगिता का अभाव होना भी है। भारतीय संदर्भ में ऑटामोबाइल्स इंडस्ट्री का उदाहरण दिया जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् चार दशकों तक कार क्षेत्र पर 'फियेट' का एकाधिकार रहा जबकि इसकी उत्पाद तकनीकी उत्कृष्ट स्तर की नहीं थी। उपभोक्ताओं के समक्ष कोई दूसरा विकल्प नहीं था, अतः 'फियेट' कार का उत्पादन तथा माँग निरन्तर रही। किन्तु श्रेष्ठ व उन्नत तकनीक के साथ स्थापित मारूति उद्योग के पश्चात पूरा परिदृश्य बदल गया। हाल के वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र में हुए उदारीकरण के कारण ऑटोमोबाइल तकनीक में तेजी से परिवर्तन आये हैं। अब इस क्षेत्र में तकनीकी उत्कृष्टता के बिना टिक पाना असम्भव है।

(v) जनसांख्यिकीय पर्यावरण (Demographic Environment)– मनुष्य उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों होता है। इसलिए जनसांख्यिकी कारक जैसे जनसंख्या का आकार तथा विकास दर, जीवन प्रत्याशा, आयु एवं लिंग संरचना, जनसंख्या का वितरण, रोजगार स्तर, जनसंख्या का ग्रामीण एवं शहरी वितरण, शैक्षणिक स्तर, धर्म, जाति तथा भाषा इत्यादि सभी व्यवसाय के लिए संगत हैं। जनसंख्या में वृद्धि विकासशील देशों की एक प्रमुख विशेषता है। इसीलिए इन देशों में बच्चों हेतु वस्तुओं की माँग तथा उत्पादन में वृद्धि दृष्टिगोचर हुई है। भारत जैसे विकासशील देश में ज्यों–ज्यों जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, त्यों–त्यों बेबी फूड, बेबी साबुन इत्यादि की माँग में वृद्धि हो रही है। बड़ी जनसंख्या वाले देशों में बड़ी मात्रा में श्रम शक्ति भी उपलब्ध रहती है। भारत में कम मजदूरी पर बड़ी संख्या में श्रमिक उपलब्ध हो जाते हैं। विकसित पश्चिमी देशों में इसके विपरीत दृश्य है। जन्म दर कम होने से वहाँ जनसंख्या भी कम है और इसीलिए विकसित देशों में श्रम अपर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो पाता है। इस कमी को पूरा करने के लिए गहन पूँजी की तकनीक का उपयोग करते है। पूँजी की कमी के कारण इस तकनीक का प्रयोग अविकसित/विकासशील देश नहीं कर पाते हैं। उत्पादन करने के स्थान पर यदि श्रमिक व कर्मचारी बाहर से बुलाये गये हों तो भाषा, धर्म व जाति की समस्या सामने आती है। इससे से विवर्गीय प्रबन्ध के

सामने विभिन्न समस्याएं आती है। बहुराष्ट्रीय निगमों ने उत्पादन क्षेत्र के लोगों को ही अपने प्लान्ट में नियोजित कर इस समस्या के निदान का प्रयास किया है।

(vi) प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment)– वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के बावजूद, व्यवसायिक क्रियाएं एक बहुत बड़ी सीमा तक प्राकृतिक पर्यावरण से प्रभावित होती है। इसे स्पष्ट करने के लिए अग्रलिखित उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैंः (i) उत्पादन कच्चे माल पर निर्भर करता है। चीनी मिल अधिकतर उस स्थान पर स्थापित की जाती है जहाँ उन्हें कच्चा माल (गन्ना) आसानी से उपलब्ध हो सके। (ii) परिवहन एवं संचार भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। पहाड़ी क्षेत्रों में सड़क परिवहन सुविधाजनक होता है। (iii) दो क्षेत्रों के मध्य व्यापार भौगोलिक स्थितियों पर निर्भर करता है। (iv) खनन एवं उत्खनन प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित है। जहाँ प्राकृतिक संसाधन पाये जाते हैं, वहीं पर खनन एवं उत्खनन क्रियाएं सम्पादित की जाती हैं। (अ) विभिन्न बाजारों की भौगोलिक स्थितियों में अन्तर होने से बाजार में परिवर्तन आ जाता है। आधुनिक काल में परिस्थितिकी कारक (Circumstantial Factors) एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है। प्राकृतिक संसाधनों में तीव्रगति से कमी आना, पर्यावरण प्रदूषण तथा प्राकृतिक असन्तुलन ने सभी का ध्यान आकृष्ट किया है। अतः सरकार की नीति का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक असन्तुलन को कम करना तथा पुनः पूर्ति (Replenishment) न होने वाले संसाधनों को संरक्षण देना है। इसके फलस्वरूप व्यवसाय के उत्तरदायित्वों में वृद्धि हुई है।

(vii) नैतिक पर्यावरण (Ethical Environment)– व्यवसाय को समाज के नैतिक पर्यावरण का पालन करना होता है। वर्तमान जटिल व्यवसायिक पर्यावरण में नैतिक सिद्धान्त तथा संहिताएँ प्रबन्धकों के व्यवहार का मार्गदर्शन करती है। अनेक विकसित देशों ने नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों का पालन करके अन्तर्राष्ट्रीय सफलताएं प्राप्त की हैं। आज व्यवसाय शहरीकरण, शोरगुल, प्रदूषण, औद्योगिक बस्तियाँ, गन्दगी जैसी समस्याओं का निदान ढूँढ़ रहा है। व्यवसायिक क्रियाओं को नीतिशास्त्र के अनुकूल संचालित करने के लिए नियम–कानून तथा सरकार विशेष बल दे रही है।

(viii) अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण (International Environment)– अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण ने व्यवसायिक क्रियाओं पर गहरा प्रभाव डाला है। संचार, परिवहन, प्रौद्योगिकी, बहुराष्ट्रीय व्यवसाय, देशों के पारस्परिक सम्बन्धों आदि में आये क्रान्तिकारी परिवर्तनों में से व्यवसायिक क्रियाएं प्रभावित हुई हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं के कार्यकलापों तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से विभिन्न देशों पर एक बड़ी सीमा तक प्रभाव पड़ता है। उपभोग के क्षेत्र में जो आमूल–चूल परिवर्तन देखने को मिलता है, उसके पीछे अन्तर्राष्ट्रीय संचार तथा विज्ञापन माध्यमों का हाथ है। आधुनिक युग में पर्यावरण या वातावरण को बचाने का आन्दोलन तथा इसके प्रति जन–चेतना जागृत करने का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के प्रभाव की ही देन है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं विभिन्न देशों को आने वाली सम्भावित बीमारियों तथा खतरों से अवगत कराती हैं। चाहे ये खतरे कैंसर व एड्स जैसी बीमारियों से सम्बन्धित हों या आर्थिक व वित्तीय संकट या जनसंख्या के विस्फोट से।

1.7 सारांश

व्यवसाय एक ऐसा क्रिया–कलाप है जो लाभ कमाने के लिये किया जाता है। व्यावसायिक पर्यावरण अनेक घटकों का योग है जो व्यवसाय को प्रभावित करता है। एक व्यवसाय को इन्हीं सूक्ष्म एवं वृहद पर्यावरण के घटकों का अध्ययन कर अपने व्यवसायिक निर्णय लेने होते हैं। वृहद पर्यावरण में अनेक ऐसे घटक होते हैं जो व्यवसाय के नियंत्रण में नहीं होते हैं इन्हें हम वाह्य या वृहद पर्यावरण (Macro Environment) कहते हैं। इन्हें हम आर्थिक (Economic) एवं अनार्थिक (Non-Economic) पर्यावरण में बांट सकते हैं। आर्थिक पर्यावरण के अन्तर्गत हम सरकार की आर्थिक नीतियों जैसे मौद्रिक, राजकोषीय, औद्योगिक नीति आदि का अध्ययन करते हैं।

अनार्थिक पर्यावरण जो व्यापक (Macro) पर्यावरण का महत्वपूर्ण भाग है के अन्तर्गत – सामाजिक सांस्कृतिक, राजनैतिक, वैधानिक, तकनीकी जनसंख्या, नैतिक, प्राकृतिक, अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण आदि का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार एक व्यवसाय की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह इन सूक्ष्म एवं वृहद पर्यावरण के विभिन्न घटकों जो नियंत्रण योग्य नहीं है उनके साथ किस प्रकार अपनी नीतियों, निर्णयों, भविष्य की योजनाओं को समायोजित करता है।

व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी परिस्थितियों, घटनाओं एवं कारकों का योग है जो व्यवसाय पर प्रभाव डालते हैं। व्यवसायी को व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषताओं, उसके तत्वों तथा व्यावसायिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले घटकों की सम्पूर्ण जानकारी रखनी चाहिए तभी वह अपने व्यवसाय संचालन में सफल हो सकता है। व्यावसायिक पर्यावरण के अर्न्तगत, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक प्रौद्योगिकीय, वैधानिक एवं जनांनकिकीय घटकों का अध्ययन एवं इसके व्यवसाय पर होने वाले अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। व्यवसाय की नीतियां एवं रणनीतियां प्रगतिशील होनी चाहिए। प्रगतिशीलता नये वातावरण को स्वीकार करने से ही प्राप्त हो सकती है। एक व्यवसाय की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि व्यवसाय भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का अनुमान लगा सके और उसी के अनुरूप अपनी व्यावसायिक नीतियों को बदले। व्यावसायिक पर्यावरण का अध्ययन इस सन्दर्भ में बहुत सहायक है।

1.8 शब्दावली

व्यवसाय : व्यवसाय का तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन, वितरण, एवं विनिमय सम्बन्धी क्रियाओं से है जिसके फलस्वरूप व्यवसायी, उपभोक्ता एवं समाज की आवश्यकतायें पूरी होती है।

पर्यावरण : पर्यावरण को हम वातावरण भी कह सकते हैं। वातावरण परिवेश पर निर्भर करता है। परिवेश में सामाजिक, आर्थिक, वैधानिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, भौगोलिक घटक या तत्व आते हैं।

आन्तरिक पर्यावरण : आन्तरिक पर्यावरण के अन्तर्गत वे घटक आते हैं जिन पर व्यवसाय आसानी से नियन्त्रण रख सकता है जैसे व्यवसाय के उद्देश्य, व्यवसायिक नीतियाँ, उत्पादन के संसाधन, उत्पादन व्यवस्था, श्रमिक संघ, सूचना प्रणाली आदि।

बाह्य पर्यावरण : इसके अन्तर्गत व्यवसाय या फर्म के बाहर कार्यरत शक्तियाँ, दशायें आदि घटक आते हैं। इन्हें हम सूक्ष्म एवं वृहद पर्यावरण के रूप में बांट

सकते हैं।

सूक्ष्म पर्यावरण : एक फर्म के आस पास दिखाई पडने वाले घटकों को सक्ष्म पर्यावरण में शामिल किया जाता है। जैसे–ग्राहक, विपणन मध्यस्थ, प्रतियोगी, आपूर्तिकर्ता आदि।

वृहद (Macro) पर्यावरण : यह अकेले एक व्यवसायी के लिये संभव नहीं है कि वृहद पर्यावरण को नियंत्रित करें। वृहद पर्यावरण के अन्तर्गत – आर्थिक एवं अनार्थिक दोनों प्रकार के घटक होते हैं।

आर्थिक पर्यावरण– के अन्तर्गत हम उस देश की आर्थिक नीति, आर्थिक प्रणाली एवं आर्थिक दशाओं का अध्ययन करते हैं।

अनार्थिक पर्यावरण : के अन्तर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, वैधानिक, तकनीकी, जनसंख्या सम्बन्धी, नैतिक, अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के घटकों का अध्ययन करते हैं।

वैधानिक वातावरण : सरकार द्वारा बनाये गये कानूनी प्रावधान वैधानिक वातावरण तैयार करते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण : विदेश नीति, विदेशी विनियम नीति, अन्तर्राष्ट्रीय समझौते, संरक्षण नीति आदि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण बनाती है।

राजनैतिक वातावरण : राजनैतिक एवं शासकीय व्यवस्था, शासन प्रणाली, राजनैतिक दृष्टिकोण, देश की सुरक्षा, राजनैतिक स्थिरता आदि राजनैतिक वातावरण तैयार करती है।

1.9 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न– 'अ' (Check your progress-A)

1. सूक्ष्म पर्यावरण के घटकों को बताइये।
2. व्यापक पर्यावरण के घटकों को बताइये।

बोध प्रश्न– 'ब' (Check your progress-B)

1. व्यावसायिक पर्यावरण के विभिन्न प्रकार बताइये।
2. व्यवसाय का आर्थिक पर्यावरण क्या है?

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.6.2 का अध्ययन करिए।
2. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.6.3 का अध्ययन करिए।
3. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.6 का अध्ययन करिए।
4. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.6.3 का अध्ययन करिए।

1.11 स्वपरख प्रश्न

(i) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Asnwer Questions)

1. व्यावसायिक पर्यावरण से क्या तात्पर्य है? इसके विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिए।
   What is meant by 'Business Environment'? Describe its varfrious components.
2. व्यावसायिक पर्यावरण के विभिन्न प्रकारों के बारे में बताइये।
   (Discuss Various Types of Business Environment.)
3. व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण के घटकों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

(Discuss in brief the components of Economic Environment of Business.)

4. व्यावसायिक पर्यावरण से सूक्ष्म एवं वृहद पर्यावरण के घटकों को समझाइये।
(Discuss the Micro and Macro factors of Business Environment.)

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. व्यवसाय के सूक्ष्म वातावरण से आप क्या समझते हैं ?
(What do you understand by Micro Environment of Business?)
2. आर्थिक नीतियों की विषय–वस्तु क्या है ?
(What is the subject matter of Economic policies.)
3. व्यवसाय के अनार्थिक पर्यावरण के विभिन्न घटकों को संक्षेप में बताइये।
(Discuss in brief the factors of Non Economic Environment of Business.)

1.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्व्यिवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–2 आर्थिक प्रणाली (Economic System)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 आर्थिक प्रणाली से आशय एवं परिभाषा
2.3 आर्थिक प्रणाली के मूल तत्व
2.4 आर्थिक प्रणाली के महत्वपूर्ण कार्य
2.5 आर्थिक प्रणाली के प्रकार
2.5.1 पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली
2.5.2 समाजवादी आर्थिक प्रणाली
2.5.3 मिश्रित आर्थिक प्रणाली
2.6 भारत में मिश्रित आर्थिक प्रणाली
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 बोध प्रश्न
2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.11 स्वपरख प्रश्न
2.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- आर्थिक प्रणाली का आशय एवं इसके मूल तत्वों के बारे में बता सकें
- आर्थिक प्रणाली के विभिन्न प्रकारों की जानकारी दे सकें।
- पूंजीवादी, समाजवादी तथा मिश्रित आर्थिक प्रणालियों की विशेषतायें तथा उनके गुणदोष की जानकारी दे सकें।
- भारत में मिश्रित आर्थिक प्रणाली अपनाये जाने के कारणों की जानकारी दे सकें।

2.1 प्रस्तावना

आर्थिक प्रणाली किसी भी देश में आर्थिक क्रियाओं के संगठन पर प्रकाश डालती है। उत्पादन के साधनों का स्वामित्व निजी व्यक्तियों के हाथों में, सरकार के पास या फिर दोनों के हाथों में होता है। अब स्वामित्व अधिकतर निजी व्यक्तियों के हाथों में हो तो ऐसी आर्थिक व्यवस्था को पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था कहते है। यदि सरकार के हाथ में हो तो इसे समाजवादी अर्थव्यवस्था कहते हे। इंग्लैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी फ्रांस पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के उदाहरण कहे जा सकते है। चीन, दक्षिणकोरिया आदि समाजवादी अर्थव्यवस्था के उदाहरण कहे जाते है। जब निजी व्यक्तियों और सरकार दोनो बड़ी मात्रा में साधनों के स्वामी हो तो इसे मिश्रित आर्थिक प्रणाली कहते है। वास्तव में, एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों का अनुपात अधिकतर निजी क्षेत्र के पास रहता है जबकि कम लेकिन काफी महत्वपूर्ण, भाग सरकार के हाथ में रहता है। इसीलिये मिश्रित अर्थव्यवस्था को मिश्रित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था भी कहते है।

एशिया के अधिकतर देश एवं विश्व के अन्य देश भी इसी वर्ग में आते है। भारत ने भी मिश्रित आर्थिक प्रणाली अपनाई है।

2.2 आर्थिक प्रणाली से आशय एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Economic System)

आर्थिक प्रणाली समाज की आर्थिक क्रियाओं के संगठन पर प्रकाश डालती है तथा इसमें उपभोग, उत्पादन, वितरण एवं विनिमय के तरीकों का अध्ययन किया जाता है। निजी व्यवसाय का क्षेत्र तथा आर्थिक क्रियाओं में सरकार के हस्तक्षेप की सीमा प्रमुख रूप से आर्थिक प्रणाली की प्रकृति पर निर्भर करती है। आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत वे संस्थाएँ सम्मिलित की जा सकती है, जिन्हें देश या देश का समूह, अपने निवासियों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए विभिन्न साधनों के प्रयोग हेतु अपनाता है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक प्रणाली का अर्थ वैधानिक तथा संस्थागत ढाँचे (legal and institutional frame-work) से हैं, जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाएँ संचालित की जाती है। प्रत्येक देश में मानव के आर्थिक जीवन में कम या अधिक राज्य हस्तक्षेप भी पाया जाता है। इसलिए आर्थिक प्रणाली का रूप राज्य के हस्तक्षेप की मात्रा या सीमा पर निर्भर करता है। आर्थिक प्रणाली की एक उचित परिभाषा निम्न प्रकार से दी जा सकती है–

"आर्थिक प्रणाली संस्थाओं का एक ढाँचा है, जिसके द्वारा उत्पत्ति के साधनों तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के प्रयोग पर सामाजिक नियन्त्रण किया जाता है।"[1]

2.3 आर्थिक प्रणाली के मूल तत्व (Basic Elements of Economic System)

किसी भी देश की आर्थिक प्रणाली देश के सम्पूर्ण घटकों द्वारा निर्धारित होती है, जिसमें निम्नलिखित तत्त्व शामिल होते हैं–

- **व्यक्ति (People)-** इसमें देश के भीतर लोगों की विभिन्न भूमिकाओं जैसे– ऋणदाता, ग्राहक, नियोक्ता, कर्मचारी, स्वामी, पूर्तिकर्ता आदि के सहयोग एवं सम्बन्धों से आर्थिक प्रणाली का निर्माण होता है, परन्तु यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि कौन–कौन से व्यक्ति विद्यमान आर्थिक प्रणाली में शामिल हैं।

- **संसाधन (Resources)-** आर्थिक प्रणाली का संचालन उत्पादन एवं वितरण के विभिन्न साधनों जैसे– भूमि, श्रम, पूँजी, साहस, संगठन तथा बाजार आदि से होता है। ये साधन किसी देश की दशा एवं दिशा (condition and direction) निर्धारित करने में महत्वपूर्ण तत्व के रूप में शामिल होते हैं।

- **प्रतिफल (Consideration)**– उत्पादन एवं वितरण के साधन किस प्रेरणा से कार्य करते हैं? साहसी इन्हें कार्य पर क्यों लगाता है? प्रतिफल प्राप्त करने की आशा में ही उत्पादन के समस्त साधन अपने प्रयासों का योगदान करते हैं। इस प्रकार लाभ एवं सामाजिक कल्याण समस्त आर्थिक प्रणालियों का प्रमुख आधार है।

- **नियमन (Regulation)**– समस्त आर्थिक प्रणाली कुछ व्यक्तियों, संस्थाओं अथवा घटकों से नियमित एवं नियन्त्रित होती है। व्यावसायिक एवं औद्योगिक

[1] "Economic system is the frame-work of institutions by which the use of the means of production and of their products is socialy controlled."

क्रियाओं का नियमन करने वाले प्रमुख घटक प्रतिस्पर्धी (competitor), माँग एवं पूर्ति (demand and supply) सरकार आदि हैं।

2.4 आर्थिक प्रणाली के महत्वपूर्ण कार्य (Important functions of Economic System)

किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रणाली द्वारा महत्वपूर्ण निर्णय या कार्य के माध्यम से मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का राष्ट्रहित में प्रयोग किया जाता है। इनके द्वारा राष्ट्र की उत्पादन एवं उपभोग की क्रियाओं से सम्बन्धित निम्नलिखित निर्णय लिये जाते हैं–

- कौन सी वस्तु उत्पादित की जाय तथा उत्पादन कितनी मात्रा में हो (Which Commodity should be produced and in which Quantity)

किसी देश का सर्वप्रथम कार्य इस बात का निर्धारण करना है कि कौन सी वस्तु का उत्पादन किया जाय ताकि समाज में व्यक्तियों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, अर्थात प्रत्येक अर्थव्यवस्था को उत्पादन की संरचना का निर्धारण करना पड़ता है। जिन वस्तुओं के उत्पादन का निर्णय लिया जाता है, उसके अनुसार ही अर्थव्यवस्था में सीमित साधनों का वितरण करना होता है, तत्पश्चात् यह निश्चित करना होता है कि उपभोक्ता या पूँजीगत वस्तुओं की कितनी मात्राओं का उत्पादन किया जाय, ताकि माँग एवं पूर्ति में उचित सामंजस्य बना रहे।

- **वस्तु का उत्पादन कैसे किया जाय (How shall the goods be produced)**

आर्थिक प्रणाली का दूसरा प्रमुख कार्य है कि, "निर्धारित वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाय? अर्थात् किन विधियों द्वारा उत्पादन किया जाय? दूसरे शब्दों में, उत्पादन का संगठन कैसे किया जाय? इस कार्य से अभिप्राय है कि विभिन्न उद्योगों में किन फर्मों को उत्पादन करना है तथा वे आवश्यक साधनों को कैसे प्राप्त करेंगी। उत्पादन के लिए सर्वोत्तम तकनीक कौन सी है? आदि का निर्धारण किया जाता है।"

- **वस्तुओं का का वितरण कैसे किया जाय (How shall the goods be distributed)**

उत्पादन प्राप्त कर लेने के पश्चात यह प्रश्न उठता है कि उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं को उत्पादकों तथा व्यापारियों, उत्पादकों, सरकार, उपभोक्ताओं तथा परिवारों में किस प्रकार वितरित किया जाय। अर्थात उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का समाज के विभिन्न जरूरतमन्द वर्गों में वितरण कैसे किया जाय।

उपरोक्त तीनों प्रश्नों का हल निकालने के लिए आर्थिक प्रणाली महत्वपूर्ण निर्णय लेती है तथा इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्य करती हैं।

2.5 आर्थिक प्रणाली के प्रकार (Kinds of Economic System)

स्वामित्व के आधार पर आर्थिक प्रणालियों को मोटे तौर पर निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

- पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली (Capitalistic Economic System)
- समाजवादी आर्थिक प्रणाली (Socialistic Economic System)
- मिश्रित आर्थिक प्रणाली (Mixed Economic System)

2.5.1 पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली : (Capitalistic Economic System)

(i) लूक्स एवं हूट– "पूँजीवादी अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें प्राकृतिक एवं मनुष्यगत पूँजी पर व्यक्तियों का निजी अधिकार होता है तथा इनका उपयोग वे अपने लाभ के लिए करते हैं।''

Loucks and Hoot 'Capitalism is a system of economic organisation feathered by the private ownership and the use for private profit of nature-made and man-made capital.']

(ii) ए0सी0 पीगू : ''पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अथवा पूँजीवादी व्यवस्था वह है जिसमें उत्पत्ति के संसाधनों का मुख्य भाग पूँजीवादी उद्योगों में लगा होता है– एक पूँजीवादी उद्योग वह है जिसमें उत्पादन के भौतिक साधन निजी व्यक्ति के अधिकार में होते हैं अथवा वे उनको किराये के रूप में ले लेते हैं तथा उनका उपयोग उनकी आज्ञानुसार इस भाँति होता है कि उनकी सहायता से उत्पन्न वस्तुयें या सेवायें लाभ पर बेची जायें।

[A.C. Pigou- 'A capitalist economy or capitalist system is one the main part of whose productive resources is engaged in capitalist industries ..... A capitalist industry is one in which material instruments of production are owned or hired by private persons and are operated at their orders with a view to selling at a porfit the goods or services that they help to produce.']

पूँजीवाद के दो प्रकार हो सकते हैं–

(i) प्राचीन, स्वतंत्र पूँजीवाद जिसमें सरकार का हस्तक्षेप नगण्य होता है अथवा अनुपस्थित रहता है, तथा

(ii) नवीन नियमित या मिश्रित पूँजीवाद जिसमें सरकारी हस्तक्षेप पर्याप्त मात्रा में होता है।

पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताएं (Important Characterstics of Capitalistic Economic system)

विशुद्ध पूँजीवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) निजी स्वामित्व (Private ownership)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का स्वयं मालिक होता है। उसे उत्पादन के विभिन्न साधनों को अपने पास रखने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। प्रत्येक व्यक्ति सम्पत्ति रख सकता है, बेच सकता है या अपनी इच्छानुसार उपयोग कर सकता है।

(ii) उपभोक्ता की प्रभुसत्ता (Consumers' Sovereignty)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। उत्पादक उपभोक्ता की माँग व रूचि के अनुसार उत्पादन करता है। उपभोक्ता की स्वतंत्रता में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती है, इसीलिए बेन्हम (Benham) ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की तुलना राजा से की है।

(iii) उत्तराधिकार (Inheritance)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसमें उत्तराधिकार के अधिकार का पाया जाना है। इस अर्थव्यवस्था में पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति का स्वामी उसका पुत्र हो जाता है। पूँजीवाद को जीवित रखने हेतु उत्तराधिकार का अधिकार बनाये रखना आवश्यक होता है।

(iv) बचत एवं विनियोग की स्वतंत्रता (Freedom to save and invest)- उत्तराधिकार का अधिकार लोगों में बचत करने तथा पूँजी संचय को प्रोत्साहन देता है। अपने परिवार की सुख–सुविधा के लिए लोग बचत करते हैं तथा यही बचत पूँजी संचय में वृद्धि करती है। इस पूँजी को अपनी इच्छानुसार विनियोग करने की स्वतंत्रता होती है।

(v) मूल्य यंत्र (Price Mechanism)- मूल्य–यंत्र सम्पूर्ण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का संचालन करता है। इसकी सहायता से ही एक उत्पादक यह निर्धारित करता है कि किस वस्तु का कितना उत्पादन किया जाय। दूसरी ओर उपभोक्ता भी इस यंत्र को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय लेता है कि किस वस्तु के कहाँ से और कितनी मात्रा में खरीदा जाय।

(vi) प्रतियोगिता (Competition)- प्रतियोगिता पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है। जो उत्पादक अन्य उत्पादकों की तुलना में अधिक कुशल, अनुभवी एवं शक्तिशाली होता है, वह प्रतियोगिता में सफल होता है। अकुशल उत्पादकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की उत्पादन लागत अधिक होती है। कुशल उत्पादकों द्वारा निर्मित वस्तुओं की लागत कम आती है। अतः वे सस्ते मूल्य पर उपभोक्ताओं को वस्तुएं उपलब्ध करा पाने में सफल रहते हैं जिससे उनकी मांग बढ़ती है।

(vii) आर्थिक कार्य की स्वतंत्रंत्रता (Freedom of Economic Activities)- पूँजीवाद में प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। वह अपनी इच्छानुसार उत्पादन प्रारम्भ एवं बंद कर सकता है। अपना लाभ बढ़ाने के लिए वह उत्पादन प्रणाली में भी परिवर्तन कर सकता है।

(viii) साहसी की महत्वपूर्ण भूमिका (Important Role of Entrepreneur)- पूँजीवाद में साहसी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साहसी द्वारा उत्पादन के साधनों को संगठित करके वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन को सम्भव बनाया जाता है। वह सदैव ऐसा निर्णय लेने की कोशिश करता है ताकि उसके लाभ में वृद्धि हो सके।

(ix) व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रंत्रता (Freedom of Choice of Occupation)- एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार व्यवसाय चुनने के लिए स्वतंत्र होता है। इस स्वतंत्रता से कर्मचारी अपने श्रम के लिए सौदेबाजी करने योग्य बनता है।

(x) आय की असमानता (Inequality of Income)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सदैव आय की असमानता पायी जाती है। इस अर्थव्यवस्था में समाज दो वर्गों–पूँजीपति तथा श्रमिक में बँट जाता है जिनमें सदैव आपसी संघर्ष चलता रहता है। नियोक्ता अपने श्रमिकों को न्यूनतम भुगतान करके अपने लाभ को अधिकतम करना चाहते हैं। दूसरी ओर, श्रमिक अधिक से अधिक मजदूरी प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार दोनो वर्गों में संघर्ष होता है।

(xi) केन्द्रीय नियोजन का अभाव (Absence of Central Planning)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था है, अतः इसमें केन्द्रीय नियोजन का अभाव रहता है। दूसरे शब्दों में, पूँजीवादी प्रणाली की विभिन्न आर्थिक इकाइयाँ किसी केन्द्रीय योजना से निर्देशित समन्वित अथवा नियंत्रित नहीं

होती हैं। इसमें समस्त कार्य स्वतंत्रतापूर्वक मूल्य–यंत्र की सहायता द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। यह एक स्वतःशासित अर्थव्यवस्था है।

(xii) सरकार की सीमित भूमिका (Limited Role of Government)- केन्द्रीय नियोजन के अभाव से यह तात्पर्य नहीं है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सरकार की बिल्कुल भूमिका नहीं होती है। पूँजीवादी प्रणाली को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने हेतु कहीं–कहीं सरकारी हस्तक्षेप की नितान्त आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणार्थ–सम्पत्ति के अधिकारों को परिभाषित करना, समुदाय विशेष की आवश्यकताओं की संतुष्टि को सुनिश्चित करना, इत्यादि। इसके बावजूद सरकारी हस्तक्षेप अत्यन्त सीमित होता है। व्यवहार में विशुद्ध पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का कोई उदाहरण नहीं मिलता है। वर्तमान में पायी जाने वाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में पर्याप्त मात्रा में सरकारी हस्तक्षेप होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, स्विटजरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, ब्रिटेन, इटली, फ्रांस, स्वीडन, डेन्मार्क, बेल्जियम, इत्यादि ऐसे राष्ट्र हैं जहां आधुनिक पूँजीवाद अथवा मिश्रित प्रणाली पायी जाती है। अनियमित अथवा विशुद्ध पूँजीवाद में निम्नलिखित महत्वपूर्ण दोष हैं जिनकी वजह से पूँजीवाद का आधुनिक स्वरूप सामने आया है।

(i) विनियोग सदैव लाभ को ध्यान में रखकर किया जाता है। उच्च वर्ग हेतु उत्पादित वस्तुओं में लाभ का मार्जिन अधिक होता है। अतः उद्योगपति उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करेंगे। इस प्रकार विशुद्ध पूँजीवाद में उत्पादन के संसाधनों का आवंटन सर्वश्रेष्ठ विधि से नहीं हो पाता है।

(ii) स्वतंत्र प्रतियोगिता होने के कारण बड़ी फर्मों द्वारा एकाधिकार प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार एकाधिकार के समस्त दोष इसमें आ जाते हैं।

(iii) सम्पत्ति रखने के अधिकार तथा व्यवसाय की स्वतंत्रता से आय तथा धन के केन्द्रीयकरण का संकट उत्पन्न हो जाता है तथा अमीरों तथा श्रमिकों के बीच की खाई और चौड़ी हो जाती है।

2.5.2 समाजवादी आर्थिक प्रणाली : (Socialistic Economic System)

समाजवाद के बारे में इतना अधिक लिखा तथा कहा गया है कि इसकी एक उपयुक्त परिभाषा देना अत्यन्त कठिन कार्य है। लूक्स एवं हूट (Loucks and Hoot) ने सही कहा है कि 'बहुत सी वस्तुओं को समाजवाद कहा गया है तथा समाजवाद के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है।' (Socialism has been called many things and many things have been said for socialism) सरल शब्दों में, समाजवाद से तात्पर्य ऐसी आर्थिक प्रणाली से है जिसमें उत्पादन के साधनों पर सरकार का या तो अधिकार रहता है या उसके नियंत्रण में रहते हैं। इसमें विनियोग, संसाधनों को आवंटन, उत्पादन, वितरण, उपभोग, आय, इत्यादि सरकार द्वारा निर्देशित एवं नियमित किये जाते हैं। लूक्स एवं हूट ने सही लिखा है, ''समाजवाद एक आन्दोलन है जिसका उद्देश्य सभी प्रकार के प्राकृतिक एवं मनुष्यकृत उत्पादन की वस्तुओं का जो कि बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रयोग की जाती है, स्वामित्व एवं प्रबंध व्यक्तियों के स्थान पर सम्पूर्ण समाज के हाथ में देना होता है और उद्देश्य यह होता है कि राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि का इस प्रकार

समान वितरण किया जाय कि व्यक्ति के आर्थिक उत्साह, आर्थिक स्वतंत्रता एवं उपभोग के चुनाव में कोई विशेष हानि न होने पाये।''

समाजवादी आर्थिक प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताएँ (Important Charactersitics of Socialistic Economic System).

समाजवादी व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित है–

(i) सरकार का स्वामित्व एवं नियंत्रण (Government Ownership and Control)- समाजवादी व्यवस्था में उत्पत्ति के प्रमुख साधनों पर सरकार का अधिकार होता है, अर्थात् इस अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति किसी व्यक्ति की न होकर सम्पूर्ण समाज की होती है। कुछ समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में निजी क्षेत्र की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, लेकिन उस अवस्था में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए सरकार विनियोग का आवंटन एवं उत्पादन–संरचना का निर्देशन एवं नियमन करती है।

(ii) आर्थिक नियोजन (Economic Planning)- समाजवादी व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता आर्थिक नियोजन होती है जो इसे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से एकदम अलग करती है। समाजवाद में मूल्य–यंत्र नहीं पाया जाता है। इसमें अर्थव्यवस्था में स्थायित्व लाने के लिए, आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। इसमें उत्पादन, वितरण आदि से सम्बन्धित निर्णय एक केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत किये जाते हैं।

(iii) आय का समान वितरण (Equal Distribution of Income)- समाजवाद का उदय समाज में धन के असमान वितरण को दूर करने हेतु हुआ। धनी एवं निर्धन के मध्य व्याप्त आर्थिक असमानता समाप्त करना ही समाजवाद का प्रमुख लक्ष्य होता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मजदूरी दर का निर्धारण, प्रशुल्क नीति, विभिन्न आर्थिक उपायों इत्यादि कदमों को सरकार द्वारा उठाया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है। आर्थिक दृष्टि से इसमें वैसा भेद–भाव नहीं होता जैसा कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में होता है।

(iv) प्रतियोगिता का अभाव (Lack of Competition)- चूँकि इसमें उत्पादन, वितरण आदि से सम्बन्धित निर्णय एक केन्द्रीय संस्था द्वारा लिये जाते हैं इसलिए इसमें विक्रेताओं एवं उत्पादकों की अधिक संख्या नहीं होती। इसके परिणामस्वरूप समाजवाद में प्रतियोगिता की अनुपस्थिति रहती है। प्रतियोगिता न होने से साधनों का अपव्यय, विज्ञापन एवं प्रचार–प्रसार पर होने वाले व्यय इत्यादि में महत्वपूर्ण कमी आती है तथा पूँजी के दुरूपयोग पर अंकुश लगता है।

(v) व्यवसाय की स्वतंत्रंत्रता की अनुपस्थित (Freedom of Occupationis absent)- इसमें व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता नहीं होती है अथवा सरकार द्वारा प्रतिबन्धित होती है। एक व्यक्तिगत व्यवसायिक इकाई अपनी इच्छानुसार व्यवसाय करने के लिए स्वतंत्र नहीं होती है।

(vi) शोषण न होना (No Explotitation)- समाजवादी अर्थव्यवस्था में पूँजीपति एवं श्रमिकों के वर्ग–भेद को मिटा दिया जाता है। श्रमिकों का शोषण

समाप्त हो जाता है। इस अर्थव्यवस्था में लाभ–उद्देश्य के स्थान पर समाज कल्याण या सेवा उद्देश्य से कार्य सम्पादित किये जाते हैं। समाजवाद की महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख ऊपर किया गया है। व्यवहार में आज कई प्रकार के समाजवाद पाये जाते हैं– जैसे वैज्ञानिक समाजवाद, राजकीय समाजवाद, साम्यवाद इत्यादि। किन्तु इन विभिन्न प्रकार के समाजवाद में एक विशेषता समान रूप से सभी में पायी जाती है– पूंजीवादी व्यवस्था की तुलना में उत्पादन के साधनों पर सरकार का कहीं अधिक नियंत्रण होना। उपरोक्त विशेषताओं के बावजूद समाजवादी अर्थव्यवस्था अनेक दोषों से ग्रसित है। कुछ प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं:

(i) समाजवाद में उपभोक्ताओं को वस्तुएँ चुनने की स्वतंत्रता नहीं होती है। राज्य द्वारा जिन वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, उपभोक्ता द्वारा उन्हीं वस्तुओं का उपयोग किया जाता है।

(ii) समाजवादी अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद की तरह ऐसा कोई यंत्र नहीं होता है जिससे यह ज्ञात हो सके कि उपभोक्ता किस वस्तु की अधिक मांग कर रहे हैं तथा किन साधनों का अनुकूलतम उपयोग हो रहा है। पूँजीवाद में जो लाभ मूल्य–यंत्र प्रणाली से प्राप्त किये जा सकते हैं, वे लाभ समाजवाद की केन्द्रीय नियोजन प्रणाली से प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं।

(iii) चूँकि समाजवाद में निजी व्यवसाय की स्वतंत्रता नहीं होती है, इसलिए योग्य व अनुभवी लोगों की सेवाओं से राष्ट्र वंचित रहता है।

(iv) समाजवादी व्यवस्था में लाभ भावना एवं प्रतियोगिता का अभाव, उत्तराधिकार की समाप्ति, आदि के कारण व्यक्ति को कार्य करने की आर्थिक प्रेरणा नहीं मिलती है। समाजवाद के प्रत्येक श्रमिक एक सरकारी कर्मचारी होता है, इसलिए उसे अधिक कार्य करने हेतु प्रोत्साहन नहीं मिलता है।

(v) समाजवादी अर्थव्यवस्था में नौकरशाही का प्रभुत्व होता है जिसमें अक्सर महत्वपूर्ण निर्णयों को टाल दिया जाता है। कभी–कभी किसी कार्य हेतु उच्च अधिकारियों की स्वीकृति की आवश्यकता होती है, इसमें काफी समय लग जाता है, जिससे समस्या समाप्त होने के स्थान पर ज्यों–कि–त्यों बनी रहती है।

2.5.3 मिश्रित आर्थिक प्रणाली : (Mixed Economic System)

पूँजीवाद की कमियों को दूर करने के लिए समाजवाद का जन्म हुआ। समाजवादी अर्थव्यव्था पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विपरीत कार्य करती है। लेकिन इसमें पूँजीवाद के लाभों से भी वंचित रहना पड़ता है। इस प्रकार हमारे समक्ष दो अर्थव्यव्स्थाओं में से एक चुनाव करना होता है। दोनों की ही अपनी–अपनी विशेषताएं एवं लाभ–हानि हैं। इन दोनों अर्थव्यवस्थाओं का सबसे बड़ा दोष यह है कि एक के लाभ–दूसरे से प्राप्त नहीं किये जा सकते। अतः एक ऐसी अर्थव्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गयी जो दोनों अर्थव्यवस्थाओं के लाभों को एक साथ प्राप्त कर सके। इस आवश्यकता को पूरा करने हेतु मिश्रित अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। इसमें पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों के लाभों का मिश्रण होता है। इस व्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र का सह–अस्तित्व रहता है। इस अर्थव्यवस्था

में उत्पादन, वितरण तथा राष्ट्र के आर्थिक विकास के कार्यक्रम न तो पूरी तरह से सरकार के हाथ में रहते हैं और न ही निजी उद्यमियों के हाथ में।

मिश्रित आर्थिक प्रप्णाली का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Mixed Economic System)

मिश्रित अर्थव्यवस्था पूँजीवाद एवं समाजवाद के बीच की व्यवस्था है। इसमें निजी तथा सार्वजनिक दोनों साथ–साथ चलते हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में देश आर्थिक विकास के लिए निजी क्षेत्र को विशेष महत्व देते हुए आवश्यक सामाजिक नियन्त्रण भी रखता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में कुछ उद्योग पूर्णतया सरकारी क्षेत्र में होते है तो कुछ पूर्णतया निजी क्षेत्र में होते है तथा कुछ उद्योगों में निजी तथा सार्वजनिक दोनो ही भाग ले सकते हैं। दोनों के कार्य करने का क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है, परन्तु इसमें निजी क्षेत्र की प्राथमिकता रहती है। दोनों अपने–अपने क्षेत्र में इस प्रकार मिलकर कार्य करते हैं कि बिना शोषण के सभी वर्गों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो तथा तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त हो सके। प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गयी मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिभाषाओं का विवेचन निम्नलिखित प्रकार से है–

प्रो0 जे0डी0 खत्री के अनुसार– ''मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है, जिसमें समुदाय के सभी वर्गों के आर्थिक कल्याण के सम्वर्द्धन के लिए सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र को विशेष भूमिकाएं दी जाती हैं।''[1]

मुण्ड एवं रोनाल्ड वोल्फ (Mund and Ronald Wolf)- के शब्दों में ''मिश्रित अर्थव्यवस्था को निजी व सरकारी स्वामित्व या नियन्त्रित उपक्रमों की एक मिली–जुली व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें व्यावसायिक क्रिया अनेक व्यावसायिक स्वरूपों अथवा अवस्थाओं द्वारा संचालित की जाती है न कि केवल एक के द्वारा।[2]

एम0सी0 वैश्य– के मतानुसार, ''मिश्रित अर्थव्यवस्था दो विरोधी विचार–धाराओं के मध्य का मार्ग है, जिनमें एक ओर तो उत्पादन एवं अन्य आर्थिक क्रियाओं के सामाजीकरण के पक्ष में तर्क देती है तथा दूसरी ओर पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता में आस्था रखती है।''[3]

जे0डब्ल्यू0 ग्रोव G.W. Grove) के अनुसार– ''मिश्रित अर्थव्यवस्था की पूर्व धारणाओं में से एक धारणा यह है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन एवं उपभोग से सम्बद्ध मुख्य निर्णयों को प्रभावित करने में निजी संस्थानों को स्वतन्त्र पूँजीवादी व्यवस्था के अधीन प्राप्त स्वतन्त्रता से कम स्वतन्त्रता प्राप्त होती है तथा सार्वजनिक उद्योग सरकार के कठोर नियन्त्रण से मुक्त होते हैं।''[4]

---

[1] A mixed economic syste is a system in which the public sector and the private sector are alloted their respective rules in promoting the economic welfare of the all sections of the community. **Prof. J.D. Khatri.**

[2] A mixed economy may be defined as system of mixed private and governmentally owned or controlled enterprise, it is one in which business activity is carried on with numerous business forms and arrangements, not just one- **Mund and Ronald Wolf.**

[3] The mixed economy is the outcome of the compromise between the two widely different schools of thought-the one strongly pleading for the socialisation of all the means of production and entire economic acivity in mass and the other which champions because of laissez faire par excellence. **M.C. Vaish.**

[4] One of the pre-sppositions of mixed economy is that private firms are less free to control major decisions about production and counsumption than they would be under

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि, ''मिश्रित अर्थव्यवस्था ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें निजी एवं सार्वजनिक उद्यमों का सह–अस्तित्व होता है तथा मानवीय मूल्यों, आर्थिक विकास एवं समाज कल्याण को समन्वित किया जाता है।'' इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत राज्य विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का आवंटन विभिन्न क्षेत्रों में उनके महत्व, प्रभाव क्षेत्र, शोषण तत्व, कल्याण तत्व एवं अर्थव्यवस्था में उसकी स्थिति के आधार पर करता है, जिससे साधनों का अधिकतम उपयोग समाज के कल्याण के लिए करना सम्भव होता है।

मिश्रित आर्थिक प्रणाली अपनाने के कारण (Causes of adoption of Mixed Economic System)- वैश्विक अर्थव्यवस्था के जिन देशों में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है, वहाँ इसके अपनाने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं–

1. **पूँजीवाद के दोष दूर करना (To remove the demerit of capitalism)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत पूँजीवादी शक्तियों पर सरकारी नियमन एवं नियन्त्रण होता है, जिस कारण निजी उद्योगपति जनहित के विरूद्ध कार्य नहीं कर पाते हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था में ब्याज की दर, निवेश एवं रोजगार में नियोजन प्रक्रिया द्वारा व्यापार चक्रों पर अंकुश लगाया जाता है। नियोजित अर्थव्यवस्था होने के कारण इसके कार्यों में दोहरेपन की अपव्ययता से भी बचा जा सकता है।
2. पूँजीवाद के समस्त लाभ प्राप्त होना **(To achieve all benefits of capitalism)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत पूँजीवादी प्रणाली के समस्त दोषों को दूर करके लाभ प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था मे निजी क्षेत्र की सीमा को आवश्यकतानुसार घटा–बढ़ाकर अधिकतम कुशलता या लाभ प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।
3. **समाजवाद के लाभ प्राप्त होना (To achieve benefits of socialism)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में समाजवादी प्रणाली के गुणों का समावेश होने तथा सरकारी नियमन, नियोजन तथा नियन्त्रण के द्वारा विकास प्रक्रिया अपनाये जाने के कारण आय एवं सम्पत्ति का समान वितरण समभव होता है। उत्पादन के साधनों का अनुकूलतम एवं विवेकपूर्ण विदोहन से जन सामान्य को लाभ प्राप्त होता है।
4. **आधारभूत एवं जनहित उद्योग का विकास (Development of basic and public utility industries)** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सार्वजनिक कल्याण एवं जनहित को ध्यान में रखकर सरकार ऐसी औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करती है, जहाँ भारी मात्रा में निवेश होता है तथा लाभार्जन क्षमता कम होती है। ऐसे उद्योग देश की संरचना, सुरक्षा, विकास एवं जन कल्याण के लिए आवश्यक एवं उपयोगी होते है। इन उद्योगों में मुख्यतया रेलवे, बिजली, गैस, पानी, संचार, यातायात तथा सुरक्षा सम्बन्धी सार्वजनिक उपक्रम आते हैं। दूसरी तरफ ऐसे उद्योगों में बहुत अधिक निवेश की आवश्कयता पड़ती है तथा लाभ नहीं के बराबर

---

capitalist free enterprises and that public industry is free from government restrains than it would be under centrally directed socialist enterprise." **J.W. Grove.**

होता है, जिस कारण निजी क्षेत्र आकर्षित नहीं होता है। अतः इसके लिए सरकार निजी क्षेत्र के साथ मिलकर इन उद्योगों का संचालन करती है, जो मिश्रित अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण कार्य होता है।

मिश्रित आर्थिक प्रणाली की विशेषताएँ (Characteristics of Mixed Economic System)- मिश्रित अर्थव्यवस्था की संकल्पना का आधारिक तत्व सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के मध्य कार्यों का स्पष्ट विभाजन होता है तथा विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र का सापेक्षिक महत्व पृथक हो सकता है। इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

- **विभिन्न क्षेत्रों का समावेश (Presence of various sector)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों जैसे–सार्वजनिक, निजी, मिश्रित तथा सहकारी क्षेत्रों की विद्यमानता रहती है, जिनकी अपनी–अपनी विशेषताएँ होती हैं तथा पृथक–पृथक लाभ व गुण होते हैं। इसी कारण इस अर्थव्यवस्था को विभिन्न क्षेत्रों के लाभ प्राप्त हो जाते हैं, जिससे सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है।
- **निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र का सह–अस्तित्व (Co-existence of private & public sector)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों साथ–साथ कार्य करते हैं। सरकार द्वारा निजी उद्योग तथा सार्वजनिक उद्योगों का अलग–अलग क्षेत्र निश्चित कर दिया जाता है। सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत लोहा इस्पात, रासायनिक उद्योग, परिवहन, विद्युत, खनिज व संचार, आयुध आदि शामिल होते हैं, जोकि निजी क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि आधारित लघु एवं मध्यम स्तरीय तथा उपभोक्ता आधारित उद्योग आदि शामिल होते हैं। दोनों ही क्षेत्र एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं।
- **सार्वजनिक हित सर्वोपरि (Maximization of public interest)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक हित का स्थान सर्वोपरि होता है। इसके लिए सरकार निजी क्षेत्र के साथ मिलकर कार्य करती है तथा आवश्यकतानुसार निजी क्षेत्र को निर्देशित एवं नियन्त्रित भी करती रहती है। जरूरत पड़ने पर निजी क्षेत्र को सरकार आर्थिक मदद या सुविधाएं भी प्रदान करती है।
- **आय की समानता के लिए प्रयास (Efforts for equality of income)-** समाज में आय व सम्पत्ति की असमानता को कम करने के लिए सरकार नियम, नीतियों आदि के माध्यम से आवश्यक प्रयास करती रहती है जिसके लिए विभिन्न प्रकार के कर जैसे–आयकर, सम्पत्ति कर, उपहार कर, सेवा कर आदि माध्यमों द्वारा अधिक आय प्राप्त करने वालों से कर वसूल कर देश के विकास में लगाया जाता है जो कम आय प्राप्त करने वालों को अप्रत्यक्ष रूप से आय बढ़ाने में मदद करता है। साथ ही साथ एकाधिकारी प्रवृत्ति पर सरकारी नियन्त्रण होता है।
- **आर्थिक नियोजन (Economic planning)-** आधुनिक युग में आर्थिक नियोजन से अभिप्राय केवल आर्थिक प्रगति से नहीं लगाया जाता है, बल्कि सामाजिक न्याय को भी शामिल किया जाता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकारी एवं नियंत्रित निजी क्षेत्रों के द्वारा नियोजन का

संचालन किया जाता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत आर्थिक नियोजन के द्वारा देश की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना में परिवर्तन करके अर्थव्यवस्था में आर्थिक प्रगति को गतिमान किया जाता है।

- **सरकारी नियन्त्रण (Government control)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की सहभागिता होती है तथा देश की दशा एवं दिशा तय करने में इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः सरकार निजी क्षेत्र के साथ काम करते हुए अनेक कानूनों, नियमों, नीतियों आदि का निर्माण करती है जिससे निजी क्षेत्र भी राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति में देश एवं सरकार का सहभागी बने। निजी क्षेत्र द्वारा व्यक्तिगत लाभ के लिए अधिक प्रयास किया जाता है अतः इसके लिए भी सरकारी नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है।
- **आर्थिक स्वतन्त्रता (Economic freedom)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में व्यक्ति की आवश्यक स्वतंत्रताओं को कम किये बिना ही केन्द्रीय नियन्त्रण एवं नियमन सम्भव होता है। आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति का उपभोग या व्यवसाय को चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। किसी भी देश के लोगों को प्राप्त आर्थिक स्वतन्त्रता की विद्यमानता का मापदण्ड निजी, सहकारी एवं मिश्रित क्षेत्र कहे जा सकते हैं।
- **साधनों का कुशल उपयोग (Fair use of resources)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन की पद्धति अपनाये जाने के कारण साधनों को निजी, सार्वजनिक, संयुक्त एवं सहकारी क्षेत्रों में एक पूर्वनिर्धारित व सुनिश्चित योजनानुसार बांटा जाता हैं, जिस कारण समस्त साधनों का कुशलतम प्रयोग सुनिश्चित होता है।
- **नियोजन के लाभ (Benefit of planning)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था को एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार चलाया जाता है। अतः ऐसी अर्थव्यवस्था को आर्थिक नियोजन के समस्त लाभ प्राप्त हो सकते हैं, जैसे साधनों का विवेकपूर्ण बंटवारा, व्यापार चक्रों से मुक्ति, तीव्र आर्थिक विकास, कुशलता का ऊँचा स्तर आदि।
- **व्यक्तिगत उपक्रम को महत्व (Importance of personal enterprise)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तिगत उपक्रम को अधिक महत्व दिया जाता है। सरकार द्वारा उद्योगों को वित्तीय सहायता, अनुदान, अनुज्ञापत्र, कर में छूट, बाजार व्यवस्था, उद्योगों का स्थानीयकरण आदि के लिए विशेष सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। इस अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सरकार निजी उद्यमी को मान्यता देती है तथा ऐसे अवसर प्रदान करती रहती है, जिनसे व्यक्तिगत उपक्रम राष्ट्रीय प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दे सकें।
- **सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र का संयुक्त विकास (Joint development of public & private sector)-** सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र मिश्रित आर्थव्यवस्था के लिए समान महत्व रखते हैं। अतः सरकार का यह प्रयास रहता है कि दोनों क्षेत्र संयुक्त रूप से फले–फूलें, इसके लिए सरकार निजी क्षेत्र को साथ लेकर चलने के लिए आर्थिक प्रोत्साहन व सहायता

प्रदान करती है व संरक्षण देती है। इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था की उपरोक्त विशेषताओं का अध्ययन करने के उपरान्त स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था दो अन्य अर्थव्यवस्थाओं पूंजीवादी एवं समाजवादी की तुलना में अधिक लोक कल्याणकारी, विकासोन्मुखी व संतुलित आर्थिक प्रणाली होती है।

2.6 भारत में मिश्रित आर्थिक प्रणाली (Mixed Economic System in India)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था थी, क्योंकि देश में ब्रिटिश सरकार की व्यापारिक नीतियाँ पूर्णरूपेण लागू थीं। ब्रिटिश सरकार की व्यापारिक नीतियाँ पूर्णरूपेण पूँजीवादी थीं व इसमें व्यापारिक गतिविधियों (पूंजी का) का वर्चस्व था। साथ ही ब्रिटेन ने जब–जब अपनी आर्थिक एवं व्यापारिक नीतियों में परिवर्तन किया तब–तब भारत को भी अपनी आर्थिक एवं व्यापारिक नीतियों में उसी के अनुरूप परिवर्तन करने के लिए विवश होना पड़ा, परन्तु स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् देश की अर्थव्यवस्था को तीव्र गति से विकसित करने की अत्यधिक आवश्यकता थी। अतः देश में सर्वप्रथम 6 अप्रैल 1948 को प्रथम औद्योगिक नीति के लागू होने से ही मिश्रित अर्थव्यवस्था की शुरूआत हुई। मिश्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से जहाँ एक ओर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को स्थान मिलता है, वहीं दूसरी ओर सरकारी नियन्त्रण भी बना रहता है। भारत, मिश्रित अर्थव्यवस्था के लक्ष्य को अपनाकर समस्त नियोजन प्रक्रिया सम्पन्न कर रहा है। हमारे देश की पंचवर्षीय योजनाएं देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था का उल्लेखनीय उदाहरण हैं। इन योजनाओं में सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों को पर्याप्त स्थान दिया गया है। देश में जहाँ एक ओर सरकार सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार कर रही है, वहीं दूसरी ओर निजी क्षेत्र में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व विकास को पर्याप्त स्थान दिया जा रहा है।

भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्व भी मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। नीति निर्देशक सिद्धान्तों में स्पष्ट उल्लेख है कि देश में भौतिक साधनों को इस प्रकार वितरित करना है कि धन एवं उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण (एकत्रीकरण) न हो पाये। संविधान में भौतिक साधनों को राजकीय अथवा निजी किसी भी एक क्षेत्र के अधिकार में रखने की चर्चा नहीं की गयी है। असका निर्णय राज्य या सरकार के अधिकार में है कि अर्थव्यवस्था के किस क्षेत्र का संचालन निजी क्षेत्र द्वारा किया जाय।

भारतीय संविधान द्वारा नयी सामाजिक व्यवस्था में स्वतन्त्रता, निजी प्रारम्भिकता एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लाभों के लिए प्रावधान है तथा दूसरी ओर इन क्षेत्रों पर सामाजिक नियन्त्रण का लाभ उठाने के लिए भी व्यवस्था है, जिन पर सामाजिक नियन्त्रण द्वारा जनहित सम्भव होता है। संविधान द्वारा निर्धारित व्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों को स्थान दिया गया है तथा इन दोनों को एक दूसरे के पूरक एवं सहायक के रूप में कार्य करने का आयोजन किया गया है।

देश की प्रथम औद्योगिक नीति, 1948 में लागू हुई, जो भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की जन्मदाता है। इस औद्योगिक नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में उद्योगों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया था।

- ऐसे उद्योग जिनका संचालन केवल केन्द्र सरकार ही कर सकती थी,
- ऐसे उद्योग जिनके विकास का उत्तरदायित्व राज्य सरकार पर था तथा
- ऐसे उद्योग जो पूर्णतः निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिये गये थे।

देश में विभिन्न औद्योगिक नीतियों एवं पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से मिश्रित अर्थव्यवस्था को और मजबूत करने पर बल दिया गया है तथा अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण क्षेत्र पर समान व न्यायपूर्ण ध्यान देकर उच्च संतुलित आर्थिक विकास के लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

2.7 सारांश

आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत वे संस्थायें सम्मिलित की जा सकती हैं जिन्हें देश अपने निवासियों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये अपनाता है। आर्थिक प्रणाली यह निश्चित करती है कि कौन सी वस्तु, कैसे और कितनी उत्पादित की जाय तथा उसका वितरण कैसे किया जाय। स्वामित्व के आधार पर आर्थिक प्रणाली तीन प्रकार की होती है। पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली, समाजवादी आर्थिक प्रणाली एवं मिश्रित आर्थिक प्रणाली। पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के दोषों के कारण समाजवादी आर्थिक प्रणाली अपनाई गई। परन्तु समाजवादी एवं पूंजीवादी दोनों ही प्रणालियों के दोषों को दूर करने के लिये एक नयी प्रणाली जिसे मिश्रित आर्थिक प्रणाली कहते हैं, अपनाई जाने लगी। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मिश्रित आर्थिक प्रणाली अपनाई गई। मिश्रित आर्थिक प्रणाली लागू करने के लिये भारत सरकार को अपनी आर्थिक नीति एवं अधिनियम उसी के अनुरूप बनाना पड़ा।

2.8 शब्दावली

पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली (Capilalistic Economic System) वह प्रणाली है जिसमें उत्पादन एवं सेवा के सभी साधनों का स्वामित्व निजी हाथों में होता है जो इन साधनों का उपयोग अपने लाभ को अधिकतम करने के लिये करते है।

समाजवादी आर्थिक प्रणाली (Socialistic Economic System) वह अर्थव्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व होता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economis System) वह अर्थव्यवस्था है जिसमें निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र साथ–साथ चलते हैं।

आर्थिक नियोजन (Economic Planning) देश के त्वरित आर्थिक विकास के लिये नियोजित तरीके से आर्थिक विकास का तरीका।

2.9 बोध प्रश्न

1. आर्थिक प्रणाली से आप क्या समझते हैं ?
2. आर्थिक प्रणाली के विभिन्न प्रकारों को संक्षेप में बताइये?
3. पूंजीवादी एवं समाजवादी आर्थिक प्रणाली में अन्तर बताइये?
4. मिश्रित आर्थिक प्रणाली को अपनाये जाने के कारण बताइये?

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 2.2 का अध्ययन करिए।
2. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 2.5 का अध्ययन करिए।
3. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 2.5.2 तथा 2.5.3 का अध्ययन करिए।

4. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 2.5.3 का अध्ययन करिए।

2.11 स्वपरख प्रश्न

1. आर्थिक प्रणाली के प्रमुख कार्य क्या हैं?
   What are the main functions of Economic System?
2. पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली से आप क्या समझते हैं?
   What do you understand by Capitalistic Economic System?
3. पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
   Describe main characteristics of Capitalistic Economic System.
4. समाजवादी अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
   What do you understand by Socialistic Economy?
5. समाजवादी आर्थिक प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
   Explain the main characteristics of Socialistic Economic System.
6. मिश्रित आर्थिक प्रणाली से आप क्या समझते हैं? इसकी मुख्य विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
   What do you understand by mixed economy system explain its main characteristics.

2.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्व्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–3 व्यवसाय एवं समाज (Business and Society)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 व्यवसाय का समाज से सम्बन्ध का अध्ययन
  3.2.1 व्यवसाय पर सामाजिक मूल्यों का प्रभाव
  3.2.2 व्यवसाय तथा समाज के सम्बन्धों का महत्व
  3.2.3 व्यवसाय का सामाजिक उद्देश्य
  3.2.4 सामाजिक वातावरण तथा व्यवसायिक निर्णयन का सम्बन्ध
  3.2.5 व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व
3.3 सारांश
3.4 शब्दावली
3.5 बोध प्रश्न
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 स्वपरख प्रश्न
3.8 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- व्यवसाय और समाज के मध्य पाए जाने वाले सम्बन्ध का अध्ययन कर सकें।
- व्यवसाय पर सामाजिक मूल्यों का क्या प्रभाव होता है, की व्याख्या कर सकें।
- व्यवसाय का सामाजिक उद्देश्य व सामाजिक उत्तरदायित्व का वर्णन कर सकें।

3.1 प्रस्तावना

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व व्यवसाय परम्परागत तरीके से धीमी गति से विकसित हो रहा था, परन्तु स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् व्यवसाय की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली व विचारधारा में काफी बदलाव आया तथा व्यवसाय को एक नवीन गति प्राप्त हुई। पहले व्यवसाय का मुख्य केन्द्र बिन्दु व्यवसाय का विकास तथा अत्यधिक लाभ अर्जन ही था। आज व्यवसाय किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं, अपितु समाज की सम्पत्ति समझी जाती है। वर्तमान समाज के सहयोग के अभाव में कोई भी व्यक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी भी व्यावसायिक संस्था का निर्माण व संचालन सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है। व्यवसाय समाज में, समाज के लिए तथा समाज के व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। आधुनिक समाज की व्यवसाय पर अत्यधिक निर्भरता है तथा इस निर्भरता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है तथा व्यावसायिक गतिविधियों में थोड़ी सी ही रूकावट समाज को मुश्किल में डाल देती है। व्यवसाय द्वारा ही समाज को रोजगार प्राप्त होता है, जिससे समाज का जीवन स्तर ऊँचा उठता है।

वास्तव में सामाजिक घटकों व मूल्यों का उल्लंघन करके कोई भी व्यावसायिक उपक्रम अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकता है। समाज ही

व्यवसाय के समक्ष, लक्ष्य, उद्देश्य व अभिलाषाएँ रखता है। व्यावसायिक निर्णयों पर समाज की मान्यताओं, मूल्यों, विश्वासों तथा जीवन शैलियों का गहरा प्रभाव पड़ता है। उपभोक्तावाद एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधाराओं ने व्यवसाय को उपभोक्ता व समाज अभिमुखी बना दिया है। रेनकी एवं शॉल ने व्यवसाय व समाज के पारस्परिक सम्बन्ध, निर्भरता व प्रभावों के बारे में ठीक ही कहा है, ''व्यवसायी को निरन्तर मानवीय आशाओं, भय, आकांक्षाओं, पसन्द, नापसन्द, प्राथमिकताओं व विचारों के संसार में रहकर कार्य करना होता है, वह इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता, उसे मानव समाज, इसकी मूल्य प्रणालियों तथा इसके सामाजिक प्रारूपों का सम्मान करना ही होता है।'' अतः व्यवसाय व समाज एक–दूसरे में अन्तर्व्याप्त हैं।

आधुनिक समय में जो भी व्यवसायी सामाजिक मूल्यों के प्रति सजग रहा है, उसकी गरिमा मे वृद्धि हुई है। सामाजिक मूल्यों में समय–समय पर परिवर्तन होते रहे है। सामाजिक मूल्यों मे परिवर्तन के कारण ही पिछले कुछ दशकों में नयी सामाजिक मान्यताओं की स्थापना हुई है, जिसका व्यावसायिक दर्शन के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। व्यवसाय, समाज में रहकर, समाज के लोगों द्वारा ही किया जाता है। सामाजिक वातावरण का व्यवसाय पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इसमें आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक व अन्य शक्तियाँ तथा सम्पूर्ण राष्ट्रीय लक्ष्य व्यावसायिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। समाज में बदलती हुई विचारधारायें, प्रबन्धकीय ज्ञान व कौशल, भौतिक विकास, विचार एवं दृष्टिकोण, परिवर्तनशील प्रौद्योगिकी तथा सांस्कृतिक वातावरण सभी किसी न किसी रूप में व्यवसाय को प्रभावित करते है। जो व्यवसाय बदलते हुए वातावरण के अनुरूप अपनी कार्य पद्धतियों, उत्पादन प्रणाली, संगठन संरचनाओं, नेतृत्व शैलियों, दर्शन व लक्ष्यों में नवीनता नहीं लाता, तो ऐसा व्यवसाय न तो समाज में अपना कोई योगदान कर पाता हैं और न ही अपने लक्ष्यों को पूरी तरह प्राप्त कर सकता है।

3.2 व्यवसाय का समाज से सम्बन्ध का अध्ययन (Study of relation of Business with Society)

व्यवसाय एवं समाज एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। व्यवसाय एवं समाज के सम्बन्धों के अध्ययन को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से भली–भॉति समझा जा सकता है–

3.2.1 सामाजिक मूल्य का व्यवसाय पर प्रभाव,

3.2.2 समाज तथा व्यवसाय के सम्बन्धों का महत्व,

3.2.3 व्यवसाय का सामाजिक उद्देश्य या कार्य,

3.2.4 समाज तथा व्यावसायिक निर्णयन का सम्बन्ध,

3.2.5 व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व

3.2.1 सामाजिक मूल्य का व्यवसाय पर प्रभाव (Impact of Social Value on Business)

मनुष्य की आधारभूत इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की संतुष्टि करने में मूल्य का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। सामाजिक मूल्य समाज में एकता, संगठन व नियंत्रण बनाये रखते है। सामाजिक व व्यावसायिक जीवन को सामाजिक मूल्य निम्नलिखित ढंग से प्रभावित करते हैं–

1. **भौतिक संस्कृति का महत्त्व बढ़ाते हैं (Increases materialistic culture):** भौतिक संस्कृति के कुछ तत्व समाज के कुछ लोगों या समूहो के लिए चाहे इतने महत्वपूर्ण न भी हों, किन्तु उनके पीछे सामाजिक मूल्य कार्य करते रहते हैं। अतः लोग उन वस्तुओं को रखने में रूचि रखते है। उदाहरणार्थ टेलीविजन, कार, मोबाइल, आदि कुछ व्यक्तियों के लिए अधिक उपयोगी न होने पर भी वे उन्हें इसलिए रखना चाहते हैं कि इनसे उन लोगों की सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है, क्योंकि सामाजिक मूल्य इन वस्तुओं को उपयोग एवं प्रतिष्ठा सूचक मानते है।

2. **समाज में एकरूपता उत्पन्न करते है (Facilitates in Society Oneness):** सामाजिक मूल्य, सामाजिक सम्बन्धो एवं व्यवहारों में एकरूपता उत्पन्न करते है। सभी व्यक्ति समाज में प्रचलित मूल्यों के अनुसार ही आचरण करते है। इन्हीं सबके परिणामस्वरूप सभी के व्यवहारों में समानता उत्पन्न होती है।

3. **व्यक्ति के व्यवहार एवं प्रगति के लिए महत्वपूर्ण (Necessary for individual & growth) :** सामाजिक मूल्यों का व्यक्तिगत जीवन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। सामाजिक मूल्य सारे समूह एवं समाज की ही देन होते है। समाजीकरण द्वारा व्यक्ति इन मूल्यों को आत्मसात करता है तथा अपने, व्यवहार, आचरण एवं जीवन को उनके अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति का समूह के साथ एकीकरण, व्यक्ति की सुरक्षा एवं सामाजिक प्रगति दोनों ही दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

4. **सामाजिक भूमिकाओं का निर्देशन (Directions of Social Roles) :** सामाजिक मूल्य यह तय करते हैं कि एक व्यक्ति किसी विशेष परिस्थिति में किस प्रकार की भूमिका निभाता है। समाज उससे किस प्रकार के आचरण करने की अपेक्षा करता है। स्थान एवं काल के अनुसार भूमिकाओं में भिन्नता पायी जाती है। भारत में 'पिता–पुत्र या पुत्री, पति एवं पत्नी' की भूमिका अमेरिका या इंग्लैण्ड में इनकी भूमिका से इसलिए भिन्न है कि इन देशों के 'मूल्य व्यवस्था' में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है।

5. **सामाजिक क्षमता का मूल्यांकन (Measurement of Social Capability) :** सामाजिक मूल्यों के द्वारा ही समाज में रहने वाले व्यक्ति यह जानने में समर्थ होते हैं कि दूसरे लोगों की दृष्टि में उनका क्या महत्त्व या स्थान है? वे समाज में कहाँ स्थित हैं? अतः इन सबका मूल्यांकन सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही किया जाता है।

6. **सामाजिक संगठन व एकीकरण में सहायक (Helpful in Social Organisation and amalgamation)** : सामाजिक मूल्य सामाजिक नियंत्रण के सशक्त साधन हैं। ये व्यक्ति एवं समूह पर निश्चित प्रकार का व्यवहार करने या न करने के लिए दबाव डालते है। समाज द्वारा मूल्यों के विपरीत आचरण करने वालों के लिए दण्ड मिलता है तथा मूल्यों के अनुरूप आचरण करने वालों की प्रशंसा व सराहना की जाती है।

8. **बदलते परिवेश में परिवर्तित मूल्य अपनाना (To adopt Changable Value in Changing Environment) :** सामाजिक मूल्य समय एवं परिस्थिति

के साथ यदि परिवर्तित नहीं होते हैं या समाज के लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक होते हैं, तो लोगों द्वारा ऐसे मूल्यों का खण्डन एवं त्याग करना प्रारम्भ हो जाता है तथा समयानुकूल नये मूल्यों को अपनाने लगते है। भारतीय समाज में प्रचलित बाल–विवाह, स्त्री प्रथा, पर्दा प्रथा, जागीर प्रथा, अस्पृश्यता आदि से सम्बन्धित पुराने रूढ़िवादी मूल्य वर्तमान परिस्थितियों से मेल नहीं खाते हैं। परिणामस्वरूप व्यक्तियों ने इन मूल्यों का त्याग किया है तथा नये मूल्यों को अपनाया है।

9. **मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक (Helpful in the fulfillment of Human Needs) :** सामाजिक मूल्य मानव की विभिन्न शारीरिक, सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही समय–समय पर अनेक आविष्कार होते रहे हैं तथा वे समाज के अंग बनते गये। साथ ही साथ समाज द्वारा यह तय किया जाता है कि मानव अपनी अनन्त आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार करेगा।

10. **मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों के स्रोत (Source of Human Value and Ideals):** प्रत्येक समाज में मानव व्यवहार एवं आचरण से सम्बन्धित कुछ मूल्य एवं आदर्श होते है। प्रत्येक व्यक्ति इन्हीं के अनुरूप समाज में व्यवहार करता है। आदर्शों एवं मूल्यों की अवहेलना करने पर व्यक्ति को सामाजिक तिरस्कार का सामना करना पड़ता है।

11. **व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality) :** प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समाज में जन्म लेता है। उसका पालन–पोषण वहाँ के सामाजिक वातावरण मे होता है। व्यक्तियों द्वारा प्रथा, रीति–रिवाज, धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान आदि को ग्रहण किया जाता है तथा अपने व्यक्तित्व को उसके अनुरूप ढालता है। व्यक्तियों में भिन्नता समाज एवं संस्कृति की भिन्नता के कारण उत्पन्न होती है।

3.2.2 समाज तथा व्यवसाय के सम्बन्धों का महत्व (Impact of Relation between Society and Business)

वैश्विक स्तर पर बीसवीं सदी ने जहाँ व्यवसाय को नये आयाम दिये हैं, वहीं इसने व्यवसाय के सामाजिक आधार को अधिक सुदृढ़ किया है। अब यह विचार सर्वमान्य हो चुका है कि आर्थिक आधार को अपनाया जाय या सामाजिक आधार को। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि व्यवसाय के लिए दोनों ही आधार आवश्यक है। एडवार्ड कोल के विचार में, ''आज व्यवसाय के सामने सबसे बड़ी चुनौती निरन्तर बदल रही सामाजिक अपेक्षाओं एवं राष्ट्रीय लक्ष्यों का मूल्यांकन करके उचित सामाजिक व्यवहार (कार्य) करना है।'' इस प्रकार व्यवसाय के समक्ष सामाजिक अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करने का कोई विकल्प नहीं है, यह सब व्यवसाय का आधार है तथा यदि इसी आधार को ही नष्ट कर दिया जाय या कमजोर बना दिया गया तो व्यवसाय के फलने–फूलने की सम्भावनाएँ नष्ट हो जायेंगी।

समाज एवं व्यवसाय के सम्बन्ध में महत्व को संक्षेप में निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से समझा जा सकता है–

1. **संवैधानिक व्यवस्था (Constitutional Arrangement) :** भारतीय संविधान में समाज के सभी पक्षों की रक्षा पर ध्यान दिया गया है तथा व्यवसाय के पनपने व अग्रसर होने के लिए भी अनेक व्यवस्थाओं का समावेश किया गया है।

2. **बहुलवादी समाज की स्थापना (Establishment of Multiple Society) :** व्यवसाय का समाज में सफल संचालन के लिए 'बहुलवादी समाज' की स्थापना पर विशेष बल दिया जाता है तथा व्यक्तिवादी विचारधारा को दर किनार कर दिया जाता है, जिससे व्यवसाय द्वारा समाज के अधिकांश लोगों को लाभ या संतुष्टि प्राप्त होती है।

3. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर ध्यान (Attention on Social and Cultural Values) :** सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों जैसे– आस्था, रीति–रिवाज, धर्म, परम्परा आदि पर व्यवसाय द्वारा पर्याप्त ध्यान दिया जाना न केवल इनके पोषण एवं संरक्षण के लिए आवश्यक है, बल्कि व्यावसायिक हितों की तीव्र अभिवृद्धि के लिए भी इन्हें आधार बनाना आधुनिक समाज का एक अभिन्न अंग बन गया है।

4. **उपभोक्ता आन्दोलन (Consumer's Movement) :** उपभोक्ता आन्दोलन एवं चेतना ने लोगों को अधिक जागरूक बनाया है, इसमें शिक्षा के प्रसार ने भी काफी योगदान दिया है। उपभोक्ता अपने अधिकारों को प्राप्त करने, अच्छी सेवाएँ उपलब्ध करवाने, उत्पाद एवं सेवाओं की कमियों एवं दोषों से छुटकारा पाने तथा नुकसान के लिए हर्जाना प्राप्त है करने आदि के लिए पहले से कहीं ज्यादा सतर्क तथा जागरूक है। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता को इन कार्यों के लिए कहाँ एवं किससे सम्पर्क करना है आदि की भी पूरी जानकारी होती जा रही है।

5. **उपभोग प्रवृत्तियों एवं प्रारूपों में परिवर्तन (Changes in Consumption Trend and Forms) :** उपभोक्ताओं मे उपभोग प्रवृत्तियों एवं प्रारूपों में विशेषकर इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से तीव्र परिवर्तन आया है, जिसका व्यवसाय किसी भी स्थिति में इनकी अनदेखी नहीं कर सकता। लोगों की उपभोग की आदतें विकसित समाज के जैसी होती जा रही हैं, जहाँ एक उच्च एवं विकसित उपभोग, संस्कृति है। उपभोग प्रवृत्तियों एवं प्रारूपों का अध्ययन एवं विश्लेषण व्यवसाय के लिए माँग सृजन, माँग आपूर्ति, नवीन उत्पाद एवं सेवाओं का बाजार तैयार करने, उत्पाद अभिकल्पना, विज्ञान माध्यम, सेवा क्षेत्र का विकास इत्यादि के लिए अनिवार्य हो गया है।

6. **सामाजिक एवं पारिवारिक संरचना एवं मान्यताओं में परिवर्तन (Changes in Social and Families and Assumptions Structures) :** सामाजिक एवं पारिवारिक संरचना एवं मान्यताओं में जो परिवर्तन आते हैं, उससे व्यावसायिक क्रियाएँ पूर्णरूपेण प्रभावित होती हैं। वर्तमान वातावरण तथा एक शताब्दी के पूर्व के सामाजिक ढाँचे में व्यापक अन्तर है। परिवारों के स्वरूप व संरचना बदलते जा रहे हैं संयुक्त एवं विस्तृत परिवार का स्थान अब नाभिकीय युग्म तथा एकल व्यक्ति परिवारों ने ले लिया है। ऐसे परिवारों की

आवश्यकतायें अब संयुक्त न रहकर पृथक एवं स्वतंत्र होने लगी हैं, जिनका ध्यान रखना व्यवसाय के लिए जरूरी है।

7. **शहरीकरण का प्रभाव (Effect of Urbanization) :** देश में बढ़ते शहरीकरण तथा गाँवों में शहरी प्रभावों के बढ़ने से वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग, पूर्ति एवं उपभोग ने नये आकार ग्रहण कर लिये है। बड़ी–बड़ी कम्पनियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में बाजार की तलाश में है, तथा ऐसे अनेक क्षेत्रों में इनके द्वारा बाजार तैयार किया गया है। बढ़ते हुए शहरीकरण, महानगरों व बड़े–बड़े शहरों ने कम्पनियों को नयी व्यूह रचनाएँ तैयार करने तथा उन्हें अपनाने के लिए बाध्य कर दिया है।

8. **जनसंख्या वृद्धि (Population Growth) :** बढ़ती जनसंख्या ने जहाँ एक ओर समाज तथा सरकार के लिये विकट एवं गम्भीर समस्याएँ पैदा कर दी है, वहीं दूसरी ओर व्यवसाय के लिए नयी सम्भावनाओं का भी आधार तैयार किया है। अधिकतर व्यवसायों के लिए तो जनसंख्या वृद्धि वरदान सिद्ध हुआ है। बढ़ती हुई जनसंख्या ने हर वर्ग, उम्र व वर्ग के बच्चे, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, लड़के–लड़कियाँ, युवक–युवतियाँ, पुरूष–महिलाएं, स्कूल–कालेज व विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर रहे शिक्षार्थी, कामकाजी महिलाएं, घुमक्कड़ एवं मौज मस्ती करने वाले समूह तथा अकेले व्यक्तियों, नये फैशन की दौड़ व आधुनिक समाज को चाहने वालों की संख्या में अपार वृद्धि की है तथा व्यवसाय के लिए नये आधार व अवसर तैयार किये है।

9. **व्यवसाय एवं समाज के बढ़ते सम्बन्ध (Improved Relations of Business & Society) :** व्यवसाय ने 'समाज तथा व्यवसाय' की बढ़ी हुई आत्मनिर्भरता को पहचाना है तथा इसे एक ठोस आधार के रूप में स्वीकार किया है। दोनों एक ऐसी अवस्था में पहुँच गये हैं, जहाँ एक दूसरे के सहयोग के बिना कार्य करना असम्भव सा हो गया है।

10. **व्यवसाय की सामाजिक संस्था के रूप में मान्यता (Assumption of Business as Social Institution) :** बड़े व्यावसायिक क्षेत्र, जटिलताएँ एवं उपभोक्तावाद ने स्वीकार कर लिया है कि व्यवसाय केवल लाभ कमाने की ही संस्था नहीं है, अपितु यह एक सामाजिक संस्था भी है, अर्थात् व्यवसाय द्वारा लाभ कमाने के साथ–साथ सामाजिक संस्था के कार्य भी सम्पन्न किया जाने लगा है।

11. **स्थानीय एवं स्वदेशी वातावरण पर ध्यान देना (Attention on Domestic & Foreign Environment) :** वर्तमान उपभोक्तावाद में व्यवसाय ने स्थानीय एवं स्वदेशी विदेशी मान्यताओं को प्राथमिकता दिया है। स्थानीय उपभोक्ताओं की रूचि, क्रय शकित, आदत आदि को ध्यान में रखकर उत्पादन का संचालन किया जा रहा है।

3.2.3 व्यवसाय का सामाजिक उद्देश्य या कार्य (Social Object or Function of Business)

आधुनिक प्रतिस्पर्धी युग में जो व्यवसायी समाज के हितों को ध्यान में रखते हुए 'दाल में नमक' की तरह लाभ कमाते हैं, वे अपने व्यवसाय को दीर्घकाल तक विकसित व सुरक्षित कर सकते हैं। अतः व्यवसायी को लाभ एवं

सामाजिक उद्देश्य दोनों विचारधाराओं को साथ–साथ लेकर चलना चाहिए। प्रसिद्ध अमेरिकी उद्योगपति 'हेनरी फोर्ड' का कथन है कि, ''व्यवसाय का प्रथम उद्देश्य सेवा तथा द्वितीय लाभ कमाना होना चाहिए।'' इस सम्बन्ध में जार्ज टैरी का मत है कि, ''लाभ कमाना व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य नहीं है बल्कि सामाजिक हित एवं आवश्यकताओं को पूरा करना है।''

समाज को ध्यान में रखकर व्यवसाय द्वारा निम्नलिखित सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है–

1. **उपभोक्ताओं की आवश्यकता के अनुरूप वस्तु एवं सेवा का निर्माण (Manufacturing of Commodities and Services according to need of Consumer's):** व्यवसाय समाज को ऐसी वस्तुओं का निर्माण एवं सेवाएँ प्रदान करते हैं जो कि उपभोक्ताओं की आवश्यकता के अनुरूप होते हैं तथा यदि इनकी आवश्यकता या पसन्द में परिवर्तन होते हैं, तो उसी अनुरूप व्यवसाय भी परिवर्तन कर लेता है।

2. **पर्याप्त उत्पादन (Sufficient Production) :** उपभोक्ताओ को पर्याप्त मात्रा में वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए व्यवसाय इनकी माँग के अनुरूप मात्रा में ही उत्पादन करता है।

3. **समय पर उपलब्धता (Availability on time) :** व्यवसाय द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि उपभोक्ताओ को उनकी माँगी गयी मात्रा के साथ–साथ उत्पाद या सेवा की उपलब्धता समय पर सुनिश्चित हो सके। इस कार्य या उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्पादक संस्थाओं द्वारा वितरण एजेण्ट की नियुक्ति करके कार्य सम्पन्न किया जाता है।

4. **गुणवत्ता में सुधार (Improvement in Quality) :** व्यवसायी को चाहिए कि वह निर्मित की जाने वाली वस्तु तथा प्रदान की जाने वाली सेवा के गुण व स्तर में निरन्तर सुधार करता रहे। इन सुधारों के कारण उपभोक्ताओं को अधिक संतुष्टि मिलती है तथा नये ग्राहक व्यवसाय के प्रति आकर्षित होते रहते है।

5. **वास्तविक विज्ञापन (True Advertisement) :** समाज को उत्पाद या सेवा की सही जानकारी प्राप्त हो इसके लिए विज्ञापन वास्तविकता के बिल्कुल करीब होने चाहिए। झूठे या बढ़ा चढ़ाकर विज्ञापन देकर उपभोक्ताओं को लम्बे समय तक बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। विज्ञापन जितना वास्तविक होता है, उतना ही उस वस्तु या सेवा के प्रति उपभोक्ता संस्था से जुड़े रहते है।

6. **विक्रयोपरान्त अपेक्षित सेवा (Desirable Service After Sales) :** व्यवसायी वस्तु के विक्रय करने के उपरान्त अपने सामाजिक दायित्व से मुक्त नहीं होता है। विक्रय उपरान्त भी यदि आवश्यकता हो तो आवश्यक सेवाऐं, मरम्मत एवं सुधार आदि के लिए सेवा प्रदान की जाती है जिसके लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों को नियुक्त करके यह दायित्व पूर्ण किया जाता है।

7. **उपभोक्ताओं के साथ अच्छा व्यवहार (Good Behaviour with Consumers):** व्यवसाय को समाज में सफल संचालन के लिए आवश्यक होता है कि वह उपभोक्ताओं के साथ सही एवं शिष्ट व्यवहार करें। 'उपभोक्ता सदैव

सही है' (Consumer's are always right) का सिद्धान्त अपनाकर व्यवसाय अपने सामाजिक वातावरण को समृद्ध करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते है।

8. **सभी स्तर के उपभोक्ताओं का ध्यान (Attention of all type of consumer's):** व्यवसाय द्वारा वस्तु का निर्माण करते समय या सेवा प्रदान करते समय सभी आर्थिक प्रकृति जैसे– धनी, मध्यम व निम्न आयु वर्ग के उपभोक्ताओं का ध्यान रखा जाता है। क्योंकि किसी विशेष वर्ग के लिए ही उत्पादन करना या सेवाएँ उपलब्ध कराना, सामाजिक भावनाओं एवं आवश्यकताओं के विपरीत होगा।

9. **नवीन वस्तुओं का विकास (Development of New Products) :** व्यवसायी सदैव नयी–नयी वस्तुओं के उत्पादन को प्राथमिकता देना चाहता है, ताकि उसके उतपादन में नयेपन का समावेश हो। यह कार्य करने से उपभोक्ताओं को अधिकतम संतुष्टि मिलती है तथा जीवन स्तर को उच्च करने में भी मदद मिलती है।

3.2.4 सामाजिक वातावरण तथा व्यवसायिक निर्णयन का सम्बन्ध (Relation between Social Environment and Business Decision)

किसी व्यवसाय को अपने उद्देश्य की प्राप्ति की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसकी व्यावसायिक व्यूह रचना एवं निर्णयन इस ढंग से हो कि वह व्यावसायिक–सामाजिक वातावरण के अनुकूल हो। व्यवसाय की व्यूह रचना बाजार की वातावरणीय विशेषताओं के अनुरूप तैयार की जानी चाहिए तथा लोगों की पसन्द, रूचियों व चयन प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की कीमत, मॉडल आदि के हिसाब से अपने उत्पादन को आगे बढ़ाती है। भारतीय डाबर कम्पनी महिलाओं की आस्थाओं एवं विश्वासों का आधार मानकर कई प्रकार के 'केश तेलों' का निर्माण करती है। आधुनिक समय में भी अनेक वस्तुओं का उपयोग शुभ–अशुभ के आधार पर किया जाता है। परम्परा व आधुनिकता समान रूप से वस्तुओं के उपभोग पर प्रभाव डालती है। देश में औद्योगिक उत्पादन अनेक धार्मिक प्रभावों से प्रभावित होता है।

भौतिक वस्तुओं का उपयोग आकांक्षाओं, जीवन स्तर पर व्यक्तियों की जीवनशैली से अधिक प्रभावित होता है। आकांक्षाओं को समझना, जागृत करना तथा व्यक्तियों को क्रय करने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से बाध्य करना, यह सब लोगों की रूचियों एवं सम्भावित पसंदों का विश्लेषण करके इन्हें प्रभावित करने पर निर्भर करता है। उपभोग की प्रतिस्पर्धा, लोगों का अन्य या समान स्तर वाले लोगों से श्रेष्ठ समझे जाने की इच्छा, व्यावसायिक उत्पादों के वृहद उपभोग का आधार बनती है।

पारिवारिक दशाएँ जैसे– संयुक्त परिवारों के विखण्डन, एकल या नाभिकीय परिवारों की शुरूआत, आधुनिकता, स्त्रियों का कामकाजी होने का कारण, अत्यधिक व्यस्त रहने की प्रवृत्ति आदि ने परिवारों के बच्चों के लिए उपभोग में आने वाली सैकड़ों वस्तुओं के व्यापक अवसर खोल दिये है। रेडीमेड स्टाइल में बनी हुई वस्तुओं का उपभोग, डिब्बाबन्द सामग्री का चलन, बच्चों के जीवन सतर को अलग व उन्नतशील किस्म को दिखाने की इच्छा ने अनेक वस्तुओं के उत्पादन में महत्वपूर्ण विस्तार किया है।

इस प्रकार समाज का व्यवसाय के साथ सम्बन्ध का अध्ययन एवं विश्लेषण करने के उपरान्त निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि व्यवसाय, व्यापार, उद्योग, वाणिज्य एवं अन्य सेवाओं के उत्पादन, संचय, विपणन एवं उपीभोग पर समाज का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है तथा व्यवसाय को एक नयी दिशा, विस्तार तथा सम्पन्नता के अनेकानेक आकर्षक अवसर प्राप्त होते है।

3.2.5 व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility of Business)

व्यवसाय एवं समाज एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। व्यवसाय, समाज का एक अभिन्न अंग है, इस कारण व्यवसाय को सामाजिक लक्ष्यों, अभिरूचियों, मान्यताओं व बदली हुए दशाओं या वातावरण के अनुरूप अपनी क्रियाओं का संचालन करना पड़ता है। सामाजिक दायित्वों की विचारधारा समाज के समस्त वर्गों के प्रति मानवीय सहयोग एवं प्रतिष्ठा को अभिव्यक्त करती है। प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री पीटर एफ ड्रकर नें व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व पर बल देते हुए लिखा है कि, ''सामाजिक प्रभाव तथा सामाजिक उत्तरदायित्व ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें न केवल वृहद व्यवसाय को बल्कि प्रत्येक व्यवसाय को अपनी भूमिका के माध्यम से सोचना है, लक्ष्य निर्धारित करने हैं तथा परिणाम प्राप्त करने हैं। सामाजिक प्रभावों एवं सामाजिक दायित्वों का प्रबन्ध करना है।''

कुछ व्यवसायियों का मानना है कि व्यवसाय मूल रूप से एक आर्थिक संस्था है तथा इसका केवल उद्देश्य लाभ कमाना ही होना चाहिए तथा सामाजिक कल्याण के बारे में नहीं सोचना चाहिए। इसके लिए वे तर्क देते हैं कि यदि व्यवसाय सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में संलग्न हो जायेगा तो उसके लाभ में कमी आ जायेगी। कुछ व्यवसायी तो ऐसे हैं, जो सामाजिक दायित्व को असम्भव कार्य मानते हैं तथा इसके प्रति उदासीन दृष्टिकोण अपना लेते है।

यह अत्यन्त गलत एवं भ्रामक सोच है कि व्यवसाय का लाभ उद्देश्य एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह दो अलग–अलग पहलू है। लाभ एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह में जो भ्रम या विरोध विद्यमान हें, उसका मुख्य कारण लाभ की भूमिका का ठीक से न समझ पाना है। जहाँ लाभ व्यवसाय को जीवित रखने, विकास करने, प्रतिष्ठा बनाने, नवाचार को प्रोत्साहित करने, नवीन तकनीकों व विचारों को स्थान देने, अच्छी कार्य दशाएँ उपलब्ध करवाने आदि के लिए अपरिहार्य है, वहीं समाज व्यवसाय को उत्पादन करने, ग्राहक देने, प्रतिष्ठा बढ़ाने, विकास एवं विस्तार करने, संसाधनों का उपयोग करने आदि जैसी सुविधाएँ देता है तथा लाभ का आधार तैयार करता है। यह ठीक उसी प्रकार है जिस तरह एक गहरे सागर को पार करने के लिए उसका पानी सबसे बड़ी समस्या दिखाइ देती है, परन्तु वास्तविकता यह है कि उसी पानी के ही सहारे उपलब्ध साधनों के माध्यम से सागर को आसानी से पार कर लिया जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बिना समाज के व्यवसाय का अस्तित्व नहीं, बिना व्यवसाय के समाज नहीं। अतः व्यवसाय एवं समाज किसी गाड़ी के दो पहिये के समान हैं तथा जिस

गाड़ी के सफलतापूर्वक संचालक से व्यावसायिक एवं सामाजिक दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति निश्चित हो जाती है।

विभिन्न सामाजिक–आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करने के उपरान्त निष्कर्ष निकलते हैं जिसमें व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व का क्षेत्र क्या होने चाहिए अतः इसको समझने के लिए इनका अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

1. **व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व (Social responsibility of business):** व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से आशय उन सभी कार्यों एवं प्रयत्नों से हे, जिन्हें किसी व्यवसायी द्वारा समाज के विभिन्न अंगों से अपने सम्बन्ध निरन्तर बनाये रखने हेतु आवश्यक होता है। श्री वोवेन ने सामाजिक उत्तरदायित्व के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि, ''सामाजिक उत्तरदायित्व से आशय ऐसी नीतियों का अनुसरण करना एवं ऐसे निर्णयों को क्रियान्वित करना है, जो समाज के उद्देश्यों एवं मूल्यों के सन्दर्भ में वांछनीय हों।'' इस सम्बन्ध में कूण्ट्ज एव ओडोनेल का मत है कि, ''सामाजिक उत्तरदायित्व निजी हित में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का ऐसा दायित्व है, जिससे वह स्वयं आश्वस्त होता हो कि उसके द्वारा अन्य व्यक्तियों के न्यायोचित अधिकारों एवं हितों को कोई हानि न पहुँचती हो।''

व्यवसाय के सफल संचालन में समाज के लगभग हर वर्ग का सहयोग एवं योगदान होता हे, जिनके प्रति व्यवसाय के भी कुछ महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व होते हैं। इन वर्गों के प्रति व्यवसाय के उत्तरदायित्व को संक्षेप में निम्नलिखित शीर्षकों कें माध्यम से समझा जा सकता है–

2. **स्वामियों के प्रति दायित्व (Responsibilities Towards Owners) :** व्यवसाय के स्वामी से आशय संस्था के साझेदार, संस्थापक या अंशधारियों से होता है, जिसकी विभिन्न संस्थाओं में भिन्न–भिन्न स्थिति होती है। स्वामियों के प्रति व्यवसाय के निम्नलिखित प्रमुख दायित्व होते हैं–

(i) विनियोजित पूँजी पर उचित प्रतिफल, उचित लाभांश तथा पूँजी में निरन्तर वृद्धि करना,

(ii) स्वामियों द्वारा लगायी गयी पूँजी की सुरक्षा करना,

(iii) व्यावसायिक सूचना जैसे– समाचार पत्रों में प्रकाशन, प्रगति रिपोर्ट, सभाओं आदि के बारे में उचित समय पर पर्याप्त जानकारी उपलब्ध कराते रहना,

(iv) लाभांश का उचित समय पर निर्धारण एवं भुगतान करना,

(v) अंशों को अंश बाजार में उपयुक्त समय पर सूचीबद्ध कराना

(vi) संस्था के स्वामियों के साथ उचित एवं समान व्यवहार करना। विभिन्न स्वामियों (समता एवं पूर्वाधिकारी अंशधारी, अधिक पूँजी लगाने वाला तथा कम पूँजी लगाने वाला) के बीच भेदभाव न करना।

(vii) स्वामियों के निर्देशों एवं आदेशों का पालन करना, तथा

(viii) स्वामियों को संस्था की प्रगति की रिपोर्ट, हानि या लाभ तथा विभिन्न घटनाओं की समय पर जानकारी देना।

3. कर्मचारियों के प्रति दायित्व (Responsibilities Towards Employees) : कर्मचारी किसी व्यावसायिक संस्था को सफल बनाने वाले अमूल धरोहर होते हैं। कोई व्यवसाय अपने उद्देश्य की सफलतापूर्वक प्राप्ति तभी सुनिश्चित कर सकता है, जब उसके कर्मचारियों का भी हित सुरक्षित एवं सर्वोपरि हो। श्री फ्रान्सिस के ये शब्द कर्मचारियों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, ''आप एक व्यक्ति का समय खरीद सकते हैं, उसकी शारीरिक उपस्थिति खरीद सकते हैं, निश्चित मात्रा में मानव की स्नायु गति खरीद सकते हैं, परन्तु व्यक्ति का उत्साह, उसकी स्वामिभक्ति, उसकी आत्मा, निष्ठा तथा भावना नहीं खरीद सकते हैं।'' अतः कर्मचारियों या श्रमिकों की कुछ इच्छायें, रूचि तथा आकांक्षायें होती हैं, जिनकी उचित पूर्ति द्वारा ही व्यवसाय अपना उद्देश्य प्राप्त कर सकता है। अतः कर्मचारियों के प्रति व्यवसाय के उत्तरदायित्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है :

(i) कर्मचारियों को उचित एवं पर्याप्त पारिश्रमिक की व्यवस्था करना, ताकि जीवन–यापन सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति आसानी से हो सके,

(ii) कर्मचारियों को लाभ में उचित भागिता प्रदान करना। यह प्रयास कर्मचारियों को संस्था के नजदीक लाती है, जिससे उनके अन्दर संस्था के प्रति निष्ठा व कर्तव्य भावना जागृत होती है,

(iii) कर्मचारियों तथा उनके संगठनों को उचित सम्मान व स्थान देना,

(iv) कर्मचारियों को अच्छी कार्य दशाएँ उपलब्ध कराना,

(v) कार्य के समय दुर्घटना या हानि होने पर उचित इलाज तथा पर्याप्त क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करना,

(vi) मेहनती, ईमानदार व समर्पित कर्मचारियों को समयानुसार प्रोन्नति के अवसर उपलब्ध कराना, व उचित पुरस्कार देना,

(vii) प्रबन्ध में कर्मचारियों की भागीदारी सुनिश्चत करना तथा उनके सुझावों एवं विचारों को गम्भीरता से लेना,

(viii) त्वरित तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति को दृष्टिगत रखते हुए कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण एवं विकास कार्यक्रम का संचालन करना,

(ix) कर्मचारियों की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का ध्यान रखना एवं उनको उचित सम्मान देना,

(x) मधुर औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करना,

(xii) निष्पक्ष भर्ती व चयन प्रक्रिया अपनाना,

(xiii) आचार संहिता का निर्माण करना,

(xiv) व्यवसाय के कार्यक्रम, नीतियों, लक्ष्यों तथा अन्य महत्वपूर्ण सूचनाओं की समयानुसार जानकारी देना,

(xv) कर्मचारियों कें मनोबल बढ़ाने के लिए, गोष्ठियों, सेमिनारों व सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि का समायोजन करना।

4. ग्राहकों के प्रति दायित्व (Responsibilities Towards Customers) : व्यवसाय का यह उद्देश्य होता है कि उसकी वस्तु या सेवा अधिक से अधिक ग्राहकों तक अधिकतम मात्रा में पहुँचे। अतः इसके लिए व्यवसाय को ग्राहकों

की आवश्यकता, इच्छा तथा क्षमता आदि के अनुरूप कार्य करना होगा तथा ग्राहकों को बनाये रखने, आकर्षित करने आदि के लिए सुविधाएँ या सेवाएँ प्रदान करते रहना पड़ेगा। वर्तमान व्यावसायिक जगत में स्वीकार किया जा चुका है कि 'ग्राहक बाजार का राजा होता है'' तथा ''ग्राहक हमेशा सही होता है।'' अतः ग्राहकों की महत्ता एवं अनिवार्यता को देखते हुए इनके प्रति व्यवसाय के अनेक कर्तव्य परिलक्षित होते हैं, जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार से हैं–

(i) उचित मूल्य पर वस्तुएँ एवं सेवाएँ प्रदान करना, ताकि ग्राहक स्थायी रूप से बने रहें।

(ii) उपभोक्ताओं को यथासम्भव सर्वश्रेष्ठ वस्तु या सेवा उपलबध कराना,

(iii) भ्रामक एवं बढ़ा चढ़ाकर विज्ञापन न करना, ताकि विश्वास बना रहे,

(iv) प्रमापित वस्तुओं एवं सेवाओं को विक्रय के लिए उपलब्ध कराना। भारत में यह कार्य भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा प्रमापित होता है।

(v) ग्राहकों की शिकायतों पर ध्यान देना एवं उनके समाधान का सार्थक हल निकालना,

(vi) उपभोक्ताओं की रूचि, आवश्यकता व पसन्दगी मालूम करना तथा उसके अनुरूप वस्तुओं एवं सेवाओं को उपलब्ध कराना,

(vii) उत्पाद को विक्रय उपरान्त सेवा प्रदान करना तथा वस्तु में दोष या कमी आने पर प्रशिक्षित कर्मचारी के माध्यम से यथाशीघ्र सुधार करवाना, जिससे ग्राहक को असुविधा से बचाया जा सके,

(viii) उचित पैकिंग की व्यवस्था करना ताकि वस्तु खराब न हो तथा उस पर मूल्य, किस्म, मात्रा एवं मिश्रण आदि सही–सही अंकित करना,

(ix) ग्राहकों से अच्छे एवं मधुर सम्बन्ध स्थापित करना,

(x) ग्राहकों से समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार सुझाव आमंत्रित करना,

(xii) वस्तुओं एवं सेवाओं के उचित एवं अधिकतम प्रयोग हेतु प्रशिक्षित कर्मचारियों के माध्यम से सलाह देना, तथा

(xiii) वस्तुओं एवं सेवाओं का उचित एवं पर्याप्त वितरण सुनिश्चित करना।

5. स्थानीय समुदाय के प्रति दायित्व (Responsibility Towards Local Community) : स्थायी समुदाय से तात्पर्य उस स्थान में निवास करने वाले व्यक्तियों से है, जहाँ पर व्यापारिक प्रतिष्ठान स्थापित है। व्यवसाय, समुदाय का अभिन्न अंग होता है। अतः समुदाय के प्रति व्यवसाय के कुछ दायित्व होते हैं, जिनमें मुख्यतया निम्नलिखित हैं–

(i) रोजगार या काम देने में स्थानीय समुदाय को वरीयता देना,

(ii) प्रदूषण से वातावरण को बचाने की कोशिश करना,

(iii) संस्था से निकलने वाले रसायन, द्रव्य आदि को नहर, नदी, तालाब, कृषि योग्य भूमि आदि में प्रवाहित न करना, वरन् उसके लिए कल्याणकारी व्यवस्था करना,

(iv) स्थानीय समुदाय के लाभार्थ शिक्षा, प्रशिक्षण, खेलकूद तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को सम्पन्न कराना, ताकि स्थानीय समुदाय को सर्वांगीण विकास को बल मिले,

(v) समुदाय के लाभार्थ विद्यालय, चिकित्सालय, धर्मशालाएं, वाचनालय आदि का निर्माण कराना,

(vi) स्थानीय समुदाय की भावनाओं का सम्मान करना एवं उनको उचित स्थान देना,

(vii) निर्धन, लाचार एवं असहाय व्यक्तियों के हितों की रक्षा के लिए उपाय करना,

(viii) समुदाय में प्रचलित विभिन्न कुरीतियों एवं बुराइयों जैसे– दहेज प्रथा, रूढ़िवादिता, भ्रष्टाचार, मृत्युभोज आदि को हतोत्साहित करने के लिए जागरूकता कार्यक्रम चलाना,

(ix) शिक्षा के प्रसार को महत्व देना व मनोरंजन के पर्याप्त व उचित साधन उपलब्ध कराना,

(x) मलिन बस्ती, पिछड़े क्षेत्रों आदि के विकास के लिए सतत प्रयास करना।

6. सरकार के प्रति दायित्व (Responsibilities Towards Government):

सरकार, देश के व्यवसाय के विकास और विस्तार के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती है। राष्ट्रीय एवं सामाजिक हितों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए व्यावसायिक एवं आर्थिक क्षेत्र में सरकार का हस्तक्षेप अपरिहार्य होता है। यह हस्तक्षेप प्रत्यक्ष रूप से जैसे– सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना तथा व्यापारिक कार्य करना, अप्रत्यक्ष रूप से निजी क्षेत्र के विकास एवं विस्तार, वाह्य प्रतिस्पर्धा से संरक्षण प्रदान करने हेतु नियम एवं विधान द्वारा नियमन आदि के द्वारा होता है। अतः व्यवसाय के लिए भी आवश्यक होता है कि वह सरकार द्वारा बनाये गये नियमों, अधिनियमों, रणनीतियों आदि के अनुकूल कार्य करते हुए सरकार के प्रति अपने दायित्वों का उचित निर्वहन करे। इस दायित्व के अन्तर्गत मुख्यरूप से निम्नलिखित को शामिल किया जा सकता हे–

(i) सरकार द्वारा लगाये गये समस्त करो का पूर्ण भुगतान समय पर करना,

(ii) सरकार द्वारा बनाये गये नियम, अधिनियम व सीमाओं का सदैव पालन करना,

(iii) राजनैतिक सम्बन्धों एवं प्रभावों का दुरूपयोग न करना,

(iv) किसी भी कर्मचारी, अधिकारी या अन्य वाह्य पक्षों को रिश्वत न देना,

(v) कालाबाजारी एवं मिलावट न करना तथा ऐसा करने वालों को सूचना देना,

(vi) सरकार द्वारा बनायी गयी नीतियों के अनुरूप व्यावसायिक कार्य करना,

(vii) देश की आर्थिक योजनाओं के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग देना,

(viii) आपातकाल–युद्ध, बाढ़, सूखा, आदि की स्थिति में उत्पादन बढ़ाना तथा यथासम्भव सरकार का सहयोग करना,

(ix) आवश्यकतानुसार समय–समय पर सरकार के पास उचित व्यावसायिक विवरण भेजना,

(x) सरकार द्वारा दिये गये ऋणों का उचित समय पर भुगतान करना।

3.3 सारांश

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व व्यवसाय परम्परागत तरीके से धीमी गति से विकसित हो रहा था, परन्तु स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् व्यवसाय की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली व विचारधारा में काफी बदलाव आया तथा व्यवसाय को एक नवीन गति प्राप्त हुई। पहले व्यवसाय का मुख्य केन्द्र बिन्दु व्यवसाय का विकास तथा अत्यधिक लाभ अर्जन ही था। आज व्यवसाय किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं, अपितु समाज की सम्पत्ति समझी जाती है। वर्तमान समाज के सहयोग के अभाव में कोई भी व्यक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी भी व्यावसायिक संस्था का निर्माण व संचालन सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है। व्यवसाय समाज में, समाज के लिए तथा समाज के व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

आधुनिक समय में जो भी व्यवसायी सामाजिक मूल्यों के प्रति सजग रहा है, उसकी गरिमा मे वृद्धि हुई है। सामाजिक मूल्यों में समय–समय पर परिवर्तन होते रहे है। सामाजिक मूल्यों मे परिवर्तन के कारण ही पिछले कुछ दशकों में नयी सामाजिक मान्यताओं की स्थापना हुई है, जिसका व्यावसायिक दर्शन के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। व्यवसाय, समाज में रहकर, समाज के लोगों द्वारा ही किया जाता है। सामाजिक वातावरण का व्यवसाय पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इसमें आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक व अन्य शक्तियाँ तथा सम्पूर्ण राष्ट्रीय लक्ष्य व्यावसायिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। समाज में बदलती हुई विचारधारायें, प्रबन्धकीय ज्ञान व कौशल, भौतिक विकास, विचार एवं दृष्टिकोण, परिवर्तनशील प्रौद्योगिकी तथा सांस्कृतिक वातावरण सभी किसी न किसी रूप में व्यवसाय को प्रभावित करते है। जो व्यवसाय बदलते हुए वातावरण के अनुरूप अपनी कार्य पद्धतियों, उत्पादन प्रणाली, संगठन संरचनाओं, नेतृत्व शैलियों, दर्शन व लक्ष्यों में नवीनता नहीं लाता, तो ऐसा व्यवसाय न तो समाज में अपना कोई योगदान कर पाता हैं और न ही अपने लक्ष्यों को पूरी तरह प्राप्त कर सकता है।

3.4 शब्दावली

व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व : व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से आशय उन सभी कार्यों से है जो एक व्यवसायी समाज के विभिन्न अंगों से अपने सम्बन्ध निरन्तर बनाये रखने के लिये करता है।

स्थानीय समुदाय : स्थानीय समुदाय से तात्पर्य उस स्थान में निवास करने वाले व्यक्कतयों से है जहाँ पर व्यापारिक प्रतिष्ठान स्थापित है।

शहरी करण : देश में गाँव की अपेक्षा शहरों में रोजगार व्यवसाय एवं शिक्षा के लिए बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण शहरीकरण का विकास हुआ।

उपभोक्ता आन्दोलन : उपभोक्ता आन्दोलन से आशय उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक जागरूक बनाना है। जिससे वे अपने अधिकारों उत्पाद की कमियों एवं दोषों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें।

3.5 बोध प्रश्न

1. ..... पर समाज की मान्यताओं, मूल्यों, विश्वासों तथा जीवन शैलियों का गहरा प्रभाव पड़ता है।
2. प्रसिद्ध अमेरिकी उद्योगपति ..... का कथन है कि, ''व्यवसाय का प्रथम उद्देश्य सेवा तथा द्वितीय लाभ कमाना होना चाहिए।''
3. व्यवसाय की ..... बाजार की वातावरणीय विशेषताओं के अनुरूप तैयार की जानी चाहिए ।
4. व्यवसाय के ..... से आशय उन सभी कार्यों एवं प्रयत्नों से हे, जिन्हें किसी व्यवसायी द्वारा समाज के विभिन्न अंगों से अपने सम्बन्ध निरन्तर बनाये रखने हेतु आवश्यक होता है।

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. व्यावसायिक निर्णयों, 2. 'हेनरी फोर्ड', 3. व्यूह रचना, 4. सामाजिक उत्तरदायित्व

3.7 स्वपरख प्रश्न

1. व्यावसायिक जीवन को सामाजिक मूल्य किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
2. व्यवसाय का सामाजिक उद्देश्य या कार्य क्या है?
3. व्यवसाय का स्वामियों के प्रति क्या उत्तरदायित्व होते हैं?
4. व्यवसाय का ग्राहकों के प्रति क्या उत्तरदायित्व होते हैं?
5. व्यवसाय का स्थानीय समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व का उल्लेख कीजिए।
6. व्यवसाय का विभिन्न वर्गों के प्रति क्या सामाजिक उत्तरदायितव होते हैं?
7. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
   क. समाज तथा व्यवसाय के सम्बन्ध का महत्व
   ख. व्यवसाय का सामाजिक उद्देश्य

3.8 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्व्यिवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–4 प्राकृतिक एवं तकनीकी पर्यावरण (Natural and Technological Environment)

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 प्राकृतिक पर्यावरण का आशय एवं इसके तत्व
4.3 तकनीकी पर्यावरण का आशय
4.4 तकनीकी पर्यावरण का महत्व
4.5 तकनीकी नीति
4.6 भारत में तकनीकी अनुसंधान एवं विकास
4.7 तकनीक हस्तांतरण : आशय, विशेषता एवं प्रणाली
4.8 तकनीक हस्तांतरण की समस्यायें
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 बोध प्रश्न
4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.13 स्वपरख प्रश्न
4.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- प्राकृतिक एवं भौतिक पर्यावरण का अर्थ एवं इसके तत्वों को बता सकें;
- तकनीकी पर्यावरण की व्याख्या कर सकें;
- तकनीकी पर्यावरण के महत्व को बता सकें;
- भारत सरकार की तकनीकी नीति की व्याख्या कर सकें;
- भारत में तकनीकी अनुसंधान एवं विकास को बता सकें;
- तकनीक हस्तांतरण का आशय, विशेषता एवं प्रणाली को बता सकें;
- तकनीकी हस्तांतरण में होने वाली समस्याओं को बता सकें।

1.1 प्रस्तावना

किसी भी देश मे उसका प्राकृतिक, भौतिक एवं तकनीकी पर्यावरण उस देश के आर्थिक, व्यावसायिक एवं ओद्योगिक विकास को बहुत ही गहरे तरीके से प्रभावित करता है। व्यवसाय के कुशल संचालन के लिये भौतिक, प्राकृतिक एवं तकनीकी घटकों का अध्ययन अति आवश्यक है। तकनीकी घटक के अन्तर्गत हम मशीन, टेक्नोलाजी, अनुसंधान आदि तथा प्राकृतिक घटकों के अन्तर्गत जलवायु, स्थानाकृति, प्राकृतिक संसाधन, सौर एवं विद्युत उर्जा, आधारभूत संरचना, लोकोपयागी सेवाओं का अध्ययन करते है। इस इकाई में उपरोक्त बिन्दुओं पर विस्तार से जानकारी दी जायेगी।

4.2 प्राकृतिक पर्यावरण एवं इसके तत्व (Natural / Physical Environment Meaning and Elements)

व्यवसाय को प्राकृतिक अथवा भौतिक पर्यावरण न केवल व्यवसाय की संरचना को प्रभावित करता है। प्राकृतिक पर्यावरण में मुख्यतया निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित किया जाता हैः–

(i) प्राकृतिक संसाधन– इसमें भूमि, खनिज, कोयला, तेल, सौर उर्जा, कच्चा माल एवं जल संसाधन आदि शामिल है।

(ii) जलवायु– वर्षा, नमी, तापमान, रेगिस्तान, पहाड़ तथा बर्फीले स्थान आदि।

(iii) स्थानाकृति– पहाड़, पठार, मैदान, समुद्र, नदियां, नहरें, बन्दरगाह आदि।

भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत मनुष्य द्वारा निर्मित और विकसित अन्य सुविधाओं को भी शामिल किया जाता हैं ऐसी भौतिक सुविधायें जो व्यवसाय, वाणिज्य, उद्योग के विकास के लिये सुदृढ आधार मानी जाती है, जिन्हें हम आधारभूत सुविधायें कहते हैं। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित सुविधायें आती है।

(i) विद्युत ऊर्जा : इसमें जल, थर्मल, आणविक, लौह, गैस, कोयला, पेट्रोल, डीजल, जनित विद्युत/ऊर्जा शामिल है।

(ii) आधारभूत ढांचा : इसके अन्तर्गत सड़कें, जल संसाधन, यातायात व्यवस्थ, (सड़क, वायु, जल) संचार, सेटेलाइट, सम्प्रेषण, कम्प्यूटरीकृत दूरस्थ नियंत्रण प्रणालियां, बन्दरगाह, व्यापार केन्द्र, स्कन्द विपणि, स्कन्ध निर्माण, वित्तीय सेवायें, बीमा, शोध एवं प्रशिक्षण, गोदाम एवं भण्डारण, विज्ञापन सुविधायें, समाचार संस्थायें, तकनीकी एवं प्रबन्ध संस्थान, औद्योगिक क्षेत्र, औद्योगिक बस्तियां, जिला उद्योग केन्द्र, जिला विकास केन्द्र, राज्य स्तरीय विकास संस्थानों आदि महत्वपूर्ण है।

(iii) लोकोपयोगी सेवायें : इसमें जल, विद्युत आपूर्ति प्रणाली, रेलवे, वायु सेवायें, डाकतार सेवायें, आकाशवाणी, दूरदर्शन, संचार, इण्टरनेट, फैक्स, बैंकिंग, इन्योरेंश सेवाये आदि शामिल है।

4.3 तकनीकी पर्यावरण का आशय (Meaning Technological Environment)

हम सब के लिये विज्ञान ज्ञान उपलब्ध कराता है तथा तकनीक उसका उपयोग करती है। तकनीक का शाब्दिक अर्थ जानकारी से होता है, अर्थात्, वस्तुओं के डिजाइनिंग, उत्पादन एवं उपयोग के तरीके। इसको सामान्यतया मशीनों तथा प्रक्रियाओं के विषय में ज्ञान के साथ पहचाना जाता है तथा उस जानकारी के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसकी सहायता से उपभोक्ताओं की संतुष्टि के लिए विचारों को वस्तु तथा सेवाओं में परिवर्तित किया जा सके। कई बार इसका अर्थ केवल मशीनरी से होता है अर्थात वस्तुओं को बनाने के तरीके से होता है। यद्यपि मशीनें तकनीक का दिखाई देने वाला रूप है, परन्तु यह सोचना गलत होगा कि केवल मशीनें ही तकनीक हैं। तकनीक वह सुव्यवस्थित ज्ञान है जिसकी, सहायता से किसी उत्पाद का उत्पादन, किसी प्रक्रिया का उपयोग, किसी सेवा को प्रदान करना अच्छी प्रकार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह उद्यमकर्ता की विशेषज्ञता तथा व्यवसायिक जानकारी भी है जिसका

लक्ष्य उत्पाद के प्रदर्शन तथा सुरक्षा को सुधारना तथा उसकी गुणवत्ता में वृद्धि करना और लागत कम करना है।

4.4 तकनीकी पर्यावरण का महत्व (Significance of Technological Environment)

आज विश्व भर में विकसित देशों को आधुनिक उद्योगों का विकास, वस्तु एवं सेवाओं की संख्या में वृद्धि, विशाल स्तर पर उनकी विविधता व उपलब्धता पिछली दो शताब्दियों में तकनीकी परिवर्तनों का परिणाम है। वहीं तकनीकी विकास के कारण उद्योगों में संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं तथा नवीन उद्योग स्थापित हुए हैं। तकनीकी परिवर्तनों को अब प्रतिस्पर्धा के प्रधान चालकों की तरह समझा जाता है। स्थाई प्रतिस्पर्धा लाभ प्राप्त करने के लिए तकनीकी नवीनीकरण मुख्य शस्त्र के रूप में कार्य करते हैं। सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्धा के लिए यह आवश्यक है कि अत्यधिक उपयुक्त तकनीक का उपयोग किया जाए जिसके कारण उत्पाद में नवीन विशेषताएँ, उच्च प्रदर्शन, बेहतर गुणवत्ता व निम्न लागत प्रदान करें।

तकनीक विभिन्न तरीकों से व्याप्त प्रतिस्पर्धियों के मध्य प्रतिस्पर्धा का आधार तथा प्रकृति परिवर्तित कर सकती है। इसके कारण प्रतिस्पर्धी लाभ हो सकता है यदि इसके कारण उत्पाद में भिन्नता अथवा संबंधित लागत निर्धारण में महत्वपूर्ण परिवर्तन हों यह आपूर्तिकारक तथा क्रेताओं की मोलभाव शक्ति में परिवर्तन ला सकती है। कई मामलों में तकनीक प्रवेश अवरोधक भी हो सकती है।

हमें तकनीकी पर्यावरण के कुछ अन्य प्रभावों को भी देखना है जिसका प्रभाव व्यवसायिक रणनीति तथा योजना पर पड़ता है। सभी व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए तकनीकी परिवेश का व्यवसाय के कार्यकारी प्रबंधन पर अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। एक उदाहरण को लेते हुए, खाद्य प्रोसेसिंग, पैकेजिंग, संरक्षण तथा परिवहन की तकनीकों में सुधार के फलस्वरूप उत्पाद–सुधार हुआ तथा नवीन उत्पाद प्रारम्भ हुए। इसी के साथ उत्पादों के विपणन में भी आवश्यक रूप से सुधार हुआ। हवाई माल–परिवहन में विकास के कारण वैश्वीकरण हुआ तथा नाशवान वस्तुओं और फैशन/स्वाद में तीव्र परिवर्तनीय उत्पादों को सुरक्षित व तीव्र परिवहन के माध्यम से सुलभ कराना सम्भव हुआ।

आज वैश्वीकरण की प्रक्रिया में सुधार ने अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैश्विक–सोर्सिंग तथा बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग (BPO) को न सिर्फ उदार सरकारी नीतियों ने बढ़ावा दिया बल्कि सूचना प्रौद्योगिकी व दूरसंचार में तकनीकी विकासों ने भी इसमें योगदान दिया जिसने दूरी, समय व लागतों के प्राकृतिक अवरोधों को कम करके वैश्वीकरण के प्रबल वेग को प्रदान किया है। आधुनिक सूचना तकनीकी व सूचना प्रौद्योगिकी प्रदाता सेवा इंटरनेट, वर्ल्ड वाइड़ वेब, साइबर स्पेस तथा सूचना सुपर हाइवे, उपभोक्ताओं से मिलने, आदेश प्राप्ति व प्रोसेसिंग, नेटवर्किंग, व्यवसाय प्रणालियों के तीव्र परितर्वनीय तरीके हैं। इन विकासों ने फुटकर आन्दोलन में भी विशाल योगदान दिया है। विशाल फुटकर–श्रृंखलाएं छोटे शहरों के फुटकर–विक्रेताओं को तेजी से हटा रही है।

4.5 तकनीकी नीति (Technological Policy)

किसी भी सरकार की तकनीकी नीति देश के तकनीकी पर्यावरण का महत्वपूर्ण तत्व है। सरकार अनुसंधान संसाधनों की स्थापना में प्रत्यक्ष रूप से

सम्मिलित होकर तथा अनुसन्धान तथा विकास के लिए धन उपलब्ध कराकर तकनीकी विकास को योगदान दे सकती है। यह निजी उपक्रमों को भी अनुसन्धान तथा विकास में टैक्स छूट आदि प्रोत्साहन प्रदान कर प्रोत्साहित कर सकती है। विकासशील देश के लिए, विदेशी तकनीक के संबंध में सरकारी नीति औद्योगिक अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। हमारी सरकार ने 1983 में तकनीकी नीति वक्तव्य (TPS) तैयार किया जिसका मूलभूत उद्देश्य स्वदेशी तकनीक का विकास तथा आयातित तकनीक को सक्षम रूप से राष्ट्रीय वरीयताओं और उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप ढालना था। इसका लक्ष्य तकनीकी क्षमता तथा स्वावलंबन प्राप्त करना और विशेषकर रणनीतिक व निर्णायक क्षेत्रों में दुर्बलताओं को कम करना, तथा स्वदेशी संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना था। तकनीक नीतिगत वक्तव्य का उद्देश्य परंपरागत कौशल क्षमताओं और योग्यताओं को विकसित कर व्यवसायिक रूप से प्रतिस्पर्धी बनाना था। तकनीकी नीतिगत वक्तव्य के प्रावधानों के अनुरूप तथा तकनीक क्रियान्वयन कमेटी की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए विज्ञान तथा तकनीकी विभाग ने एक स्वायत्त निकाय, टेक्नोलाजी इन्फोरमेशन फोरस्कॉटिंग व एसेसमेंट काउंसिल की स्थापना की है। इसके मुख्य उद्देश्य हैं, तकनीकी पूर्वानुमान व तकनीकी मूल्यांकन, तकनीकी बाजार सर्वेक्षण प्रलेखों का उत्पादन तथा तकनीकी सूचना प्रणाली उपलब्ध कराना। इस संस्था ने अनेक क्षेत्रों में तकनीकी अनुमान/तकनीकी पूर्वानुमान सम्पन्न किये हैं तथा 2003 तक लगभग 250 विशिष्टि रिपोर्ट तैयार की है।

भारत सरकार ने तकनीकी नीति का उपयोग विश्वविद्यालयों तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) के अनुसंधान केन्द्रो के माध्यम से कृषि तकनीक को विकसित करने के लिए किया है तथा इसके साथ ही इसने भारतीय कम्पनियों के साथ विदेशी उपक्रमों के तकनीकी व वित्तीय सहयोग के लिए दिशा निर्देशों के साथ नीतियों को अपनाया है।

सरकार द्वारा जुलाई 1991 में, आर्थिक सुधार नीति के अन्तर्गत पुनः तकनीकी नीति में परिवर्तन किये जो इस प्रकार हैः—

क. उच्च वरीयता उद्योगों के 34 वर्गों में 51 प्रतिशत विदेशी इक्विटी तक सीधे विदेशी निवेश के लिए बिना किसी भी प्रकार के गत्यावरोध के स्वीकृति दी जाएगी यदि विदेशी इक्विटी में आयातित पूंजी वस्तु के लिए आवश्यक विदेशी विनिमय सम्मिलित है।

ख. घटकों, कच्चे माल तथा मध्यस्थ वस्तुओं का आयात और जानकारी शुल्क तथा रॉयल्टी का भुगतान सामान्य नीति के अनुसार होगा । परंतु लाभांश भुगतान की निगरानी रिजर्व बैंक द्वारा होगी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि लाभांश भुगतानों के संदर्भ में बहिःप्रवाह निश्चित समय में निर्यात उपार्जन के साथ मेल खाए।

ग. उच्च वरीयता उद्योगों में विदेशी तकनीक समझौते के लिए 1 करोड़ रूपये के एक मुश्त भुगतान घरेलु विक्रय के लिए 5 प्रतिशत रॉयल्टी तथा निर्यात पर 8 प्रतिशत रॉयल्टी के भुगतान की अनुमति स्वचालित रूप से दी जाएगी बशर्ते भुगतान समझौते की तिथि से दस वर्षों की अवधि तक अथवा उत्पादन प्रारम्भ करने से 7 वर्षों की अवधि में कुल भुगतान बिक्री के 8 प्रतिशत से अधिक न हो।

घ. स्वचालित अनुमति उच्च वरीयता उद्योगों के अतिरिक्त अन्य उद्योगों के लिए विदेशी तकनीकी समझौतों के लिए भी दी जा सकती है जिस पर उपर्युक्त की भांति ही दिशानिर्देश लागू होंगे, यदि किसी भुगतान के लिए मुक्त विदेशी विनिमय की आवश्यकता नही है।

ड. विदेशी तकनीशियनों की सेवाओं को पारिश्रमिक के आधार पर लेने तथा स्वदेशीय विकसित तकनीकों की विदेश में जाँच के लिए किसी अनुमति की आवश्यकता नही होगी। इसके लिए भुगतान भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा निर्देशों के अनुसार परमिट अथवा मुक्त विदेशी विनिमय से किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हे कि भारत सरकार की तकनीकी नीति में तकनीकी विकास की समस्या से निपटने के लिए समय–समय पर विभिन्न उपाय किये गये हैं। जहाँ कृषि–तकनीक के संबंध में नीति स्वावलंबन पर आधारित थी, अन्य क्षेत्रों में इसने सावधानीपूर्वक तथा चयनित रूप से भारतीय उद्यमियों तथा विदेशी निवेश के साथ सहयोग को बढ़ावा दिया।

4.6 भारत में तकनीकी अनुसंधान एवं विकास (Technological R & D in India)

देश की स्वतंत्रता के समय भारत में वैज्ञानिक तथा तकनीकी ढांचागत सुविधा लगभग नगण्य थी। कई वर्षों में विशेषज्ञों के भंडार के साथ ढांचागत निर्माण तथा क्षमताओं का विकास किया गया जिनकों उपलब्ध तकनीकों के मध्य चयन करने के लिए तैयार किया गया था तथा नवीन तकनीकों को शीघ्रता से ग्रहण करने के लिए भी। ढांचागत सुविधा में अब विस्तृत संस्थान सम्मिलित हैं, जैसे केन्द्र तथा राज्य सरकार, उच्च शैक्षणिक संस्थान, निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र उद्योग तथा गैर–लाभकारी संस्थान, सम्मिलित है। यद्यपि एशिया में दस शीर्षस्थल तकनीकी अग्रणियों में भारत का स्थान अभी भी सातवां या आठवां है। भारत में अनुसंधान तथा विकास परिदृश्य 1971 के बाद बदलना शुरू हो गया जब विज्ञान तथा तकनीकी विभाग को नवीन क्षेत्रों में अनुसंधान को बढ़ावा देने तथा तकनीकी अनुसंधान तथा विज्ञाान को संगठित, समायोजित और संवर्धन के उद्देश्य से स्थापित किया गया था। यह विभाग विज्ञान तथा इंजीनियरिंग के विभिन्न विषयों में अनुसंधान एवं विकास के वरीयता क्षेत्रों को पहचानने तथा उन्हें बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी सहायता एक परामर्श निकाय जिसे साइंस व इंजीनियरिंग रिसर्च काउंसिल (SERC) के नाम से जाना जाता है, के माध्यम से की जाती है, जिसमें आई0आई0टी0, विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय प्रयोशालाओं तथा उद्योग से श्रेष्ठ वैज्ञानिक व तकनीशियन होते हैं। अपनी सलाहकार समितियों के माध्यम से समिति विज्ञान तथा तकनीकी विभाग का सहयोग न सिर्फ परियोजना प्रस्तावों की समीक्षा में करती है, बल्कि एकीकृत प्रयासों के लिए अनुसंधान तथा विकास के अंतर–विषयी तथा नवीन क्षेत्रों को पहचानने में भी। समिति, सलाहकार, समितियों की मदद के साथ, व्यक्तिगत परियोजना पर भी निगरानी करती है।

विज्ञान तथा तकनीकी विभाग अनेक तकनीकी विकास कार्यक्रमों को लागू, निर्माण तथा पहचानने में भी उत्प्रेरक रहता है। एक स्वायत्त निकाय जिसको टी0आई0एफ0ए0सी0 के नाम से जाना जाता है, जिसको टी0पी0एस0 के प्रावधानों

के अंतर्गत स्थापित किया गया था। टी0आई0एफ0ए0सी0 मे पेंटेंट सुविधाकारक कोष्ठ स्थापित किया गया है जिसका कार्य अनुसंधान तथा विकास कार्यक्रमों के संवर्धन की प्रक्रिया में पेटेंट सूचना महत्वपूर्ण निविष्ट की तरह प्रदान करना है जो वैज्ञानिकों/तकनीशियनों का स्थायी आधार पर पेटेंट की सुविधा प्रदान करता है, बौद्धिक संपत्ति अधिकारों के क्षेत्रों में विकास पर नजर रखता है, पेटेंट के संबंध में समझ व जागरूकता बनाता है, आदि।

भारत मे तकनीकी विकास बोर्ड भी है, जिसका गठन 1996 मे किया गया था, जो औद्योगिक इकाइयों तथा अन्य एजेंसियों को स्वदेशी तकनीक को विकसित करने तथा उसके व्यवसायिक उपयोग के लिए अथवा आयतित तकनीक को विस्तृत घरेलू प्रयोग के लिए अपनाने में मदद करने के लिए वित्तीय सहयोग प्रदान करता है। अपने निर्माण के समय से बोर्ड ने अब तक व्यवसायिक उपक्रमों व 15 राज्यों/संघशासित प्रदेशों में फैली 3 अन्य एजेंसियों के साथ लगभग 100 समझौते हस्ताक्षरित किए हैं।

भारत की आर0 एण्ड डी0 में क्षमता देश की इस पर व्यय की योग्यता पर निर्भर करती है। 2010–11 की अंतिम गणना पर, भारत में अनुसंधान तथा विकास पर व्यय सकल घरेलू उत्पाद का 0.86 प्रतिशत था। इसकी तुलना में स0रा0 अमेरिका में 2.79, जापान में 2.83 प्रतिशत था। भारत में अनुसंधान था विकास पर व्यय में अन्तर इस पर संपूर्ण व्यय मे कॉरपोरेटों के योगदान से भी स्पष्ट है। जापान में यह लगभग 80 प्रतिशत है तथा स0रा0 अमेरिका में लगभग 70 प्रतिशत जबकि भारत में यह केवल 15 प्रतिशत है। भारतीय उद्योग में कुल बिक्री का लगभग 0.3 प्रतिशत अनुसंधान पर खर्च होता है। यह अनुपात विकसित देशो में सामान्यतया दोहरे अंकों में होता है। भारतीय औषधि–निर्माण कम्पनियों के मामलो में यह अनुपात औसत 2 प्रतिशत है, जबकि प्रमुख विश्व कंपनियों जैसे जॉनसन एण्ड जॉनसन, नोवरटिस व फाइजर में यह अनुपात 9.46 प्रतिशत से 15.12 प्रतिशत तक है।

4.7 तकनीक हस्तांतरण : आशय, विशेषता एवं प्रणाली
(Technological Transfor : Meaning Features and System)

आशय (Meaning) : तकनीक हस्तांतरण का आशय उस प्रक्रिया से है जहाँ पर तकनीक को व्यवसायिक उपयोग के लिए विस्तृत किया जाता है। यह वैधानिक तौर पर बाध्यकारी अनुबंध हो सकता है तथा इसमें प्राप्तकर्ता को हस्तांतरी द्वारा संबंधित ज्ञान का संचार सम्मिलित है।

तकनीक हस्तांतरण इनमें से किसी भी प्रकार के हो सकते हैं:–

1. ट्रेड़मार्क सेवा मार्क तथा ट्रेड नाम के अतिरिक्त, जब वे तकनीक हस्तांतरण का भाग नही होते। सभी प्रकार की औद्योगिक संपत्ति, विक्रय तथा लाइसेंस प्रक्रिया की सुपुर्दगी।
2. संभाव्यता अध्ययनों योजनाओं, चित्रों, मॉउलों, निर्देश, गाइडों, फार्मूलों, मूलभूत अथवा विस्तृत इंजीनियरिंग ड़िजाइनों, प्रशिक्षण के लिए विशिष्ट उपकरणों, तकनीकी परामर्श तथा कर्मचारी प्रबंधन व कर्मचारी के प्रशिक्षण के रूप में तकनीकी विशेषज्ञता तथा जानकारी का प्रावधान।
3. प्लांट तथा उपकरणों की स्थापना, संचालन तथा कार्य तथा निश्चित परियोजनाओं के लिए आवश्यक तकनीकी जानकारी के प्रावधान।

4. मशीनरी, उपकरण, मध्यवर्ती वस्तु तथा/अथवा कच्चेमाल जिसको क्रय, किराये अथवा अन्य प्रकार से प्राप्त किया गया है के अर्जन स्थापना तथा उपयोग के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान का प्रावधान।
5. औद्योगिक व तकनीकी सहयोग व्यवस्थाओं के लिए तकनीकी सामग्रियों का प्रावधान।

तकनीक हस्तांतरण (TT) को यू0एन0सी0टी0ए0डी0 (UNCTAD) द्वारा टी0ओ0टी0 (TOT) कोड़ मे सूचीबद्ध किया गया है। इस सूची में गैर–व्यवसायिक हस्तांतरण, जो विकसित तथा तीसरे विश्व देशों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय सहयोग समझौतों में शामिल किए गए हैं, सम्मिलित नही किए गए हैं। तकनीक हस्तांसतरण के लिए आन्तरिक तथा बाह्य प्रकार के मध्य मोटे तौर पर अंतर किया जा सकता है। आन्तरिक प्रकार के तकनीकी हस्तांतरण का आशय तकनीकी हस्तांतरण के साथ निवेश से होता है। इस प्रकार के हस्तांतरण में नियंत्रण तकनीकी हस्तांतरी के पास होता है, जो सामान्यतया बहुमत अथवा संपूर्ण इक्विटी का स्वामी होता है। बाह्य प्रकार के तकनीक हस्तांतरण में अन्य सभी प्रकार के हस्तांतरण सम्मिलित हैं जैसे : संयुक्त उपक्रम, रणनीतिक गठजोड़ तथा अंतर्राष्ट्रीय उप–अनुबंधीकरण। विभिन्न स्तरों के तकनीकी हस्तांतरण के मध्य भी अंतर किया जा सकता है, जैसे संचालनीय स्तर, दोहरीकरण स्तर, अनुकूलन स्तर तथा नवीन खोजकारी स्तर।

तकनीक हस्तांतरण की मुख्य विशेषताएं : अर्थव्यवस्था के लिए तकनीक हस्तांतरण की विशेषतायें इस प्रकार हैः–

1. तकनीकी हस्तांतरण व्यवसायिक फर्मों तथा राष्ट्रों के मध्य तकनीकी अंतर को समाप्त करने का निश्चित माध्यम है,
2. इसमें ज्ञान का व्यापार सम्मिलित है जिसमें, चित्रकारी, ड़िजाइन, प्रलेखक के साथ–साथ तकनीकी कर्मचारी की सेवायें भी प्रदान की जाती है।
3. विकासशीसल देशों के लिए, तकनीकी हस्तांतरण लागत क्षमता तथा उत्पादन सुधार की प्रक्रिया की तीव्र कर सकता है,
4. उपयुक्त तकनीक का हस्तांतरण उत्पाद के लिए अधिक विशेषताओं के साथ–साथ बेहतर गुणवत्ता को भी प्रदान कर सकता है,
5. विकासशील देशों द्वारा तकनीकी हस्तांतरण द्वारा वैश्विक प्रतिस्पर्धा प्रभावी रूप से प्राप्त की जा सकती है, जिसमें मात्रात्मक–मितव्ययता तथा व्यवसायिक संचालनों की वैश्विक सोर्सिंग सम्मिलित हैं।

तकनीक हस्तांतरण प्रणाली (Technology Transfer System) : तकनीक हस्तांसतरण की प्रणाली हस्तांतरण के प्रकार पर निर्भर करती है, जो इस प्रसकार है :

1. **लाइसेंसिंग समझौता :** लाइसेंसिंग समझौते से संबंधित प्रणाली वह प्रक्रिया है जहाँ लाइसेसर की तकनीकी विशेषज्ञता को लाइसेंसधारक द्वारा उनके मध्य समझौते में निहित नियम व शर्तों के आधार पर उपयोग किया जाता है।
2. **मशीनरी तथा उपकरणों की आपूर्ति के लिए अनुबंध :** यदि तकनीक की प्रकृति जटिल नही है तो उपकरणों से संबंधित संचालनीय तकनीक के हस्तांतरण के लिए अनुबंध किया जाता है जो उत्पादन उद्देश्य के लिए

पर्याप्त होता है।

3. **तकनीकी विशेषज्ञों का प्रशिक्षण अथवा नियुक्ति** : यह वह प्रणाली है जिसमें लघु तथा प्रयोग में न ली जा रही उत्पादन तकनीकों/प्रक्रियाओं का हस्तांतरण शामिल है जिसे उपयुक्त कर्मचारी को प्रशिक्षण द्वारा अथवा विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों को नियुक्त कर संचालित किया जा सकता है।
4. **आधारभूत (Turnkey) अनुबंध** : यह जटिल तकनीक का विस्तृत हस्तांतरण है जिसमें अनुबंध के माध्यम से ग्राहक के लिए ड़िजाइनों की आपूर्ति, निर्माण सेवाएँ, संचालन प्रक्रिया अथवा निरीक्षण सम्मिलित हैं।
5. **उप–अनुबंध प्रक्रिया** : कई विदेशी उपक्रम मेजबान देशों के उत्पादकों के लिए निविष्टियों की खरीद के लिए उप–अनुबंध करते हैं तथा तकनीकी समर्थन, सूचना तथा तकनीक की पूरी जानकारी उपलब्ध कराते हैं। इस प्रकार का प्रबंध स्वचालित वाहन उद्योगों तथा टेलीविजन उद्योग आदि में किया जाता है।
6. तकनीक के स्वामित्व वाले व्यवसाय अथवा कंपनी का अधिग्रहण।
7. तकनीक स्वामियों के साथ सहयोग समझौते/संयुक्त उपक्रम।

4.8 तकनीक हस्तांतरण की समस्यायें (Problems of Technology Transfer)

विशेष रूप से विदेशी तकनीक के हस्तांतरण के साथ अनेक समस्याएँ जुड़ी हैं जिसकी ओर संयुक्त राष्ट्र विशेषज्ञों ने ध्यान आकर्षित किया है। अब हम इनका अध्ययन करेंगे।

1. विदेशी तकनीक हस्तांतरण की लागत कम विकसित देशों के लिए गंभीर समस्या खड़ी कर रही है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, रॉयल्टीयों, लाभांश ब्याज तथा तकनीक शुल्कों के रूप में पूंजी के नवीन बहिःप्रवाह तथा तकनीक हस्तांतरण के साथ जुड़ा है।
2. विदेशी तकनीक हस्तांतरण मेजबान देश के भौतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियें की दृष्टि से उपयुक्त होना चाहिए। ऐसे मामलों का भी पता चला है जिनमें तकनीक हस्तांतरण प्राप्तकर्ता देश की सामाजिक–आर्थिक वरीयताओं के लिए असंगत तथा अनुपयुक्त था तथा राष्ट्रीय लोकाचार के साथ भी असंगत था।
3. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा मेजबान देशों में नवीन उत्पादों तथा प्रक्रियाओं को शुरू करने के परिणामस्वरूप स्वदेशी तकनीकी क्षमताओं के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
4. कई बार विदेशी उपक्रमों ने श्रेष्ठ तकनीकी लाभ तथा प्रतिस्पर्धी प्रबलता द्वारा स्थानीय उद्यमवाद को हतोत्साहित किया है जिसके कारण लघु तथा मध्यम स्तरीय इकाईयों को अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ा।
5. विदेशी तकनीक के हस्तांतरण में निहित लागतों तथा उसके परिणामस्वरूप कुल पूंजी बहिःप्रवाह के अतिरिक्त तकनीक प्रसार तथा अनुकूलन के लाभ हमेशा मेजबान देश को प्राप्त नही होते, न ही आर0 एण्ड डी0 के संवर्धन में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कोई उत्प्रेरक प्रभाव होते हैं।

6. इसके विपरीत, कुछ विदेशी कॉरपोरेटों की प्रकृति देखी गई है कि वह अप्रचलित तकनीक को कम विकसित देशों को हस्तांतरित कर देते हैं।

अल्प विकसित देशों द्वारा तकनीकी सहयोग तथा तकनीक हस्तांतरण के विषय में निम्नलिखित तत्वों के विनियमन के सम्बन्ध में सुझाव दिये जा सकते हैं :

क. इक्विटी स्वामित्व तथा उनसे संबंधित शर्तों में पक्षों की भागीदारी का आंश। वे कारक जो इस पहलू को नियंत्रित कर सकते हैं, तकनीक की प्रवृत्ति तथा आपूर्ति की शर्तें तथा सम्बंधित उद्योग का वरीयता क्रम हैं।

ख. जिस तकनीक पर विचार किया जा रहा है, उसकी उपयुक्तता। इस पहलू पर सामाजिक, आर्थिक तथा पारिस्थितिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में तकनीक की उपयुक्तता तथा तकनीक का उपयोग करने के लिए चिन्हित उद्योग की वरीयता को ध्यान में रखकर विचार किया जाना चाहिए।

ाग. अनुसन्धान तथा विकास इंजीनियरिंग ड़िजाईन तथा तकनीकी व्यक्तियों के प्रशिक्षण के आवश्यक प्रावधान के माध्यम से घरेलू उपयोग के लिए तकनीक के विकास, अनुकूलन व आत्मसात करने की प्रक्रियाओं का क्रम। इस पहलू का वास्तविक अर्थ तकनीक के चरणबद्ध तरीके से स्वदेशीकरण पर जोर देना है।

घ. भुगतान तथा प्रेषण सुविधा की उचित शर्तें। तकनीक हस्तांतरण का यह पहलू इस दृष्टिकोण से आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि रॉयल्टी, ब्याज, लाभांश तथा तकनीक शुल्क उचित है।

ड. तकनीक हस्तांतरण के समझौते में बाध्यकारी धाराओं से बचना। तकनीक के आयात से यह अपेक्षा नही की जाती है कि वह मेजबान देश को उन शर्तों के साथ बांधे।

4.9 सारांश

व्यवसाय को प्राकृतिक अथवा भौतिक पर्यावरण न केवल व्यवसाय की संरचना को प्रभावित करता है बल्कि इसके भावी विकास को भी निर्धारित करता है। प्राकृतिक एवं भौतिक पर्यावरण व्यवसाय के उत्पादों, मांग के स्वरूप, विपणन, लागत संरचना, सामग्री उपयोग, मूल्य, पूर्ति–प्रवाह, व्यापार प्रसार, उपभोक्ता, व्यवसाय एवं व्यवसाय को दी जाने वाली सामाजिक स्वीकृति को गहनता से प्रभावित करता है। तकनीक की व्याख्या व्यवसायिक जानकारी तथा उद्यमी विशेषज्ञता के साथ सेवा देने के लिए अथवा किसी प्रक्रिया का उपयोग करने के लिए तथा उत्पाद के उत्पादन के लिए क्रमिक ज्ञान की तरह की जा सकती है। इसी प्रकार तकनीकी परिवेश में वे कारक होते हैं जो प्रयुक्त ज्ञान तथा सेवा वस्तुओं के उत्पादन में प्रयोग मशीनों तथा माल से संबंधित होते हैं तथा इसका व्यवसाय के संचालन की क्षमता पर प्रभाव होता है।

व्यवसाय पर्यावरण के घटक की तरह तकनीकी परिवर्तन की गतिशीलता में विभिन्न कारक निहित है, जैसे तकनीकी नवीन खोज तथा विकास, ग्राहक आवश्यकताएं तथा अपेक्षाएं, अन्य मांग संबंधित कारक, आपूर्तिकर्ताओं का योगदान, उत्पाद बाजार में प्रतिस्पर्धात्मकता, सामाजिक बल आदि। भारत सरकार ने तकनीक नीति वक्तव्य 1983 में निर्मित किया जिसका मूल उद्देश्य स्वदेशी तकनीक को विकसित करना तथा आयातित तकनीक को राश्ट्रीय वरीयताओं तथा संसाधनों को उपलबध के अनुरूप आत्मसात करना तथा ढालना था। भारत

सरकार की तकनीक नीति 1949 से कई बार बनाई गई हैं यह नीति कृषि तकनीक के संबंध में आत्मनिर्भर के लिए थी। इसके साथ ही जुलाई 1991 में उदार नीति के बनने तक इसने विदेशी निवेश तथा विदेशी सहयोग पर बढ़ती आश्रिता के साथ चयनित अभिगमता को सावधानीपूर्ण बढ़ावा दिया।

तकनीक हस्तांतरण से आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा तकनीक को व्यवसायिक उपयोग के लिए उपलब्ध कराया जाता है। हस्तांतरण विनिमय कई प्रकार के हो सकते हैं जिसमें शामिल हैं सुपुर्दगी, सभी प्रकार की औद्योगिक संपत्ति का विक्रय तथा लाइसेंस, संभाव्यता अध्ययनों आदि के रूप में तकनीकी विशेषज्ञता व जानकारी के प्रावधान, विभिन्न उद्देश्यों आदि के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान।

तकनीकी हस्तांतरण की प्रणाली के अन्तर्गत : (i) लाइसेंस समझौता, (ii) मशीनरी तथा उपकरण की आपूर्ति के लिए अनुबंध, (iii) तकनीकी विशेषज्ञों का प्रशिक्षण, तथा नियुक्ति, (iv) आधारभूत अनुबंध, (v) उप–अनुबंध, (vi) तकनीक का स्वामित्व करने वाली कंपनी का अधिग्रहण अथवा (vii) संयुक्त उपक्रम, सहयोग समझौता आदि। अनुबंध के सामान्यतया महत्वपूर्ण घटक होते हैं : (i) पेटेंट अधिकार, (ii) औद्योगिक संपत्ति का पट्टा अथवा विक्रय (iii) तकनीकी विशेषज्ञता की जानकारी का प्रावधान, (iv) संबंधित तकनीकी सहयोग तथा प्रशिक्षण, (v) तकनीकी ज्ञान का प्रावधान, (vi) रॉयल्टी अथवा शुल्क का भुगतान, (vii) व्यवस्था की अवधि तथा, (viii) प्रतिबंधकारी धाराएं, आदि। तकनीक हस्तांतरण का परिणाम संगठन को संरचनात्मक रूप से परिवर्तित करने के लिए हुआ है। इसके अतिरिक्त सूचना तकनीक तथा उसकी सहायता से उपलब्ध सेवाओं तथा कंम्पयूटर के प्रयोग ने व्यवसायिक प्रणालियों को गतिशील रूप से प्रभावित किया है। इलेक्ट्रानिक डाटा अन्तः परिवर्तन के माध्यम से उच्च क्षमता प्राप्त करने, संगठन का निर्माण करने, नवीन तरीकों को लाने के अतिरिक्त प्रतिस्पर्धा की प्रकृति तथा उद्योग संरचना आदि बदलने में सफलता मिली है।

कुछ समस्याएं हैं जो मुख्यतः विदेशी तकनीक हस्तांतरण से जुड़ी हैं, जैसे बढी हुई हस्तांतरण की लागत, देश की सामाजिक–आर्थिक–वरीयताओं से उसकी असंगतता, स्थानीय वैज्ञानिकों तथा स्वदेशी तकनीकी क्षमताओं पर दमनकारी प्रभाव तथा अप्रचलित तकनीक के हस्तांतरण की संभावना। इसलिए राष्ट्रीय लक्ष्य तथा वरीयताओं के साथ निरन्तरता बनाए रखने के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए उपयुक्त रणनीति के निर्माण की आवश्यकता होती है। इन समस्याओं तथा कमियों के बावजूद, विकसित तथा विकासशील देशों के कॉरपोरेटों के मध्य तकनीकी सहयोग तथा तकनीक हस्तांतरण के लिए विस्तृत संभावना है।

4.10 शब्दावली

प्राकृतिक पर्यावरण : किसी देश के भौतिक एवं प्राकृतिक घटकों को हम प्राकृतिक पर्यावरण करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय तकनीक हस्तांतरण : इसका आशय उस निवेश से हे जो तकनीक हस्तांतरण से संबंधित होता हैं, जहाँ पर अब भी हस्तांतरी के पास नियंत्रण होता है।

रणनीतिक गठजोड़ : कुछ स्वतंत्र फर्मों के मध्य गठजोड़ नवीन अन्वेषण तथा तकनीकी विकास के कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए।

तकनीक : उत्पाद के उत्पादन, प्रक्रिया के प्रयोग व सेवा देने के लिए जानकारी।

तकनीक हस्तांतरण : प्रक्रिया, जिसके माध्यम से अन्यों द्वारा व्यवसायिक उपयोग के लिए तकनीक का प्रसार किया जाता है।

4.11 बोध प्रश्न

1. ..... वह सुव्यवस्थित ज्ञान है जिसकी, सहायता से किसी उत्पाद का उत्पादन, किसी प्रक्रिया का उपयोग, किसी सेवा को प्रदान करना अच्छी प्रकार किया जा सकता है।
2. भारत सरकार ने ..... में तकनीकी नीति वक्तव्य (TPS) तैयार किया जिसका मूलभूत उद्देश्य स्वदेशी तकनीक का विकास तथा आयातित तकनीक को सक्षम रूप से राष्ट्रीय वरीयताओं और उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप ढालना था।
3. भारत मे तकनीकी विकास बोर्ड भी है, जिसका गठन ..... मे किया गया था,
4. ..... का आशय उस प्रक्रिया से है जहाँ पर तकनीक को व्यवसायिक उपयोग के लिए विस्तृत किया जाता है।

4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. तकनीक, 2. 1983, 3. 1996, 4. तकनीक हस्तांतरण

4.13 स्वपरख प्रश्न

1. प्राकृतिक एवं भौतिक पर्यावरण से आप क्या समझते है? इसके प्रमुख तत्वों को बताइये।
2. तकनीकी पर्यावरण क्या है? व्यवसाय में इसके महत्व को बताइए।
3. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार की तकनीकी विकास से संबंधित नीति की संक्षिप्त रूपरेखा दीजिए।
4. अनुसन्धान तथा विकास के प्रवर्तन में विज्ञान तथा तकनीक विभाग की भूमिका की विवेचना कीजिए। क्या आप इस दृष्टिकोण से सहमत है कि भारत की आर0 एण्ड डी0 क्षमता उसके आर0 एण्ड डी0 व्यय को बढ़ाने की योग्यता पर निर्भर है?
5. तकनीक हस्तांतरण के औचित्य तथा विकासशील देश के लिए उसके लाभों को स्पष्ट कीजिए।
6. तकनीक हस्तांतरण में निहित प्रणाली तथा इस प्रकार के हस्तांतरण के अनुबंध के महत्वपूर्ण घटकों की व्याख्या कीजिए।
7. विदेशी तकनीक के हस्तांतरण के संबंध में विकासशील देशों द्वारा सामना की जा रही समस्याएँ क्या हैं?

4.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्व्यिवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–5 क्षेत्रीय असन्तुलन एवं सामाजिक अन्याय (Regional Imbalance and Social Injustice)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 क्षेत्रीय असन्तुलन
5.3 क्षेत्रीय असन्तुलन के कारण
5.4 क्षेत्रीय असन्तुलन के प्रभाव
5.5 भारत में क्षेत्रीय असन्तुलन
5.6 भारत में क्षेत्रीय असन्तुलन के कारण एवं प्रभाव
5.7 क्षेत्रीय असन्तुलन एवं सुधार के सरकारी प्रयास
5.8 सामाजिक अन्याय का आशय
5.9 सामाजिक अन्याय के कारण
5.10 सामाजिक अन्याय के प्रभाव
5.11 सारांश
5.12 शब्दावली
5.13 बोध प्रश्न
5.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.15 स्वपरख प्रश्न
5.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- क्षेत्रीय असंतुलन क्या है? यह बता सकें।
- क्षेत्रीय असंतुलन के कारण एवं प्रभावों को बता सकें।
- क्षेत्रीय असन्तुलन में सुधार के उपायों को बता सकें।
- सामाजिक अन्याय का आशय, कारण एवं प्रभावों की व्याख्या कर सकें।
- सामाजिक अन्याय को दूर करने उपायो के बारे में बता सकें।

5.1 प्रस्तावना

पूरे विश्व के सभी देशों मे एक–सा विकास नही है। कुछ देश जैसे संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा पश्चिमी यूरोप के कुछ देश विकास की उच्चस्तरीय अवस्थाओं में पहुंच चुके हैं, जबकि कुछ देश तो निम्नस्तरीय अवस्थाओं को भी पार नही कर पाये हैं। इस प्रकार संसार में दो प्रकार के देश पाये जाते हैं– एक ओर विकसित देश व दूसरी ओर अविकसित या अल्प विकसित देश। कभी कभी एक ही क्षेत्र में दो प्रकार के देश पाये जाते हैं, जैसे एशिया में जापान उन्नत व विकसित देश हैं, जबकि उसकी तुलना में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यांमार आदि अल्प–विकसित देश हैं। इस प्रकार एशिया के क्षेत्र में असन्तुलन है। इन असन्तुलनों को क्षेत्रीय असन्तुलन कहते हैं।

5.2 क्षेत्रीय असन्तुलन

जब प्रशासनिक दृष्टि से देश को कई राज्यों या प्रदेशों में बांट दिया जाता है तो इसे क्षेत्रीय बंटवारा कहते हैं, लेकिन जब क्षेत्रों में समानता नही होती है तो इसे क्षेत्रीय असन्तुलन कहते हैं। उदाहरण के लिए, किसी प्रदेश में तो उद्योग अधिक होतेहैं तो किसी में कम। इसी प्रकार किसी प्रदेश में प्राकृतिक साधन अधिक होते है तो किसी में कम। इसी को हम क्षेत्रीय असन्तुलन कहते हैं।

5.3 क्षेत्रीय असन्तुलन के कारण (Causes of Regional Imbalances)

प्रमुख रूप से विभिन्न देशों में क्षेत्रीय असन्तुलन के कारण निम्नलिखित हैं :

1. **प्राकृतिक साधनों का उचित विदोहन न होना** : कुछ राष्ट्र अपने यहां उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का उचित मात्रा में विदोहन नही कर पाते हैं जिससे वे अविकसित या अल्प–विकसित ही रह जाते हैं, लेकिन जो राष्ट्र उनका उचित विदोहन कर लेते हैं, वे विकसित राष्ट्रों की गिनती में आ जाते हैं।
2. **औद्योगीकरण की धीमी गति** : जो राष्ट्र अपने यहां औद्योगीकरण की गति तेज कर लेते हैं, वहां विकास तेज गति से होता है, लेकिन जो राष्ट्र इसमें पीछे रह जाते हैं, वे अपना विकास धीमी गति से करते हैं। साधारणतया कृषि–प्रधान देश अपना विकास मन्द गति से करते हैं, जबकि अन्य तेज गति से।
3. **जनसंख्या की मात्रा व संरचना** : जनसंख्या की मात्रा व उसकी संरचना भी देशों में क्षेत्रीय असन्तुलन पैदा कर देती है। जिन राष्ट्रों में जनसंख्या वृद्धि तेजी से होती है तथा श्रम–शक्ति का जनसंख्या में अनुपात कम रहता है, वहां विकास धीमीगति से होता है, लेकिन वे राष्ट्र जहां जनसंख्या वृद्धि की दर सीमित है, जहां श्रम–शक्ति का जनसंख्या में अनुपात अधिक हे, वे अपना विकास तीव्र गति से करते हैं।
4. **निर्धनता** : राष्ट्र गरीबी के कारण भी विकास नही कर पाते हैं। गरीबी एक ऐसा कारण है, जो ऋणात्मक घटकों को जन्म देता है तथा विकास को रोकता है। जो देश गरीब नही हैं वे अपना विकास तेजी से कर लेते हैं।
5. **राजनीतिक एवं आर्थिक अस्थिरता** : जिन देशों मे राजनीतिक व आर्थिक स्थिरता रहती है, वे देश अपना विकास तीव्र गति से कर लेते हैं, लेकिन जहां इसमें अस्थिरता रहती है वहा विकास नही होता है या मन्द गति से होता है।
6. **विदेशी सहायता व प्राविधिक ज्ञान** : जो देश विदेशी सहायता, पूंजी, तकनीकी ज्ञान, आदि प्राप्त कर लेते हैं, वे अपना विकास कर लेते हैं, लेकिन इसके विपरीत, जो देश इस प्रकार की सहायता व प्राविधिक ज्ञान प्राप्त करने में असफल रहते हैं, वे विकास में पिछड़ जाते हैं।
7. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार** : अविकसित देश विदेशी व्यापार के क्षेत्र में पीछे रहते हैं। उन्हें निर्यात का मूल्य कम मिलता है जबकि इसके विपरीत उन्हें आयात का अधिक मूल्य देना पड़ता है। इससे वे अपना विकास नही कर पाते हैं। विकसित देश विदेशी व्यापार में अग्रणी रहते हैं।
8. **सामाजिक व्यवस्था** : जिन देशों में सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार की होतीहै कि वे नवीन परिवर्तन को स्वीकार नही करते हैं तो ऐसे देश विकास में

पिछड़ जाते हैं, लेकिन जहां साहसी होते हैं, परिवर्तन को स्वीकार करते हैं, अभिनवीकरण को सुदृढ़ करते हैं, वहां विकास तीव्र गति से होता है।

5.4 क्षेत्रीय असनतुलन के प्रभाव (Effects of Regional Imbalance)

जब किसी देश में क्षेत्रीय असन्तुलन होता है तो इसका देश के विकास पर निम्न प्रभाव पड़ता है :

1. **देश का असन्तुलित विकास** : यदि किसी देश में क्षेत्रीय असन्तुलन होता है तो देश का आर्थिक विकास असन्तुलित हो जाता है, क्योंकि कहीं तो विकास चरम सीमा पर होता है तो कहीं विकास का कोई चिन्ह भी दिखाई नही देता है।
2. **रहन–सहन के स्तर में भिन्नता** : जब देश में विकास असन्तुलित होता है तो देशवासियों के रहन–सहन के स्तर मे अन्तर होता है। देश का जो हिस्सा विकसित है वहां रहन–सहन का स्तर ऊंचा होता है। इसके विपरीत, अल्प–विकसित या अविकसित भाग में रहन–सहन का स्तर नीचा होता है।
3. **सम्पत्ति का असमान वितरण** : क्षेत्रीय असन्तुलन के कारण सम्पत्ति का वितरण ऐसे देश मे समान नही होता है। इसका कारण यह है कि विकसित क्षेत्रों में विनियोग की सुविधा के कारण सम्पत्ति तेजी से बढ़ती है और वहां के लोग अधिक धनवान बन जाते हैं, जबकि अविकसित क्षेत्र के रहने वाले लोग गरीब ही बने रहते हैं।
4. **आर्थिक संकट** : जिन क्षेत्रों में विकास हो जाता है, वहां अति उत्पादन होता है, जबकि अविकसित क्षेत्रों में न्यून उत्पादन। इस प्रकार ऐसे देश में आर्थिक संकट पैदा हो जाता है। इससे मूल्यों में घटा–बढी होती है।
5. **क्षेत्रवाद को बढ़ावा** : कम विकसित क्षेत्र केन्द्र पर दबाव डालते हैं कि उन्हें अलग राज्य बनानेकी अनुमति दी जायें, जिससे कि वे अपने राज्य का विकास कर सकें। इससे क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिलता है, जो देश की एकता के लिए खतरा होता है।
6. **प्राकृतिक साधनों का कम विदोहन** : क्षेत्रीय असन्तुलन से देश के प्राकृतिक साधनों का विदोहन कम हो पाता है।
7. **अति और न्यून उपभोग की समस्या** : क्षेत्रीय असन्तुलन से अति और न्यून उपभोग की समस्या पैदा हो जाती है। जिन स्थानों पर विकास होता है, वहां आय बढ़ने से उपभोग बढ़ जाता है, परन्तु जहां विकास नही हो पाया है, वहां आय कम होने से उपभोग का स्तर निम्न रहता है।

5.5 भारत में क्षेत्रीय असन्तुलन (Regional Imbalance in India)

भारतीय अर्थव्यवस्था का रूप एक–सा नहीं है। यहां विभिन्न राज्यों में प्रति व्यक्ति आय अलग–अलग है। इसी प्रकार औद्योगिक विकास भी विभिन्न राज्यों में अलग–अलग है। यहां कृषि विकास, जनसंख्या, प्राकृतिक साधन व सामाजिक सेवाओं की दृष्टि से भी विभिन्न राज्यों में विषमता पाई जाती है। ये सभी क्षेत्रीय असन्तुलन की श्रेणी में आते हैं।

भारत में कृषि क्षेत्र में भी विषमता है। यहां पंजाब व हरियाणा मिलकर कुल गेहूं उत्पादन का लगभग एक–तिाई उत्पादन करते हैं। यदि इसमें उत्तर

प्रदेश को और जोड़ दें तो ये तीनों राज्य कुल गेहूँ उत्पादन का लगभग 68 प्रतिशत गेहूं उत्पादन करते हैं।

इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में भी असन्तुलन है। यहां के 12 राज्य–महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, गुजरात, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, बिहार, झारखण्ड मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक व आन्ध्र प्रदेश–मिलकर कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग 83.5 प्रतिशत उत्पादन करते हैं, जबकि शेष 23 राज्य व संघीय प्रदेशों का हिस्सा केवल 16.5 प्रतिशत है।

इस प्रकार भारत में क्षेत्रीय असन्तुलन पाया जाता है, जिसे निम्नलिखित आधारों पर विस्तार से समझा जा सकता है।

1. **गरीबी की रेखा** : गरीबी की दृष्टि से भारत में कुछ राज्य व क्षेत्र सम्पन्न हैं, जबकि कुछ पिछड़े। उदाहरण के लिए, राज्य की जनसंख्या के प्रतिशत के आधार पर सबसे अधिक गरीबी उड़ीसा राज्य में है। इसके बाद क्रमशः बिहार आता है। तीसरा स्थान मध्य प्रदेश का है। इसके बाद क्रमशः सिक्किम, असम व त्रिपुरा का स्थान है। गरीबी के प्रतिशत के आधार पर पंजाब राज्य सम्पन्न है।

2. **उद्योग** : भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक दृष्टि से भी क्षेत्रीय असन्तुलन है। महाराष्ट्र औद्योगिक दृष्टि से सबसे अधिक सम्पन्न राज्य है जो देश के कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग 25 प्रतिशत उत्पादन करता है वैसे महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, गुजरात, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक व आंध्र प्रदेश मिलकर कुल कारखाने उतपादन का 83.5 प्रतिशत उत्पादन करते हैं, जबकि शेष 23 राज्य व संघीय प्रदेश केवल 16.5 प्रतिशत। इस प्रकार ये 12 राज्य औद्योगिक दृष्टि से उन्नत हैं, जबकि शेष पिछड़े हुए है।

3. **साक्षरता अनुपात** : भारत में साक्षरता की दृष्टि से भी असन्तुलन है। यहां केरल राज्य में साक्षरता का प्रतिशत 100 है, जो सबसे ऊंचा है। सबसे कम साक्षरता बिहार में है, जिसका प्रतिशत 47.5 है।

4. **जनसंख्या का घनत्व (Density of Population) :** भारत में जनसंख्या का औसत घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है, लेकिन इस दृष्टि से भी यहां क्षेत्रीय असन्तुलन है। दिल्ली व चण्डीगढ़ में यह घनत्व 9294 व 7903 व्यक्ति है, जो सर्वाधिक है। सबसे कम घनत्व अरूणाचल प्रदेश में है, जहां केवल 13 व्यक्ति ही 1 वर्ग किलोमीटर मे निवास करते हैं।

5. **प्रति व्यक्ति आय** : भारत के सभी क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय समान नही है, कहीं अधिक तो कहीं कम। गोवा में प्रति व्यक्ति आय सबसे अधिक है, जो कि 2010–11 में 45105 रूपये थी। अन्य राज्यों जैसे पंजाब मे 25048 रूपये, महाराष्ट्र में 23726 रूपये, हरियाणा में 23742 रूपये, गुजरात में 19228 रूपये, मध्य प्रदेश में 10803 रूपये व बिहार में 5108 रूपये है।

6. **नगरीय जनसंख्या** : भारत की 27.78 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती है, लेकिन यह प्रतिशत भी भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न है, जैसे महाराष्ट्र का यह प्रतिशत 42.4, तमिलनाडु का 43.9, गुजरात का 37.4, कर्नाटक का 34, पश्चिम बंगाल का 28, आंध्र प्रदेश का 27.1, मध्य प्रदेश का 26.7,

छत्तीसगढ़ का 20.1, उडीसा का 15, हिमाचल प्रदेश का 9.8 व बिहार का 10. 5 है।

7. **सिंचाई** : सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धि की दृष्टि से पंजाब, हरियाणा तमिलनाडु व उत्तर प्रदेश में स्थिति अच्छी है, जबकि असम, मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश मे सिंचाई सुविधाएं कम है।

8. **विद्युत उपभोग** : विद्युत उपभोग की दृष्टि से पंजाब, हरियाणा, गुजरात व महाराष्ट्र में विद्युत उपभोग ऊँचे स्तर का है, जबकि असम, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, जम्मू व कश्मीर तथा केरल में औसत से भी कम है।

9. **परिवहन सुविधा** : परिवहन के क्षेत्र में केरल, तमिलनाडु, पंजाब, पश्चिम बंगाल, गुजरात, हरियाणा अच्छे माने जाते हैं। यहां रेल सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में हैं, लेकिन असम, जम्मू व कश्मीर, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, आदि में रेल सेवाएं उतनी नहीं है।

10. **अवसंरचना** : इस अवसंरचनाक की दृष्टि से पंजाब, तमिलनाडु, हरियाणा व पश्चिम बंगाल की स्थिति मजबूत है। इसीलिए इन राज्यों ने विकास किया है, शेष राज्यों में अवसंरचना का अभाव है। अतः वहा उतना विकास नहीं हो पाया है।

5.6 भारत में क्षेत्रीय असन्तुलन के कारण एवं प्रभाव (Causes and Effects of Regional Imbalansces in India)

भारतीय अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय असन्तुलन के कारण एवं प्रभाव हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. **भौगोलिक** : भारत के कुछ क्षेत्र अभी भी पिछड़े हुए हैं, इसका मूल कारण भौगोलिक परिस्थितियां हैं। जैसे, जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, बिहार व उत्तर–पूर्वी राज्य भी पिछड़े हुए हैं। इसका मुख्य कारण वहा तक पहाड़ों के कारण पहुंचना ही कठिन है। जलवायु भी असन्तुलन के लिए उत्तरदायी है।

2. **ब्रिटिश शासन** : ब्रिटिश शासन के कारण भी असन्तुलन रहा है। उन्होंने उन्हीं क्षेत्रों का विकास किया जहां उद्योग व व्यापार की सुविधाएं विद्यमान थीं। उन्होंने पश्चिम बंगाल व महाराष्ट्र को ही अच्छा माना।

3. **स्थिति लाभ** : असन्तुलन का एक कारण स्थिति लाभ है। लोहा एवं इस्पात उद्योग, व तेल शोधक कारखाने उन्हीं स्थानों पर स्थापित किये गये हैं, जहां उनकी स्थापना से कुछ लाभ हैं।

4. **निजी विनियोग** : निजी उद्योगपति उन्हीं स्थानों पर पूंजी लगाता है जहां पहले से ही सभी सुविधाएं उपलब्ध हों। इस प्रकार ऐसे स्थानों का विकास तेजी से हुआ है जो विकसित हैं, जबकि पिछड़े क्षेत्र पिछड़े ही बने हैं।

5. **कृषि में नवीन तकनीकी** : स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार का ध्यान खाद्य उत्पादन बढ़ाने की ओर गया, जिसके लिए सरकार ने उन क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाएं बढ़ने का प्रयास किया, जहां पहले से ही यह सुविधाएं उपलब्ध थीं।

6. **राज्यों की राजनीति** : कुछ राज्य प्रारम्भ से ही औद्योगिक विकास की ओर ध्यान देते रहे हैं, जैसे पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र व तमिलनाडु,

आदि जबकि शेष क्षेत्र राजनीति में लगे रहे। उन्होंने विकास की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है।

7. **केन्द्रीय सरकार द्वारा पक्षपात** : केन्द्रीय सरकार द्वारा बड़ी–बड़ी योजनाओं की स्वीकृति दी जाती है, जिन्हें देते समय केन्द्रीय सरकार राजनीतिक दबाव का ध्यान रखती हैं। जो प्रदेश जितना अधिक राजनीतिक दबाव डाल देता है, वही उन योजनाओं को अपने यहां ले जाने में सफल हो जाता है।

8. **प्राकृतिक साधनों का उचित विदोहन न होना** : भारत के कुछ क्षेत्र या प्रदेश अपने यहां उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का उचित मात्रा में विदोहन नहीं कर पाये हैं और ये अविकसित या अल्प–विकसित रह गये हैं।

9. **औद्योगीकरण की धीमी गति** : जिन क्षेत्रों या प्रदेशों ने अपने यहां औद्योगीकरण की गति तेज कर ली वहां विकास तेज गति से हुआ है, लेकिन जो इसमें पीछे रह गये उनका विकास पिछड़ गया है।

10. **जनसंख्या की मात्रा व संरचना** : जनसंख्या की मात्रा व उसकी संरचना भी क्षेत्रीय असन्तुलन पैदा कर देती है। जिन क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि तेजी से हुई है तथा श्रम–शक्ति का जनसंख्या में अनुपात बढ़ा है वहां विकास धीमी गति से हुआ हे, लेकिन वे क्षेत्र जहां जनसंख्या वृद्धि की दर सीमित है तथा जहां श्रम–शक्ति का जनसंख्या में अनुपात कम है वे अपना विकास तीव्र गति से कर पाये हैं।

11. **निर्धनता** : भारत में कई प्रदेश या क्षेत्र गरीबी के कारण भी विकास नहीं कर पाते हैं। गरीबी एक ऐसा कारण है जो अनेक ऋणात्मक घटकों को जन्म देती है तथा विकास को रोकती है।

12. **राजनीतिक एवं आर्थिक अस्थिरता** : जिन प्रदेशों मे राजनीतिक व आर्थिक स्थिरता रहती है वे अपना विकास तीव्र गति से कर लेते हैं, लेकिन जहां इसमें अस्थिरता रहती है वहां विकास नही होता या मन्द गति से होता है।

13. **विदेशी सहायता व प्राविधिक ज्ञान** : जो प्रदेश विदेशी सहायता, पूंजी, तकनीकी ज्ञान, आदि प्राप्त कर लेते हैं वे अपना विकास कर लेते हैं, लेकिन इसके विपरीत जो प्रदेश इस प्रकार की सहायता व प्राविधिक ज्ञान प्राप्त करने में असफल रहते हैं वे विकास में पिछड़ जाते हैं।

14. **सामाजिक व्यवस्था** : जिन प्रदेशों में सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार की है कि वे नवीन परिवर्तन को स्वीकार नही करती हैं तो ऐसे प्रदेशों में विकास पिछड़ जाता है, लेकिन जहां लोग साहसी हैं और परिवर्तन को स्वीकार करते हैं, अभिनवीकरण को सुदृढ़ करते हैं वहां विकास तीव्र गति से होता है।

5.7 क्षेत्रीय असन्तुलन एवं सुधार के सरकारी प्रयास (Regional Imbalance and Govt. Efforts)

भारत में विकास रणनीति का एक आवश्यक हिस्सा सन्तुलित क्षेत्रीय विकास रहा है ताकि राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता बनी रहे। देश का प्रत्येक भाग समान रूप से प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों से सम्पन्न नहीं है। अतः नियोजित हस्तक्षेप जरूरी है ताकि क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि न हो।

पहली पंचवर्षीय योजना में इस मुद्दे पर कुछ नहीं कहा गया, लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस पर ध्यान दिया गया। तीसरी योजना में कहा गया कि पिछड़े क्षेत्रों या राज्यों में केन्द्रीय सरकार की योजनाओं के लिए इसको ध्यान में रखा जायेगा व केन्द्रीय सहायता देते समय ऐसे राज्यो व क्षेत्रों को महत्व दिया जायेगा।

इसी प्रकार विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करने की बात कही गई। ''सातवीं योजना की विकास रणनीति का उद्देश्य गरीबी, बेरोजगारी व क्षेत्रीय असन्तुलन पर सीधा प्रहार करना है।'' इसके लिए सरकार को आठवीं योजना में भी क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करने के लिए नियोजन प्रक्रिया के माध्यम से साधनों को वहां पहुंचाने की बात कही गई। इस प्रकार लगातार क्षेत्रीय असन्तुलन कम करने की बात कही गई है और उन राज्यों को अधिक निवेश करने का आश्वासन दिया गया है जो अपेक्षाकृत कम साधन वाले राज्य हैं।

5.8 सामाजिक अन्याय का आशय (Meaning of Social Injustice)

सामाजिक अन्याय विश्व समसुदाय या किसी देश या क्षेत्र की वह सामाजिक समस्या है, जिसका सम्बन्ध किसी एक व्यक्ति विशेष से न होकर सम्पूर्ण समाज या समाज के एक बड़े भाग से होती है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव समाज के सम्पूर्ण कल्याण पर पड़ता है। सामाजिक समस्याएँ भी विभिन्न प्रकार की होती हैं। इनमें से कुछ सामाजिक समस्याएँ कम महत्व की होती है, कुछ अल्पकालीन होती हैं, कुछ समस्याओं का सम्बन्ध समाज के थोड़े से भाग से होता है। इसके विपरीत कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं, जिनका असर सम्पूर्ण समाज पर सदियों एवं सहस्राब्दियों तक बना रहता है। कुछ समस्याएँ व्यापक, हानिकारक एवं दीर्घकालिक होती हैं उन्हें सामाजिक अन्याय का नाम दिया जाता है।

'सामाजिक अन्याय' को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

''सम्पूर्ण या अधिकांश ऐसी हानिकारक एवं दीर्घकालिक सामाजिक समस्याएँ, जिनका असर या कुप्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है, उसे सामाजिक अन्याय कहा जाता है।''

5.9 सामाजिक अन्याय के कारण (Causes of Social Injustice)

सामाजिक अन्याय को अनेक विद्वानों ने वर्तमान युग में उत्पन्न औद्योगीकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण तथा सामाजिक संस्थाओ के परितर्वनों से सम्बन्ध स्थापित कर स्पष्ट किया है। सामाजिक जीवन का आज कोई भी पक्ष शेष नहीं बचा है, जिसमें सामाजिक अन्याय सम्बन्धी तत्वों का समावेश न हो। आज न केवल व्यक्ति का जीवन अन्याय की तरफ बढ़ रहा है, बल्कि इस कारण उसका परिवार व समाज भी टूट रहा है। इसके परिणामस्वरूप वैयक्तिक जीवन में जहाँ अपराध बढ़ रहे हैं, वहीं पारिवारिक जीवन में उदासीनता, शोषण, आर्थिक व सामाजिक मूल्यों का पतन भी हो रहा है। सामाजिक अन्याय के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **जाति व्यवस्था (Caste system) :** जाति प्रथा एक लम्बे समय से सामाजिक अन्याय का कारण रही है। जाति व्यवस्था विभिन्न जातीय समुदायों के बीच खान–पान, शादी–विवाह, आना–जाना, सामाजिक सम्बन्ध आदि को परस्पर विरोधी समूहों में विभाजित करती है। ऐसी परिस्थितियाँ शहरों की अपेक्षा गॉवों में अधिक पायी जाती है। जाति प्रथा सामाजिक अन्याय का एक गन्दा एवं भद्दा नमूना है। 'ऊंची जाति' के लोगों के समक्ष छोटी जाति के लोग न उठ–बैठ सकते हैं और न शादी विवाह कर सकते है।

2. **सामाजिक कुरीतियाँ (Social evils) :** आज सामाजिक कुरीतियों की संख्या इतनी अधिक है कि समाज का सम्पूर्ण संतुलन लगभग नष्ट हो चुका है। ऐसी कुरीतियों में दहेज प्रथा, स्त्रियो का शोषण, बाल–विवाह, धार्मिक कर्मकाण्डों की बहुलता, अपराध, अन्धविश्वासों का प्रचलन आदि प्रमुख समस्याएँ हैं। इनमे से प्रत्येक समस्या व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन को विघटित करके सामाजिक अन्याय में वृद्धि करती है।

3. **सांस्कृतिक असंतुलन (Cultural imbalance) :** सामाजिक संगठन के लिए भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति में संतुलन बनाये रखना अति आवश्यक होता है। वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर अभौतिक संस्कृति अपने परंपरागत रूप में ही है, जबकि भौतिक संस्कृति मे तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। हमारा समाज भौतिक उपलब्धियों एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ गया है।

4. **परस्पर विरोधी सामाजिक मनोवृत्तियाँ (Conflicting social attitudes) :** समाज में ऐसे मूल्यों का विकास हुआ है, जो संस्कृति से मेल नही खाते हैं। उदाहरण के लिए समाज के बड़े वर्ग द्वारा अपनी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के प्रति संतुष्ट न रहना, भ्रष्ट एवं गलत साधनों द्वारा आर्थिक साधन एकत्रित करने को महत्व देना, श्रमिकों व निम्न स्तर के लोगों के शोषण को अपनी सफलता का एकमात्र साधन समझना, सार्वजनिक सम्पत्ति का दुरूपयोग करना आदि कुछ ऐसी मनोवृत्तियाँ हैं। इन्हीं मनोवृत्तियों के कारण सामाजिक अन्याय में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

5. **असंतुलित औद्योगीकरण (Unbalanced Industrialisation) :** औद्योगीकरण के संतुलित विकास ने आज ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की हैं, जिसने हमारी सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धों के परम्परागत स्वरूप को बहुत प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया हैं औद्यौगिकरण के फलस्वरूप परिवारों की स्थिरता कम हो गयी, मानसिक तनावों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। ये सभी परिस्थितियाँ सामाजिक अन्याय में वृद्धि के पर्याप्त कारण है।

6. **अति जनसंख्या (Over Population) :** विश्व में जनसंख्या का तीव्र गति से बढ़ना सामाजिक अन्याय का प्रमुख कारण है यह असंतुलन प्रायः अविकसित, अल्पविकसित तथा विकासशील देशोंमें ही पाया जाता है। विश्व की कुल जनसंख्या पिछले पचास वर्षों की तुलना में दुगुनी से भी अधिक हो गयी है, जबकि विश्व समुदाय के पास इतने साधन नही हैं कि इतनी बड़ी जनसंख्या की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। व्यवसाय एवं नौकरी की तलाश में लाखों लोग गाँव छोड़कर नगरों की तरफ जाना प्रारम्भ

कर देते हैं तथा भावी पीढ़ी को विकास के समुचित अवसर नही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार समाज में अन्याय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

7. **साम्प्रदायिक संघर्ष** : हमारा समाज आज धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता, प्रजाति, जाति एवं विभिन्न मत–मतान्तरों के आधार पर बहुत सारे छोटे एवं बड़े वर्गों में विभाजित हैं इसमें से प्रत्येक वर्ग एक दूसरे का विरोध करता है तथा अपने सदस्यों के हितों के संरक्षण को अपना सर्वोच्च लक्ष्य मानता है। इसके फलस्वरूप समाज मे पारस्परिक त्याग, बन्धुत्व, प्रेम तथा उदारता जैसे गुणों का इतना अभाव हो गया है। ये सभी दशाएँ सामाजिक अन्याय को बढ़ावा देती है।

8. **ग्रामीण सामुदायिक जीवन का ह्रास (Decline in rural community life) :** आज औद्योगीकरण व पश्चिमीकरण के कारण गाँवों की परम्परागत संरचना लगभग टूट सी गयी है। इसके व्यवहारों पर नियन्त्रण रखने का कोई प्रभावपूर्ण साधन नही दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में भारत के ग्रामीण सामुदायिक जीवन का ह्रास होने से सामाजिक अन्याय की प्रक्रिया और अधिक तीव्र हो चली है।

9. **राजनैतिक दलबन्दी (Political Functionism) :** आज बहुत से राजनैतिक दल केवल एक वर्ग अथवा क्षेत्र विशेष को ध्यान मे रखते हुए ही अपने सम्पूर्ण कार्य करते हैं, जिनका निर्माण क्षेत्रीय, भाषायी तथा जातिगत आधार पर ही होता है। इस प्रकार समाज का सम्पूर्ण संतुलन बिगड़ जाता है तथा सामाजिक अन्याय की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

5.10 सामाजिक अन्याय के प्रभाव (Effects of Social Injustice)

वर्तमान युग में विश्व की सामाजिक व्यवस्था पूर्णतया छिन्न–भिन्न हो गयी है। परिवार जैसी महत्वपूर्ण संस्था आज विघटन की प्रक्रिया में है, जाति व्यवस्था शोषण और अलगाव का प्रतीक बन चुकी है, नैतिक मूल्य पूर्णतया बिखर चुके हैं, शिक्षण संस्थाएँ ज्ञानार्जन का केन्द्र न रहकर गुटबन्दी और संघर्षों के अखाड़ा बन गयी है। परिणामस्वरूप समाज में अनेक प्रकार के सामाजिक अन्याय की उत्पत्ति हुई है। सामाजिक अन्याय से उत्पन्न प्रमुख समस्याओं का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से किया जा सकता है–

1. **अपराध में वृद्धि (Increase in Crime) :** अपराध की दर सामाजिक अन्याय का एक महत्वपूर्ण मापदण्ड है। विश्व में आज व्यक्ति तथा सम्पत्ति के विरूद्ध अपराधों की संख्या में तेजी से वृद्धि होती जा रही है। ऐसे अपराधों में हत्या, बलात्कार, अपहरण, चोरी, डकैती, राहजनी, बलवा, धोखाधड़ी, मारपीट तथा अनैतिकता सम्बन्धी सभी अपराध सम्मिलित हैं। आज अपराधियों का एक वर्ग वह है, जो ऊपर से बहुत सम्भ्रान्त, सज्जन तथा प्रतिष्ठित दिखाई देता है, लेकिन धन के संचय की लालसा व दिखावापन की प्रवृत्ति के कारण जीवन अपराधी व्यवहारों से घिरा रहता है। तस्करी, जालसाजी, राजनैतिक भ्रष्टाचार, करों की चोरी, कालाबाजारी, मिलावट, नकली मुद्रा चलाना तथा अन्तर्राष्ट्रीय अपराधी संगठनो में शामिल होना व उसका संचालन करना इनकी जीविका का

आधार है। इससे परिवार तथा समाज दोनों में ही सामाजिक अन्याय की वृद्धि होती है।

2. **निर्धनता (Poverty) :** निर्धनता का एक आर्थिक समस्या के साथ–साथ अपने दुष्परिणामों के दृष्टिकोण से एक गम्भीर सामाजिक समस्या है। सामाजिक अन्याय के कारण समाज में एक छोटे से वर्ग को ही लाभ प्राप्त होता है, परन्तु एक बड़े वर्ग को निर्धनता के जाल में फँसा रहना पड़ता है। निर्धनता के कारण जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग को दो समय भरपेट भोजन भी नहीं प्राप्त हो पाता, अच्छा मकान, अच्छे व सुन्दर कपड़े, मिलना तो उनके लिए एक दूर का सपना होता है। निर्धनता की स्थिति चरित्र के पतन तथा भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन देकर सामाजिक अन्याय में वृद्धि करती है।

3. **बेरोजगारी (Unemployment) :** वर्तमान समय में विश्वविद्यालयों से उच्च शिक्षा प्राप्त लाखो स्नातक, इन्जीनियर तथा डाक्टर भी बेरोजगारी की समस्या के शिकार हैं। यह बहुत स्वाभाविक है कि जब कार्य की इच्छा अथवा शिक्षा के बाद भी युवकों को रोजगार नहीं मिल पाता, तब पेट की भूख तथा निराशा की भावना उन्हें समाज विरोधी कार्यों की ओर ले जाती है। बेरोजगारी की दशा में लाखों परिवार विघटित भी हुए हैं। अतः सामाजिक अन्याय के फलस्वरूप बेरोजगारी तीव्र गति से बढ़ी है।

4. **क्षेत्रवाद (Regionalism) :** क्षेत्रीयता की संकीर्ण मनोवृत्ति कुछ राजनैतिक उद्देश्यों से प्रेरित होती है। सामाजिक अन्याय में निरन्तर वृद्धि होने से क्षेत्रवाद भी तेजी से समाज को प्रभावित किया है। इसके अन्तर्गत आज नियुक्तियों में योग्यता को कम महत्त्व देकर क्षेत्रीयता को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। इससे राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिज्ञों का अपने पार्टी व व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने का मौका मिल जाता है, जो देश के समग्र आर्थिक विकास के लिए दुर्भाग्य की बाते हैं।

5. **भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन (Encouragement of corruption) :** सामाजिक अन्याय की समस्या उत्पन्न होने के कारण सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार आज हमारी विषम समस्याओं मे से एक है। किसी समाज में जब सार्वजनिक सेवाओं में लगे हुए व्यक्ति अपने व्यक्तिगत तथा अनुचित लाभों के लिए कानून, कर्तव्य तथा सार्वजनिक हित का त्याग कर समाज विरोधी कार्य करने लगते हैं, तब हम इसे सार्वजनिक जीवन का भ्रष्टाचार कहते हैं। सामाजिक अन्याय का इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है कि अनुचित साधनों तथा रिश्वत के द्वारा जीविका उपार्जित करके आडम्बर युक्त जीवन व्यतीत करना आज एक प्रतिष्ठा की बात समझी जाने लगी है। अतः सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार में अधिकतर देश के कानून निर्माता व लोक प्रतिनिधि, उनके खास या सम्बन्धी, सार्वजनिक पदों पर कार्यरत अधिकारी से लेकर चतुर्थ श्रेणी के क्लर्क आदि संलग्न है। इसके कार्यों एवं आचरणों के कारण ही सामाजिक अन्याय में बढ़ावा होता जा रहा है, जो किसी समाज के समक्ष किसी आतंकवादी गतिविधियों से कम घातक नहीं है।

6. **युवा तनाव (Youth unrest) :** सामाजिक अन्याय के उत्पन्न होने के कारण युवा पीढ़ी में बेरोजगारी, तनाव, निराशा, असंतोष, आन्दोलनकारी

प्रवृत्तियाँ, हत्या, आत्महत्या आदि प्रवृत्तियों में वृद्धि हो रही है। भ्रष्ट नेता अपने राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए युवा पीढ़ी को एक साधन बना रहे हैं तथा अनुभव एवं ज्ञान के अभाव में नवयुवकों द्वारा, उनके लिए सारे असामाजिक कार्य किये जा रहे हैं।

7. **जातिवादी में वृद्धि (Increase in casteism) :** सामाजिक अन्याय के कारण जातिवाद, भाई भतीजावाद में तीव्र वृद्धि हुई है। अतः इस समस्या के कारण व्यक्ति आत्म केन्दित होकर केवल अपनी जाति के व्यक्तियों को ही सभी लाभ प्रदान करने का प्रयास करता है तथा वह यह भूल जाता है कि अपने राष्ट्र एवं समाज के प्रति भी उसके कुछ दायित्व हैं। इसके कुप्रभाव से न केवल सामाजिक एकीकरण में बाधा पहुँचती है, बल्कि राजनैतिक भ्रष्टाचार में भी वृद्धि हो जाती है।

8. **सम्प्रदायवाद (Communalism) :** साम्प्रदायिकता एक ऐसा जहर है, जो किसी समाज अथवा राष्ट्र के जीवन को स्वस्थ रहने नहीं देता। सामाजिक अन्याय के प्रभाव के कारण समाज विभिन्न सम्प्रदायों का बहुत लम्बे समय तक समन्वय स्थल बना रहा। अब विभिन्न धर्म सम्प्रदाय के आधार पर विभिन्न राजनेताओं एवं असमाजिक तत्वों द्वारा साम्प्रदायिक दंगों, लूटपात, भ्रम एवं संघर्ष को बढ़ावा देकर अपने स्वार्थ की पूर्ति की जा रही है, जिससे सामाजिक अन्याय दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

9. **ग्रामीण सामुदायिक जीवन का ह्रास (Decline of rural community life) :** सामाजिक अन्याय के कारण ग्रामीण सामुदायिक जीवन में तीव्र गति से ह्रास होने लगा है जिसमें अपराध, बेकारी, बीमारी, निर्धनता, भुखमरी, अनैतिकता आदि की समस्याओं का विकास हुआ है, जिस कारण सामाजिक विघटन की प्रक्रिया तेजी से बढ़ती जा रही है।

10. **अन्य असामाजिक कार्यों में वृद्धि (Increase in other anti-social activities) :** समाज में सामाजिक अन्याय की स्थिति के उत्पन्न होने से समाज नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। जिसमें बेरोजगारी, गरीबी, लाचारी के कारण अनेक कुरीतियाँ स्वतः उतपन्न हो जाती है जेसे– वेश्यावृत्ति, भिक्षावृतित, अस्पृश्यता आदि। वैश्यावृत्ति की समस्या रोम जेसे देश के सामाजिक विधटन का कारण बनी। इसी प्रकार भिक्षावृतित जो किसी समाज के कार्यशील व्यक्तियों पर अनावश्यक भारत होती है, जिनके जीवन में मेहनत, सम्मान और समाज के नियमों का कोई मूल्य नही होता है।

5.11 सारांश

पूरे विश्व के सभी देशों मे एक–सा विकास नही है। कुछ देश जैसे संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा पश्चिमी यूरोप के कुछ देश विकास की उच्चस्तरीय अवस्थाओं में पहुंच चुके हैं, जबकि कुछ देश तो निम्नस्तरीय अवस्थाओं को भी पार नही कर पाये हैं। इस प्रकार संसार में दो प्रकार के देश पाये जाते हैं– एक ओर विकसित देश व दूसरी ओर अविकसित या अल्प विकसित देश। कभी कभी एक ही क्षेत्र में दो प्रकार के देश पाये जाते हैं, जैसे एशिया में जापान उन्नत व विकसित देश हैं, जबकि उसकी तुलना में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यांमार आदि अल्प–विकसित

देश हैं। इस प्रकार एशिया के क्षेत्र में असन्तुलन है। इन असन्तुलनों को क्षेत्रीय असन्तुलन कहते हैं।

सामाजिक अन्याय विश्व समसुदाय या किसी देश या क्षेत्र की वह सामाजिक समस्या है, जिसका सम्बन्ध किसी एक व्यक्ति विशेष से न होकर सम्पूर्ण समाज या समाज के एक बड़े भाग से होती है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव समाज के सम्पूर्ण कल्याण पर पड़ता है। सामाजिक समस्याएँ भी विभिन्न प्रकार की होती हैं। इनमें से कुछ सामाजिक समस्याएँ कम महत्व की होती है, कुछ अल्पकालीन होती हैं, कुछ समस्याओं का सम्बन्ध समाज के थोड़े से भाग से होता है। इसके विपरीत कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं, जिनका असर सम्पूर्ण समाज पर सदियों एवं सहस्राब्दियों तक बना रहता है। कुछ समस्याएँ व्यापक, हानिकारक एवं दीर्घकालिक होती हैं उन्हें सामाजिक अन्याय का नाम दिया जाता है।

5.12 शब्दावली

क्षेत्रीय असन्तुलन : विभिन्न देशो/प्रदेशों/भू–भागों में विकास एक समान न होना।

सामाजिक अन्याय : विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्यायें जिसका समाज/व्यक्ति/ परिवार का शोषण होता है।

जाति व्यवस्था : प्राचीन काल में मनुष्य को विभिन्न उच्च एवं निम्न वर्गों में जाति का नाम देकर बटवारा ही जाति व्यवस्था कहलाती है।

साम्प्रदायिक संघर्ष : विभिन्न धर्म/संप्रदाय के लोगों के भत्ते में भिन्नता के कारण आपसी संघर्ष को साम्प्रदायिक संघर्ष कहते है।

क्षेत्रवाद : क्षेत्र के आधार पर लोगों में गुटबन्दी या भेदभाव क्षेत्रवाद कहलाता है।

5.13 बोध प्रश्न

1. जब प्रशासनिक दृष्टि से देश को कई राज्यों या प्रदेशों में बांट दिया जाता है तो इसे ..... कहते हैं,
2. 'सम्पूर्ण या अधिकांश ऐसी हानिकारक एवं दीर्घकालिक सामाजिक समस्याएँ, जिनका असर या कुप्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है, उसे .... कहा जाता है।''

5.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क्षेत्रीय बंटवारा, 2. सामाजिक अन्याय

5.15 स्वपरख प्रश्न

1. क्षेत्रीय असन्तुलन को समझाइये।
2. सामाजिक अन्याय क्या है?
3. क्षेत्रीय असन्तुलन क्या है? इसके विभिन्न कारणों को उचित उदाहरणों सहित स्पष्ट कीजिए।
4. क्षेत्रीय असंतुलन के कारण एवं प्रभावों का वर्णन कीजिए।
5. क्षेत्रीय असंतुलन का उपचार कैसे किया जा सकता है?

6. सामाजिक अन्याय से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।
7. सामाजिक अन्याय से उत्पन्न समस्याओं की व्याख्या कीजिए।

5.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्व्यिवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–6 मौद्रिक नीति (Monetory Policy)

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 मौद्रिक नीति की परिभाषाऐं
6.3 मौद्रिक नीति की आवश्यकता
6.4 मौद्रिक नीति के उद्देश्य
6.5 मौद्रिक नीति के प्रकार
6.6 मौद्रिक नीति में साख नियंत्रण की तकनीक/मौद्रिक नीति का कार्यान्वयन
6.7 मौद्रिक नीति का महत्त्व
6.8 मौद्रिक नीति की सफलता में बाधा डालने वाले घटक
6.9 मौद्रिक नीति की सीमायें
6.10 सारांश
6.11 शब्दावली
6.12 बोध प्रश्न
6.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.14 स्वपरख प्रश्न
6.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- मौद्रिक नीति का अर्थ व परिभाषा का वर्णन कर सके।
- मौद्रिक नीति के उद्देश्य स्पष्ट कर सके।
- मौद्रिक नीति में साख नियंन्त्रण की जानकारी प्राप्त कर सके।
- मौद्रिक नीति के महत्व को समझ सके।
- मौद्रिक नीति की सफलता में बाधा डालने वाले तत्वों की जानकारी प्राप्त कर सके।

6.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग मुद्रा तथा साख का युग हैं, मुद्रा तथा साख का एक निर्धारित स्तर बनाये रखना अर्थव्यवस्था के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं । अतः मुद्रा तथा साख की पूर्ति को एक निर्धारित स्तर पर बनाये रखने के लिए जो नीति अपनायी जाती हैं, उसे मौद्रिक नीति कहाँ जाता हैं। मौद्रिक नीति सरकार तथा केन्द्रीय बैंक की वह नियंत्रण नीति है, जिसके अन्तर्गत कुछ निश्चित उद्देश्यो की प्राप्ती के लिए मुद्रा की मात्रा, व्याज दर, तथा उसके उपयोग को नियंन्त्रित करने के उपाय किये जाते हैं, वर्तमान युग में मौद्रिक प्रबन्धन का उत्तरदायित्व केन्द्रीय बैंक (रिजर्व बैंक आफॅ इंडिया) को सौपा गया हैं। तथा इसके संचालन का दायित्व भी केन्द्रीय बैंक का हैं। इसलिए मौद्रिक नीति को केन्द्रीय बैंक की साख नियंन्त्रण नीति से हैं। मौद्रिक नीति के माध्यम से विकास के लिए पर्याप्त वित्त का प्रबन्ध करना तथा मूल्यों में स्थिरता रखना मुख्य घटक हैं। रिर्जव बैंक जो कि भारत का केन्द्रीय बैंक भी हैं। भारत में मुद्रा तथा साख को नियोजित तथा

नियंत्रित करता हैं। रिर्जव बैंक ने प्रारम्भ से ही मौद्रिक नीति के अर्न्तगत नियंत्रित विस्तार की नीति को अपनाया हैं।

6.2 मौद्रिक नीति की परिभाषाऐं

पाँल इंजिग (Paul Einzing) के अनुसार मौद्रिक नीति के अर्थात् उन सभी मौद्रिक निर्णयों और उपायों को सम्मिलित किया जाता हैं। जिसका उद्देश्य मौद्रिक प्रणाली को प्रभावित करना हो।

डी.सी.रोवान के अनुसार मौद्रिक नीति वह नीति हैं, जिसका सम्बन्ध मौद्रिक अधिकारियों द्वारा मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा की लागत या ब्याज दर तथा मुद्रा की उपलब्धता को विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लियें नियंत्रित करने से हैं।

हैरी जी.जानसन (Harry G. John son) के अनुसार मौद्रिक नीति से अर्थ केन्द्रीय बैंक की उस नीति से हैं। जिसके अधीन वह मुद्रा पूर्ति को सामान्य आर्थिक नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक अस्त्र के रूप में प्रयोग करता है।

लिप्सें एवं क्राइस्टल के अनुसार मौद्रिक नीति का अर्थ ब्याज दर या मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन लाना हैं। ताकि अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया जा सकें।

6.3 मौद्रिक नीति की आवश्यकता (Necessity of Monetory policy)

भारत में मौद्रिक नीति की आवश्यकता क्यों अनुभव की गयी इसके पीछे यह तर्क दिया गया हैं कि यदि मौद्रिक के विस्तार को नियंत्रित नहीं किया जाय तो इसके कई दोष उत्पन्न हो जायेगें। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आर्थिक विकास के लिए तथा वित्तीय संसाधनों के ढ़ाँचे को मजबूत करने के लिए मौद्रिक नीति अपनाने पर बल दिया गया। इस समय देश में औद्योगिक विकास तथा अन्य विकास कार्यक्रमों के लिए अधिक मात्रा में साख की जरूरत महसूस की गयी । सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार ने उनमें विनियोग बढ़ाने के लिए सरकार को प्रोत्साहित किया प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद स्फीति दशाये पैदा होने लगी जिससे बैंक साख की माँग में और भी वृद्धि हुई चलन की बढ़ती मात्रा ने भी रिर्जव बैंक को साव नियंत्रण की नीति अपनाने की बाध्य किया।

1. **बेरोजगारी में वृद्धि – (Increase in unemployment)** तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी में तेजी से बदलाव के कारण करने बेरोजगारी की समस्या धीरे–धीरे विकराल रूप धारण करने लगी हैं, कामोवेश बेरोजगारी की यह स्थिति सभी देशों के लिए एक समान ही हैं, रोजगार के अपवयों की अपेक्षा बेरोजगारी की संख्या ज्यादा ही हैं। जिसके कारण सभी को रोजगार उपलब्ध करवाना कठिन हो गया हैं। इससे बढती बेरोजगारी को रोकने के लिए मौद्रिक नीति को अपनाना जरूरी हो गया।

2. **मूल्यों मे वृद्धि– Rise in Price**– मूल्य वृद्धि का क्रम धीरे–धीरे बढता ही जा रही हैं। आज मूल्यों के बढने तथा मुद्रा का मूल्य गिरने का क्रम बढ रहा हैं जिससे अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति काफी बढ गयी हैं। इसलिए मुद्रा मूल्य को स्थिर रखकर आर्थिक विकास को तेजी से बढाना बहुत जरूरी हो गया हैं। मूल्य वृद्धि और बेरोजगारी एक स्थायी समस्या हो गयी हैं, जिस पर नियंत्रण करना जरूरी हैं।

3. **पूँजी की माँग बढना– (Increase in Demand of Capital)-** बाजार में पूँजी की माँग काफी बढ गयी हैं। तेजी से बढती जनसंख्या तथा उपभोक्ता माँग के कारण पूँजी की माँग में बढोतरी हो रही हैं। यहाँ प्रति व्यक्ति आय मे बढोतरी हो रही है। विकासशील देशो में तो पूँजी की माँग काफी तेजी से बढी हैं। परन्तु यहाँ के लोग अपने जीवन निर्वाह को पूरा करने में ही समस्त आय को व्यय कर देते हैं। इससे पूँजी की माँग बनी रहती हैं।

4. **व्यापार में वृद्धि – (Increase in In Trade)-** विश्व व्यापार में वृद्धि होने से तथा उपभोक्ताओं की आवश्यकता पूर्ति के लिए क्षेत्रीय व्यापार में वृद्धि से भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल होने लगा हैं। आर्थिक विकास की योजनाओं के कारण आयातों में काफी वृद्धि हो गयी हैं और आगे भविष्य में आयातों में और वृद्धि होने की संम्भावना प्रबल हैं। इससे भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल रहने की सम्भावना बनी रहती हैं।

5. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि– (Increase is National Income)-** राष्ट्रीय आय में वृद्धि से ही आर्थिक विकास सम्भ्व हैं। और राष्ट्रीय आय में वृद्धि तब तक नहीं होती हैं, जब तक कि पूँजी निर्माण की मात्रा पर्याप्त न हो, उत्पादन की नयी तकनीक का प्रयोग करने से तथा विकास कार्यक्रम चलाने से अधिक से अधिक लोग इससे लाभान्वित हो रहें है और इससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो रही हैं। राष्ट्रीय आय में वृद्धि का प्रभाव लोगों के रहन–सहन, उपयोग तथा विनियोग तथा बचत पर पड़ा हैं।

6.4 मौद्रिक नीति के उद्देश्य (Obiectives of Monetary Palicy)

मौद्रिक नीति के उद्देश्य अलग–अलग परिस्थितियों में अलग–अलग हो सकते हैं। क्योंकि उद्देश्यों पर अर्थव्यवस्था का स्वरूप, संगठन तथा विकास के स्तर का भी प्रभाव पड़ता हैं। अमेरिका के मुद्रा एवं साख आयोग 1961 के अनुसार मौद्रिक उपाय तीन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हैं। जिसमें आर्थिक विकास की पर्याप्त दर, बेरोजगारी का नीचा स्तर, तथा कीमत मे स्थिरता, मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य स्थिरता के साथ विकास प्राप्त करना हैं। **चाण्डलर** के अनुसार– ''ऐसे उद्देश्य जहाँ तक सम्भव हो सके आर्थिक प्रणाली के उद्देश्यों की प्राप्ति होना चाहिए। सबसे अधिक उपयोगी वस्तुओं सेवाओं की अधिकतम मात्रा का सबसे कम सामाजिक लागत पर उत्पादन करना तथा समाज के सदस्यों में समानता के आधार पर वितरण करना।

मौद्रिक नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

(1) **कीमतों में स्थिरता (Price Stability)** – कीमतों में स्थिरता को मौद्रिक नीति की मुख्य उद्देश्य माना गया हैं। कीमतों में अस्थिरता के कारण, रोजगार, उत्पादन, बचत आदि में अस्थिरता बढ़ती हैं। जिससे आर्थिक जीवन में अस्थिरता उत्पन्न होती हैं, जिससे आर्थिक जीवन मे अस्थिरता बढ़ती हैं। मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य कीमतो में स्थिरता बनाये रखना है, जिससे अर्थव्यवस्था में चलन तथा साख को नियंत्रित कर आन्तरिक कीमता को बढ़ाने से रोका जाय। क्योंकि मूल्यों में होने वाले उतार चढ़ाव उत्पादन, आय माँग तथा विनियोग, को प्रभावित करता हैं। जिससे अर्थव्यवस्था में सामान्य स्थायित्व की कमी हो सकती हैं। इसके कारण मुद्रा स्फीति या अवस्फीति में अर्थव्यवस्था मुद्रा का सामना कर सकती हैं।

इसके लिए मौद्रिक नीति के माध्यम से साख तथा चलन की मात्रा को नियंत्रित करने का सुझाव दिया जाता हैं। लेकिन कीमतों में स्थिरता को हमेशा के लिए ही स्थिर नहीं माना जाना चाहिए। कीमतों अनिश्चित काल तक कोई परिवर्तन नहीं ऐसा नहीं होना चाहिए। उपभोक्ता की आय और माँग में परिवर्तन का प्रभाव तथा वस्तु की बनावट, टिकाऊपन, बाजार की माँग, तकनीकी परिवर्तन से कीमतों में भी परिवर्तन होता हैं। अर्थव्यवस्था में साधनों को प्रोत्साहित करने के लिए इस तरह का परिवर्तन आवश्यक भी हैं। इसलिए कीमतों में होने वाला मामूली परिवर्तन कीमतों में स्थायित्व ही हैं। विद्वानों ने भी माना हैं। कि स्थिर कीमतों की नीति वांद्दनीय नहीं हैं। कीमतों में कुछ वृद्धि आवश्यक हैं। कीमतों में स्थिरता में कुछ कठिनाइयाँ भी सामने आती हैं। जिसमें कीमतों में किस स्तर पर स्थिरता लायी जाये। थोक, फुटकर तथा उपभोक्ता स्तर पर सामान्य कीमतों को कहाँ तक स्थिर रखा जाय इसके लिए उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों तथा मजदूरों को दी जाने वाली मजदूरी में स्थिरता लायी जा सकती हैं। और कुछ मात्रा में यदि इन चीजों पर नियंत्रण कर दिया जाय तो इससे कीमतों में स्थिरता लायी जा सकती हैं।

(2) **मुद्रा की तटस्थता– (Neutrality of money)** तटस्थ मुद्रा में मुद्रा को इस प्रकार नियंत्रित किया जाता है। जिससे चलन में उसकी माात्रा कीमतो को प्रभावित न कर सके, तटस्थ मुद्रा में बाजार में कीमते प्रभावित नहीं होती हैं। तथा ब्याज दरों में कोई परिवर्तन नही आता हैं। मुद्रा की पूर्ति का बाजार में किसी तरह की नकारात्मक प्रतिक्रिया न होकर उसी अनुपात में कीमतों में वृद्धि होती है। तथा ब्याज दरो पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता हैं। **प्रो० हेयक** के अनुसार तटस्थ मुद्रा के अभाव में ही मुद्रा प्रसार एवं संकुचन की दशाये उत्पन होती हैं। जिसके अनेक दुष्परिणाम होते हैं। अतः मुद्रा तटस्थ होनी चाहिए। विद्वानों ने भी इस विचार को माना है कि तटस्थ मुद्रा से अर्थव्यवस्था में स्थापित्व आता हैं। क्योंकि उच्चावयन मौद्रिक नीति में परिवर्तन से उत्पन होते हैं। इसलिए उचित मूल्य स्तर बनाये रखने के लिए मुद्रा की मात्रा को स्थिर रखना आवश्यक हैं।

(3) **विनिमय दर की स्थिरता (Exchange Stability)**

मौद्रिक नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य विनिमय दरों में स्थिरता बनाये रखना ही हैं। जिस अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार तथा विदेशी विनियोग होता हैं। उसमें विनिमय दर में अस्थिरता विकास को प्रभावित करती हैं। जिन देशों में विनिमय दरें निरन्तर बदलती रहती है। वहाँ विदेशी व्यापार प्रतिकूल हो जाता हैं। यदि विदेशी व्यापार प्रतिकूल हो जाये तो आवश्यक टैक्नोलाजी तथा पूँजीगत माल आयात करना ही कठिन हो जाता हैं। भुगतान सतुलन को अनुकूल बनाये रखने के लिए मौद्रिक नीति में अपनी मुद्रा की विनिमय दर नीति बनाये रखकर निर्यातों को प्रोत्साहित करना तथा निर्यातो को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और आयातो को कम कर देना चाहिए। विनिमय दर तथा भुगतान संतुलन दोनो ही एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। भुगतान सन्तुलन के प्रतिकूल होने पर विनिमय दर गिरने लगती हैं। विनिमय दर की स्थिरता के लिए निर्यातो तथा आयातो के बीच संतुलन बिठाना आवश्यक हैं।

(4) **आर्थिक विकास (Econonic Development)** आर्थिक विकास एक दीर्घकालीन तथा सदा चलते रहने वाली प्रक्रिया हैं। मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य तीव्र गति से विकास करता हैं। मौद्रिक नीति के माध्यम से आर्थिक

विकास के लिए विनियोग तथा बचत दोनो को प्रोत्साहित करना है। एक तरफ कीमतों में वृद्धि विनियोग को प्रोत्साहित करती हैं, वही कीमतों मे स्थिरता बचतों को प्रोत्साहित करती हैं। आर्थिक विकास के लिए विनियोग तथा बचत दोनो ही महत्वपूर्ण हैं, इसलिए मौद्रिक नीति के सफल संचालन से विनियोग तथा बचत के बीच सामंजस्य स्थापित कर आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया जाता हैं। वर्तमान युग में तो आर्थिक विकास के लिए मौद्रिक नीति का प्रयोग अति आवश्यक तथा महत्वपूर्ण हो गया हैं। आर्थिक विकास में जहाँ देश के नागरिको की प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी होती हैं। वही लोगो के रहन–सहन के स्तर में भी वृद्धि होती हैं। आर्थिक विकास से पता चलता है कि प्राकृतिक साधनों का देश में किस तरह से प्रयोग हो रहा है और उसका लाभ समस्त नागरिकों को किस प्रकार मिल पा रहा हैं इसने यह देखा जाता है कि देश में पैदा की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा में किस गति से वृद्धि हो रही हैं। मुद्रा तथा साख पर अमेरिकी समिति 1961 की रिर्पोट में यह मत व्यक्त किया गया कि आगामी दशकों में विकास मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। **पॉल इंजिग** का भी मत हैं कि आर्थिक विकास के लिए मुद्रा स्फीति की नीति अपनाना आवश्यक नहीं हैं। मुद्रा तथा साख की मात्रा आर्थिक विकास को उतना प्रभावित नहीं करती जितना उसका प्रयोग क्योंकि समझदारी और सजगता से अपनाई गई स्फीतिक नीति आर्थिक विकास को गति देती हैं। और जल्दबाजी और नासझदारी में किया गया मुद्रा प्रसार आर्थिक विकास को हानि पहुँचाता हैं।

(5) **पूर्ण रोजगार– (Full Employment)** मौद्रिक नीति के माध्यम से पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने में सफलता मिल सकती हैं। आर्थिक साधनों का अधिकतम उपयोग कर रोजगार को बढाया जा सकता हैं। बचत तथा विनियोग के माध्यम से पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त किया जा सकता हैं। इसके लिए बचत तथा विनियोग के समानता होना आवश्यक हैं। अर्थव्यवस्था में सस्ती पूँजी उपलब्ध होने पर औद्योगिक इकाइयों की स्थापना तेजी से होगी तथा अधिक मात्रा में औद्योगिक इकॉइया स्थापित होगी, इससे रोजगार में वृद्धि होगी इसलिए मौद्रिक नीति द्धारा बचत तथा विनियोग दोना को प्रोत्साहित कर पूर्णरोजगार की स्थिति लायी जा सकती हैं। यदि केन्द्रीय बैंक ब्याज दर में कमी कर दे तो इससे व्यापारिक बैंक अधिक उधार देने लगेगें इससे पुरानी औद्योगिक ईकाइयाँ भी सस्ती ब्याज दर पर रकम प्राप्त कर सकते हैं। इससे उत्पादन तथा रोजगार के स्तर को बनाया रखा जा सकता हैं। सस्ती पूँजी प्राप्त होने पर नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना को प्रोत्साहन मिलता हैं। इससे रोजगार में और बढ़ोतरी होती हैं। मौद्रिक नीति द्वारा रोजगार के स्तर को ऊँचा बनाये रखने में सहायता मिलती हैं तथा मन्दी से बाहर निकलने में भी सहायता मिलती हैं। प्रो० केन्स ने भी अपने विचार में यह स्पष्ट किया कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार से कम की स्थिति रहती हैं। तथा मौद्रिक नीति का प्रयोग पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए किया जाना चाहिए। मौद्रिक नीति के मुख्य लक्ष्यों में पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करना तथा अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार के स्तर पर बनाये रखना मुख्य हैं। इसके लिए विनियोग में वृद्धि कर रोजगार को बढ़ाया जा सकता हैं। **प्रो० क्राउथर** के अनुसार मौद्रिक नीति का स्पष्ट उद्देश्य पूर्ण रोजगार बिन्दु पर बचत तथा विनियोग में संतुलन स्थापित करना चाहिए।

(6) भुगतान सन्तुलन की अनुकूल स्थिति–(Favourble Balance of payments) भुगतान सन्तुलन की स्थिति अनुकूल होनी चाहिए क्योंकि जिन देशों का भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल होता हैं, वहाँ उनकी विदेशी विनिमय की आय कम हो जाती हैं, जिसने आवश्यक मशीने तथा अन्य सामान आयात करना कठिन हो जाता हैं। यह देश के आर्थिक विकास में प्रतिकूल प्रभाव डालता हैं, देश में आयात तथा निर्यात मे सन्तुलन बना रहना चाहिए । आयात की अपेक्षा निर्यात का लक्ष्य ज्यादा होना चाहिए, जिससे विदेशी विनिमय कोष में आवश्यक धनराशि उपलब्ध हो सके। भुगतान संतुलन की स्थिति विपरीत होने पर विदेशी लेन देन में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इससे मौद्रिक नीति का प्रयोग भुगतान संतुलन को उचित स्तर पर बनाये रखने तथा विनिमय दर में स्थायित्व रखने की दृष्टि से बहुत महत्व पूर्ण हैं। भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखने के लिए मुद्रा की विनिमय दर को नीची बनाये रखकर निर्यातो को प्रोत्साहित तथा आयातों को निरूत्साहित किया जाना चाहिए। ऋण पूँजी पर ब्याज की दर बढ़ाकर भी भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखा जा सकता हैं। अनेक बार विनिमय नियंत्रण के माध्यम से भी भुगतान संतुलन तथा विनिमय दर को अनुकूल रखा जाता हैं। बैंको के माध्यम से धन का प्रेषण तथा भुगतान व्यवस्था को सरल करने की नीति अपनायी जाती हैं। इससे विदेशी लेन–देन अधिक होने लगते हैं। ब्याज की दर का सहारा लेकर भुगतान सन्तुलन को अनुकूल करने में सफलता प्राप्त की जा सकती हैं।

(7) कीमतों में स्थिरता तथा मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण–(Stablility in Price and contral on Inflation) मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य कीमतों में स्थिरता लाना हैं। जिससे मुद्रास्फीति पर नियंत्रण लगाया जा सके। इसके लिए अल्पकालीन ब्याज की दरों को निश्चित किया जाता हैं, जिससे वह अन्य स्थानीय ब्याज दरों को प्रभावित न कर सके। मुद्रा स्फीति में कुछ वर्गो को लाभ होता हैं। तथा कुछ वर्गों को हानि होती हैं। इस दृष्टि से कीमतों में स्थिरता से मुद्रा का मूल्य स्थिर रहता है। उसके साथ ही कीमतों में चक्रीय उच्चावचनों को दूर किया जा सकता हैं। इससे आर्थिक स्थिरता प्राप्त कर आय तथा सम्पत्ति की असमानता को दूर किया जा सकता हैं। इससे सामाजिक न्याय तथा आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती हैं। **प्रो० सेमुअलसन एंव प्रो० केन्स** ने व्यक्त किया हैं कि दो प्रतिशत वार्षिक मुद्रा स्फीति उद्यमियों को प्रोत्साहित करने तथा उच्चस्तरीय रोजगार की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं।

(8) आय वितरण में समानता –(Equality in Income Distrifultion) आय व धन के वितरण मे समानता भी मौद्रिक नीति का एक उद्देश्य है। कम आय वाले व निर्धन लोगों को लघु उद्योग तथा अन्य कार्य करने के लिए सस्ती व्याज दर पर ऋण दिये जा सकते हैं। जिससें वह धीरे–धीरे आय के साधनों को बढा सके, इससे समाज में समानता के उद्देश्य को पाने में सहायता मिलेगी, तथा गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी को भी कम करने में मिलेगी। देश में आय और सम्पत्ति के असमान वितरण का आघाभूत कारण निर्धनता हैं। जो जनसाधारण के निम्न उपभोग स्तरों, प्रति व्यक्ति निम्न आय तथा रहन–सहन के निम्न स्तर के रूप में परिलक्षित होती हैं। जनसंख्या के बहुत बड़े वर्ग में निर्धनता रहने का मुख्य कारण

आय वितरण की असमानता ही हैं। आय वितरण की असमानता को कम करने के लिए एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर रोक लगायी जानी चाहिए। इससे अधिक लाभ अर्जित करने की प्रद्धति पर रोक लगेगी और सरकार द्वारा धनी व्यक्तियों से आय पर अधिक कर लगाया जाना चाहिए जिससे आय वितरण की असमानता को कम करने में सहायता मिलेगी। सरकार को धनी वर्ग की सम्पत्ति, आय आदि पर कर लगाने से जो आय प्राप्त होती हैं। उसका अधिकतम उपयोग गरीबों के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए।

6.5 मौद्रिक नीति के प्रकार (Types of Monetory Policy)

मौद्रिक नीति के प्रकार निम्नलिखित हैं:

1. **सस्ती मौद्रिक नीति–(Cheap Monetory Policy)** सस्ती मौद्रिक नीति में व्यापारिक बैंकों द्वारा सस्ती ब्याज दरों तथा आसान शर्तो पर ऋण प्रदान किया जाता हैं। इससे व्यापारी तथा उद्योगपति को कम ब्याज दर पर सस्ता ऋण आसानी से उपलब्ध हो जाता हैं। इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा तथा साख का विस्तार होता हैं। इसका अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं। और विनियोग तथा रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। नये उद्योगो के विकास तथा पुराने उद्योगो के विस्तार से अर्थव्यवस्था में तेजी आती हैं। मुद्रा संकुचन के दुष्टपरिणामों को दूर करने में सस्ती मुद्रा नीति कारगर साबित होती हैं।

2. **महंगी मुद्रा नीति (Dear Montory Policy)**– मौद्रिक नीति के विपरीत महंगी मौद्रिक नीति में व्यापारिक बैंको द्वारा ऋण देने के लिए ऊँची ब्याज दर तथा कठोर शर्तों लगा दी जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उद्योगपति तथा व्यापारी आसानी से ऋण प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा का प्रवाह कम हो जाता हैं। उद्योगों का विकास तथा विस्तार न हो पाने के कारण व्यापार उत्पादन तथा बेरोजगारी में कमी आती हैं। अर्थव्यवस्था में मुद्रा प्रसार को नियंत्रित करने के लिए मौद्रिक नीति को अपनाया जाता हैं।

6.6 मौद्रिक नीति में साख नियंत्रण की तकनीक (Techniques of credit control in monetary policy) /या मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन (Implementation of monetary policy)

1 **खुले बाजार की क्रियाएं–(Open market operations)**– केन्द्रीय बैंक द्धारा बाजार में विपत्रो तथा प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय द्धारा मुद्रा या साख की भाषा को प्रभावित करना खुले बाजार की क्रियाएं कहलाती हैं।

जब केन्द्रीय बैंक बाजार में साख की मात्रा को कम करना चाहता है तो वह बाजार में प्रतिभूतियों को बेचता हैं, जिससे लोग प्रतिभूतियों को खरीदते हैं तो उनके पास साख की मात्रा की कम हो जाती हैं, इसी प्रकार केन्द्रीय बैंक साख की मात्रा को बढाना चाहती हैं, तो बाजार में प्रतिभूतियों को खरीदता हैं, जिससे लोग अपनी प्रतिभूतियों को बेचकर मुद्रा या साख की मात्रा बढाते हैं, और लोगो के पास पूँजी आती हैं, केन्द्रीय बैंक बाजार में मुद्रा या साख की उपलब्धता को खुले बाजार की क्रिया द्धारा घटाती तथा बढाती हैं। विस्तृत अर्थ में खुले बाजार की क्रियाओं का अर्थ केन्द्रीय बैंक द्वारा खुले बाजार में किसी भी प्रकार की प्रतिभूतियों तथा बिलों का क्रय विक्रय करना हैं।

खुले बाजार की क्रियाएं निम्न दशाओं में अपनायी जाती हैं। जिसमें

- बैंक दर की नीति को सफल बनाने के लिए।
- सरकारी प्रतिभूतियों की दरों को ऊँचा बनाये रखने के लिए।
- स्वर्ण के आयात निर्यात प्रभावों को कम करने के लिए।
- नगारिकों को बैंको में विश्वास कायम रखने के लिए।

खुले बाजार की क्रियाओं की सफलता के लिए देश में विकसित मुद्रा बाजार होना आवश्यक हैं। क्योंकि प्रतिभूतियों की निरन्तर माँग होने पर प्रतिभूतियों की खरीद फरोस्त करने में कठिनाई नहीं हेती हैं। देश में स्कन्ध विनिमय बाजार सशक्त तथा संगठित होना चाहिए। जिसमें अंश, ऋणपत्र, तथा दीर्घकालीन प्रतिभूतियों को लेन–देन होता रहे। खुले बाजार की क्रियाओं को सफल बनाने के लिए प्रतिभूतियों के मूल्य में स्थायित्व बनाये रखना जरूरी हैं। केन्द्रीय बैंक को प्रतिभूतियों के स्वतंत्र हस्तान्तरण तथा उसके मूल्यों में स्थायित्व बना रहे इस पर ध्यान देना चाहिए। इससे खुले बाजार की क्रियाएं को सफल किया जा सकता हैं। खुले बाजार की क्रियाओं में निम्न दरों को निर्धारित किया गया हैं।

(अ) रेपो दर (Repo Rate)– अल्पकालीन आवश्कताओं की पूर्ति के लिए वाणिज्यिक बैंक जिस ब्याज दर पर रिर्जव बैंक से नकद ऋण प्राप्त करते हैं। रेपों दर कहलाती हैं।

(ब) रिवर्स रेपो दर– अल्पकालीन अवधि के लिए रिर्जव बैंक वाणिज्यिक बैंक से जिस ब्याज दर पर नकदी प्राप्त करते हैं रिवर्स रेपों दर कहलाती हैं। यह सामान्यत रिर्जव बैंक द्वारा बाजार में मुद्रा की अधिकता हो जाने पर उसमें कमी लाने के उद्देश्य से किया जाता हैं। इसमें वाणिज्यिक बैंको को बढ़ी ब्याज दरों पर अल्प अवधि के लिए नकदी बैंक में जमा करने हेतु प्रोत्साहित किया जाता हैं।

2 **बैंक दर नीति– (Bank Rate policy)** बैंक दर वह ब्याज की दर हैं, जिस पर रिर्जव बैंक अन्य बैंको को प्रतिभूतियो की जमानत पर अल्पकालीन ऋण देता हैं या बैंको के बिलों को पुनः भुनाता हैं। बैंक दर नीति साख–मुद्रा पर नियंत्रण की अप्रत्यक्ष रीति है इसे सर्वप्रथम बैंक ऑफ इंग्लैड़ ने 1839 में इस्तेमाल किया, जब कभी भी बैंक दर में वृद्धि की जाती हैं, तो इसे महंगी मुद्रा नीति कहाँ जाता हैं। इसके कारण ब्याज दर बढ़ने से ऋण लेना लाभप्रद नहीं रह जाता हैं और साख का संकचन होता हैं, जबकि बैंक दर में कमी की जाती है, तो इसे सस्ती मुद्रा नीति कहाँ जाता हैं। इससें ब्याज दरों मे कटौती की जाती है, और इससे ऋण लेना लाभप्रद हो जाता है और साख का विस्तार होता हैं, इससे बाजार में ज्यादा मुद्रा आती हैं। बैंक दर की विशेषता इसके बढ़ने या घटने का प्रभाव बाजार में ब्याज दरो में पड़ता है । बैंक दरों में वृद्धि होने जाने से साख का संकुचन होता हैं और जब बैंक दर कम कर दी जाती हैं तब साख का विस्तार होता हैं। बैंक दर में हुए परिवर्तन का विदेशी पूँजी के आवागमन पर भी प्रभाव पड़ता हैं। जब बैंक दर में वृद्धि होती हैं तब उस देश में अधिक ब्याज मिलन के कारण विदेशी बैंको से तरल पूँजी ऊँची ब्याज दर का लाभ प्राप्त करने के लिए देश में आयात होने लगती हैं। बैंक दर कम होने पर तरल पूँजी का विदेशी बैंको को निर्यात होने लगता हैं। विदेशी पूँजी को देश में आना भुगतान शेष को भी सन्तुलित कर देता हैं। इससे विनिमय दर अनुकूल हो जाती हैं। बैंक दर नीति की सफलता निम्न बातों पर निर्भर करती हैं।

1. अर्थव्यवस्था को लोचपूर्ण होना चाहिए।
2. व्यापारी वर्ग का दृष्टिकोण बैंक दर के अनुकूल होना चाहिए।
3. केन्द्रीय बैंक पर व्यापारिक बैंको की निर्भरता
4. ब्याज की दरे बैंक दरों के अनुरूप होनी चाहिए।

बैंक दर की नीति की अपनी कुछ सीमायें भी हैं। जिसके कारण बैंक दर की नीति सफल नहीं हो पाती हैं।

1– मुद्रा स्फीति की अवस्था में व्यापारी ऊँची ब्याज दर पर भी ऋण लेने को तैयार हो जाते हैं। इससे बैंक दर का प्रभाव नहीं होता हैं।

2– अल्प विकसित अर्थव्यवस्था वाले देशों में पूँजी की माँग ज्यादा होती हैं। यहाँ पर बैंको में ब्याज की दरें ऊँची होती हैं। यहाँ पर ब्याज की दरें पर बैंक दरों का प्रभाव नगण्य ही पड़ता हैं।

3– असंगठित मुद्रा बाजार जिससे साहूकार, महाजन आदि होते हैं। बैंक दर का प्रभाव मामूली पड़ती हैं। जिस देश में लोगों के पास काला धन प्र्याप्त मात्रा में होता हैं। वहाँ पर लोग ब्याज दरों की चिन्ता नहीं करते हैं। क्योंकि उनके पास पर्याप्त मात्रा में रकम सुविधा पूर्वक मिल जाती हैं।

बैंक दर उन देशों में ज्यादा प्रभावशाली परिणाम दे सकती हैं जहाँ पर पर्याप्त मात्रा में व्यवस्थित तथा संगठित अर्थव्यवस्था हो तथा जो विकसित देश हो। अल्प विकसित देशों में बैंक दर का प्रभाव सीमित ही रहता हैं।

3 परिवर्तनशील नकद आरक्षण या कोष अनुपात –Variable cash Reserve Ratio, C R R) देश के केन्द्रीय बैंक रिर्जव बैंक ऑफ इंडिया को 1934 की धारा 42(1) के अनुसार यह अधिकार दिया गया हैं, कि वह प्रत्येक वाणिज्यिक बैंक को अपनी जमाओं का कुछ प्रतिशत रिर्जव बैंक ऑफ इंडिया के पास नकद कोष के रूप में रखना होगा। यह धनराशि माँग जमाओं का 2 प्रतिशत तथा साबधि जमाओं का 3 प्रतिशत हैं। सरकार ने रिर्जव बैंक ऑफ इंडिया को यह अनुमति दी गयी है कि वह नकद आरक्षण कोष को न्यूनतम 3 प्रतिशत और अधिकतम 15 प्रतिशत तक निर्धारित कर सकती हैं। केन्द्रीय बैंक अपने सदस्य व्यापारिक बैंको को उधार देने और उनके बिलों की पुर्नकटौती की सुविधा देते हैं। इसके सुविधा के बदले व्यापारिक बैंक अपनी स्थायी जमा का कुछ भाग केन्द्रीय बैंक के पास रखते हैं। केन्द्रीय बैंक इस जमा पर परिवर्तन का अधिकरा अपने पास रखता हैं। केन्द्रीय बैंक जब देश में साख की मात्रा को कम करना चाहता हैं तो वह जमा प्रतिशत में वृद्धि कर देता हैं। इससे व्यापारिक बैंको की साख निर्माण की शक्ति सीमित हो जाती हैं। इसके विपरीत जब केन्द्रीय बैंक साख की मात्रा में वृद्धि कर देता हैं तो नकद कोष प्रतिशत में कमी कर दी जाती हैं। जिससे बैंको की साख निर्माण की शक्ति बढ़ जाती हैं। परिवर्तनशील कोषानुपात साख की कुछ सीमाये भी हैं जिसमें यदि व्यापारिक बैंको के पास अधिक मात्रा में नकद कोष हैं। तो जमा कोषो का प्रतिशत बढ़ाने पर भी बैंको के उधार देने की शक्ति में कमी नहीं आयेगी। व्यापारिक बैंको के पास पर्याप्त मात्रा में तरल सम्पत्ति हैं तो बैंक द्वारा अधिक रकम मागें जाने पर व्यापारिक बैंक प्रतिभूतियों को बेचकर उधार ऋण देते रहेगे।

4 वैद्यानिक तरलता अनुपात– (Statutory Liquidity Ratio) (S L R) रिर्जव बैंक ऑफ इंडिया ने बैंको के लिए यह नियम अनिवार्य किया हुआ है कि

वह अपनी कुल जमाओं का कम से कम 25 प्रतिशत नकदी, स्वर्ण या सरकारी प्रतिभूतियों के रूप में अपने पास तरल रूप में रखे, इसी को वैद्यानिक तरलता अनुपात कहते हैं। सभी वाणिज्यिक बैंको के लिए अपनी कुल जमाओं का एक निश्चत प्रतिशत भाग तरल के रूप में रखना अनिवार्य किया गया हैं, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वह अपने गाहको को उनकी माँग पर भुगतान कर सके। यह कोषानुपात आवश्यकता पड़ने पर कम भी किया जा सकता हैं। तरल कोष की मात्रा में वृद्धि कर दी जाय तो बैंक की उधार देने की शक्ति कम हो जाती हैं। तरल कोष में कमी कर दी जाय तो बैंक की उधार देने की शक्ति बढ़ जाती हैं।

5 चयनात्मक साख नियंन्त्रण–(Selective Credit Controls) यह साख नियंत्रण की गुणात्मक रीति भी है जिसे चयनात्मक साख नियंत्रण की रीति भी कहाँ जाता है। इसका प्रयोग किसी साख क्षेत्रो में साख की दिशा तथा मात्रा का निश्चित उद्देश्यों के लिए नियंत्रण करने से हैं। साख नियंत्रण की गुणात्मक रीतियाँ जिनमें बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाएं, नकद कोष, तथा तरलता अनुपात के माध्यम से बाजार को नियंत्रित किया जाता हैं। ये नियंत्रण की प्रत्यक्ष रीतियाँ भी हैं। इससे बाजार शक्तियों के कामकाज में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होता हैं। जब उपभेक्ता वस्तुओं की माँग को नियंत्रित करना हो तो उपभोक्ता वस्तुओं का नियमन करना पड़ता हैं। जिससे वस्तुओं के दाम बढ़ नहीं पाते हैं। जिससे साख का प्रसार अधिक नहीं हो पाता हैं। जब सरकार आयातों को निरूत्साहित करना चाहती हैं तो व्यापारियों को सरकार द्वारा यह आदेश दिया जाता हैं कि वे जितनी धनराशि का माल आयात करेगे उसका कुछ भाग नकद में केन्द्रीय बैंक के पास जमा करना पड़ेगा और बैंको को यह आदेश दिया जाता हैं। कि वह उस धनराशि को ऋण के रूप में व्यापारियों को नहीं देगे। इससे बाजार में साख की एक निश्चित मात्रा ही केन्द्रीय बैंक के नियंत्रण में आर्थिक विकास को बढ़ाने के लिए कार्य करती हैं।

भारतीय रिर्जव बैंक कुछ एसी वस्तुओं जो संवेदनशील हो तथा कम उपलब्धता वाली हो चयनात्मक साख नियंत्रण द्वारा बाजार में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप द्वारा नियंत्रित किया जाता हैं, एसे नियंत्रण जमाखोरों द्वारा सामान की जमाखोरी हेतु बैंको के वित्तीय साधनों का उपयोग करने की पद्धति को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से किया जाता हैं, जिससे कीमतों में अनुचित वृद्धि न हो सके, चयानात्मक साख नियांत्रण का प्रयोग मुख्यतः अनाज, दालों, वनस्पति तेलो, गुड़ एवं रवंडसारी, चीनी, तिलहनों तथा रूई तथा कपास पर लागू किया जाता हैं, ताकि बाजार में इनकी जमाखोरी नही की जा सके तथा इनकी उपलब्धता बाजार में सुचारू रूप से हो सके।

भारत जैसे विकासशील देशों में इसका अभी भी व्यापक प्रयोग किया जा रहा हैं। चयनात्मक साख नियंत्रण की मुख्य रीतियाँ निम्नलिखित हैं।

(i) साख की राशनिगं
(ii) उपभोक्ता साख का नियमन
(iii) प्रत्यक्ष कार्यवाही
(iv) ऋणो पर नियंत्रण
(v) प्रचार

(i) साख की राशनिगं– (Rationing of credit) केन्द्रीय बैंक अन्य बैंको के लिए ऋण प्रदान करने की एक अधिकतम सीमा का निर्धारण कर देता हैं। जिस सीमा पर ऋण प्रदान करने का निर्धारण कर दिया जाता है। उससे अधिक सीमा पर बैंक ऋण प्रदान नही कर सकते हैं, इससे बाजार में साख का प्रसार रूक जाता हैं, साख की राशनिगं द्धारा केन्द्रीय बैंक ऋण की सीमा का निर्धारण कर देता हैं, या कुछ सामान पर ऋण नही देने की व्यवस्था करता हैं। जिससे बाजार में मस्तुओं के मूल्यों के उच्चावचन को रोका जा सके।

(ii) उपभोक्ता साख का नियमन – रिर्जव बैंक ऑफ इंड़िया जब बाजार मे औद्योगिक उत्पादनों जैसे मोटर कार, टू व्हीलर, फ्रिंज, टी.वी तथा फर्नीचर की माँग को बढाना चाहता है तो व्यापारिक बैंको के माध्यम से सस्ते दर पर उपभोक्ताओं को ऋण सुविधा प्रदान करायी जाती हैं। जिससे औद्योगिक उत्पादों की बिक्री में वृद्धि हो इन ऋणो को उपभोक्ता द्धारा किस्तों में चुकाया जाता है। और जब साख को नियंत्रित करना होता हैं, तो एसे ऋणो पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता हैं।

(iii) प्रत्यक्ष कार्यवाही – रिर्जव बैंक के द्धारा बैंको को जो सामान्य दिशा निर्देश दिये गये है, यदि बैंको द्धारा उन दिशा निर्देशो का पालन नही किया जाता है तो रिर्जव बैंक द्धारा बैंक ऋण प्रतिबन्ध लगा दिये जाते है। बैंको के प्रथम श्रेणी बिलों का पुर्नभुगतान बन्द कर दिया जाता हैं। बैंक पर दंड प्रत्यारोपित भी कर दिया जाता हैं। तथा बैंक की समाशोधन गृह की सुविधा भी बन्द कर दी जाती हैं। बैंकिग एकर 1949 रिर्जव बैंक को यह अधिकार देता है, कि वह बैंको को किसी विशेष लेन–देनो की श्रेणियों में प्रवेश से रोके या चेतावनी तथा किसी भी बैंक के खातों के निरीक्षण की शक्ति भी प्राप्त हैं।

(iv) ऋणो पर नियंत्रण – रिर्जव बैंक द्धारा अर्थव्यवस्था में एसे क्षेत्रों में जहाँ पर विकास के लिए धन की जरूरत नहीं हैं, अर्थात् विलासिता वाली जगहों पर ऋणो को प्रतिबन्ध कर दिया गया हैं। और बैंक एसे क्षेत्रों में ऋण न दे पाये इसके लिए ऋण देने पर पूर्ण रूप से प्रतिबन्ध लगा दिया जाता हैं।

(v) प्रचार – रिर्जव बैंक प्रचार प्रसार के माध्यम से अपनी मौद्रिक नीति को बाजार में सभी बैंको तथा उपभोक्ताओं के पास पहुचाता हैं और व्यापारिक बैंको को उसके द्धारा घोषित मौद्रिक नीति का अनुसरण करने के लिए कहता हैं। पत्र पत्रिकाओं तथा संचार माध्यमों से व्यापारिक बैंको के समक्ष अपने विचार रखता हैं, तथा विभिन्न समारोहो तथा संगोष्टियों के माध्यम से साख नीति को बताता हैं, इसको ध्यान में रखकर ही व्यापारिक बैंक साख का सृजन करते हैं।

6.7 मौद्रिक नीति का महत्व (Importance of Monetary Policy)

मौद्रिक नीति के अन्तर्गत उन सभी मौद्रिक निर्णयों तथा उपायों को शामिल किया जाता हैं, जिनका उद्देश्य मौद्रिक प्रणाली को प्रभावित करना हैं, मौद्रिक प्रणाली मुख्यतः देश में संचार का कार्य करती हैं। जिस प्रकार सारे शरीर में रक्त का संचरण हर अंग को ठीक से कार्य करने में सहायता करता हैं, उसी प्रकार मौद्रिक प्रणाली भी अर्थव्यवस्था में सभी क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। विकासशील देशों में जहाँ अत्यधिक गरीबी, प्रति व्यक्ति आय में कमी, पूँजी निर्माण का अभाव, आर्थिक विकास तथा रोजगार के उच्च स्तर को

बनाये रखने को प्राथमिकता देनी पड़ती हैं। मौद्रिक नीति के माध्यम से इस समस्या को हल करने में सहायता मिलती हैं, ताकि किसी भी विकासशील व्यवसाय को पूँजी की कमी का सामना न करना पड़े, मौद्रिक नीति का महात्व को निम्नलिखित बिन्दुओं में व्यक्त किया जाता हैं।

(1) पूर्ण रोजगार– (Full Employment)

मौद्रिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र पूर्ण रोजगार का स्तर बनाना हैं। आर्थिक स्थिरता को पूर्ण रोजगार के साथ मिलाया जा सकता हैं ताकि देश के आर्थिक साधनों का अधिकतम उपयोग सम्भव हो सके। मौद्रिक नीति न केवल पूर्ण रोजगार स्तर तक पहुचने में सहायक हो सकती हैं बल्कि यह स्तर प्राप्त कर लेने के पश्चात अर्थव्यवस्था को इसी स्तर तक बनायें रखने में प्रयोग की जा सकती हैं।

(2) पूँजी निर्माण–(Capital Formation)

ऊँची ब्याज दरो से बचतो का प्रोत्साहन मिलता हैं। लेकिन इससे विनियोग की लागत भी बढ़ जाती हैं। मौद्रिक नीति द्धारा एसी ब्याज दरें निर्धारित की जानी चाहिए जिससे बचत प्रोत्साहित हो तथा विनियोग में भी कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, ब्याज दरों मे कमी करने से निवेश में वृद्धि होती हैं। मौद्रिक नीति द्धारा बैंको से अधिक ऋण उपलब्ध करवायें जा सकते हैं। सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री तथा बैंको के वैद्यानिक रक्षित कोषों में वृद्धि करके आर्थिक विकास के लिए और साधनों का निर्माण किया जा सकता हैं।

(3) आर्थिक विकास–(Economic Development)

आर्थिक विकास एक द्धीर्घकलीन प्रकिया हैं। आर्थिक विकास को उत्पादको की आय में वृद्धि तथा उत्पादन में वृद्धि के माध्यम से समझा जा सकता हैं ताकि लोगों के जीवन स्तर में निरन्तर सुधार होता रहे। मौद्रिक नीति मुख्यः आर्थिक विकास को प्रभावित करती हैं, और मौद्रिक नीति का उद्देश्य भी यह है कि आर्थिक विकास में वृद्धि करना हैं। आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक हैं कि अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो और वस्तुओं और सेंवाओं की बढती हुई पूर्ति के साथ–साथ उसकी माँग में भी वृद्धि हो। मौद्रिक नीति का प्रयोग माँग तथा पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने के लिए भी किया जाता हैं, मौद्रिक नीति के प्रयोग द्धारा बचत तथा विनियोग के प्रोत्साहन के लिए भी उपयुक्त वातावरण बनाया जाय।

(4) मुद्रा की माँग तथा पूर्ति में सन्तुलन–(Equilibium in Demand and Supply of money)

मौद्रिक नीति के प्रयोग के द्धारा कुल मौद्रिक माँग तथा वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति में भी सन्तुलन बनायें रखना महत्वपूर्ण हैं ताकि माँग तथा पूर्ति के मध्य अस्थिरता उत्पन्न न हो। माँग तथा पूर्ति के बीच सन्तुलन द्धारा विकास तथा स्थिरता के उद्देश्य को प्राप्त करने में मौद्रिक नीति की आवश्यकता होती हैं।

(5) कीमत स्थायित्व (Price Stability)

मौद्रिक नीति में कीमतों मे स्थिरता मुख्य हैं। कीमतों में अस्थिरता के कारण रोजगार, व्यवसाय, उत्पादन, ऋणी ऋणदाता के पारस्परिक सम्बन्धों के बीच अस्थिरता उत्पन्न होती हैं। इससे अनावश्यक आर्थिक उतार चढ़ाव आौर आर्थिक जीवन में अनिश्चितता बढती हैं। इसलिये कीमतों में स्थिरता बनाये रखना

बहुत जरूरी हैं। मौद्रिक नीति द्धारा देश में चलन व साख की मात्रा को इस प्रकार नियंत्रित किया जाता हैं, कि कीमतों में कोई असाधारण परिवर्तन न हो पायें।

(6) विनिमय दर में स्थायित्व (Stability in Exchange Rate)

मौद्रिक नीति के अन्तर्गत विनिमय दरों में स्थिरता तथा भुगतान सन्तुलन में सामयता बनायें रखना आवश्यक हैं। विनिमय दर में स्थायित्व के लिए अन्तराष्ट्रीय व्यापार के अन्तर्गत होने वाले लेन–देनों में वित्तिय सम्बन्धों में स्थिरता बनाये रखना तथा विदेशी मुद्राओं में सट्टें की प्रवृति को रोकना जरूरी हैं। विनिमय दरें पूर्णतः स्थिर न रखी जाय लेकिन उसमें अस्थिरता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि यह अनेक आर्थिक समास्यांए उत्पन्न करती हैं। इसलिए एक सुदृढ़ अन्तराष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था के लिए विनिमय दरों में स्थिरता जरूरी हैं।

(7) भुगतान सन्तुलन (Balance of Payment)

भुगतान सन्तुलन तथा विनिमय दर एक दूसरे पर निर्भर करतें हैं। यदि भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल प्रतिकूल होता है तो विनिमय दर गिरने लगती हैं, और विनिमय दर गिरने पर निर्यातो में वृद्धि होने लगती हैं। भुगतान सन्तुलन उचित स्तर पर आ जाता हैं। इसलिए मौद्रिक नीति के माध्यम से केन्द्रीय बैंक निर्यातों तथा आयातों में सन्तुलन बनायें रखने का कार्य करता हैं।

(8) साख का विस्तार– (Credit Expension)

केन्द्रीय बैंक समाज के निर्धनतम व्यक्ति के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए साख का विस्तार करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में फसलों के लिए या पालतू पशुओं के लिए ऋण की सुविधा दी गयी हैं। शहरी क्षेत्रों में भी निर्धन लोगों के लिए भी बैंकिग सुविधा तथा ऋण की सुविधा का विस्तार किया गया हैं। मौद्रिक नीति के माध्यम से साख सुविधाओं का लाभ समाज के उपेक्षित तथा गरीब वर्ग के लोगों को उदार शर्तो पर प्राथमिकता के आधार पर सुविधाऐ प्रदान करती हैं, जिससे समाज में एकरूपता आये तथा अमीरी तथा गरीबी के मध्य दूरी को कम किया जा सकें।

(9) अन्य – (Others)

नियोजित आर्थिक विकास के क्रम में मौद्रिक नीति अनेक प्रकार से सहायक सिद्ध हो सकती हैं। बढ़ती हुई आय के साथ विनियोग तथा बचत को एक दिशा देने का कार्य मौद्रिक नीति ही करती हैं। मौद्रिक नीति स्थिरता के साथ विकास की दशा को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

6.8 मौद्रिक नीति की सफलता में बाधा डालने वाले घटक (Factors affecting the success of Monetary policy)

(1) गैर बैंकिग संस्थाओं पर नियंन्त्रण न होना– (No Control on Non banking Institutions)

रिर्जव बैंक द्धारा बैंकिग संस्थाओं को समय–समय पर आवश्यक दिशा निर्देश दिये जाते हैं।और बैंकिग संस्थाए को उन दिशा निर्देशो का पालन करना अनिवार्य हैं लेकिन रिर्जव बैंक का गैर बैंकिग संस्थाओां, देशी बैंकरों, साहूकारों तथा महाजनों पर कोई नियंत्रण नही हैं। जबकि ये वित्तीय बाजार में काफी बड़े हिस्से पर इनकी हिस्सेदारी हैं। अधिकतर आय जनसंख्या अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिए गैर बैंकिग संस्थाओं साहूकारों तथा महाजनों पर निर्भर हैं,

ग्रामीण क्षेत्रो में तो इनका ही बोलबाला हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ग्रामीण ऋणों की माँग तथा पूर्ति साहूकारों और महाजनों द्वारा ही पूरी की जाती हैं।

(2) अमौद्रिक क्षेत्र की विद्यमानता (Existence of a Non Monetary Sector)

विकासशील देशों में बहुत से सौदे एसे भी होते हैं जिसमें मुद्रा का प्रयोग नही किया जाता हैं। इस प्रकार के लेन–देनों में पारस्परिक विनिमय किया जाता हैं। इस प्रकार के लेन देन दो पक्षों की परस्पर सहमति से बिना पूँजी के किये जाते हैं। ऐसे में मुद्रा का कोई महत्व नहीं रह जाता हैं और मौद्रिक नीति का उस पर कोई प्रभाव नही रह जाता हैं।

(3) सुव्यवस्थित पूँजी बाजार का अभाव– (Lack of well organised capital Market)

विकासशील देशों में सुव्यस्थित पूँजी बाजार का अभाव हैं, जहाँ पर सरकारी प्रतिभूतियों का लेन देन बिना किसी बाधा के किया जा सके। भारतीय रिर्जव बैंक सरकारी प्रतिभूतियों को खरीदने तथा बेचने का कार्य करता है। लेकिन व्यवस्थित पूँजी बजार के अभाव में प्रतिभूति को बेचने में कठिनाइयाँ आती हैं। इससे मौद्रिक नीति का इस पर कोई प्रभाव नही रह जाता हैं।

(4) कालेधन का व्यापक चलन– (Wide circulation of black money)

विकासशील देशों में काले धन की एक समानान्तर अर्थव्यवस्था हैं, और यहाँ काले धन का व्यापक प्रचलन हैं। यहाँ काले धन का प्रचलन सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 35 से 40 प्रतिशत के बराबर होता हैं। मौद्रिक नीति के माध्यम से यदि कोई व्यवस्था बनायी जाती हैं, तो कालेधन के प्रचलन के कारण नीतियाँ सफल नही हो पाती हैं।

(5) अन्तराष्ट्रीय मौद्रिक संकट–

मौद्रिक नीति पर अन्तराष्ट्रीय मौद्रिक संकट का भी व्यापक प्रभाव पड़ता हैं। अन्तराष्ट्रीय व्यापार के उतार चढाव भी मौद्रिक नीति को प्रभावित करते हैं। वस्तुओं के आयात निर्यात, खनिज तेल के आयात, तेल संकट आदि में उतार चढाव मौद्रिक नीति को प्रभावित करते हैं।

6.9 मौद्रिक नीति की सीमायें (Limitations of Monetary policy)

मौद्रिक नीति में अनेक गुण हैं, जिसमें प्रमुख है मौद्रिक नीति को बिना किसी राजनीतिक हस्तक्षेप के लागू किया जा सकता हैं। क्योंकि इसका संचालन केन्द्रीय बैंक रिर्जव बैंक द्धारा किया जाता हैं। इसकों बिना किसी कठिनाई के परिवर्तित किया जा सकता हैं, क्योंकि इसमें परिवर्तन के लिए उपयुक्त अवसर होते हैं। बैंक साख पर आधारित निजी विनियोंगो के प्रभावपूर्ण तरीके से नियंत्रित किया जा सकता हैं। उपर्युक्त सभी गुणों के बावजूद व्यावहारिक रूप में मौद्रिक नीति की कुछ सीमायें भी हैं।

(1) मौद्रिक नीति का प्रमुख अस्त्र ब्याज दर में परिवर्तन करना हैं। परन्तु ब्याज दर में बार–बार परिवर्तन करना सम्भ्व नहीं हो पाता हैं। क्योंकि इसका सार्वजनिक ऋण व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा हैं। ब्याज दरों में निरन्तर परिवर्तन होने से सरकारी प्रतिभूतियों की कीमतें स्थिर नहीं रहती हैं, इससे विनियोग नही हो पाता हैं।

(2) मौद्रिक नीति के द्धारा आर्थिक क्रियाओं को जितना नियंत्रित किया ता सकता हैं, उतना प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता हैं। इसलिए मौद्रिक नीति तेजी

के क्रम को रोकने में भी प्रभावपूर्ण हो सकती हैं। परन्तु मन्दी का उपचार करने में लगभग पूर्णतः प्रभावहीन होती हैं।

(3) अलग–अलग देशों में अलग–अलग परिस्थितियों के लिए अलग–अलग प्रकार की मौद्रिक नीति अपनाने की आवश्यकता होती हैं। एक ही देश में प्रत्येंक अवस्था में एक ही प्रकार की मौद्रिक नीति नही अपनायी जा सकती हैं। सभी तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात ही मौद्रिक नीति का प्रयोग किया जा सकता हैं, इससे जरा सी भूल हो जाने पर लाभ के बजाय हानि हो सकती हैं।

(4) कीमते तथा आर्थिक क्रियायें अमौद्रिक तत्वों से प्रभावित होती हैं, मौद्रिक नीति का इससे कोई सम्बन्ध नहीं हैं इसलिए मौद्रिक नीति के उपाय इसपर प्रभावी नहीं रहेगें,।

(5) मौद्रिक नीति के सफल संचालन के लिए संगठित तथा विकसित मुद्रा बाजार होना चाहिए जिससें सभी अंग एक दूसरे से सम्बंधित हो । इसके विपरीत विकासशील देशों में मुद्रा बाजार असंगठित हैं। और प्रत्येंक अंग एक दूसरे से अलग हैं। भारत में देशी बैंकर्स के कार्यो को नियंत्रित करने में बड़ी समस्या होती हैं।

(6) अर्थव्यवस्था में बहुत से क्षेत्र एसे भी हैं जहाँ मुद्रा का प्रयोग ही नहीं किया जाता है । इस क्षेत्र का विस्तार जितना कठिन होगा मौद्रिक नीति का प्रभाव उतना ही सीमित होगा।

(7) उत्पादन में उतनी बढोतरी नहीं होती हैं जितनी की उपभोग प्रवृति ऊँची रहती हैं। इसके परिणाम स्वरूप कीमतों में वुद्धि होती रहती हैं। यदि मौद्रिक नीति में दृढ़ता लायी जाये तो कीमतें नियंत्रित की जा सकती हैं, लेकिन इसका दुष्परिणाम यह होगा कि निवेश हतोत्साहित होगा और आर्थिक क्रियाओं का स्तर गिर जायेगा। मौद्रिक नीति आर्थिक विकास में अनेक प्रकार से सहायक सिद्ध हो सकती हैं। बढ़ती हुई माप के साथ–साथ बचतों में वृद्धि तथा विनियोग को व्यवस्थित करने का कार्य मौद्रिक नीति का ही हैं, भारतीय रिर्जव बैंक ने यह माना हैं कि मौद्रिक नीति स्थिरता के साथ वृद्धि करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

6.10 सारांश

मौद्रिक नीति के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक देश में मुद्रा या साख की माँग तथा पूर्ति को नियंत्रित करता हैं। यह उन सब क्रियाओं को जो मुद्रा प्रणाली को प्रभावित करती हैं, मौद्रिक नीति के अन्तर्गत शामिल करता हैं। मौद्रिक नीति के अर्न्तगत मौद्रिक अधिकरियों द्वारा मुद्रा की पुर्ति, मुद्रा की लागत ब्याज दर तथा मुद्रा की उपलब्धता को विशेष उद्देश्यों के लिए प्रयोग करने से हैं। इसके अर्न्तगत ब्याज की दर तथा मुद्रा की उपलब्धता को विशेष उद्देश्यों के लिए प्रयोग करने से हैं। इससे अर्जित ब्याज की दर या मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन लाना हैं। जिससे अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया जा सके। इसमें कीमत तथा मजदूरी, व्यापार एंव विनियोग, बेरोजगारी, बजर नीति, आयनीति को सशक्त बनाया जा सके और अर्थव्वस्था में स्थिरता के साथ विकास किया जा सके। मौद्रिक नीति आर्थिक विकास में अनेक प्रकार से सहायक सिद्ध हो सकती हैं। बढ़ती हुई आय के साथ–साथ बचतों में वृद्धि तथा विनियोग को व्यवस्थित करने का कार्य मौद्रिक

नीति का ही हैं। बढ़ती हुई आय के साथ विनियोग तथा बचत की एक दिशा देने का कार्य के साथ साख सुविधाओं का लाभ समाज के उपेक्षित तथा गरीब वर्ग के लोगों को उदार शतों पर प्राथमिकता के आधार पर मिले साथ ही समाज में एकरूपता आये तथा अमीरी एंव गरीबी के मध्य दूरी का कम किया जा सके। मौद्रिक नीति के अर्जित इसका ध्यान रखा जाता हैं।

6.11 शब्दावली

केन्द्रीय बैंक – केन्द्रीय बैंक वह बैंक है जो देश की मौद्रिका, बैंकिग तथा साख व्यवस्था का नियमन तथ निर्देशन करती हैं।

बैंक दर– बैंक दर वह दर हैं जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंको के प्रथम श्रेणी मे बिलो की पुर्नकटौती करता हैं, और उन्हें ऋण देता हैं।

खुले बाजार की क्रियाएं– जब देश का केन्द्रीय बैंक खुले बाजार में प्रतिभूतियो का क्रय विक्रय करता हैं तो उसे खुले बाजार की क्रियाएं कहतें हैं।

साख – भविष्य में भुगतान करने के वायदा के आधार पर वर्तमान में मुद्रा अथवा मूल्यवान वस्तु की सेवा प्रदान करना ही साख कहलाता हैं।

विनिमय दर– विनिमय दर वह दर होती हैं जिस पर एक देश की मुद्रा की एक इकाई दूसरे देश की मुद्रा की इकाई से बदली जाती हैं।

भुगतान सन्तुलन– भुगतान सन्तुलन एक एसा लेखा जोखा हैं जो देश के निवासियो तथा सम्पूर्ण विश्व के बीच होता हैं। भुगतान सन्तुलन सौदो का ऐसा लेखा जोखा हैं, जो देश के निवासियो तथा सम्पूर्ण विश्व के बीच होता है।

6.12 बोध प्रश्न

(अ) **बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य :–**

1. बैंक दर वह ब्याज की दर हैं जिस पर रिर्जव बैंक अन्य सदस्य बैंको को मान्य प्रतिभूतियों की जमानत पर अल्पकालीन ऋण देता है।
2. रिर्जव बैंक की मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य प्रारम्भ से ही नियंत्रित मौद्रिक विस्तार की नीति को अपनाया रहा है।
3. अनुसूचित बैंको के लिए यह अनवार्य है कि वे अपनी कुल जमाओं का कम से कम 25 प्रतिशत नकदी, स्वर्ण या सरकारी प्रतिभूमियों आदि के रूप में अपने पास तरल के रूप में रखना होगा।
4. रिर्जव बैक केंन्द्रीय सरकार को दीर्घकालीन वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाता है।
5. रिर्जव बैंक ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर स्फ्रीतिकारी दबावो के दौरान महँगी मुद्रा नीति और मन्दी काल में सस्ती मुद्रा नीति का अनुसरण किया है।

(ब) **रिक्त स्थान की पूर्ति करियेः–**

1. आन्तरिक मूल्य स्तर का स्थिरीकरण मुद्रा की तटस्था, आर्थिक विकास ....के उद्देश्य है।
2. जो मुद्रा नीची ब्याज दर पर प्राप्त होती है उसे ..... कहते है।
3. मौद्रिक नीति का प्रबन्ध ..... द्वारा किया जाता है।

6.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य. 5. सत्य

(ब)

(1.) मौद्रिक नीति (2.) सस्ती मुद्रा, (3) केन्द्रीय बैंक।

6.14 स्वपरख प्रश्न

(1) मौद्रिक नीति का क्या आशय है, मौद्रिक नीति क्यों आवश्यक हैं।

(2) मौद्रिक नीति की परिभाषा दीजियें इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

(3) रिर्जव बैंक आफ इंडिया देश की साख नीति को कैसे नियंत्रित करता हैं? साख नियंत्रण की विभिन्न विधियों को लिखिये।

(4) रिर्जव बैंक की मौद्रिक नीति की असफलता के क्या कारण हैं।

(5) किसी बैंक की मौद्रिक नीति का स्पष्ट उद्देश्य पूर्ण रोजगार के बिन्दु पर बचत और विनियोग के साथ स्थापित करना हैं, समझाइये।

6.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्व्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–7 राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 राजकोषीय नीति की परिभाषा
7.3 राजकोषीय नीति के उद्देश्य
7.4 राजकोषीय नीति के कार्य
7.5 राजकोषीय नीति के साधन
7.6 भारतीय राजकोषीय नीति के आर्थिक प्रभाव
7.7 राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति में सम्बन्ध
7.8 विभिन्न परिस्थितियों में राजकोषीय नीति
7.9 भारत में राजकोषीय नीति
7.10 राजकोषीय नीति का महत्व
7.11 राजकोषीय नीति के दोष
7.12 राजकोषीय नीति के दोषों को दूर करने के सुझाव
7.13 सारांश
7.14 शब्दावली
7.15 बोध प्रश्न
7.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.17 स्वपरख प्रश्न
7.18 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- राजकोषीय नीति की विशेषताओं का वर्णन कर सके।
- राजकोषीय नीति का अर्थ व महत्व का वर्णन कर सके।
- राजकोषीय नीति के उद्देश्य को स्पष्ट कर सके।
- राजकोषीय नीति के प्रमुख अंगों का वर्णन कर सके।
- राजकोषीय नीति की सीमाओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सके।
- राजकोषीय नीति में सुधार हेतु, सुझाव दे सकते है।

7.1 प्रस्तावना

राजकोषीय नति वह नीति है, जिसमें आय तथा व्यय के परिवर्तन द्वारा अर्थव्यवस्था में आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित किया जाता हैं। इसके द्वारा सरकार अपने आय ,व्यय, तथा ऋण व्यवस्था का प्रयोग आर्थिक विकास, आर्थिक स्थिरता तथा पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने के लिए करती हैं। इसके माध्यम से अर्थव्यवस्था का कोई एक भाग ही नहीं अपितु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के प्रत्येक भाग में सन्तुलित विकास को प्रोत्साहित किया जाता हैं। यह निश्चित करती है, कि किन वस्तुओं पर कर लगाया जाये एंव कर की दर क्या निश्चित की जाय तथा प्राप्त करो को किस मद पर व्यय किया जाय। व्यय के लिए सम्पूर्ण राशि करो द्वारा प्राप्त नहीं हो पाती हैं तो सरकार अन्य साधनों से ऋण लेकर या हीनार्थ प्रबन्धन की व्यवस्था करती हैं। राजकोषीय नीति आर्थिक नीति के लक्ष्यों

की प्राप्त करने के उद्देश्य से भी चलायी जाती हैं। इसका सम्बन्ध राजस्व से हैं जो सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, तथा सार्वजनिक ऋण से सम्बंधित हैं। अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के लिए राजकोषीय नीति को आर्थिक स्थिरता का एक साधन माना गया हैं। इसकी सहायता से अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार और आर्थिक स्थायित्व को प्राप्त किया जाता हैं। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सरकारी व्यय तथा आय को इस प्रकार समायोजित किया जाता हैं ताकि समान माँग तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में सतुंलन स्थापित किया जा सके। प्रो० लर्नर ने भी राजकोषीय नीति का समर्थन करते हुए लिखा हैं कि इसके अन्तर्गत सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण के माध्यम से आर्थिक मन्दी को दूर किया जा सकता हैं एंव मुद्रा स्फीति को भी नियंत्रित किया जा सकता हैं। राजकोषीय नीति के प्रमुख तीन अंग हैं, कर निर्धारण की नीति, सार्वजनिक व्यय एंव सार्वजनिक ऋण इनके माध्यम से सरकार अपने आर्थिक उद्देश्य पूरा करती हैं। इन तीनों के माध्यम से ही राजकोषीय नीति सुदृढ और प्रभावशाली हो सकती हैं।

7.2 राजकोषीय नीति की परिभाषा

आर्थर स्मिथीज के अनुसार– राजकोषीय नीति ऐसी नीति हैं। जिसके अर्न्तगत सरकार अपने व्यय तथा आगम का प्रयोग इस तरह करती हैं कि राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर उसका वांछनीय प्रभाव पड़े और उन पर पड़ने वाले अवांछनीय प्रभावों को रोका जा सके।

प्रो. कल्वर स्टोन के अनुसार – राजकोषीय नीति का आशय सरकार के ऐसे कार्यो से हैं, जो उसकी आय तथा व्यय को प्रभावित करते हैं। जिसका माप सरकार की वास्तविक प्राप्ति का उसके अधिक्य या घाटे से होता है।

ओटो एक्सटीन के अनुसार– राजकोषीय नीति का अर्थ करों एवं व्यय में होने वाले परिवर्तनों से हैं जिसका उद्देश्य पूर्ण रोजगार और कीमतों में स्थायित्व के अल्पकालीन लक्ष्यों को प्राप्त करना हैं।

हार्वे एवं जौन्सन के अनुसार– अर्थव्यवस्था की क्रियाओं के स्तर एवं स्वरूप में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से शासकीय व्यय एवं कराधान में जो परिवर्तन लाये जाते हैं उन्हें राजकोषीय नीति में शामिल किया जाता हैं।

सरकार के राजस्व संग्रहण करारोपण तथा व्यय के सुनिश्चित नियमों द्वारा अर्थव्यवथा को वांछित दिशा देना राजकोषीय नीति कहलाता है। राजकोषीय नीति के दो मुख्य औजार है कर ढाँचे में परिवर्तन तथा विभिन्न मदों में सरकार द्वारा व्यय में परिवर्तन । यह अर्थव्यवस्था में कुल माँग को प्रभावित करने का एक महत्वपूर्ण उपाय हैं।

इस प्रकार राजकोषीय नीति एक ऐसी नीति हैं, जिसकी सहायता से अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार और आर्थिक स्थायित्व को प्राप्त किया जाता हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यय तथा आय को इस प्रकार समायोजित किया जाता हैं ताकि समान मांग तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में सन्तुलन स्थापित किया जा सके।

उपर्युक्त परिभाषाओं से राजकोषीय नीति को निम्नलिखित विशेषताओं की जानकारी होती हैं।

(1) राजकोषीय नीति को संचालन वित्त मंत्रालय द्वारा किया जाता है।

(2) राजकोषीय नीति का सम्बन्ध सार्वजनिक आय,व्यय तथा ऋण सम्बन्धी क्रियाओं से होता है।

(3) राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकार प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करती हैं।

(4) राजकोषीय नीति को देश में रोजगार, आय, कीमत, तथा उत्पादन के स्तर पर वांछनीय प्रभाव डालने के उद्देश्य से संचालित किया जाता हैं।

(5) आर्थिक स्थिरता तथा विकास की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण साधन के रूप में राजकोषीय नीति का प्रयोग किया जाता है।

(6) राजकोषीय नीति के माध्यम से विषमताओं तथा असमानताओं को कम करने का प्रयास किया जाता है।

आज राजकोषीय नीति में सार्वजनिक वित्त के आर्दशात्मक पक्ष का महत्व बढता जा रहा हैं। आधुनिक सरकारें सामाजिक सेवाओं जैसे सड़क, बिजली, पानी, स्वास्थ्य, की व्यवस्था तो करती हैं साथ ही आर्थिक विषमता को कम करना, बेरोजगारी की समस्या का हल करने, आर्थिक विकास को तीव्र करने ,सामाजिक सुरक्षा तथा बीमा, कल्याण कार्यो की व्यवस्था करने, आदि कार्यो को करने लगी है। आज राजकोषीय नीति सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में विनिमय तथा नियंत्रण के रूप में कार्य करती हैं। राजकोषीय नीति का रोजगार के स्तर, कीमत, आर्थिक विकास के साथ महत्वपूर्ण प्रभाव होता है और राजकोषीय नीति की कार्यप्रणालियों तथा आवश्यकताएं अर्थव्यवस्था के विकास के साथ बदलती रहती है।

7.3 राजकोषीय नीति के उद्देश्य (Objectives of fiscal policy)

राजकोषीय नीति के उद्देश्य किसी देश की आर्थिक परिस्थितियों के स्वरूप पर निर्भर करते हैं। विकसित तथा विकासशील देशों की आर्थिक परिस्थितियों तथा प्राथमिकताएं भी भिन्न–भिन्न हो सकती हैं। लेकिन दोनों ही स्तर पर राजकोषीय नीति के मुख्य उद्देश्य आर्थिक स्थिरता तथा आर्थिक विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों की सफलता में निहित है। आर्थिक स्थिरता से तात्पर्य कीमत, रोजगार, आय उत्पादन हैं। जबकि आर्थिक विकास में विकास कार्यक्रमों को शामिल किया गया हैं। इस सम्बन्ध में मुसग्रेव ने लिखा हैं राजकोषीय नीति का उद्देश्य उच्च रोजगार, कीमत में स्थिरता, विदेशी व्यापार में संतुलन, व आर्थिक विकास में वृद्धि करना हैं। राजकोषीय नीति का यह उ्देश्य है कि वह आय तथा व्यय के कार्यक्रमों को इस तरह से व्यवस्थित करे कि अर्थव्यवस्था ऊँचे स्तर पर पहुचकर आर्थिक स्थिरता प्राप्त कर सके। राजकोषीय नीति के मुख्य उद्देश्य निम्न है।

(1) **पर्याप्त वित्तीय साधन जुटाना (Collecting Alequate Finencial Resoures)**– राजकोषीय नीति के प्रमुख उद्देश्य में आर्थिक विकास कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधन जटाना हैं। लेकिन इसमें यह भी ध्यान रखा जाता है कि इसमें बचत तथा निवेश पर दुष्परिणाम न पड़े, कर के माध्यम से वित्त जुटाकर उससे राज्य में विभिन्न कार्यक्रम चलाये जाते है जिसमें निर्धनता उन्मूलन, जनजातीय विकास, आदि मुख्य है । लेकिन कर लगाते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि समाज के विभिन्न वर्गो पर कर भार से आय तथा सम्पति को विषमताओं में कमी हो सके। उच्च आय वर्ग वालों से ज्यादा कर तथा निम्न आय वर्ग वाले लोगों से कम दर पर कर का संग्रहण किया जाना चाहिए। जिससे आर्थिक विषमताएं कम हो सके। निर्धन लोगो को पर्याप्त मात्रा में नकद

सहायता दी जा सकती हैं। वृद्धावस्था पेंशन, बेरोजगारी भत्ता, मातृत्व लाभ, निर्धनता भत्ता आदि दिये जाते हैं। वित्तीय संसाधन जुटाने के लिए सरकार नये कर लगा सकती हैं और वर्तमान करों की दरों में वृद्धि कर सकती हैं। बचतों में ब्याज की ऊची दरों द्वारा बचतों को आकृर्षित करती हैं।

(2) **पूँजी निर्माण में वृद्धि (Increase in capital formation)**– विकासशील अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण की उच्चस्तरीय क्षमता का विकसित करना बहुत जरूरी है। क्योकि पूँजी की कमी के कारण यह देश निर्धनता के दुष्चक्र में फँसे रहते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए सन्तुलित विकास आवश्यक है इसके लिए सरकार कर लगा सकती हैं। या सार्वजनिक ऋण प्राप्त कर सकती है। लोगों को बचत करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है जिससे पूँजी निर्माण में वृद्धि होती है। सरकार पूँजी निर्माण की उच्चतम सम्भव दर को बढाती हैं। निर्धनता के दृष्चक्र को तोड़ने के लिए सतुंलित विकास आवश्यक हैं। यह तभी हो सकता है जब पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित किया जाय।

(3) **आर्थिक विकास (Economic development)** –राजकोषीय नीति के माध्यम से आर्थिक विकास की गति को तेज करना मुख्य हैं । आर्थिक विकास के माध्यम से देश में लोगों के रहन सहन के स्तर को बढ़ाना तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करना हैं। सरकार आधारभूत सुविधाओं जैसे बिजली, पानी, यातायात, बैकिंग, बीमा उद्योग संचार सिचाई स्वास्थ्य को बढ़ावा देकर आर्थिक विकास को बढ़ा सकती है। आर्थिक विकास से तात्पर्य राष्ट्रीय आय में दीर्घकालीन विकास से हैं। इसमें राष्ट्रीय आय तथा प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि होती हैं। इससे समाज में लोगो के रहन–सहन के स्तर में वृद्धि होती हैं। सरकार अपने व्यय कार्यक्रमों में यातायात, शक्ति, बीमा, बैंकिग, उद्योग, आदि में बढ़ोतरी करके आर्थिक विकास को बढ़ावा देती हैं। सरकार राजकोषीय नीति के माध्यम से गरीबी के दृष्चक्र को तोड़ सकती हैं और आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकती हैं। सरकार घाटे की वित्त व्यवस्था अपनाकर पूँजी जुटाती हैं। इससे मुद्रा प्रसार को भी रोका जाता हैं।

(4) **कीमत स्थिरता (Price Stalielity)**– विकासशील राष्ट्रों में वस्तुओं की कीमतों में स्थिरता रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य हैं। विकास की गति के बढ़ने के साथ–साथ कीमतों में भी तेजी से वृद्धि होने लगती है । इसके लिए यह जरुरी है कि जनता की अधिक क्रय शक्ति को कम करने के लिए करारोपण, अनिवार्य बचत, तथा ऋणों का सहारा लिया जा सकता हैं। विलासिता की वस्तुओं तथा अत्यधिक उपयोग को हतोत्साहित करने के लिए इन वस्तुओं पर कर की दर को बढ़ा दिया जाता है। कीमतों में उतार चढ़ाव से समाज के सभी वर्ग प्रभावित होते हैं। इससे कालाबाजारी तथा दलाली में तेजी आ जाती हैं। लोग बाजार में अनुचित लाभ कमाने लगाते हैं, कीमतों में कमी से उत्पादन प्रभावित होता हैं और बेरोजगारी में बढ़ोतरी होती हैं। राजकोषीय नीति के माध्यम से कीमतों में होने वाले उतार चढ़ाव को नियंत्रित किया जाता हैं।

(5) **साधनों का उचित आवंटन (Allotmention of Resources)**– राजकोषीय नीति साधनों के उचित आवंटन को प्रभावी मानती हैं। भूमि, भवन, श्रम, पूँजीगत वस्तुएं उत्पादन आदि सब उत्पत्ति के साधन हैं। साधनों को उचित दिशा देकर अर्थव्यवस्था को विकास की गति पर ले जाया जा सकता हैं । सरकार अपनी बजट नीति के द्वारा रेल, सड़क, सिचाई आदि को सुदृढ़ करती हैं। उद्योगों के

माध्यम से औद्योगिक विकास को गति प्रदान करती हैं । आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं का विस्तार तथा लघु एवं कुटीर उद्योग का विकास करके लोगों के रहन सहन के स्तर को बढ़ाया जाता है। प्रकृति प्रदत्त संसाधनों की सीमित मात्रा होने के कारण इनका विदोहन व्यवस्थित तरीके से किया जाना चाहिए। जिससे संसाधनों के सदुपयोग के साथ उत्पादकता में भी वृद्धि हो। संसाधनों के आवंटन में न्यायोचित वितरण का सिद्धान्त का प्रयोग करना चाहिए।

(6) **असमानता को कम करना (Decreasse Unequality)**– विकासशील देशों में धन के वितरण या कहे आय के वितरण की असामनता की समस्या भी है। इसके लिए अमीर लोगों से ज्यादा तथा गरीब लोगों से कम दर पर कर लगाया जाना चाहिए। विलासिता तथा गैर जरूरी वस्तु पर ज्यादा दर से कर लगाया जाना चाहिए। कर से प्राप्त राशि का उत्पादक कार्यो में लगाया जाना चाहिए। और इस प्रकार व्यय किया जाना चाहिए जिससे उसका लाभ गरीबों को ज्यादा हो, एक अच्छे समाज के निर्माण के लिए आय तथा व्यय का सामजस्य ऐसा रखना चाहिए जिससे समाज में असमानता कम से कम हो।

(7) **रोजगार अवसरों में वृद्धि (To increase in employment opportunities)**– राजकोषीय नीति का एक उद्देश्य देश में रोजगार अवसर में वृद्धि करना भी हैं। विद्यमान श्रम शक्ति के लिए रोजगार के अवसर बनाना भी जरूरी है। क्योंकि आर्थिक विकास के लक्ष्य तभी पूरे किये जा सकते हैं। जब विघमान श्रम शक्ति को रोजगार के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किये जाये। आर्थिक विकास भी तभी सम्भव है जब श्रम व्यक्ति के पास रोजगार के पर्याप्त अवसर हो।

(8) **क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करना (To remove regional Imblances)**– विकासशील देशों में अकसर ऐसा देखा जाता है कि किसी एक क्षेत्र का विकास ज्यादा होता है जबकि दूसरे क्षेत्र का विकास कम होता है। इसके लिए राजकोषीय नीति का उद्देश्य देश के सन्तुलित विकास करना भी है। इसके लिए अविकसित क्षेत्रों में लगने वाले उद्योगों को कर से राहत दी जाती है तथा वहाँ पर बिजली, पानी, सड़क जैसी आधार भूत सुविधाओं को बढ़ाया जाता हैं। जिससे वहाँ से उद्योग लगा सके।

(9) **आर्थिक स्थिरता (Economic stability)** – राजकोषीय नीति आर्थिक स्थिरता को बनाये रखने के लिए आयात तथा निर्यात को सन्तुलित अवस्था पर बनाये रखने का कार्य करती हैं। इसके माध्यम से चक्रीय उच्चावचनों को कम करके आर्थिक स्थिरता के लिए बाहरी तथा आन्तरिक व्यापार पर नियंत्रण करती है। वस्तुओं की जमाखोरी को कम करने के लिए आयात बढ़ा दिये जाते है तथा उस वस्तु का निर्यात रोक दिया जाता है। जिसकी जमाखोरी हो रही हो । इससे स्थिरता का वातावरण बन जाता हैं।

(10) **निवेश में वृद्धि (Increase in investment)**– राजकोषीय नीति का एक उद्देश्य अर्थव्यवस्था में पूँजी निवेश को बढ़ावा देना भी है। इसके लिए उन क्षेत्रों में जहाँ पर विकास नहीं हुआ है और विकास की सम्भावना काफी कम हैं निवेश के लिए एक नीति बनायी गयी हैं। इसमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के निवेशकों को प्रोत्साहित कर औद्योगिक इकाई लगाने के लिए प्रेरित किया जाता है। निवेशकों में वृद्धि के लिए कर ढ़ाचा को भी सरलीकृत किया गया है।

7.4 राजकोषीय नीति के कार्य

मुसग्रवे के अनुसार राजकोषीय नीति निम्न प्रकार से कार्य करती हैं।

(1) **आवंटन कार्य**– समाज में प्रकृति के साधनों को जिसमें भूमि, श्रम, तथा पूँजी तथा अन्य साधनों को किस प्रकार प्रयोग किया जाय, किन वस्तुओं का उत्पादन कितनी मात्रा में किया जाए तथा उत्पादन की विभिन्न रीतियों का प्रयोग किस प्रकार किया जाए । क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र के पास उत्पादन के साधन एक निश्चित मात्रा में होते हैं। उन पर यह निर्णय लेना कि समाज में भूमि, श्रम तथा पूँजी का किस प्रकार प्रयोग किया जाय जिससे उसका लाभ प्रत्यक्ष ओर अप्रत्यक्ष रूप से समाज के लोगों को ही मिले। राजकोषीय नीति द्वारा विनियोग के प्रवाह को एक निश्चित दिशा की तरफ मोड़ा जा सकता है।

(1) सरकार अपनी राजकोषीय नीति द्वारा अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण भाग जैसे रेल, सड़क, नहर, बिजली, सिचाई आदि को सढ़ृढ़ बनाती है।

(2) आधारभूत उद्योग स्थापित करके देश के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित कर सकती हैं।

(3) पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग धन्धे स्थापित करने पर कर सम्बन्धी छूटें तथा रियायतें दी जाती हैं। जिससे आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रो का विकास हो सकें।

(4) सरकार व्यक्तिगत विनियोगों को भी राजकोषीय नीति द्वारा प्रोत्साहित करती है जैसे व्यक्तिगत उद्योगों पर कर भार कम करना, उन्हें सस्ती दर पर औद्योगिक ऋण देना तथा औद्योगिक सुविधायें प्रदान की जाती है।

(5) सरकार द्वारा अपने नागरिकों के लिए स्वास्थय बीमा, बेकारी बीमा, वृद्धावस्था पेशंन मातृत्व लाभ, आदि कार्यक्रमों पर बड़ी मात्रा में व्यय किया जाता है जिसका अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।

(2) **वितरण कार्य (Distribution functions)**– वितरण कार्य राजकोषीय नीति का महत्वपूर्ण कार्य हैं। सामाजिक व्यय में आय तथा सम्पति के वितरण में न्यायपूर्ण समायोजन वितरण कार्य कहलाता है। सरकार समाज में आय तथा सम्पति में समानता लाने के लिए सार्वजनिक व्यय ओर सार्वजनिक आय का निम्न प्रकार से उपयोग कर सकती हैं।

(1) मृत्यु कर, उपहार कर लगाकर सम्पति के स्वामित्व में परिवर्तन कर सकती हैं।

(2) समाज में असामनता को कम करने के लिए अमीरों से कर वसूल करके तथा उसे निर्धन व्यक्तियों के विकास के लिए व्यय करके आय के वितरण में परिवर्तन ला सकतें हैं। गरीबों को प्रत्यक्ष रूप से सहायता भी दी जाती हैं। जैसे वृद्धावस्था पेंशन, बेरोजगारी भत्ता, बीमारी तााि मातृत्व लाभ।

(3) सरकार कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत निर्धारित करके भी आर्थिक विषमता कम कर सकती है। कृषि उत्पादन की न्यूनतम कीमतें और मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर सकती हैं। इससे समाज में सम्पति की विषमता कम होगी और आय की समानता बढेगी।

इससे राजकोषीय नीति द्वारा आय ओर सम्पति के समान वितरण की दिशा में जो प्रयास किये जाते हैं। उसका बचत तथा विनियोग पर अनुकुल प्रभाव पड़ता है।

और देश की अर्थव्यवस्था को समुचित ढंग से विकसित करने में सहायता मिलती है, तथा देश के आर्थिक व सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है।

(3) **स्थिरीकरण कार्य (Stabilisation function)**– स्थिरीकरण कार्य का उद्देश्य देश की अर्थव्यवस्था में उतार–चढ़ाव को नियंत्रित करने का होता है जिससे अर्थव्यवस्था में माँग का एक निश्चित स्तर स्थायी रूप से बना रहें । राजकोषीय नीति के अन्तर्गत आय व्यय की गतिविधियों को इस प्रकार समायोजित करना है कि अर्थव्यवस्था निर्धारित समृद्धि पथ पर बिना बाधा के निश्चित गति से चलती रहे। स्थिरीकरण कार्य के अन्तर्गत व्यय नीति, रोजगार का उच्चतम स्तर ,वस्तुओं के मूल्य में स्थायित्व, आर्थिक विकास की वाछिंत दर को प्राप्त करने प्रयत्न के साथ साथ व्यापार ओर भुगतान शेष पर हाने वाले प्रभावों पर भी ध्यान दिया जाता हैं।

(4) **आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास (Economic Development)**– आर्थिक विकास से आशय राष्ट्रीय आय में दीर्घकालीन विकास से है जिसके द्वारा प्रतिव्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती हैं। इससे समाज में लोगो के रहन–सहन के स्तर में सुधार होता हैं। सरकार अपनी कर नीति, सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण की नीति द्वारा बचत, विनियोग एवं रोजगार को प्रोत्साहन देती हैं। सरकार को आर्थिक विकास के लिए विनियोग और साधनो को अनुत्पादन क्षेत्रों में लगा कर सामाजिक दृष्टि से वांछनीय क्रियाओं में लगाना चाहिए। विनियोग क्रिया को गतिशील बनाने के लिए उत्पादक वर्ग को करो से छूट, रियायत तथा सहायता प्रदान की जाती हैं। विनियोग अवसरों से वृद्धि द्वारा निश्चित रूप से आर्थिक विकास को बल मिलता हैं। सार्वजनिक व्यय को सरकार ऐसे कार्यो में लगाती हैं जिससे विकासात्मक कार्यो को प्रोत्साहन मिलता हैं। आधारभूत विकास हेतु यातायात, शक्ति बैंकिग तथा बीमा सुविधाओं में किया गया व्यय देश के आर्थिक विकास को बढ़ाता हैं।

7.5 राजकोषीय नीति के साधन (Tools of fiscal Policy)

(1) **करारोपण नीति (Taxation policy)** –सरकार की करारोपण नीति ऐसी होनी चाहिए जो सार्वजनिक कल्याण तथा आर्थिक विकास पर जयादा ध्यान दें । क्योंकि यहाँ पर तेज गति से पूँजी निर्माण व आर्थिक, रोजगार का विस्तार आय तथा धन के वितरण की असमानता को कम करना, बढती हुई कीमतों पर नियंत्रण रखना आदि प्रमुख मुद्दे हैं । ऐसे में कर इस प्रकार लगाये जाये जिससे पूँजी निर्माण को बल मिले, विनियोग का प्रवाह ऐसे जगहों पर करना चाहिए जहाँ पर आर्थिक विकास अधिक से अधिक हो । पहले से स्थापित उद्योगों को कुछ वर्षो तक कर में छूट दी जानी चाहिए जिससे वह मजबूती के साथ प्रतिस्पर्धा में बने रहे। करो द्वारा ही आय तथा सम्पति की विषमताओं को कम किया जा सकता है। धनी वर्ग पर आय कर लगाकर निर्धन लोगों पर कम दर से कर का करारोपण करके धन की विषमताओं को कम किया जा सकता हैं। कर पूँजी एक महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। कर के ढ़ाँचे को व्यवस्थित करके विकास के लिए पर्याप्त पूँजी जुटाई जा सकती हैं। यह कर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों हो सकते है।

(2) **सार्वजनिक व्यय नीति (Public expenditure policy)**– विकासशील अर्थव्यवस्था में विकास को तीव्र करने के लिए सार्वजनिक व्यय एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। सार्वजनिक व्यय नीति के मुख्य कार्यो में मुख्यतः अर्थव्यवस्था

की वृद्धि दर बढाना, मानवीय पूँजी का विकास करना, रोजगार के अवसर प्रदान करना, आय तथा धन की असमानताओं को कम करना, क्षेत्रीय सन्तुलन स्थापित करना, चक्रीय उच्चावचनों को कम करना तथा सामाजिक तथा सास्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देना मुख्य हैं । सार्वजनिक व्यय नीति की सफलता के लिए तथा विकास की गति को तेज करने के लिए सरकार निजी क्षेत्रों के साथ–साथ आवश्यक उद्योगों की स्थापना कर सकती हैं। मन्दी तथा मुद्रा अवस्फीति के समय विकास कार्यकमों को तेजी से चालू करवा सकती हैं । शिक्षा, स्वास्थय, सड़क, जनकल्याण, सिचाई जैसी योजनाओं को क्रियान्वित कर जन कल्याण के कार्यक्रमों द्वारा सामाजिक असामनता को कम किया जा सकता हैं । सामान्यतः सरकार द्वारा इस तरह की व्यय नीति अपनायी जाती है जिससे देश में एक आधारभूत ढाँचे का निर्माण हो सके।

(3) **सार्वजनिक ऋण नीति (Public debt policy)** –राजकोषीय नीति का एक महत्वपूर्ण भाग सार्वजनिक ऋण नीति भी हैं। आर्थिक विकास में सार्वजनिक ऋण का विशेष स्थान हैं। सरकार को अर्थव्यवस्था में विकास कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए काफी अधिक मात्रा में वित्त की आवश्यकता हाती हैं। सार्वजनिक करारोपण तथा बचतों से सरकार को पर्याप्त मात्रा में वित्त उपलब्ध नहीं हो पाता है। और यदि सरकार अपनी वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जनता से अत्यधिक करारोपण द्वारा वित्त हासिल करने की कोशिश करेगी तो इससे जनता में बचत करने व काम करने की इच्छा पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। इसके लिए सरकार वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार जनता, विदेशी संस्थाओं तथा मित्र राष्ट्रों से ऋण लेती हैं। विदेशी ऋणों से विकासशील देश पूँजी मशीन तथा तकनीकी ज्ञान अर्जित करने पर खर्च करतें है। लेकिन कभी–कभी अविवेकपूर्ण कर्ज नीति मुद्दा स्फीति फैलाने का कार्य भी करती हैं जिससे अर्थव्यवस्था में विपरीत प्रभाव भी पड़ता है। लेकिन सरकार इसके लिए सार्वजनिक ऋणों का प्रयोग उत्पादक कार्यो में करती है। जिससे परिसम्पतियों का सृजन होता हैं। और ऋण का भुगतान आसानी से किया जा सकता है।

(4) **घाटे के वित्त की व्यवस्था (Deficit financing)** – यह राजकोषीय नीति का एक महत्वपूर्ण भाग हैं । क्योंकि यदि सरकार को और अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता होती है तो वह घाटे की वित्त व्यवस्था को अपनाकर अतिरिक्त पूँजी की छपाई कर वित्त प्राप्त करती है। यह आर्थिक विकास के लिए हीनार्थ प्रबन्धन (घाटे की वित्त व्यवस्था) द्वारा अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए भी जानी जाती हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि घाटे की वित्त व्यवस्था इस तरह से कि जानी चाहिए जिससे मुद्दा स्फीति न बढ़ पाये। यदि मुद्रा स्फीति बढ़ती है तो इससे बचतें हतोत्साहित होगी और इसका प्रभाव अर्थव्यवस्था पर ठीक नहीं पड़ेगा, जनता का सारा धन महगाई के कारण उपयोग की वस्तुएँ क्रय करने में ही खर्च हो जायेगा।

7.6 भारतीय राजकोषीय नीति के आर्थिक प्रभाव (Economic Effect of Indian Fiscal Policy)

भारत में राजकोषीय नीति का मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास को बढ़ावा देना हैं। आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक आय, सार्वजनिक ऋण, तथा घाटे की वित्त व्यवस्था (हीनार्थ प्रबन्धन)

का सहारा लिया जाता हैं । इसके अतिरिक्त राजकोषीय नीति का उद्देश्य समाज में धन की विषमताओं को कम करना भी है।

सरकार राजकोषीय नीति के अन्तर्गत कर लगाकर आय प्राप्त करती हैं। यह कर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष हो गये हैं। लेकिन करों को लगाने के बाद भी आय आवश्यकताओं से कम रही हैं। पूँजी निर्माण की गति भी धीमी रही हैं। क्योकि कर से प्राप्त आय को विकास कार्यो में लगाये के बाद उसका प्रतिफल उतना नहीं मिल पाया जितना मिलना चाहिए था। करो ने बचतों की मात्रा को भी प्रभावित किया हैं।

राजकोषीय नीति देश में धन के वितरण की विषमताओं को कम करने में असफल रही हैं। सार्वजनिक आय का विकास कार्यो के नाम पर अपव्यय किया जाता रहा हैं और सरकार अपव्यय को रोकने में असमर्थ हैं कार्यो को करवाने के लिए भष्टाचार, रिश्वतखोरी, तथा लालफीताशाही का बोलबाला रहता है। जिसके करण कामों में अनावश्यक विलम्ब होता हैं और राजस्व का व्यय भी अधिक होता हैं। बढ़ते हुए मूल्यों को निंयत्रित करने में हमारी राजकोषीय नीति असफल सिद्ध हुई हैं। भारत में मूल्य वृद्धि का स्तर दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा हैं सरकार द्वारा किया गया विनियोग उत्पादन प्रधान न होने के कारण उत्पादन में तो वृद्धि नहीं हुई बल्कि इससे मूल्यों में वृद्धि होती ही चली गयी। हीनार्थ प्रबन्धक के माध्यम से अतिरिक्त मुद्दा का निर्गमन भी मूल्य वृद्धि में सहायक हैं जिससे मूल्यों में वृद्धि होती चली गयी । सरकार ने अप्रत्यक्ष कर लगाकर तथा बचत योजनायें लागू करके अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त क्रय शक्ति को अपने पास ले लिया है जिससे उनका उपभोग सीमित हो सके, लेकिन इससे भी कोई लाभ नहीं हुआ हैं।

7.7 राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति में सम्बन्ध (Relationship between fiscal and monetary policies)

राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति के उद्देश्यों में काफी समानतांए रहती हैं। लेकिन इन दोनों के संचालन तथा प्रभावों में काफी अन्तर हैं।

(1) राजकोषीय नीति का निर्धारण सरकार की बजट नीति के अधीन होता है। इसके लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक होती हैं। मौद्रिक नीति का संचालन केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता हैं। राजकोषीय नीति में आसानी से परिवर्तन किया जा सकता है। लेकिन मौद्रिक उपायों में परिवर्तन आसानी से नहीं किया जाता हैं।

(2) राजकोषीय नीति में जनता की क्रयशक्ति को प्रभावित किया जा सकता हैं। अलग–अलग करों का आरोपण कर जनता की अतिरिक्त पूँजी को सरकार ले लेती हैं। मौद्रिक नीति का प्रभाव परोक्ष रूप से पड़ता हैं। यह केन्द्रीय बैक के माध्यम से संचालित होती हैं

(3) राजकोषीय नीति के प्रभाव तात्कालिक होते हैं जबकि मौद्रिक नीति के प्रभाव समय अन्तराल से उत्पन्न होते हैं।

(4) मन्दी या अस्फीति की अवस्था में राजकोषीय नीति सफल रहता हैं। जबकि मौद्रिक नीति विफल रहती है।

(5) राजकोषीय नीति माँग पक्ष को प्रभावित करती हैं। जबकि मौद्रिक नीति का प्रभाव लागत पर पड़ता है।

उपर्यक्त व्याख्या के आधार पर यह कह सकते हैं कि राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति का सम्मिलित रूप में प्रयोग आर्थिक स्थिरता लाने में प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य करता हैं। राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति दोनों में ही आर्थिक स्थिरता को प्राप्त करने के लिए दोनों के बीच समन्वय स्थापित करना आवश्यक हैं।

7.8 विभिन्न परिस्थितियों में राजकोषीय नीति (Fiscal policy under different conditions)

मन्दीकालीन में राजकोषीय नीति– मन्दीकालीन में राजकोषीय नीति का उद्देश्य जनता की उपभोग की प्रवृति को बढ़ाना तथा सार्वजनिक व्यय तथा नये निवेश में वृद्धि करना है। सरकार द्वारा यदि सार्वजनिक व्यय तथा निवेश पर वृद्धि की जाती हैं तो इससे उद्योगों तथा अर्थव्यवस्था में स्फूर्ति आ जाती है। अर्थव्यवस्था में जब स्फूर्ति रहती हैं तो सरकार द्वारा व्यय की दर को कम कर दिया जाय तो भी आर्थिक क्रियाओं में कोई शिथिलता नहीं आती हैं। व्यय तथा निवेश बढ़ने से रोजगार में वृद्धि होती है और आम आदमी का उपभोग व्यय बढ़ने लगता है जिससे अर्थव्यवस्था में तेजी आती हैं।

मन्दीकालीन में सरकार अपनी आय को कैसे बढ़ाये जिससे अर्थव्यवस्था को मन्दी की स्थिति से बाहर निकाला जा सकें। इसके लिए सरकार करों की व्यवस्था करती है। लेकिन यह कर उपभोग तथा बचत क्षमता को प्रभावित करते हैं। मन्दीकाल में करों को कम करना या घटा देना उचित रहता हैं लेकिन व्यावहारिक रूप में करों को पूर्ण रूप में हटाया नहीं जा सकता हैं इसके लिए सरकार अपने करों को न बढ़ाये बल्कि सार्वजनिक व्यय की मात्रा को बढ़ा सकती हैं।

सरकार द्वारा जब करों से प्राप्त आय से ज्यादा व्यय किसा जाता है तो घाटे का बजट बनाया जाता हैं। घाटे के बजट की पूर्ति जनता से ऋण लेकर पूरी की जा सकती हैं। तथा सरकार द्वारा बैकों से भी ऋण लिया जाता है। जिससे अधिक साख का निमार्ण होता हैं। लेकिन अधिकतर देशों में घाटे के बजट की पूर्ति अतिरिक्त मुद्रा का निर्गमन करके की जाती हैं। घाटे की वित्त व्यवस्था मन्दीकाल में रोजगार को बढ़ाने में मदद मिलती हैं।

मन्दीकालीन में राजकोषीय नीति के अन्तर्गत घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा अतिरिक्त पूँजी का सृजन निजी निवेशकों को प्रोत्साहित कर नये उघोगों के लिए वित्तीय प्रोत्साहन तथा औद्योगिक बस्तियों को निर्माण कार्य किये जाते हैं। मंदीकाल में राजकोषीय नीति मोद्दिक नीति की अपेक्षा अधिक सफल हैं।

मुद्रास्फीति काल में राजकोषीय नीति–मुद्रास्फीति काल में अर्थव्यवस्था में सरकारों, व्यापारियों तथा व्यक्तियों द्वारा अत्यधिक मात्रा में मुद्रा खर्च की जाती हैं जिससे बाजार में पूँजी काफी बडी मात्रा में आ जाती है। इसका परिणाम वस्तुओं की मूल्य वृद्धि के रूप में सामने आता है। इसको नियंत्रित करने के लिए व्यय की मात्रा को कम करना आवश्यक होता हैं। सरकारी व्ययों में कमी करके अर्थव्यवस्था में स्थिरता स्थापित करने में सहायक होती है। लेकिन इसका पहलू यह भी है कि सरकारी व्ययों में कमी भी एक सीमा तक ही की जा सकती हैं। इसके लिए आवश्यक है कि जब व्ययों में कटौती करना सम्भव नहीं होता हैं तो करो में वृद्धि करके मुद्रा स्फीति की रोकथाम की जा सकती हैं। मुद्रास्फीति में राजकोषीय नीति

के अन्तर्गत प्रत्यक्ष कर तथा परोक्ष कर दोनों की दर में वृद्धि कर देनी चाहिए जिससे कुल उपभोग व्यय में कमी आयेगी। लोगों को बचत करने के प्रति जागरूक करना होगा तथा निवेश की मात्रा को बढ़ाना नहीं चाहिए। मुद्रास्फीति काल में ब्याज की दरों को आकर्षक बनाकर सरकार जनता से ऋण प्राप्त करने के भी प्रयास करती है जिससे जनता की अतिरिक्त क्रयशक्ति में कमी की जा सके। लेकिन स्फीति काल में लोगों के पास मुद्रा होने पर वह उसका उपयोग निवेश तथा व्यवसाय विस्तार में करतें हैं और इनक कार्यो के लिए अतिरिक्त पूँजी की माँग करते हैं ऐसे में स्फीति काल में राजकोषीय नीति मुद्दा स्फीति को निंयत्रित नहीं कर पाती है।

7.9 भारत में राजकोषीय नीति (Fiscal policy in india)

स्वतंत्रता से पूर्व राजकोषीय नीति का प्रयोग मुख्य नागरिकों तथा प्रतिरक्षा व्ययों के लिए संसाधन जुटानें के लिए किया जाता था लेकिन स्वंतत्रता के बाद लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना पर बल दिया गया। सन् 1951 में आर्थिक नियोजन का शुभारम्भ हुआ। उस समय से राजकोषीय नीति में सार्वजनिक कलयाण तथा आर्थिक विकास पर जोर दिया जाने लगा।

भारत में राजकोषीय नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्न है।

(1) आर्थिक विकास तथा पूँजी निर्माण
(2) रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी
(3) स्थिरता के साथ विकास
(4) आय तथा धन के वितरण की असमानता को कम कराना।
(5) सामाजिक न्याय तथा समानता

इन उद्दश्यों को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार राजकोषीय नीति के निम्नलिखित उपकरणों को उपयोग करती हैं।

कर नीति (Taxation policy)– कर नीति राजकोषीय नीति का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। अर्थव्यवस्था को तेजी से विकास के रास्ते पर ले जाने के लिए करो को महत्वपूर्ण योगदान हैं। करो से सरकार को आय प्राप्त होती है। वही आर्थिक विषमतांए भी कम होती है। सार्वजनिक आय का मुख्य साधन करारोपण हैं। कर के माध्यम से पर्याप्त मात्रा साधन जुटाये जाते हैं। लेकिन इसके साथ ही इसको निजी क्षेत्र में बचत तथा निवेश में दुष्प्रभाव न पड़े इसका ध्यान रखा जाता हैं समाज के विभिन्न वर्गो में कर का भार इस प्रकार डाला जाता हैं जिससे आय तथा सम्पति की विषमताओं में कमी आ सके । विलासिता की वस्तुओं को उपभोग को हतोत्साहित करने के लिए उस पर कर की दर ज्यादा रखी जाती हैं। सामान्यतः कर व्यक्तियों की देय क्षमता के आधार पर लगायें जाते हैं। इससे सामाजिक न्याय तथा समानता को बढ़ावा मिलता हैं।

कर नीति की विशेषताएं (Features of tax policy)

बिट्रिश काल में भारतीय कर प्रणाली सिर्फ शोषण वाली प्रणाली थी जिसमें जनता पर कर का अत्यधिक भार डालकर सिर्फ शोषण किया जाता था। सामाजिक असमानता, आय तथा व्यय की विषमताओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक न्याय, सार्वजनिक कल्याण, सामाजिक आर्थिक विकास, पर जोर दिया जा रहा हैं। आज सामाजिक असमानता

को कम करने के लिए प्रगतिशील दर पर कर लगाया जा रहा हैं जिसमें धनी लोगों से ज्यादा कर तथा निर्धनों से कर में छूट दी जा रही हैं।

(1) **कर संरचना– (Tax structure)–** भारत राज्यों का संघ इसमें तीन स्तरों पर कर का संग्रहण किया जाता है जिसमें केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय सरकार स्थानीय सरकार में जिला पंचायत तथा नगर निगम आते हैं। सरकार मुख्य रूप से दो प्रकार के कर लगाती है जिसमें एक प्रत्यक्ष कर तथा दूसरा परोक्ष कर हैं। प्रत्यक्ष कर में आयकर तथा निगम कर आते हैं तथा परोक्ष कर में सीमा शुल्क और केन्द्रीय उत्पादन शुल्क आतें हैं।

(2) **अप्रत्यक्ष करों की प्रमुखता (Dominance of indirect tax)–** सरकार के कर राजस्व में अप्रत्यक्ष करों की प्रमुखता हैं। जबकि पिछले 15–20 वर्षो में कर राजस्व में प्रत्यक्ष करों का भाग भी निरन्तर बढ़ रहा है। 1990–91 में केन्द्र सरकार के सकल कर राजस्व में अप्रत्यक्ष करों का भाग 81% तथा प्रत्यक्ष करों का भार 19% लगाया था। किन्तु बाद के वर्षो में इस अन्तर में कमी आयी हैं। जो गरीबों पर कर भार में कमी करने का संकेत देती हैं।

(3) **प्रगतिशीलता (Progressiveness)–** भारतीय कर संरचना में प्रगतिशीलता हैं। यहाँ ऊँची आय पर अधिक कर लगाये जाते हैं। कर ढाँच के प्रगतिशील प्रत्यक्ष कर के साथ–साथ परोक्ष करों में भी दिखती हैं।

(4) **उत्पादन शुल्क का अनुपात अधिक (More exise duty ratio)–** परोक्ष करों में उत्पादन शुल्क का भाग आय के अकेले साधन के रूप में सबसे अधिक हैं। उत्पादन शुल्क तीन प्रकार के हैं । कुछ कर आवश्यक वस्तुओं पर लगाते हैं जिन्हें निर्धन आय वर्ग भी प्रयोग में लाता हैं । इसकी कीमत में वृद्धि निर्धन कीमत को थोड़ा बढ़ने दिया जा सकता हैं तथा अन्य विलासिता की वस्तुओं पर लगतें हैं । इसकी कीमत उपभोग पर कोई प्रभाव नहीं डालती है।

(5) **कर संरचना में संरचनात्मक परिवर्तन (Compositional changes in tax structure)**–स्वंतत्रता के पश्चात् भारतीय कर संरचना में काफी सरंचनात्मक परिवर्तन हुए हैं। जैसे

(1) अप्रत्यक्ष करों में उत्पादन शुल्क सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

(2) राज्यों के कर राजस्व में बिक्री कर का भाग बढ़ता जा रहा हैं।

(3) आय पर लगने वाले करों में निगम कर से प्राप्त आय आयकर से प्राप्त आय से अधिक हैं।

(6) **समानता (Equity)** –समानता का आशय करादान क्षमता के अनुसार करों के भुगतान से हैं। जिन लोगों की आय एक समान हैं उन्हें समान मात्रा से कर देना चाहिए और जिन लोगों की करदान क्षमता अधिक हैं उन्हें कम कर दान क्षमता वाले व्यक्तियों की तुलना में अधिक कर देना चाहिए। भारतीय कर प्रणाली में समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया गया हैं।

(7) **बचतोंन्मुखी करारोपण नीति (Savings oriented taxation policy)** भारतीय करारोपण नीति समाज में बचत तथा निवेश को बढ़ावा देती हैं यहाँ अनेक माध्यमों के द्वारा बचत तथा निवेश को प्रोत्साहित किया जाता हैं। भारतीय जीवन बीमा, राष्ट्रीय बचत पत्र, पी.पी.एफ खाता, सामान्य भविष्य निधि, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया की यूनिट लिक्ड बीमा योजना में जमा करायी गयी धनराशि पर सरकार धारा 80 C में अन्तर्गत कर में छूट प्रदान करती हैं।

(8) समाजवादी सिद्धान्तों के अनुरूप (According to socialist principles) – भारत में करारोपण नीति को समाजवादी सिद्धान्तों के अनुरूप बनाया गया हैं । यह नीति समाज में समाज के लोगों के हितों को ध्यान में रखकर बनायी गयी हैं। इसमें मुख्य केन्द्र समाज का एक आम व्यक्ति है।

सार्वजनिक व्यय नीति (Public expenditure policy)– सरकार के सार्वजनिक व्यय में तीव्र गति से वृद्धि हो रही हैं। आज कल्याणकारी राज्य की अवरधारणा को पूरा करने के लिए सरकारों को विभिन्न मदों को काफी धनराशि को खर्च करना पडता है। यह व्यय आर्थिक तथा गैर आर्थिक क्षेत्रों में किये जाते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार का सामाजिक सेवाओं पर व्यय काफी तेजी से बढ़ा हैं । एक कल्याणकारी राज्य में शिक्षा, स्वास्थय, सुरक्षा, रोजगार, में वृद्धि करके उत्पादन को बढावा दिया गया हैं। कृषि, उद्योग, खनिज , संचार यातायात जैसे क्षेत्रों में भी व्यय तेजी से बढ़ोतरी हो रही हैं। पिछड़े क्षेत्रों में तेजी से विकास की परिकल्पना की जा रही है। गरीब तथा निर्धन वर्गो के लोगों के लिए विशेष कार्यक्रमों द्वारा उनके उत्थान के कार्य किये जा रहे हैं। आज सामाजिक सेवाओं का तेजी से विकास हो रहा हैं । आज सरकार ने शिक्षा, चिकित्सा, मनोंरजन सामुदायिक विकास में अनेकाएक नयी योजनाएं लागू की गयी हैं। सार्वजनिक व्यय की एक बड़ी धनराशि प्रतिरक्षा सेवाओं पर खर्च की जा रही है । आज सेना तथा रक्षा व्यय में सार्वजनिक व्यय को करना जरूरी भी होना तय हैं। क्योकि पड़ोसी देशों का शत्रुतापूर्ण व्यवहार आन्तरिक अशान्ति ने रक्षा व्यय में बढ़ोतरी कर दी हैं।

सार्वजनिक ऋण नीति (Public debt policy)– सरकार के लिए लगातार बढ़ते विकास व्यय के लिए वित्त जुटाना एक अत्यन्त कठिन समस्या हैं। वित्तीय संसाधनां को कर के माध्यम से जुटाने का प्रयास किया जाता हैं। किन्तु करारोपण की भी सीमायें होती हैं। यदि जरूरत से ज्यादा करारोपण कर दिया तो इसके दुष्परिणाम आने लगते हैं। इससे अर्थव्यवस्था में गम्भीर समस्याएं खड़ी हो सकती है। इसलिए वित्तीय साधनों का जुटाने के लिए सार्वजनिक ऋण नीति के तहत ऋण प्राप्त किया जाता है। सार्वजनिक ऋण नीति के तहत ऋण प्राप्त किया जाता हैं। सार्वजनिक ऋण को दो भागों में बाँटा जाता है।

(1) **आन्तरिक ऋण**

(2) **वाहय ऋण**

आन्तरिक ऋण (Internal debt)– आन्तरिक ऋण वह है जो किसी देश की सीमाओं के अन्दर रहने वाले व्यक्तियों या संस्थाओं से लिया जाता हैं। आन्तरिक ऋण एच्छिक या अनिवार्य हो सकते हैं आन्तरिक ऋण में देश के अन्दर सम्पति का हस्तान्तरण होता है। लोक ऋण तीन भागों में बाँटा गया है। अल्पकालीन ऋण, मध्यकालीन ऋण, तथा दीर्घकालीन ऋण, ट्रेजरी बिल तथा ट्रेजरी सर्ट्रिफिकेट अल्पकालीन ऋण हैं ट्रेजरी गेट मध्कालीन ऋण हैं एवं बाँड दीर्घकालीन ऋण है।

वाह्य ऋण (External debt)–वाह्य ऋण देश की सीमाओं के बाहर स्थित व्यक्तियों या संस्थाओं से प्राप्त होते हैं। वाह्य ऋण हमेशा एच्छिक होता हैं वाह्य ऋण में पहले विदेश से देश के अन्दर सम्पति का हस्तान्तरण होता है। बाद में ऋण को वापस करते समय तथा ब्याज का भुगतान करते समय विपरीत दिशा में

स्थानातरण होता है। सार्वजनिक ऋण को उत्पादक तथा अनुत्पादक में भी विभाजित किया जा सकता है। उत्पादक ऋण वह है जिससे उत्पादक क्षमता का सृजन होता है। इस क्षमता के उपभोग से प्राप्त आय द्वारा मूलधन की वापसी होती हैं तथा ब्याज का भुगतान भी होता हैं । रेलवे, नहर, सड़क, पेयजल के निमार्ण के लिए लिया गया ऋण उत्पादक होता हैं। इसके विपरीत अकाल के समय में राहत कार्यो पर खर्च करने के लिए लिया गया ऋण अनुत्पादक है। क्योंकि इसमें किसी उत्पादक क्षमता का सृजन नहीं होता हैं जिससे ऋण की अदायगी की जा सकें।

(4) **बजट नीति (Budget policy)**– बजट राजकोषीय नीति का प्रमुख उपकरण हैं । इसमें सरकार के आय तथा व्यय के लेखा जोखा होता हैं । इसको प्रयोग अर्थव्यवस्था के स्थिरीकरण के लिए किया जाता है। बजट नीतियां निम्न प्रकार है।

(1) **घाटे का बजट (Budget deficit)**– जब आय की तुलना में सरकार का व्यय अधिक होता हैं तो अर्थव्यवस्था में क्रय शक्ति अधिक हो जाती है। घाटे का बजट सरकार के वास्तविक व्यय को व्यक्त करता हैं।

(2) **आधिक्य का बजट**–अधिक्य बजट नीति का सहारा अर्थव्यवस्था को मुद्दा स्फीति के खतरों से बाहर निकालने के लिए किया जाता हैं । बजट अधिक्य की स्थिति उस समय होती हैं जब सरकारी व्यय की तुलना में सरकार की आय अधिक होती हैं।

(3) **सन्तुलित बजट**–सन्तुलित बजट से तात्पर्य है जब सरकार की आय तथा व्यय दोनों बराबर रहते हैं । किन्तु सरकार के बढ़ते कार्यक्षेत्र के कारण एवं विशेष रूप से विकासशील देशों में सरकार को आय से अधिक व्यय करना पड़ता हैं । साथ ही मुद्दा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए अधिक्य के बजट की नीति अपनानी पड़ती हैं । इसलिए सन्तुलित बजट की अवधारणा को स्वीकार नहीं की जाती हैं।

7.10 भारत में राजकोषीय नीति का महत्व (Importance of fiscal policy in India)

पूँजी निर्माण (Capital formation)–भारतीय अर्थव्यवस्था में पूँजी आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। आर्थिक विकास के लिए पूँजी निर्माण अनिवार्य हैं। भारत में राजकोषीय नीति के माध्यम से बचत तथा विनियोग को प्रोत्साहित किया गया हैं जिससे राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि होती हैं और यह आवश्यक भी है कि विकासशील देशों में पूँजी निर्माण की दर बढ़ायी जाय।

बचत (saving)– राजकोषीय नीति के माध्यम से बचत को प्रोत्साहित किया जाता हैं। अमीरों से ज्यादा कर तथा गरीबों को कर से छूट देकर उनकी बचत को प्रोत्साहित किया जाता हैं

रोजगार के अवसर (Employment opportunities)– रोजगार के अवसरों में वृद्धि करके तथा अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखना भी राजकोषीय नीति का ही एक भाग है। ग्रामीण क्षेत्रों में तथा शहरी क्षेत्रों में चलायी जाने वाली विभिन्न विकास योजनाओं में तथा गामीण रोजगार गारन्टी योजनाओं के माध्यम से देश के निर्धन लोगों को रोजगार दिलाने तथा ग्रामीणों के आय के स्तर में वृद्धि करने के लिए भी राजकोषीय नीति के माध्यम से काफी सफलता

मिली हैं। इससे निर्धनता का स्तर कम हुआ हैं तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि भी हुई हैं।

सामाजिक कल्याण (Social welfare) – सरकार द्वारा सामाजिक कल्याण जैसे शिक्षा, स्वास्थय, पेयजल, विद्युत समाज के कमजोर वर्गो के कल्याण, स्त्रियों, बच्चों तथा वृद्धों के कल्याण के लिए विभिन्न कल्याण कार्यक्रम चलाये जा रहे है।

आय तथा धन की असामनता में कमी (Reduction in inequality of income)– सरकार धनी वर्गो से तथा विकासिता की वस्तुओं पर कर की दर प्रगतिशीलता के आधार पर लगाती हैं ओर इससे ऊँची दर पर कर लिया जाता है। इस कर का उपयोग ग्रामीण तथा निर्बल वर्ग की कलयाणकारी योजनाओं पर व्यय किया जाता है। इससे समाज में आय तथा धन की असमानता में कमी आती हैं।

संसाधनों का एकीकरण (Mobilisation of resources)– सरकार ने राजकोषीय नीति के माध्यम से वित्तीय संसाधनों को व्यवस्थित कर योजनाबद्ध विकास को बढावा दिया है। सरकार ने कर विभिन्न विकास योजनाओं के लिए काफी वित्तीय संसाधनों को संग्रह कर लिया है। आन्तिरिक स्त्रोंतो से प्राप्त पूँजी से ही विभिन्न विकास योजनाओं को मूर्त रूप दिया जा रहा है।

निजी क्षेत्रों को बढ़ावा (Incentines to private sector)–सरकार ने राजकोषीय नीति के माध्यम से निजी क्षेत्रों में कई प्रोत्साहन लागू कर इस क्षेत्र को बढ़ावा देने का कार्य किया हैं इससे निजी क्षेत्र में विनियोग काफी तेजी से बढ़ रहा हैं । सरकार ने पिछड़े तथा अविकसित क्षेत्रों में भी उद्योग स्थापित करने के लिए विभिन्न रियायतें प्रदान की गयी हैं।

7.11 भारत की राजकोषीय नीति के दोष (Shortcomings of Indian fiscal policy)

(1) **एकरूपता का अभाव**– भारतीय कर प्रणाली में वैज्ञानिकता का अभाव हैं। यह कर प्रणाली ऐसी नहीं है कि विभिन्न कर तथा उनकी दरें एक दूसरे को सहायता करें। हांलाकि कर तथा उनकी दरों में समय समय पर परिवर्तन किये गये हैं । लेकिन फिर भी यह एक दूसरे के पूरक नहीं बन पायें।

(2) **लोचपूर्ण कर प्रणाली का अभाव**– भारतीय कर प्रणाली में लोचता का पूर्ण रूप से अभाव हैं। इसमें बदलाव की गुजांइस कम रहती है। जिससे करों से आय कम प्राप्त हो पाती है। जबकि करों द्वारा आय तथा सम्पत्ति की विषमता कम की जा सकती हैं।

(3) **केन्द्र तथा राज्यों में समन्वय का अभाव**– राजकोषीय नीति में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच समन्वय का अभाव हैं। केन्द्र के पास कर राजस्व के स्त्रोत ज्यादा है जबकि राज्यों के पास कर स्त्रोत ज्यादा नहीं हैं जबकि राजकोषीय नीति में राज्यों के उत्तरदायित्व बढ़ा दिये गये हैं । राज्यों के पास कर आय के स्त्रोत कम होने के कारण वह विकास कार्यो के लिए केन्द्र पर ही निर्भर रहते हैं।

(4) **हीनार्थ प्रबन्धन**– सरकार को जन कल्याणकारी कार्यों को करवाने के लिए पर्याप्त वित्त की आवश्यकता होती हैं। यदि आय कम तथा खर्चा ज्यादा होने लगे तो सरकार ऋण लेकर इसकी पूर्ति करती है और यदि ऋण से भी पूँजी की पर्याप्त व्यवस्था न हो पाये तो इसकी पूर्ति हीनार्थ प्रबन्धन के तहत नयी मुद्रा छापकर पूरी की जाती हैं। हीनार्थ प्रबन्धन से देश की मुद्रा प्रसार की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। इससे वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई हैं।

(5) **सार्वजनिक ऋण में बढ़ोतरी**– सरकार आर्थिक विकास कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए भारी मात्रा में ऋण पूँजी उधार में लेती हैं। जिसका प्रभाव यह होता है कि उसके लिए देश के ऊपर ऋण की मात्रा बढ़ती चली जाती हैं । जिसको चुकाने के लिए और ऋण की आवश्यकता पड़ती हैं और यदि विदेशी ऋण लिया हैं तो कई बार को राजनैतिक दबाव या परियोजनाओं में अनिश्चित्ता पैदा हो जाती हैं

(6) **सार्वजनिक आय का अपव्यय**– भारत में सार्वजनिक आय का बहुत बड़ा हिस्सा अनुत्पादक क्षेत्रों में लगा दिया जाता है सरकारी विभागों में व्यापक भष्ट्राचार, रिश्वतखोरी, लालफीताशाही, अनावश्यक बजट, आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों की भर्ती के कारण भी आय का अपव्यय हो रहा हैं। जरूरत के लिए विकास पर खर्च न कर प्रतिष्ठा के लिए सार्वजनिक आय का उपयोग किया जाता है जो कि राष्ट्र को ऋणग्रस्ता की ओर ले जाता है।

(7) **करो की चोरी**– भारतीय कर प्रणाली में प्रभावोंत्पादकता तथा कार्य कुशलता में कमी होने के कारण करों की चोरी की अधिकता रहती हैं। करों में चोरी के करण कालेधन में वृद्धि हुई हैं । लोग कर चोरी कर कालेधन को बढ़ावा देते है। सरकार को करों के रूप में कम धनराशि प्राप्त हो पाती हैं। इससे विकास आर्थिक विकास कार्यक्रमों तथा पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

7.12 राजकोषीय नीति के दोषों को दूर करने के सुझाव

राजकोषीय नीति का व्यवस्थित प्रयोग अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास को बढ़ाने में सहायक होता हैं । राजकोषीय नीति को सफल बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं।

(1) **करारोपण से अधिक आय की प्राप्ति**–राज्य सरकारों को करारोपण से अधिक आय प्राप्त करने के प्रयास करने चाहिए, जिससे विकास कार्यो के लिए अधिक पूँजी उपलब्ध हो जाय । सरकार को कृर्षि आय पर कर लगाने की दिशा में विचार किया जाना चाहिए। कृषि आय में कर लगाने से सरकारी आय में वृद्धि होगी तथा गैर कृषि क्षेत्रों से समानता में वृद्धि होगी। विलासता तथा गैर उत्पादक चीजों में कर की दर को बढ़ाया जाना चाहिए।

(2) **राजस्व घाटे को कम करना**–सरकार को राजस्व घाटे को कम करने के लिए कार्य करना चाहिए। करो की दरों तथा करो के स्तर में परिवर्तन कर आय में बढोतरी करने के प्रयास करने चाहिए।

(3) **सामाजिक सेवाओं तथा कल्याण कार्यो में व्यय**–सरकार को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों तथा विकास कार्यो में सार्वजनिक खर्च की मात्रा को बढ़ाया जाना चाहिए। सरकार को शिक्षा, स्वास्थय, पेयजल, बिजली, जैसी मूलभूत सुविधाओं में अधिक व्यय किया जाना चाहिए जिससे लोगों के रहन–सहन के स्तर में वृद्धि होगी। जिसका लाभ प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सरकार को ही होगा।

(4) **सार्वजनिक उद्योगों की कार्य कुशलता में वृद्धि**– सार्वजनिक उद्योगो को अपना स्तर सुधारने तथा विकास के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सार्वजनिक उद्योगों की कार्य कुशलता बढ़ाकर उनके लाभों को बढ़ाया जा सकता है। सार्वजनिक उद्योग से प्राप्त लाभ को अन्य विकास कार्यक्रमों में लगाकर अर्थयवस्था में विकास के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।

(5) **बचत तथा पूँजीनिर्माण**– राजकोषीय नीति द्वारा बचत तथा पूँजी निवेश को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। जिससे अर्थव्यवस्थाओं में सभी को रोजगार तथा पूँजी की उपलब्धता बनी रहेगी।

(6) **विदेशी ऋणों की निर्भरता में कमी**– राजकोषीय नीति के द्वारा विदेशी ऋणों के निर्भरता में कमी के प्रयास भी किये जाने चाहिए। हमारे व्यय का 25 प्रतिशत भाग विदेशी ऋणों ब्याज को चुकाने में ही निकल जाता हैं। इन विदेशी ऋणों के कारण कई बार देश को अहितकारी फैसले भी लेने पड़ते है।

(7) **कर नियम तथा सरंचना में परिवर्तन**– सरकार ने करों के सम्बन्ध में नियमों में बदलाव करने चाहिए तथा करों की संरचना को इस तरह बढ़ाया जाय जिसमें अधिकतम लोगों को उसके दायरे में लिया जा सके। देश के कुछ प्रतिशत लोग ही कर देते हैं। सरकार को कर के रूप में काफी धनराशि प्राप्त हो सकती है। लेकिन कर संरचना तथा नियम के कारण अधिकतर लोग कर देने से बच जाते है।

कुछ अन्य सुझाव निम्न है

(1) कर नीति स्थायित्व पूर्ण होनी चाहिए।
(2) करों के सग्रंहण तथा बटँवारे के लिए केन्द्र तथा राज्यों के बीच समन्वय होना चाहिए।
(3) करारोपण में समता के सिद्धान्त का ध्यान रखना चाहिए।
(4) करों के कारण सापेक्ष कीमतों में अनपेक्षित परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
(5) राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति में सन्तुलन द्वारा नये अवसरों का सृजन करना।
(6) जनकल्याण तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को ध्यान में रखकर राजकोषीय नीति को प्रभावी बनाना।

7.13 सारांश

आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए राजकोषीय नीति का भी अपना महत्वपूर्ण योगदान हैं। इसके माध्यम से अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास एंव स्थायित्व के उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं। वर्तमान में राजकोषीय नीति का महत्व बढ़ता ही जा रहा हैं। राजकोषीय नीति का सम्बन्ध राजस्व से हैं। सरकार राजकोषीय नीति के द्वारा सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक ऋण का उपयोग करके राष्ट्रीय आय उत्पादन तथा रोजगार पर वांछनीय प्रभाव डालने की कोशिश करती हैं। जिससे उस पर पड़ने वाले आवंछनीय प्रभावों को रोका जा सकें और राजकोषीय नीति की सहायता से अर्थव्यवस्था में इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकारी आय तथा व्यय को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता हैं। जिससे समान माँग तथा वस्तुओं और सेंवाओं के उत्पादन में सतुंलन स्थापित किया जा सके। वर्तमान में आर्थिक विकास, आर्थिक स्थिरता पूर्ण रोजगार, संसाधनों की गतिशीलता एंव सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए राजकोषीय नीति को उपयुक्त माना जाता हैं।

7.14 शब्दावली

राजकोषीय नीति– राजकोषीय नीति वह नीति हैं जिसमें सरकार अपने आय, व्यय, और ऋण व्यवस्था आदि का उपयोग आर्थिक विकास, आर्थिक समानता, तथा पूर्ण रोजगार प्राप्त करने के लिए करती हैं।

बजट– सरकार की अनुमानित आय व्यय का एक वर्ष का अनुमान बजट कहलाता है।

कालाधन– कर योग्य आय जिस पर कर का भुगतान नहीं किया जाता है, काला धन कहलाता है।

घाटे की वित्त व्यवस्था– घाटे की वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार अतिरिक्त करेन्सी नोट छापकर वित्तीय संसाधन जुटाती हैं और देश में मुद्रा की आपूर्ति बढ़ती है।

बचत– राष्ट्रीय आय का जो भाग उपभोग वस्तुओं पर व्यय नहीं किया जाता उसे बचत कहते हैं।

7.15 बोध प्रश्न

(अ) बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य :–

6. राजकोषीय नीति बजट नीति है जिसका संचालन वित्तमंत्रालय द्वारा किया जाता है।
7. राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकार प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करती है।
8. बजट नीति क्षेत्रीय आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए पर्याप्त है।
9. विकासशील अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति का प्रमुख उद्देश्य पूंजी निर्माण की उच्चतम सम्भव दर को बढ़ाना है।
10. राजकोषीय नीति घन की वितरण की असमानता को दूर नहीं करती है।

(ब) रिक्त स्थान की पूर्ति करियेः–

4. अर्द्धविकसित देशों में राजकोषीय नीति का ..... उद्देश्य है।
5. राजकोषीय नीति के अतिरिक्त साधनों को ..... द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।
6. विकासशील देश पूंजी की कमी के आधार पर ..... में फँसे होते है।

7.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)– 1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य. 5. असत्य

(ब)– (1.) आर्थिक विकास, आर्थिक असमानता को दूर करना, पूर्ण रोजगार।
(2.) घाटे की वित्त व्यवस्था, सार्वजनिक ऋण, करारोपण द्वारा।
(3) निर्धनता के दुष्चक्र।

7.17 स्वपरख प्रश्न

1. राजकोषीय नीति का क्या अर्थ हैं इसकी प्रमुख विशेषताएं बताइये।
2. राजकोषीय नीति के क्या उद्देश्य हैं?
3. भारत सरकार की राजकोषीय नीति को विस्तार से समझाइये।
4. राजकोषीय तथा मौद्रिक नीति में परस्पर सम्बन्धों को समझाइये।
5. राजकोषीय नीति के दोष बताइये तथा इन्हें दूर करने के सुझाव दीजिए।

6. राजकोषीय नीति के कार्य बताइये तथा राजकोषीय नीति के साधनों को स्पष्ट कीजिए।

7.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्व्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई 8 औद्योगिक नीति एवं औद्योगिक लाइसेन्सिंग (Industrial Policy and Licensing)

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 औद्योगिक नीति का अर्थ
8.3 औद्योगिक नीति की आवश्यकता, उद्देश्य एंव महत्व
8.4 स्वतंत्रता से पूर्व भारत की औद्योगिक नीति
8.5 स्वतंत्रता के पश्चात भारत की औद्योगिक नीति
8.6 सन् 1948 की औद्योगिक नीति
8.7 सन्1956 की औद्योगिक नीति
8.8 सन् 1977 की जनता सरकार की औद्योगिक नीति
8.9 सन् 1980 की औद्योगिक नीति
8.10 सन् 1991 की औद्योगिक नीति
8.11 औद्योगिक नीति का महत्व
8.12 नवीन औद्योगिक नीति के गुण
8.13 नवीन औद्योगिक नीति की कमियाँ
8.14 औद्योगिक लाइसेन्स नीति
8.15 उद्योग (विकास एवं नियमन अधिनियम) –1951
8.16 एकाधिकार एवं प्रतिबन्धत्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम –1969
8.17 भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग –2009
8.18 वर्तमान औद्योगिक लाइसेंस नीति
8.19 मेक इन इंडिया कार्यक्रम
8.20 साराश
8.21 शब्दावली
8.22 बोध प्रश्न
8.23 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.24 स्वपरख प्रश्न
8.25 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- औद्योगिक नीति के अर्थ का वर्णन कर सके।
- औद्योगिक नीति की आवश्यकता, उद्देश्य तथा महत्व को स्पष्ट कर सके।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की औद्योगिक नीति के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- स्वतंत्रता के पश्चात् की सभी औद्योगिक नीतियों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- औद्योगिक लाइसेंसिग की नीति और उद्देश्य को स्पष्ट कर सकें।
- एम० आर० टी० पी० के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकें।

- वर्तमान औद्योगिक लाइसेंसिग नीति के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

औद्योगिकीकरण हेतु प्रस्तुत की गयी सुविचारित और उपयुक्त व्यूह रचना औद्योगिक विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करती हैं। औद्योगिक नीति में उद्योगो के ढांचे को निर्धारित करने के लिए कुछ नियम व सिद्धान्त होते हैं। औद्योगिक नीति के निर्धारण में देश की आर्थिक संरचना, प्राकृतिक संसाधन, समाज व्यवस्था और निवेशकों की सलाह का भी ध्यान रखा जाता हैं। किसी भी अर्थव्यस्था के विकास में उद्योग धन्धो का महत्वपूर्ण योगदान होता है। विकाशील तथा अल्पविकसित देशों के लिए तो यह निरन्तर आवश्यक हो जाता है कि वह औद्योगिकीरण को तीव्र करे। यहाँ विकास की गति तीव्र करने और एक आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाने के लिए औद्योगिकीकरण आवश्यक हैं। औद्योगिक नीति सरकार द्वारा बनायी जाने वाली नीति हैं जिसमें वह उद्योगों के प्रति अपनायी जाने वाली नीतियों के बारे में बताया जाता है। इसमें सरकार उद्देश्य लक्ष्य तथा नियम तय करती है जो कि औद्योगिक विकास को गति प्रदान करते हैं सरकार को औद्योगिकीकरण के लिए दिशा तथा दर्शन और उसके नियमन तथा तीव्र विकास के लिए एक मजबूत औद्योगिक नीति आवश्यक होती है जो देश में एक मजबूत औद्योगिक ढाचा तैयार कर औद्योगिक क्षेत्र को स्वालम्बी तथा समृद्ध बनाने में सहायक हो। इसलिए सरकार की औद्योगिक नीति स्पष्ट और मार्गदर्शक होनी चाहिए। क्योंकि औद्योगिक नियम बनाने के साथ ही उसके नियंत्रण की आवश्यकता होती हैं। जिसे लाइसेंसिग व्यवस्था द्वारा पूरा किया जाता हैं।

8.2 औद्योगिक नीति का अर्थ

औद्योगिक नीति से तात्पर्य देश के औद्योगीकरण हेतु प्रस्तुत की गयी स्पष्ट तथा सुव्यवस्थित व्यूह रचना से हैं जो देश के भावी औद्योगिक विकास के स्वरूप की रूपरेखा प्रस्तुत करता हैं तथा उस स्वरूप की स्थापना करने के लिए आवश्यक दिशा निर्देश भी प्रस्तुत किये जाते हैं। औद्योगिक नीति के मुख्यताः दो भाग होते हैं प्रथम सरकार की विचारधारा जो औद्योगिकीकरण का स्वरूप निश्चित करती है, द्वितीय इसको कार्यावित करने वाले नियम तथा सिद्धांत जो इस नीति की विचारधारा को निर्वाचित स्वरूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार औद्योगिक नीति उद्योगो की स्थापना और उसकी कार्यप्रणाली के लिए ढाँचा तथा मार्ग दर्शन प्रदान करती है। अर्थव्यवस्था में सम्मलित आर्थिक विकास के लक्ष्यों को करने के लिए औद्योगिकीकरण जितना आवश्यक होता हैं। औद्योगिकीकरण एक उपयुक्त औद्योगिक नीति के सृजन और क्रियान्वयन पर निर्भर करता हैं। आर्थिक शक्ति का संकेन्दण न हो इसके लिए उद्योगो के नियमन एंव नियत्रण की आवश्यकता होती हैं।

8.3 औद्योगिक नीति की आवश्यकता, उद्देश्य, महत्व (Need,abjectives and Importance of Industrial policy)

औद्योगिक नीति की आवश्यकता, उद्देश्य, महत्व निम्नलिखित हैं।

उद्योगो का कम विकास– भारत में उद्योगों का विकास बहुत कम हुआ था। देश के बड़े उद्योग उपभोग वस्तुओ का ही निर्माण करते थे जिसमें कपड़ा, चीनी, माचिस उद्योग, मुख्य थे। भारी उद्योगों में मशीनरी, पेट्रोलियम, लोह इस्पात आदि

बहुत ही कम उद्योग थे। इसलिए उद्योगों के विकास के लिए औद्योगिक नीति की आवश्यकता महसूस की गयी।

प्राकृतिक साधन– देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनो का समुचित रूप से व्यवस्थित विदोहन के लिए औद्योगिक नीति सहायक होगी। इससे अर्थव्यवस्था में तेजी से विकास द्वारा राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की जा सकती है।

आधुनिकीकरण– देश में औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए तथा नवीन तकनीकी की माध्यम से ज्यादा उत्पादन करने को प्राथमिकता देने के लिए औद्योगिक नीति की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। आधुनिक तथा नवीन तकनीकी के माध्यम से उत्तम क्यालिटी का उत्पाद अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है।

संतुलित क्षेत्रीय विकास– देश में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का संतुलित विकास करने के लिए औद्योगिक नीति की आवश्यकता थी जो कि अर्थव्यवस्था में सभी क्षेत्रो के संतुलित विकास के साथ–साथ क्षेत्रीय असमानता को भी कम करने में सहायक सिद्ध होगी। देश के पिछड़े हुए क्षेत्रो में औद्योगिक विकास द्वारा उनका तीव्र विकास किया जा सकता है जिसमें क्षेत्रीय असमानता भी कम होगी।

औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार– औद्योगिक सम्बन्धो में सुधार के लिए श्रम तथा पूँजी के मध्य एक बेहतर समन्वय होना आवश्यक है। यदि श्रम तथा पूँजी के मध्य बेहतर सम्बन्ध होगे तो इस से लाभदायकता में वृद्धि होती है। तथा श्रम का उद्योग के प्रति विश्वास उत्पन्न होता है तथा वह ज्यादा कार्य करने के लिए प्रेरित होते हैं। इसलिए श्रम का पूँजी के मध्य बेहतर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मजबूत औद्योगिक नीति की आवश्यकता पड़ती है।

औद्योगिक विकास– औद्योगिक नीति के माध्यम से औद्योगिक मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर कर बेहतर औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास की आवश्यकता पड़ती है। औद्योगिक नीति उद्योगों के संतुलित विकास का मार्ग बतलाती है।

वृहद तथा लघु एवं कुटीर उद्योंगो का विकास– औद्योगिक नीति एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए नियम तथा उपनयम बनाकर इनके समन्वित विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। इसके माध्यम से वृहद तथा लघु एवं कुटीर उद्योग परस्पर प्रतिस्पर्धी न बनकर एक इससे के सहयोगी बनाये जा सकते है।

सन्तुलित आर्थिक विकास– स्वतंत्रता के पश्चात देश में औद्योगिक ढाँचे को मजबूत कर सभी क्षेत्रों के सन्तुलित विकास को प्राथमिकता दी गयी थी। इसके लिए एक सशक्त औद्योगिक नीति की आवश्यकता महसूस की गयी।

उत्पादन क्षमता का विकास– देश में गरीबी तथा निर्धनता के कारण लोगों की आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं थी जो उत्पादक इकाईयों थी वह भी इतनी सशक्त नहीं थी कि वृहद पैमाने पर उत्पादन कर लोगों की जरूरतों को पूरा कर सके। इसके लिए औद्योगिक नीति के मध्यम से देश में उत्पादन तथा विकास का माहौल बनाने की भी आवश्यकता थी।

8.4 स्वतंत्रता प्राति से पूर्व भारत की औद्योगिक नीति (**Industrial policy of India before Independence**)

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण में उद्योगो का विकास हुआ। किन्तु ब्रिटिश सरकार की उद्योग नीति भारतीय उद्योग के प्रति उपेक्षा से ग्रसित थी। ईस्ट इंडिया कम्पीन ने भारत में औद्योगिक विकास के साथ व्यापार की शुरूआत की। लेकिन ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारतीय औद्योगिक इकाईयों को फलने–फूलने का मौका ही नहीं दिया वह यहाँ पर सिर्फ कच्चे माल का विदोहन ही करवाती थी और उसे इंग्लैंड में भेजने का कार्य करती थी । वहाँ से वही माल तैयार होकर भारत में लोगां को बेच दिया जाता था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय भारत में औद्योगिक विकास में कोई बड़ी उपलब्धि या प्रगति नहीं हुई। हमारे मानवीय तथा प्राकृतिक साधनों का उपयोग वह अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए करते रही भारतीयों के उत्थान से उन्हें कोई सरोकार नहीं था।

ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इंडिया कम्पनी से प्राथमिक कार्य अपने हाथ में ले लिये थे, और प्रथम विश्व युद्ध के समय उत्पादन बनाने का प्रयास किया । इसी समय 1916 में भारत में औद्योगिक आयोग की नियुक्ति की गयी । 1917 में इण्डियन एम्युनिशन बोर्ड की स्थापना की गयी । 1919 में उद्योग को प्रांतीय विषय बना दिया गया। सन् 1921 में प्रस्तुत आयोग की स्थापना की गयी। आयोग की सिफारिश के आधार पर भारतीय उद्योगों के लिए विभेदात्मक संरक्षण नीति बनायी गयी। इसमें कुछ चुने हुए उद्योगो को ही प्रोत्साहन दिया गया।

8.5 स्वतंत्रता प्राप्त के पश्चात भारत की औद्योगिक नीति (Industrial policy of India After Independence)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात (15 अगस्त, 1947) भारतीय जनता में नयी आशायें तथा विश्वास का जन्म हुआ। लेकिन हमारा औद्योगिक ढाँचा बहुत कमजोर था और जो कुछ थोड़ा बहुत उपयोग उद्योग थे वह पूँजी की कमी, औद्योगिक अशान्ति, कच्चे माल की कमी जैसी अमस्याओं से ग्रसित थी। सरकार ने औद्योगिक वातावरण की अनिश्चितता को समाप्त करने के लिए दिसम्बर 1947 में औद्योगिक सम्मेलन आयोजित किया इस सम्मेलन में देश के लिए मिाश्रित अर्थव्यवस्था की संकल्प को स्वीकार किया गया। इसमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों दोनो को ही मान्यता दी गयी। स्वतुत्रता प्राप्ति के प्श्चात अब तक 6 बार औद्योगिक नीतियों की घोषण की जा चुकी है। जिसमें प्रथम औद्योगिक नीति 1948 है।

8.6 सन् 1948 की औद्योगिक नीति (Industrial poliay of 1948)

6 अप्रैल 1948 को भारतीय संसद में स्वर्गीय डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव रखा। इस औद्योगिक नीति का आधार मिश्रित अर्थव्यस्था रखा गया जिसमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनो को औद्योगिक विकास का आधार माना गया।

औद्योगिक नीति के मुख्य उद्देश्य–सन् 1948 की औद्योगिक नीति के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं।

1) समन्वित आर्थिक विकास के लिए नियोजन।
2) सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रो को अवसर।
3) निजी उपक्रमो का नियमन एवं नियंत्रण।
4) रोजगार के अवसरों में वृद्धि।

5) संसाधनों का उचित विदोहन।
6) कुषि तथा उद्योग दोनो क्षेत्रो को बढ़ावा।
7) सभी लोगो को न्याय और अवसर की समानता प्रदान करने के लिए सामाजिक ढांचे की स्थापना करना।

1948 की औद्योगिक नीति ने उद्योगो को निम्नलिखित चार वर्गो में विभाजित किया गया।

प्रथम वर्ग में तीन उद्योगों को सम्मिलित किया गया । इन उद्योगो का पूर्णतः स्वामित्व एवं नियंत्रण सरकार के पास रखा गया। इसमें अस्त्र शास्त्र उद्योग, रेल उद्योग तथा परमाणु शक्ति उद्योग हैं।

द्वितीय वर्ग में (6) छः आधारभूत उद्योग रखे गये । इन उद्योगो का स्वामित्व तथा नियंत्रण भी सरकार ने अपने पास रखा तथा नयी इकाईयों की शुरूआत करने का अधिकार भी सरकार के पास ही था। इस वर्ग में कोयला, उद्योग, लोहा तथा इस्पात उद्योग, वायुयान निर्माण उद्योग, जलयान निर्माण उद्योग, टेलीफोन व बेतार उपकरण उद्योग तथा खनिज तेल उद्योग मुख्य है। इस क्षेत्र में जो निजी इकाईयों पूर्व में कार्य कर रही थी उन्हें कार्य करते रहने की अनुमति दी गयी और सरकार ने स्पष्ट किया कि उनके उत्पाद का मूल्याकंन 10 वर्ष बाद किया जायेगा फिर उनके राष्ट्रीयकरण पर विचार किया जायेगा।

तृतीय वर्ग में (16) सोलह उद्योग रखे गये इसमें नमक उद्योग कार व ट्रैक्टर उद्योग, इलैक्ट्रानिक व इंजीनियरिंग उद्योग, कागज उद्योग, मशीन औजार उद्योग, अलौह धातु उद्योग मुख्य हैं। इन उद्योगों को निजी क्षेत्र में संचालित करने की अनुमति दी गयी तथा सरकार ने अपने पास इनके नियमन तथा नियंत्रण का अधिकार रखा।

चर्तुथ वर्ग में शेष सभी उद्योगो को रखा गया । इस क्षेत्र में उद्योगो के संचालन, रख–रखाव तथा नियंत्रण का अधिकार निजी क्षेत्र को दिया गया लेकिन सरकार ने इन पर हस्तक्षेप का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा।

विदेशी पूँजी की सहायता– देश की औद्योगिक नीति में तीव्र गति से विकास के लिए विदेशी पूँजी की उपलब्धता को आवश्यक माना गया हैं। विदेशी पूँजी के साथ–साथ भारतीय विशेषज्ञों को विदेशी विशेषज्ञों के समान ही प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी । जिससे योग्य भारतीय विशेषज्ञ विदेशी विशेषज्ञों के स्थान पर कार्य कर सकें। जिससे भारतीय उद्योगों में विशेषज्ञों की सेवायें निरन्तर बनी रहें और औद्योगिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

लघु एवं कुटीर उद्योग (Cottage and Small Industries) – सरकार ने औद्योगिक नीति में लघु एवं कुटीर उद्योग की महत्ता को समझते हुए इनको आर्थिक विकास के लिए आवश्यक मानते हुए इनके अस्तिव को बनाये रखने के लिए आवश्यक दिशा निर्देश बनाये। वृहद उद्योगो के साथ–साथ लघु एवं कुटीर उद्योगो के विकास को प्रोत्साहन दिया गया तथा इन उद्योगो को वित्तीय सहायता देने के लिए भी प्रावधान किये गये। सरकार इनके विकास के लिए इनके समस्त दायित्व भी लेने को तैयार रही। सन् 1948 की औद्योगिक नीति जो कि मिश्रित अर्थव्यवस्था को मुख्य आधार मानते हुए बनायी गयी थी। जिसमें सार्वजनिक तथा निजी दोनो क्षेत्रों को सम्मिलित कर अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने की सोच के साथ शुरू किया गया था। लेकिन समय के साथ–साथ इसके भी

विरोध में लोगो ने अपनी आवाजें उठाई। मुख्य विरोध उद्योगो की कार्यप्रणाली की जाँच कर 10 वर्ष के बाद राष्ट्रीकरण करने की नीति का था। राष्ट्रीकरण का भय पूँजीपतियों को नये उद्योग लगाने को हतोत्साहित करने लगा।

8.7 सन् 1956 की औद्योगिक नीति (Industrial Policy of 1956)

औद्योगिक नीति 1956 के समय के साथ–साथ 1948 की औद्योगिक नीति में परिवर्तन की जरूरत महसूस की जाने लगी। समाजवादी समाज के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए 30 अप्रैल 1956 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने दूसरी औद्योगिक नीति का प्रसताव संसद में रखा। इस नीति के मुख्य उद्देश्य निम्न है।

1) औद्योगिकीकरण द्वारा तीव्र आर्थिक विकास।
2) समाजवादी समाज की स्थापना।
3) भारी निर्माण उद्योगो की विकास।
4) आय का सम्पति की असमानता को कम करना।
5) ग्रामीण तथा लघु उद्योगो को प्रोत्साहन।
6) निजी एकाधिकार तथा केन्द्रीकरण को हतोसाहित करना।
7) सार्वजनिक क्षेत्रो का विकास तथा विस्तार।

सरकार ने 1956 की औद्योगिक नीति में उद्योगो को पुनः विभाजित किया। इसमें सार्वजनिक क्षेत्रो के विस्तार को बढ़ावा दिया गया। उसमें भी सरकार ने उद्योगों को तीन वर्गो में विभाजित किया और साथ ही उद्योगो के राष्ट्रीयकरण का अधिकार भी अपने पास सुरक्षित रखा। इसमें सरकार ने निम्न तीन क्षेत्र बनाये।

1) **सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग**– सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो में 17 उद्योगो को सम्मिलित किया गया। इसका प्रबन्ध तथा संचालन सरकार ने अपने हाथ में रखा। इस वर्ग में अस्त्र शास्त्र, परमाणु शक्ति, लोहा, इस्पात, वायु तथा रेल परिवहन विद्युत उपकरण आदि सम्मिलित किये गये।

2) **मिश्रित क्षेत्र के उद्योग**– मिश्रित वर्ग के उद्योगो के 12 उद्योगो को सम्मिलित किया गया। उसमें सरकार ने यह व्यवस्था रखी कि इस वर्ग में सम्मिलित उद्योगो की स्थापना सरकार द्वारा तय की जायेगी और निजी क्षेत्र में उद्योग को लगाने में सरकार को सहायता करेगे। इस वर्ग में लौह मिश्रित धातु उद्योग, उर्वरक, सड़क तथा जल परिवहन, किटाणुनाशक दवा, रसायन उद्योग को सम्मिलित किया गया।

3) **निजी क्षेत्र के उद्योग**– शेष सभी उद्योगो को निजी क्षेत्र में रखा गया निजी उद्यमी इन उद्योगो का निर्माण संचालन तथा नियंत्रण स्वयं कर सकेगे यह व्यवस्था की गयी 1956 की औद्योगिक नीति में सरकार ने यह व्यवस्था रखी कि वह नियोजित विकास की आवश्यकता के अनुरूप किसी भी क्षेत्र के उद्योगो में हस्तक्षेप कर सकती है और निजी उद्यमियों के लिए नये उद्योगों की स्थापना के लिए अवसर प्रदान कर सकती है।

4) **लघु एवं कुटीर उद्योग**– सरकार ने लघु एवं कुटीर उद्योगो से समाज को होने वाले लाभो को समझ लिया था जिसमें मुख्यतः रोजगार, धन तथा सम्पत्ति का समान वितरण तथा प्राकृतिक संसाधनो का उचित विदोहन है। इनमें समाज

सामाजिक असमानता में भी कमी आती है। इसलिए सरकार ने लघु एवं कुटीर उद्योग को संरक्षण देने में विचार किया।

5) **विदेशी पूँजी**– औद्योगिक नीति में विदेशी पूँजी की महता को स्वीाकर करते हुए औद्योगिकीकरण में विदेशी पूँजी को महत्व दिया गया। इसमें भी विदेशी पूँजी के भारतीयकरण तथा भारतीय विशेषज्ञों के विकास के लिए भी नियम बनाये गये।

6) **पिछड़े क्षेत्रों का विकास**– इस नीति में सरकार ने सभी क्षेत्रो के सुसजित विकास को स्वीकार किया तथा पिछड़े क्षेत्रो में औद्योगिकीकरण के लिए नियम बनाये तथा इन क्षेत्रों में उद्योगपति उद्योग लगा सके । इसके लिए मूलभूत सुविधाओं जैसे बिजली, पानी, सड़क आदि की व्यवस्था के प्रावधान किये गये।

7) **निजी क्षेत्रो पर नियंत्रण**– सरकार निजी क्षेत्र के विकास के लिए नियम बनाने के साथ सुविधाएं भी प्रदान करती है। लेकिन इसके साथ ही निजी क्षेत्र के उत्पादकता तथा उसके कार्यकलापों पर भी सरकार पूर्ण नियंत्रण करती हैं।

8) **आधुनिक तकनीक**– इस औद्योगिक नीति में सरकार ने वृहद तथा लघु उद्योगो के लिए तकनीकी सुविधाओं का विकास पर जोर दिया । इसके लिए भी तकनीकी लैव तक अनुसंधान के लिए अलग से व्यवस्था की गयी । साथ ही इंजीनयरिंग शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, प्रबन्धशिक्षा के प्रशिक्षण को महत्व दिया गया।

9) **श्रम सम्बन्धो का निर्धारण**– उद्योगो में औद्योगिक अशन्ति न हो तथा हड़ताल व तालाबन्दी की स्थिति न बन पाये इसके लिए भी नियम बनाये गये और श्रमिको की प्रबन्ध में भागीदारी को सुनिश्चित करने की व्यवस्था की गयी।

1956 की औद्योगिक नीति में प्रथम औद्योगिक नीति की बहुत सी कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया । लेकिन इस नीति में भी औद्योगिक विकास के साथ ही कुछ कमियाँ भी उजागार हुई। इसमें सिर्फ बड़े तथा भारी उद्योगो को ही प्राथमिकता दी गयी। लघु और कुटीर उद्योगो की तरह ध्यान नही दिया गया जो कि रोजगार तथा समाजिक असमानता को कम करने में कारगार सिद्ध हो सकते है। लेकिन फिर भी 1956 की औद्योगिक नीति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हुई है।

8.8 सन् 1977 जनता सरकार की औद्योगिक नीति (Janta Government Industrial Policy)

मार्च 1977 में जनता सरकार के सत्ता में आने के बाद सरकार ने अपने चुनावी घोषण पत्र में किये गये वादो को पूरा करने के लिए भी औद्योगिक नीति की घोषणा 23 दिसम्बर को तात्कालीन उद्योग मंत्री जार्ज फर्नाडिंस ने की। जनता सरकार भी 1956 की औद्योगिक नीति की समर्थक थी लेकिन 1956 की औद्यागिक नीति से कुछ बड़े उद्योगपति ही लाभान्वित हो पाये। इसमें समाज में आर्थिक असमानता में ही वृद्धि हुई । जनता सरकार के आने के बाद वृहद तथा लघु उद्योग, कृर्षि उद्योग तथा औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी।

1977 की औद्योगिक नीति की प्रमुख उद्देश्य निम्न है।

1) लघु एवं कुटीर उद्योगो का विकास।

2) मानवीय तथा भौतिक साधनो का विकास।

3) रोजगार प्रधान उद्योगो का विकास।
4) अधिकतम उत्पादन।
5) केन्द्रीकरण तथा एकाधिकारी प्रवृति पर रोक।
6) औद्योगिक विकास।

जनता सरकार की 1977 को घोषित औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं।

एकाधिकार पर नियंत्रण– सरकार ने औद्योगिक नीति में सामाजिक तथा आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वृहत उद्योगो का नियमन तथा लाइसेंसिग नीति को लागू किया। इन उद्योगो की स्थापना में एकाधिकार तथा प्रतिबन्धित व्यापार कानून के दायरे में लाया गया।

लघु तथा कुटीर उद्यागों के लिए तकनीकी का विकास– सरकार ने लघु तथा कुटीर उद्योगो की उत्पादकता तथा अर्जन क्षमता बढ़ाने के लिए छोटी तथा साधारण तरीके विकसित करेने का प्रस्ताव किया गया, तथा साथ ही इनके सर्वाजनिक विकास के लिए उन्नत तकनीकी विकसित करने का निश्चय किया गया।

वृहद उद्योगो के लिए नीति– सरकार ने औद्योगिक नीति में बडे पैमाने के उद्योगों को परिमार्जित कौशल के रूप में विदेशी तकनीकी संस्था के रूप में प्रदर्शित न कर जनसत्ता के लिए मूलभूत आवश्यकताओं के प्रोग्राम के रूप में जोड़ा गया जिससे बड़े उद्योग अपने आपको कुटीर तथा लघु उद्योगो के साथ सामंजस्य बैठाकर अर्थव्यवस्था को मजबूत कर सके।

औद्योगिक विकेन्द्रीकरण– सरकार ने औद्योगिक नीति में विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाते हुए यह नियम बनाये कि 10 लाख जनसंख्या वाले महानगारों तथा 5 लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना नहीं की जा सकती है। कम जनसंख्या वाले शहरों में इकाईयों की स्थापना की जा सकती है।

विदेशी पूँजी तथा तकनीक– सरकार विदेशी पूँजी तथा तकनीकी के मामले यह नीति अपनायी गयी है कि विदेशी पूँजी तथा तकनीक पर ज्यादा धनराशि लम्बे समय तक खर्च न की जाय बल्कि अपने संसाधनों का ही प्रयोग किया जाय । विदेशी तकनीक को एक बार में एकमुश्त खरीद लिया जाए इसने बार–बार धन राशि खर्च न की जाय।

सार्वजनिक क्षेत्र– सरकार ने औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार पर ध्यान दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के ऊपर जनकल्याण के तहत प्रभावोत्पादक उत्पादन पर जोर दिया गया तथा विभिन्न आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति में संतुलन स्थापित करने के लिए पहल की गयी। सन् 1977 की औद्योगिक नीति में बड़े उद्योगो की अपेक्षा छोटे उद्योगो को महत्व दिया गया। इस नीति के माध्यम से एकाधिकर पूँजी की वृद्धि को रोकने के उपाय किये गये। श्रम संबन्धो का सामंजस्य तथा उचित प्रबन्ध द्वारा श्रमिकों का सहयोग लेना तथा नीति निर्माण व निर्णय में उन्हें प्रबन्ध में भागीदार बनाकर उन्हें उद्योग में मालिक बनाना आदि मुख्य है। सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए क्षेत्रो में तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कृर्षि आधारित उद्योग को महत्व दिया गया।

8.9 औद्योगिक नीति 1980 (Industrial Policy 1980)

जनवरी 1980 में सरकार के परिवर्तन के पश्चात कांग्रेस सरकार के अपनी नयी औद्योगिक नीति घोषण की सरकार ने 1956 की औद्योगिक नीति को आधार मानते हुए लघु एवं कुटीर उद्योग तथा वृहद उद्योगो के विकास के लिए अनेक रियायतों की घोषण करी । सरकार ने औद्योगिक नीति में आधुनिकीकरण, विस्तार तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर मुख्य फोक्स किया। छोटे उद्योगो में निवेश की सीमा को दोगुना कर दिया गया । सरकारी क्षेत्र के उद्योगो को उनकी क्षमता बढ़ाने तथा उत्पादन के प्रति जनता में विश्वास जगाने के लिए प्रेरित किया गया। उन उद्योगो के लिए भी नीति बनायी गयीा जो कि घाटे में चल रही थी उनके पुर्नउत्थान के लिए सरकार ने इन इकाइयों के विलय उन इकाइयों के साथ करना सुनिश्चित किया है। जिनकी प्रबन्ध क्षमता ऐसी है जो बीमार इकाइयों का प्रबन्ध व्यस्थित ढंग से कर सके।

8.10 औद्योगिक नीति 1991 (Industrial Policy 1991)

24 जुलाई 19191 को श्री नरसिम्हा राव के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार ने अपनी नई औद्योगिक नीति की घोषणा की। यह औद्योगिक नीति भारतीय अर्थव्यवस्था को नौकरशाही के अनावश्यक नियंत्रण से मुक्त करने वाली रही । इसमें भारतीय अर्थव्यवस्था को उदारीकरण के राह पर ले जाना था जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था का एकीकरण विश्व अर्थव्यवस्था के साथ किया जा सके। यह औद्योगिक नीति अर्थव्यवस्था को उदार तथा मुक्त अर्थव्यवस्था की ओर अगसर करने वाली रही। इस नीति में ही भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए खुली नीति का प्रारम्भ किया गया । इस नीति में अर्थव्यवस्था को अनावश्यक नियंत्रणो से मुक्त करना, सार्वजनिक क्षेत्र को प्रतिस्पर्धी बनाना, विदेशी सहयोग बढ़ाने रोजगार के अवसर बढ़ाने आदि पर विशेष जोर दिया गया है। इस नीति में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर लगे प्रतिबन्धों को हटाना तथा निजी उद्यमकत्राओं को एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार कानून द्वारा लगायी गयी रूकावटों से मुक्त करना था।

उद्देश्य–

(1) औद्योगिक लाइसंसिग प्रणाली को सरल बनाना।
(2) विदेशी सहयोग को बढ़ावा देना।
(3) देश की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में वृद्धि करना।
(4) अर्थव्यवस्था में खुलापन लाना।
(5) औद्योगिक विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करना।
(6) पिछड़े क्षेत्रों का औद्योगिक विकास।
(7) प्राकृतिक संसाधनों का उचित विदोहन करना।
(8) विदेशी विनियोग तथा प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना।
(9) निजी क्षेत्र के विकास हेतु वातावरण का निर्माण।
(10) आर्थिक विकास के लिए शोध तथा अनुसंधान को बढ़ावा देना।

1991 की औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताएं (Main Featuresh of Industrial Policy of 1991)–

1991 की औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार है।

सार्वजनिक क्षेत्र के सम्बन्ध में नीति—सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के सम्बन्ध में निम्नलिखित चीज़ों का समावेश किया है।

सार्वजनिक विनियोग— सरकार ने कुछ विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण उद्योगो में ही विनियोग करने की नीति अपनायी है। जिसमें परमाणु ऊर्जा खनन, रेलवे तथा सैनिक साजो सामान मुख्य है । इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्र निजी उद्योगो के लिए छोड़ दिये गये।

रूग्ण इकाईयों का पुर्ननिर्माण— सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र की वह इकाईयों जो घाटे में चल रही है और उनके लाभ कमाने की क्षमता का विकास की सम्भावना कम ही है उनके पुर्ननिर्माण की की योजना बनायी जायेगी। उनका पुननिर्माण औद्योगिक और विनियोग पुर्ननिर्माण बोर्ड के माध्यम से किया जायेगा। इसमें श्रमिकों के हितों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना चलाई जायेगी।

सार्वजनिक उपक्रमों का विक्रय—सरकार ने वित्तीय संसाधन जुटाने के लिए सार्वजनिक उपक्रमों में अपनी हिस्सेदारी को बाजार में बेचने के लिए प्रावधान किया गया है। यह अंश विशिष्ट वित्तीय संसाधनों तथा जनता को बेचे जाने का प्रावधान है।

पेशेवर प्रबन्धकों की सेवायें— सरकार ने औद्योगिक नीति में सार्वजनिक उपक्रमों के विकास के लिए पेशेवर प्रबन्धकों की सेवाये लेने का प्रावधान किया गया है जिसमें सार्वजनिक उपक्रमों को प्रतिस्पर्धी बनाया जा सके।

कामकाज में सुधार— सार्वजनिक उपक्रमों के कामकाज में सुधार लाने के लिए आपसी सहमति समझौते पर जोर दिया गया। प्रबन्धों को उनके कामकाज के लिए जवाबदेह बनाया गया है।

निजी क्षेत्र के सम्बन्ध में नीति—

लाइसेंस व्यवस्था का समापन्न— सरकार ने 5 उद्योग जिनमें शराब, सिगरेट, खतरनाक रसायन, सुरक्षा का सामान तथा औद्योगिक विस्फोटक है, के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य किया है। इसके अतिरिक्त अन्य उद्योगो के लिए लाइसेंस व्यवस्था को समाप्त कर दिया है।

निजी क्षेत्र की भूमिका में वृद्धि— सरकार ने औद्योगिक नीति में निजी क्षेत्रों में बहुत से उद्योगो को लाइसेंस से मुक्त कर निजी क्षेत्र की भूमिका को बढ़ावा दिया है।

लघु उद्योग के सम्बन्ध में नीति— सरकार ने औद्योंगिक नीति में लघु उद्योग को विशेष महत्व देते हुए निम्नलिखित प्रावधान किये है।

(1) **पूँजी सीमा का निर्धारण**— सरकार ने अति लघु उद्योग तथा लघु उद्योग की पूँजी सीमा का निर्धारण कर इन उद्योगों की पहचान निर्धारित कर दी है। इसमें अति लघु उद्योगों में उन उद्योगो को माना गया है जिनमें संयन्त्र तथा मशीनरी सहित 5 लाख रूपया तक का विनियोग हो। लघु उद्योग में विनियोग सीमा 60 लाख रूपया तथा सहायक उद्योगो में 75 लाख रूपया तक निर्धारित की गयी हैं।

(2) **लाइसेंस व्यवस्था**— लघु उद्योगो के लिए लाइसेंस व्यवस्था को पूर्णतः मुक्त कर दिया गया है। लघु उद्योगों को यह छूट दी गयी है कि वह अपनी पूँजी का कुछ प्रतिशत हिस्सा वृहद उद्योगों में लगा सकते है।

(3) **कच्चे माल का आवंटन–** औद्योगिक नीति में लघु उद्योगों के लिए सरकार द्वारा कच्चे माल के आवटंन में प्राथमिकता देने की बात भी की गयी हैं।

(4) **बाजार की व्यवस्था–** सरकार ने औद्योगिक नीति में यह निर्धारित कर दिया है कि लघु उद्योगो द्वारा बनाये गये सामान की बिक्री बढ़ाने के लिए सहकारी समितियों, सार्वजनिक प्रतिष्ठानों तथा अन्य व्यावसायिक एजेन्सियों को यह कार्य सौपा गया।

विदेशी पूँजी विनियोग और तकनीक नीति– उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों जिसमे भारी निवेश तथा तकनीकी की आवश्यकता होती हैं उसमें विदेश निवेश को आमंत्रित किया जाये। इसमें ये यह निर्णय किया गया कि ऐसे उद्योगों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 51 प्रतिशत तक हो सकता है। खनन क्रिया सम्बन्धी उद्योगो में 50 प्रतिशत विदेशी निवेश तथा अन्य उद्योगो में निवेश की सीमा 74 प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया है।

–अप्रवासी भारतीय को भारत में पूँजी निवेश करने के लिए आमंत्रित करने के लिए निर्माण, विद्युत उत्पादन दूर संचार सेवायें जैसे क्षेत्रों को निवेश के लिए खोल दिया गया।

–विदेशी तकनीकी तथा विशेषज्ञों की सेवायें लेने की छूट औद्योगिक नीति में दी गयी है।

–विदेशी उद्यमियों को पूँजी निवेश करने के लिए प्रेरित किया जायेगा। विदेशी निवेश के अनुमोदन के लिए विशेषाधिकार प्राप्त बोर्ड की स्थापना की गयी।

उद्योगों को प्रशासनिक नियंत्रण से मुक्ति– औद्योगिक नीति के आधारित भारतीय अर्थव्यवस्था को अनावश्यक नौकरशाही के नियंत्रण से मुक्त करने की व्यवस्था की गयी है। इसने उद्योगों को प्रशासनिक तथा कानूनी जटिल प्रक्रिया से मुक्ति दिलाकर उद्योगो के विकास की प्रक्रिया को सरल बना दिया हैं । अब कम्पनियाँ को अपने विस्तार तथा फैलाव के लिए पूर्व में अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

एम० आर० टी० पी० एक्ट– नयी औद्योगिक नीति में यह प्रावधान किया गया है कि एम० आर० टी० पी० कानून में संशोधन किया जायेगा ताकि नई कम्पनियाँ स्थापित करने एक कम्पनी का दूसरी कम्पनी में विलय करने, दो कम्पनियों के आपसी मिलान। एक कम्पनी द्वारा दूसरी कम्पनी का खरीदना तथा कम्पनी निर्देशकों की नियुक्ति के लिए केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति की जरूरत नहीं होगी। लेकिन एम० आर० टी० एक्टर के तहत यह अधिकार दिया गया है कि वह एकाधिकार वाली प्रतिबन्धात्मक तथा गैर कानूनी व्यापार गतिविधियों की जाचँ कर सकती है।

श्रमिकों के सम्बन्ध में नीति– औद्योगिक नीति में श्रमिकों के सम्बन्ध में ही निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया गया है।

(1) श्रमिकों के हितों का पूरा ध्यान रखा जायेगा तथा उनके कल्याण के लिए अवसर प्रदान किये जायेगे।

(2) तकनीकी परिवर्तन के अनुरूप श्रमिकों को तैयार करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन किया जायेगा।

(3) उद्योगो के प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी को सुनिश्चित करना।

(4) श्रमिकों के विकास कार्यक्रमों की उन्हें जानकारी देना।

8.11 औद्योगिक नीति का महत्व (Impotance of Industrial Policy)

अर्थव्यवस्था के विकास ने औद्योगिक नीति का महत्वपूर्ण योगदान हैं । अर्थव्यवस्था के विकास में सरकार मुख्य भूमिका निभाती है। सरकार सक्रीय रूप से वह सब कार्य करती है जो अर्थव्यवस्था के विकास को गति प्रदान करते है। औद्योगिक नीति देश के औद्योगिक विकास के उद्देश्य और मौलिक प्रयास हेतु नियम तथा दिशा निर्देशन करती है और इस दिशा में आगे औद्योगिक विकास हेतु आवश्यक उपकरण की व्यवस्था करती है। किसी भी देश के लिए एक सशक्त तथा उपयुक्त औद्योगिक नीति मुख्य रूप से निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण होती है।

(1) भारत जैसी विकासशील देशों के लिए जहाँ पर त्वरित गति से आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार प्रयत्नशील रहती है। औद्योगिक नीति के माध्यम से देश के औद्योगिक ढाँचे को मजबूती प्रदान करती हैं और उसी के अनुरूप विकास को आगे बढ़ाती है। इससे आर्थिक रूप से अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती है और अपनी आवश्यकता के लिए विदेशी सहायता में कमी आती हैं। इसलिए देश के आर्थिक विकास में औद्योगिक नीति का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

(2) विकासशील देशों में आर्थिक असमानता तथा संसाधनों की कमी को पूरा करने के लिए औद्योगीकरण की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष हस्तेक्षप करती है। औद्योगिक नीति के माध्यम से सरकार सार्वजनिक क्षेत्रो तथ निजी क्षेत्रो की भूमिका को भी निर्धारित करती है। इसमें औद्योगिक विकास की योजना का निर्माण होता है।

(3) विकासशील देशो के पास प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता रहती है। लेकिन पूँजी तथा तकनीकी के अभाव में इन संसाधनो उचित विदोहन नहीं हो पाता है। इसके लिए सरकार को विदेशी सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। औद्योगिक नीति के माध्यम से सरकार सार्वजनिक उद्यमों निजी उद्यमों तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के बीच सामंजस्य बैठाकर विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

(4) विकासशील देशो में कल्याणकारी अर्थव्यवस्था सामाजिक न्याय, सभी व्यक्यिों का हित सर्वोपरि जैसी मूलभूत संकल्पनाओं को प्राप्त कने का प्रयास किया जाता हैं इसके लिए आवश्यक है कि देश में पूँजीपतियों की औद्योगिक क्रियाओं को नियंत्रित कर एकाधिकारी प्रवृतियों का विकास न हो पायें और बड़े औद्योगिक घटाने आपस में मिलकर जनता का शोषण न कर सके। इसलिए इस उद्देश्य की पूर्ति में भी औद्योगिक नीति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

(5) भारत में औद्योगिक नीति में औद्योगिक विकास के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना का विचार किया गया। इसमें सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र दोनों मिलकर कार्य करते है तथा लघु उद्योगों को संरक्षण देने की व्यवस्था पर विचार किया गया । औद्योगिक नीति के माध्यम से ही सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र तथा लघु उद्योग के

लिए एक विस्तृत ढाँचा तैयार कर उसका लाभ लिया जा सकता है। नई औद्योगिक नीति में यह व्यवस्था की गयी हैं ।

8.12 नई औद्योगिक नीति के गुण

नवीन उद्योगो का विकास– नई औद्योगिक नीति में निजी क्षेत्र के लिए काफी उद्योगों को नियंत्रण से मुक्ति दे दी गयी हैं जिससे नये उद्योगो का विकास होने लगेगा।

शोध तथा विकास को प्रोत्साहन– नई औद्योगिक नीति में शोध तथा विकास के लिए तकनीकी तथा विशेषज्ञता को आमंत्रित करने के लिए आवश्यक पूँजी की व्यवस्था के सम्बन्ध में नियम बनाये गये हैं। जिसके फलस्वरूप शोध तथा विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहन मिल सकेगा।

श्रमिकों के कल्याण में वृद्धि– श्रमिकों के कल्याण कार्यक्रम तथा प्रबन्ध में उनकी हिस्सेदारी होने से उनके कल्याण को बढ़ाया जा सकता हैं। श्रमिक तथा प्रबन्धन में आपसी सम्बन्ध मधुर बने रहे इसके लिए नियम बनाये गये हैं जिसका अंनुपालन प्रबन्धक तथा श्रमिकों दोनो को करना होता है।

सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण– सार्वजनिक उपक्रमों में निजी क्षेत्र की भागीदारी को औद्योगिक नीति में स्थान दिया गया है । सार्वजनिक उपक्रमों के अंशों का विक्रय करके लक्ष्य को हासिल किया जाता हैं

नवीन उद्योग–नवीन औद्योगिक नीति में अधिकाशं उद्योगो को लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया है तथा निजी क्षेत्र के लिए भी उद्योग लगाने के लिए हर तरह की बाध्यता को समाप्त कर दिया गया है। उसमें उद्यमी निजी क्षेत्र में उद्योग लगाने के लिए प्रेरित होते हैं।

लघु उद्योग– लघु उद्योगो के विकास के लिए भी औद्यौगिक नीति में व्यवस्था की गयी हैं। साथ ही लघु उद्योगो के विकास के लिए पृथक नीति भी घोषित की गयी हैं। पूँजी तथा प्रौद्योगिक आसानी से प्राप्त हो इसकी व्यवस्था की गयी है।

प्रतियोगिता– एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार के माध्यम से एकाधिकारी प्रवृति को रोकने में सफल रहे है। जिससे अन्य उद्योगो को भी स्वस्थ प्रतिस्पर्धा में व्यापार करने में आसानी रहेगी।

उत्पादन क्षमता का विकास– नवीन औद्योगिक नीति में यह व्यवस्था हैं कि कोई भी विद्यमान उद्योग अपनी उत्पादन क्षमता को बढ़ा सकता है । इसके लिए उसे किसी तरह की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं होगी।

8.13 नवीन औद्योगिक नीति की कमियाँ

नवीन औद्योगिक नीति की मुख्य कमियाँ निम्न है–

क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि– नवीन औद्योगिक नीति के फलस्वरूप औद्योगिक लाइसेंस की वाध्यता को समाप्त करने से नवीन उद्यमी उद्योग लगाने के लिए प्रेरित हुए । लेकिन यह उद्योग सिर्फ विकसित क्षेत्रो में ही लगाये गये। पिछड़े क्षेत्रों में कम उद्योग स्थापित किये गये इससे क्षेत्रीय असंतुलन की स्थिति पैदा हो गयी है।

लघु उद्योगो पर प्रतिकूल प्रभाव– औद्योगिक लाइसेंस से छूट तथा विदेशी कम्पनियों को आमंत्रण तथा नई उदारवादी नीतियों के कारण उद्योगो में प्रतिस्पर्धा

बठेगी तथा इस प्रतिस्पर्धा में लघु उद्योगो पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । वह बड़ी व्यावसायिक उद्योगो का मुकाबला नहीं कर पायेगें।

श्रम संघों का विरोध– सार्वजनिक उपक्रमों के अंशों को निजी क्षेत्र या बाजार में बेचने का श्रमिक संघ विरोध कर रहे हैं श्रमिक संघ इसे श्रमिकों के हितों में चोट पहुचाने वाली नीति मान रहे हैं । वह कहते है कि इससे सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण हो जायेगा तथा श्रमिक और प्रबन्धको के मध्य अपने–अपने हितों के लिए संघर्ष होने लगेगा।

विदेशी प्रतिस्पर्धा से खतरा– नई औद्योगिक नीति में अर्थव्यवस्था को उदारीकरण के राह पर ले जाने वाली हैं। इससे विदेशी कम्पनियों को भी भारत में व्यवसाय करने के लिए आमंत्रित किया गया हैं। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वदेशी तथा विदेशी कम्पनियों में प्रतिर्स्पधा बढ़ेगी। विदेशी कम्पनियाँ अपने प्रभाव से देशी कम्पनियों का अधिग्रहण तथा उन्हें कमजोर करने का प्रयास करेगी। घरेलू कम्पनियों के पास पूँजी की कमी तथा टेक्नोलोजी का अभाव में वह विदेशी कम्पनियों का मुकाबला नहीं कर पायेगी।

सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व में कमी– नई औद्योगिक नीति ने सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को कम कर दिया हैं। सरकार ने अधिकतर उद्योगो को लाइसेंस से मुक्त कर दिया हैं। सिर्फ 6 उद्योग ही लाइसेंस की श्रेणी में हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों के अंशों की बिक्री की सहमति होने से सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमों के निजीकरण का खतरा भी बढ़ गया हैं।

रूग्ण इकाइयों के सम्बन्ध में– नई औद्योगिक नीति में रूग्ण उद्योगो के विकास के सम्बन्ध में कोई नीति नहीं बनी हैं। रूग्ण इकाइयों को किस तरह फिर प्रतिस्पर्धी बनाया जाये तथा उसके प्रबन्ध को मजबूत बनाकर लाभ कमाने लायक बनाया जाये। इसके लिए कोई नीति नहीं बनायी गयी हैं।

कृषि आधारित उद्योगो को बढ़ावा नही– नई औद्योगिक नीति में कृषि आधारित उद्योगो को कोई विशेष रियायत नहीं दी गयी हैं।

सामाजिक उद्देश्यों की अस्पष्टता– नई औद्योगिक नीति में योजनाओं के सामाजिक उद्देश्य को हानि पहुंची है । आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण, सार्वजनिक उद्योगो के महत्व में कमी तथा लघु उद्योगो के सम्बन्ध में उनको बढ़ावा देने को कोई विस्तृत योजना नई नीति में नहीं हैं। निजी उद्योगो को बढ़ावा देने से सार्वजनिक उद्यगों तथा लघु उद्योगो पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। उसमें इसका प्रभाव सामाजिक व्यवस्था पर भी पड़ेगा।

8.14 औद्योगिक लाइसेंसिग नीति

देश में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के साथ ही साथ औद्योगिक इकाइयों के नियमन एंव नियंत्रण के लिए औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था बनायी गयी। औद्योगिक लाइसेंस सरकार से किसी औद्योगिक इकाई को मिलन वाली लिखित अनुमति हैं। जिसमें लिखी वस्तु का औद्योगिक इकाई उत्पादन कर सकती हैं। औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1998 को क्रियान्वित करने के लिए औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली को अपनाया गया ।तभी से यह औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली यहाँ कार्यशील हैं। यद्यपि इसमें समय–समय पर कई परिवर्तन किये जाते रहते हैं।

औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली के उद्देश्य–

भारत में औद्योगिक लाइसेंस नीति के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं–

(1) नियोजन की प्राथमिकताओं के अनुरूप औद्योगिक विकास करना।

(2) औद्योगिक इकाइयों की स्थापना, विस्तार एंव विकास पर राजकीय नियंत्रण।

(3) प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग करना।

(4) विनियोजित पूँजी का आर्दश उपयोग।

(5) सभी क्षेत्रों का सन्तुलित औद्योगिक विकास।

(6) सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र, लघु उद्योगों में समन्वय स्थापित करना।

(7) धन तथा आय की विषमता को कम करना।

(8) आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण और अनुचित व्यापार व्यवहार पर रोक लगाना।

(9) सभी को विकास के समान अवसर प्रदान करना।

भारत में उद्योगो के नियमन और नियंत्रण के लिए समय–समय पर विभिन्न अधिनियम पारित किये गये। इसमें मुख्य निम्न है–

1– उद्योग (विकास व नियमन) अधिनियम 1951।

2– एकाधिकार एंव प्रतिबंधित व्यापार क्रियाएं अधिनियम 1969।

3– विदेशी विनियम नियमन अधिनियम 1973।

8.15 उद्योग विकास एवं नियमन अधिनियम 1951

औद्योगिक क्षेत्र में उद्योगो के विकास तथा नियंत्रण के लिए 1949 में संसद में औद्योगिक विकास तथा नियमन विधेयक पेश किया गया। यह अधिनियम 8 मई 1952 से लागू किया गया। इसके अधीन 37 उद्योग थे। मई 1953 के संशोधन द्वारा इसके अर्न्तगत 45 उद्योगो को लाया गया 1957 के संशोधन द्वारा 34 और उद्योगो को उसमें सम्मिलित कर लिया गया।

अधिनियम की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं।

(1) नये उद्योगो के लिए लाइसेंस जारी करना।

(2) पूर्व स्थापित उद्योगो का पंजीयन करना।

(3) किसी उद्योग की आंतरिक तथा बाह्यय गतिविधियों की जाँच तथा नियंत्रण करना।

(4) विशेष परिस्थितियों में सरकार द्वारा किसी भी उद्योग की जाँच का सकती है तथ उसे अपने अधीन कर सकती है।

(5) अधिनियम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक नियम तथा उपनियम बनाना।

8.16 एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम 1969

सरकार ने एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम 1969 में पारित किया जो सन् 1970 में लागू किया गया। इस अधिनियम के उद्देश्य निम्न हैं।

1– यह अधिनियम अनुचित व्यापार व्यवहार से व्यापार में पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करता है तथा उसमें सुधारवाहक कार्यवाही करता है।

2– बाजार में व्यापार के व्यवहार को नियंत्रित करता हैं।

3– एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार शक्तियों को केन्द्रीयकरण को रोकने का कार्य करता है।

4– कोई एकाधिकारी संस्था एकाधिकारी व्यापार द्वारा बाजार को प्रभावित करती है तो उस पर नियंत्रण कार्यवाही की जाती है और उसके व्यापार पर रोक लगायी जाती हैं।

8.17 भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (Competition Commission of India (CCI))

एकाधिकारी शक्तियों पर अंकुश लगाकर प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ावा देने तथा कम्पनियों के विलय व अधिग्रहण पर निगरानी रखने के उद्देश्य से गठित भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग मई 2009 से अस्तित्व में आया। प्रतिस्पर्द्धा आयोग ने 20 मई 2009 से घनेन्द सिंह की अध्यस्था में कार्य करना शुरू कर दिया। एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग के स्थान पर गठित भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग के निम्न लिखित उद्देश्य हैं।

(1) उद्यगो के विलय तथा अधिग्रहण में एकाधिकारी प्रद्धति पर अंकुश लगाकर उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा करना।

(2) विभिन्न उद्यम आपस में मिलकर बाजार शक्तियों पर नियंत्रण कर उपभोक्ताओं को हानि होने की स्थिति पर नियंत्रण करना।

(3) उद्यमों के हितों के साथ उपभोक्ताओं के हितों को ध्यान में रखकर स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का वातावरण बनाना।

8.18 वर्तमान औद्योगिक लाइसेंसिग नीति (Present Industrial Licensing Policy)

सन् 1948 की औद्योगिक नीति के साथ ही सरकार ने औद्योगिक लाइसेसिंग की शुरूआत की सरकार द्वारा समय–समय में लाइसेंसिंग के लिए नियम कानून में बदलाव की किये। सरकार की औद्योगिक लाइसेसिंग नीति को प्रभावी क्रियावयन का अधिकार केन्द्र सरकार के पास हैं। केन्द्र सरकार ने 1991 में औद्योगिक नीति में अपनी अर्थव्यवस्था को बन्द अर्थव्यवस्था से मुक्त कर उदारवादी अर्थव्यवस्था में परिवर्तित कर दिया था। इस औद्योगिक नीति में कुछ उद्योगो को छोड़कर अधिकांश उद्योगो को लाइसेंस से मुक्त कर दिया था। ऐसे में लाइसेसिंग नीति बहुत ज्यादा प्रभावी नहीं हैं। वर्तमान लाइसेंस नीति के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित है।

(1) लाइसेंस से मुक्त उद्योग की संस्था में बढ़ोतरी।

(2) कुछ चुने हुए क्षेत्रों में ही लाइसेंस की बाध्यता।

(3) ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु उद्योगो की स्थापना पर जोर।

(4) तकनीकी, पूँजीगत माल तथा कच्चेमाल के आयात में छूट।

(5) लघु उद्योगो को प्रतिस्पर्धी बनाना जिससे प्रतिस्पर्धा में लघु उद्योगो के अस्तित्व पर संकट न आयें।

(6) उद्योगो का वर्गीकरण कर उसके अनुसार उनको रियायत देना।

(7) उद्योगो को अपनी क्षमता को बढ़ाने की छूट दी गयी है वह बिना अनुमति के अपनी अत्पादन क्षमता को बड़ा सकती है।

(8) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो में विनिवेश के माध्यम से प्रतिस्पर्धात्मक बनाना।

(9) लाइसेसिंग व्यवस्था को समाप्त कर विदेशी पूँजी निवेश की सीमा को सरल बनाना।

(10) औद्योगिक उपलब्धियों को मजबूत बनाना तथा अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर अधिक प्रतिस्पर्धी बनाना।

8.19 मेक इन इंडिया कार्यक्रम (Make in India Programme)

देश को विश्व का पसंदीदा मैन्यूफैक्चरिंग हब बनाकर औद्योगिक विकास की गति को तेज करने के लिए मेक इन इंडिया कार्यक्रम की शुरूआत प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 25 सितम्बर 2014 को की गयी। मेक इन इंडिया का प्रतीक चिन्ह सिंह राष्ट्रीय प्रतीक चिन्ह अशोक चक्र का हिस्सा हैं। यह साहस, बुद्धिमान और शक्ति को प्रदर्शित करता है।

मेक इन इंडिया कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य निम्न है।

(1) पूँजी निवेश को बढ़ावा देना।

(2) नये आविष्कारों को बढ़ावा देना।

(3) कौशल विकास का संबर्द्धन करना।

(4) बौद्धिक सम्पदा का संरक्षण करना बेहतरीन विनियोग संरचना का विकास करना।

(5) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रोत्साहित करना।

(6) निवेशक सुविधा केन्द्र की स्थापना।

(7) दिल्ली, मुम्बई, औद्योगिक गलियारें का निर्माण तथा राष्ट्रीय औद्योगिक गलियारों का निर्माण।

(8) औद्योगिक सम्पंदा अधिकार का संरक्षण करना।

8.20 सारांश

औद्योगिक नीति सरकार की आर्थिक नीति का ही एक हिस्सा हैं जिसके द्वारा समष्टिगत आर्थिक असतुंलन को दूर करने के प्रयास किये जाते हैं। औद्योगिक नीति के द्वारा सरकार देश में उत्पादन को बढ़ावा देकर देश को आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था बनाना चाहती है । उससे देश में औद्योगिक इकाइयों का एक ऐसा ढ़ाचाँ तैयार कर देश को स्वालम्बी तथा समृद्धशाली बनाना सम्भव हो सकेगा। सरकार ने 1991 की औद्योगिक नीति में अर्थव्यवस्था के द्वार सभी के लिए खोलकर उदावादी अर्थव्यवस्था के रूप में अपनी पहचान बनाने की कोशिश की गयी है। जिससे यह देश के उद्योगो में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का माहौल बनाने में सहायक होगा। इससे देश विदेशी निवेश को आकृर्षित करने में सफल हो सकता है। औद्योगिक नीति में बड़े उद्योगो के विकास करने की आजादी दी गयी है। लेकिन लघु उद्योग को भी उन्नति के अवसर दिये गये हैं। इस नीति में क्षेत्रीय असन्तुलन को भी कम करने के प्रयास किया गया है। औद्योगिक नीति के माध्यम से देश में औद्योगिक विकास के साथ–साथ उत्पादकता में भी वृद्धि होगी जिससे आर्थिक विकास तेजी से हो सकेगा। आधारभूत एवं प्रमुख उद्योगो के विकास के लिए नयी नीति में सार्वजनिक क्षेत्रों को महत्वपूर्ण भूमिका सौपी गयी हैं जिससे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो की कुशलता में सुधार और लाभदायकता को बढ़ावा

जा सके। बढ़ती हुई लगातों, अतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के समावेश आदि के सन्द्रर्भ में एम० आर० टी० पी० कम्पनियों को परिसम्पत्तियों की सीमा को समाप्त कर दिया गया हैं। जिससे बाजार में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिलेगा। नई औद्योगिक नीति में औद्योगिक नीति में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना में उदारीकरण, विदेशी पूँजी के अर्न्तगत, तकनीकी सहयोग की स्वतंत्रता आदि से देश के औद्योगिक विकास की गति को तीव्र बनाया जा सकेगा।

8.21 शब्दावली

क्षेत्रीय नियोजन– अर्थव्यवस्था के किसी क्षेत्र विशेष के लिए किया गया नियोजन क्षेत्रीय नियोजन कहलाता है।

उपभोक्ता वस्तु उद्योग– वह औद्योगिक इकाइयाँ जो उपभोक्ता की सतुष्टि के लिए वस्तु का उत्पादन करती हैं, उपभोक्ता वस्तु उद्योग कहलाती है।

औद्योगिक लाइसेंस– सरकार की तरफ से औद्योगिक इकाई की स्थापना की लिखित अनुमति।

विदेशी पूँजी– वह पूँजी जो विदेशी नागरिक विदेशी कम्पनियों या विदेशी सरकार द्वारा स्थानीय उद्योगो में विनियोजित की गयी हो, विदेशी पूँजी कहलाती है।

सार्वजनिक क्षेत्र– जिन उद्योगो या उपक्रमों में सरकार का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है, उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र कहलाते है।

निजी क्षेत्र– जिन उद्योगो या उपक्रमों ने निजी व्यक्तियों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है, उन्हें निजी क्षेत्र कहलाते है।

लघु उद्योग– जिन उद्योगो की स्वामित्व पूँजी 1 करोड़ रूप्या तक निर्धारित की गयी है, लघु उद्योग के अन्तर्गत आते है।

कुटीर उद्योग– वह उद्योग जिसमें परिवार के सदस्य मिलकर ही उत्पादन कार्य करते है, कुटीर उद्योग कहलाते हैं।

8.22 बोध प्रश्न

(अ) बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य :–

11. स्वतंत्र भारत की पहली औद्योगिक नीति सन् 1951में घोषित की गयी थी।
12. औद्योंगिक लाइसेंसिग प्रणाली के उद्देश्य में आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण करना है।
13. नई औद्योगिक नीति खुली और उदार है।
14. नई औद्योगिक नीति से क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि हुई है।
15. भारत में वर्तमान में 1991 की औद्योगिक नीति लागू है।

(ब) रिक्त स्थान की पूर्ति करियेः–

7. नई औद्योगिक नीति के प्रमुख उद्देश्य ..... है।
8. वर्तमान में जिन उद्योंगो के लिए लाइसेंस अनिवार्य है उसकी संख्या .... है।
9. एम0आर0टी0पी0एक्ट..... में लागू किया गया है।

8.23 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य. 5. सत्य

(ब)

(1.) प्रतिस्पद्धात्मक अर्थव्यवस्था का विकास करना, (2.) 5 (3) 1970

8.24 स्वपरख प्रश्न

(1) औद्योगिक नीति के अर्थ तथा उद्देश्यो का स्पष्ट कीजिए।

(2) सन् 1991 की औद्योगिक नीति की विशेषता बताइये।

(3) सन् 1991 की औद्योगिक नीति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफल रही समझाइये।

(4) औद्योगिक लाइसेंस नीति से क्या तात्पर्य हैं?

(5) एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

8.25 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई – 9 औद्योगिक रूग्णता (Industrial Sickness)

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 औद्यागिक रूग्ण्ता का अर्थ एवं परिभाषा
9.3 औद्योगिक रूग्णता का माप
9.4 औद्योगिक रूग्णता के कारण
9.5 औद्यागिक रूग्णता के लक्षण
9.6 औद्यागिक रूगणता के परिणाम
9.7 औद्योगिक रूग्णता के उपचार के उपाय
9.8 औद्योगिक रूगणता के उपचार के सरकारी प्रयास
9.9 औद्योगिक रूग्णता पर बनी हुई समितियाँ
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 बोध प्रश्न
9.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.14 स्वपरख प्रश्न
9.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- औद्योगिक रूग्णता का अर्थ और रूग्णता की परिभाषा का वर्णन कर सकें।
- औद्योगिक इकाई के रूग्ण होने के विभिन्न कारणों का ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- औद्योगिक रूग्णता के लक्षणों को स्पष्ट कर सकें।
- औद्योगिक रूग्णता के परिणामों की जानकारी प्राप्त कर सकें।
- औद्योगिक रूग्णता के उपचार के उपायों का वर्णन कर सकें।
- औद्योगिक रूग्णता पर बनी हुई समितियों की जानकारी प्राप्त कर सकें।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास में उसका औद्योगिक विकास सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। बदलते हुए परिवेश में पर्याप्त पूँजी और तकनीकी पर आधारित उद्योग समय की जरूरत हैं। क्योंकि इससे एक तरफ उत्पादकता बढ़ाकर जनता की आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती हैं। वही दूसरी तरफ समाज के विकास के लिए भी कार्य किया जा सकता हैं। लेकिन औद्योगिक विकास के साथ औद्योगिक रूग्णता की समस्या भी गम्भीर होती जा रही हैं। औद्योगिक रूग्णता से उद्योगों के मालिक तथा कर्मचारी ही प्रभावित नहीं होते हैं बल्कि समाज के सभी वर्गो को प्रभावित करती हैं। औद्योगिक रूग्णता के कारण समाज में बेरोजगारी में वृद्धि होती हैं। उत्पादकता में कमी आ जाती है तथा नये उद्योगों की स्थापना में भी कमी आती हैं। इससे राष्ट्रीय संसाधनों का दुरुपयोग होता हैं। आज भारत जैसे देश और औद्योगिक नीति के माध्यम से उदारीकरण और निजीकरण पर जोर दे रहे हैं। नवीन उद्योगों की स्थापना के लिए विदेश निवेश को प्रोत्साहित करने

के प्रयास किये जा रहे है। लेकिन औद्योगिक रूग्णता ने प्रोत्साहन पर ब्रेक लगा दिया हैं। आज औद्योगिक रूग्णता के सभी पहलुओ, रूग्णता के कारण अब तक रूग्ण ईकाइयों के पुर्नउत्थान हेतु किये गये सभी कार्यो का विश्लेषण करना आवश्यक हो गया है। भारतीय उद्योगो में औद्योगिक रूग्णता की स्थिति बहुत गम्भीर हो गयी हैं। इसका औद्योगिक क्षेत्र पर ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ रहा हैं।

9.2 औद्योगिक रूग्णता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Defination of Industrial Sickness)

औद्योगिक रूग्णता से आशय उस रूग्ण इकाई से हैं जो कि विगत कई वर्षो से हानि पर चल रही है और उसकी लाभ अर्जन करने की क्षमता बिलकुल क्षीण हो चुकी है।

औद्यागिक रूग्णता के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख पभिषायें निम्नलिखित हैं।

प्रो० नन्दकणी– एक निवेशक के लिए वह इकाई रूग्ण है जो लाभाश नहीं देती। एक उद्योगपति के लिए जो लाभ अर्जित नहीं कर रही हैं और बन्द होने के कगार पर हैं। एक बैंकर की दृष्टि से वह इकाई रूग्ण हैं जिसने गत वर्ष में नकद हानि उठाई हो एवं चालू तथा आने वाले वर्षो में भी उसकी पुनरावृत्ति होने की सम्भावना हो।

भारतीय रिर्जव बैंक– एक औद्योगिक इकाई उस समय रूग्ण मानी जाती हैं जब उसे एक साल नकद हानियाँ हो जाती हैं और आगामी दो वर्षो में भी नकद हानि जारी रहने की सम्भावना होती है। बैंक के निर्णयानुसार उसके वित्तीय ढ़ाँचे में असतुलन पाया जाता हैं। अर्थात चालू अनुपात 1:1 से कम होता है तथा कर्ज शेयर पूँजी अनुपात भी कम होता है।

औद्योगिक रूग्णता और सामूहिक पुर्ननिर्माण सम्बन्धी समिति के अनुसार ऐसी इकाइयों को रूग्ण मानना चाहिए जिसके मामले में

(1) मियादी उधार देने वाली संस्थाओं को पुर्नभुगतान पर 180 दिन या उससे अधिक की चूक हो।

(2) नकद ऋणों में अनियमितताएं या 180 दिन या अधिक के लिए कार्यशील पूँजी बाधित हो।

औद्योगिक रूग्णता औद्योगिक विकास के मार्ग की बाधा है जिससे उद्योग लाभ की बजाय घाटे में आ जाते हैं उनकी कार्यशील पूँजी में कमी आ जाती हैं और उद्योग की देनदारियाँ बढ़ जाती हैं। उन रूग्ण औद्योगिक इकाई की अतिंम परिणिती कष्टकारक तथा दुःखद होती हैं । जब यह बन्द होती हैं तो श्रमिकों के समक्ष बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इससे सरकार के सामने भी कई समस्याएं खड़ी हो जाती हैं।

9.3 औद्योगिक रूग्णता का माप (Measurmental Industrial Sickness)

बीमार औद्योगिक कम्पनी उसे कहाँ जायेगा जिसमें निम्न कारण परिलक्षित होगे।

1. रूग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष प्रावधान) के अनुसार उन अैद्योगिक कम्पनियों को रूग्ण माना गया हैं। जिसमें निम्न तीन विशेषताएं हैं। (1) उसे पंजीकृत हुए कम से कम सात वर्ष हो चुके हो। (2) उसे इसी वित्तीय वर्ष और

इससे पहले वाले वित्तीय वर्ष में नकद हानि हुई हो। (3) उसकी निवल या शुद्ध मालियात खत्म हो चुकी हो। यदि पिछले पाँच वर्ष में से किसी भी वर्ष में किसी भी कम्पनी की शुद्ध मालियात 50 प्रतिशत से कम रह जाय तो उसे आरम्भिक रूग्ण कम्पनी माना जायेगा।

2. गत लेखा वर्ष में नकद हानि अर्जित की हो और संभावतः चालू लेखांकन वर्ष में नकद हानि सम्भावित हो तथा शुद्ध पूँजी के 50 प्रतिशत या उससे अधिक सीमा तक संचयी नकद हानियाँ के कारण ह्रास हो।

3 वह वित्तीय वर्ष में लिये गये ऋण के ब्याज की किस्ते या मूलधन की किस्से अदा करने में दोषी पाये गये हो तथा साख सीमा के संचालन में बैंक के साथ ढृढ़तापूर्वक अव्यवस्था की हो।

4 उस वित्तीय वर्ष में भी तथा उसके ठीक पहले के वित्तीय वर्ष में भी उसे नकद घाटा सहन करना पड़ा हो।

9.4 औद्योगिक रूग्णता के कारण

भारत में उद्यम विभिन्न कारणों से रूग्ण हो जाते हैं। उद्यमों के रूग्ण होने के यह कारण आतंरिक तथा बाह्य हो सकते हैं। आन्तरिक कारण इकाई के अन्दर से सम्बधित होते है जबकि बाह्य कारण इकाई के बाहर से सम्बंधित होते हैं। आतंरिक कारणों में उत्पादन, वित्त, श्रम सम्बन्ध आदि आते हैं। जबकि बाह्य कारणों में विद्युत, कच्चा माल, माँगा में कमी, सरकार की नीतियाँ आदि आते हैं। मुख्य रूप से रूग्णता के तीन कारण निम्न हैं।

जन्मजात रूग्णता– जन्मजात रूग्णता में उन कम्पनियों को माना गया हैं जो अपनी स्थापना के 3 वर्ष के अन्दर रूग्ण हो जाती हैं। ऐसे औद्योगिक इकाइयों में अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्षमता की कमी होती हैं। यह अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाती हैं।

प्रर्वतकों के पास अनुभव की कमी– प्रवर्तक जो कि कम्पनी का निर्माण करते हैं। कम्पनी के निर्माण के विचार से लेकर कम्पनी के प्रारम्भ होने तक की सम्पूर्ण क्रिया प्रवर्तको के द्वारा की जाती है। प्रवर्तकों के पास अनुभव का अभाव, त्रुटिपूर्ण चयन तथा नियोजन का अभाव रूग्णता को बढ़ाता हैं। प्रवर्तक यदि बाजार का विस्तृत सर्वे के बगैर ही कार्य प्रारम्भ करते हैं तो रूग्णता का खतरा बढ़ जाता हैं।

तकनीकी रूग्णता– उद्योगों में पुरानी तकनीकी भी रूग्णता कारण बनती हैं। नयी मशीनरी तथा तकनीकी से उत्पादकता में वृद्धि की जाती हैं। नयी तकनीकी कम्पनी में नये आविष्कार तथा विकास को बढ़ावा देती हैं। तकनीकी का अभाव में उद्योगो में परम्परागत विधि से कार्य किये जाते हैं जिससे उत्पादकता में भी वृद्धि नहीं हो पाती हैं।

स्थानीयकरण के कारण रूग्णता– स्थानीयकरण के कारण भी रूग्णता को बढ़ाते हैं। यदि उच्च तकनीकी पर आधारित उद्योग को ऐसी जगहों पर स्थापित कर दिया जाय जहाँ पर कुशल श्रमिकों तथा विशेषज्ञों का अभाव हो तो रूग्णता की समस्या प्रारम्भ हो जाती हैं। इसी तरह जिन उद्योगों में कच्चे माल की उपलब्धता तथा परिवहन सुविधाओं का अभाव रहता हैं वहाँ भी औद्योगिक रूग्णता प्रारम्भ हो जाती है।

आन्तरिक रूग्णता– औद्योगिक इकाईयाँ कार्यशील होने के बाद आतंरिक कारणों से रूग्ण हो जाती हैं। इसलिए उसे आतंरिक रूग्णता कहते हैं। आन्तरिक रूग्णता निम्न प्रकार हैं।

श्रम सम्बन्धी समस्याएं– औद्योगिक इकाइयों में श्रमिकों तथा मालिकों के मध्य श्रम सम्बन्धों में समस्याएं औद्योगिक रूग्णता को जन्म देती हैं। कई बार वेतन, बोनस, सुविधाओं, कार्य वातावरण तथा अन्य कारणों से श्रमिक और मालिकों के सम्बन्ध विषापत हो जाते हैं। श्रमिकों में अशान्ति के कारण तालाबन्दी और हड़ताले होती हैं। इसका असर उद्योगों के उत्पादन पर भी पड़ता हैं। उससे कम उत्पादन होने पर कम्पनी की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती हैं। और उद्योग रूग्णता का शिकार हो जाते हैं।

प्रबन्ध सम्बंधी समस्याएं – औद्योगिक इकाईयों में दोषपूर्ण प्रबन्ध औद्योगिक रूग्णता को जन्म देता हैं। औद्योगिक रूग्णता का सबसे प्रधान कारण प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याएं हैं। उत्पादन विपणन, वित्त, कर्मचारियों आदि के बारे में गलत निर्णयों से व्यवसाय नष्ट हो सकता हैं। माल के स्टॉक का ठीक प्रबन्ध न करना, मशीनों और संयत्र के रख रखाव पर ध्यान न देना, उत्पादित माल की उत्तमता को बनाये रखने की कोशिश न करना आदि उत्पादन के क्षेत्र में कुप्रबन्ध के कुछ उदाहरण हैं। उत्पादित माल की बिक्री बढ़ाने के उपाय न करने और कीमत निर्धारण में मूल करने से विपणन के क्षेत्र में समस्याएं पैदा हो सकती हैं। कार्यशील पूँजी के अकुशल उपयोग से वित्तीय कुप्रबन्ध हो सकता हैं। कर्मचारियों को व्यवस्थित प्रबन्ध न करने की वजह से कई दोष उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे मानव शक्ति के नियोजन में कमी, खराब औद्योगिक सम्बन्ध, मजदूरी, वेतन वृद्धि, पदोन्नति सम्बन्धी दोष उत्पन्न हो सकते हैं।

व्यवस्थित नियोजन का अभाव– औद्योगिक इकाई के निर्माण से लेकर उसके संचालन तक यदि पूर्वानुमान तथा व्यवस्थित नियोजन न किया जाय तो यह भी औद्योगिक रूग्णता का कारण बनता हैं। उद्यम की स्थापना कहाँ की जाय, कच्चा माल, श्रम, बाजार आदि का निर्धारण करना बहुत जरूरी है। परिवहन सुविधा के विकास वाले स्थानों पर औद्योगिक इकाईयाँ लाभदायक परिणाम देती हैं। लेकिन यदि इसमें पूर्वानुमान तथा दोषपूर्ण नियोजन हो जाए तो औद्योगिक रूग्णता बढ़ती है।

तकनीकी का अभाव– औद्योगिक रूग्णता का महत्वपूर्ण कारण तकनीकी का अभाव होना भी हैं। पुरानी तकनीकी से उत्पादन तो कम होता है और उस उत्पाद की लगात भी बहुत बढ़ जाती है। नयी तकनीकी से उत्पादन तो बढ़ता है साथ ही वस्तु की गुणवक्ता में भी वृद्धि होती हैं। नयी तकनीकी का अभाव औद्योगिक रूग्णता में वृद्धि करता है।

वित्तीय कुप्रबन्ध– अनेक औद्योगिक इकाइयों के सामने परियोजना तैयार करने की अवस्था से लेकर उसे लागू करने तक और उसके बाद तक भी वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेता हैं। समस्या ऋण वापस न करने पर उन पर ऋण का भार बढ़ जाता हैं। और वह रूग्ण इकाइयाँ बन जाती हैं। कभी–कभी बैंको से सहायता न मिलने के कारण भी छोटी औद्योगिक इकाइयाँ असफल हो जाती हैं। वित्तीय कुप्रबन्ध भी औद्योगिक रूग्णता को बढ़ाता है। आज औद्योगिक इकाईयाँ बैंको तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से लिए गये ऋण प्राप्त करती हैं। यदि इन वित्तीय

संस्थाओं से लिए गये ऋणों की अदायगी समय पर नहीं की जाती है तो ब्याज की रकम के साथ–साथ मूलधन की धनराशि भी बढ़ जाती हैं। यह धनराशि की अदायगी न हो पाने के कारण औद्योगिक रूग्णता बढ़ती है।

बाह्य रूग्णता– औद्योगिक इकाईयों में उन कारणों में भी रूग्णता होती है जो कि प्रबन्धकों के नियंत्रण से बाहर होती है। सरकार द्वारा समय–समय पर लागू किये गये नियम कर नीति, मूल्य निर्धारण, मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति, माँग तथा पूर्ति के मध्य अन्तर बहुत से ऐसे कारण है जो रूग्णता को बढ़ावा देते हैं। बाह्य रूग्णता के मुख्य कारण निम्न हैं।

सरकारी नीतियाँ– आयात निर्यात, औद्योगिक लाइसेंस, कराधान आदि के सम्बन्ध में सरकारी नीति बदल जाने से स्वस्थ इकाई भी रूग्ण बन जाती हैं। किसी समय सरकार द्वारा उदार आयात नीति से घरेलू उत्पादकों को काफी नुकसान हो सकता हैं। उदार लाइसेंस नीति के तहत किसी वस्तु के उत्पादन जो कि छोटी इकाइयाँ बनाती हैं। बड़े उद्योगो को लाइसेंस देने पर छोटी इकाइयाँ प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पाती हैं। ऐसे में लघु स्तर की इकाइयों के ऊपर काफी बुरा प्रभाव पड़ता हैं। ऐसी इकाइयाँ रूग्ण इकाइयों की श्रेणी में आ जाती हैं। सरकार की मूल्य नीति तथा श्रम नीति में परिवर्तन भी औद्योगिक इकाइयों की उत्पादकता को प्रभावित करती हैं। यह नीतियाँ औद्योगिक इकाइयों के विपरीत होती हैं। तो उससे औद्योगिक रूग्णता को बढ़ावा मिलता हैं।

कच्चे माल की अनउपलब्धता– बहुत सी औद्योगिक इकाइयाँ कच्चे माल की सुचारू व्यवस्था न हो पाने के कारण अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग उत्पादन प्रक्रिया में नहीं कर पाती हैं। अपर्याप्त उपलब्धता उत्पादकता को प्रभावित करती हैं । साथ ही वितरण व्यवस्था को भी प्रभावित कर देती हैं। यह समस्या ऐसी इकाइयों में ज्यादा होती हैं जहाँ पर विदेशों से कच्चा माल ज्यादा आता हैं। ऐसी स्थिति में औद्योगिक इकाइयों में रूग्णता बढ़ती है।

बिजली की आपूर्ति की समस्या– औद्योगिक इकाइयों को बिजली की पर्याप्त आपूर्ति की समस्या का सामना भी करना पड़ता हैं। आज उद्योगों के सामने नियमित विद्युत आपूर्ति न होना, पैट्रोल, डीजल की कमी तथा उनकी ऊँची दरें उद्योगों के सामने समस्या खड़ी कर देते हैं। सरकारें उद्योगों को दी जाने वाली बिजली में कटौती कर ग्रामीण क्षेत्रों में भेजी जा रही हैं साथ ही विद्युत उत्पादकता बढ़ाने के लिए कोई ठोस पहल नहीं की जा रही हैं। इससे भी औद्योगिक रूग्णता की समस्या आ रही हैं।

दोषपूर्ण संयत्र और मशीनें– लघु उद्योगो में उत्पादन के क्षेत्र में उद्यमकर्ता सही मशीनों के चुनाव में तकनीकी परामर्श न लेने पर गलती हो सकती हैं। और वे जिन मशीनों को खरीदकर स्थापित करते हैं और वह दोषपूर्ण निकलती हैं तो उससे इकाइयों को हानि होती हैं और इकाइयाँ रूग्ण हो जाती हैं। कभी–कभी उद्यमकर्ता जिस तकनीक को चुनता हैं वह पुरानी होती हैं। इस तरह की तकनीक से उत्पादित उत्पाद आधुनिक तकनीक से उत्पाद की अपेक्षा नीची श्रेणी का होता हैं और इसकी लागत भी अधिक होती हैं। जिसको बाजार में ग्राहक लेना पसन्द नहीं करते हैं। इससे रूग्णता में बढ़ोतरी होती हैं।

माँग की कमी– बहुत सी औद्योगिक इकाइयाँ माँग के सम्बन्ध में गलत अनुमान लगा लेती हैं। माँग कम हो जाने के कारण उद्योगों के पास बिना बिके हुए माल

का स्टॉक इक्ट्ठा हो जाता हैं। इससे लम्बे समय तक स्टॉक के विक्रय न होने के कारण औद्योगिक रूग्णता को बढ़ावा मिलता है। कभी–कभी बाजार में मन्दी के कारण माँग में भारी कमी हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप बिना बिका माल काफी मात्रा में बचा रहने से औद्योगिक इकाइयों को हानि होती हैं। ऊँची कीमत वाले उत्पाद जैसे बस, ट्रकों, कार, आदि की नियमित माँग बहुत कुछ क्रेताओं को उपलब्ध साख सुविधा पर निर्भर करती हैं। साख पर नियंत्रण लगा देने के कारण खरीददारों के लिए वित्त की व्यवस्था कर पाना सम्भव नहीं हो पायेगा। जिससे उत्पाद की कीमत गिर जायेगी। इससे उत्पादकों के पास स्टॉक बचा रह जायेगा और उन्हें हानि होती हैं। यह स्थिति काफी समय तक बनी रहती है तो उद्योगिक इकाई रूग्ण हो जाती हैं।

उद्यमकर्ताओं की अयोग्यता– अनेक उद्यमकर्ता जो कि औद्योगिक इकाई की स्थापना तो कर देते हैं लेकिन उनके पास व्यवसाय के बारे में बुनियादी तकनीकी जानकारी का ज्ञान नहीं होता हैं। उत्पादित वस्तुओं की लगात का अनुमान लगाना, उत्पादित माल की बिक्री की व्यवस्था करना तथा व्यवसाय का लेखा जोखा का ज्ञान नहीं होता हैं। ऐसे में उद्यमकर्ताओं द्वारा स्थापित इकाई के रूग्ण होने की सम्भावना बढ़ जाती हैं।

अन्तराष्ट्रीय परिस्थितियों मे परिर्वतन का प्रभाव– अन्तराष्ट्रीय बाजारों में होने वाले परिवर्तनों के कारण भी औद्योगिक इकाइयों में रूग्णता बढ़ती हैं। अन्तराष्ट्रीय बाजारों में होने वाले परिवर्तनों में कच्चे तेल के मूल्यों में वृद्धि, आयात निर्यातों में रोक, अपने उत्पादन के प्रति संरक्षणवाद की नीति, विदेशी सहायता में अवरोध, आदि ऐसे कारण है जिनके कारण औद्योगिक रूग्णता बढ़ती हैं।

तकनीकी में परिर्वतन– औद्योगिक उत्पादन की गुणवत्ता तथा उत्पादकता को बढ़ाने के लिए वर्तमान में शोध तथा विकास पर सभी कम्पनियाँ कार्य कर रही हैं। नये आविष्कार तथा नयी खोज के कारण बहुत से उत्पाद अप्रचलित तथा अनउपयुक्त हो गये हैं। ऐसे में जिन उद्योगों ने शोध तथा विकास पर कार्य नहीं किया है। वह कम्पनियाँ रूग्ण हो गयी है। इससे औद्योगिक रूग्णता बढ़ रही हैं।

आंतकवादी घटनाएं– आतंकवादी घटनायें भी औद्योगिक रूग्णता को बढ़ाती हैं। आतंकवादी अनावश्यक भय पैदा कर समाज को अव्यवस्थित कर देते हैं। इसका प्रभाव समाज में हर स्तर पर पड़ता हैं। इससे उत्पादकता तथा बिक्री भी प्रभावित होती हैं। ऐसे में औद्योगिक रूग्णता बढ़ती हैं।

प्राकृतिक प्रकोप– प्राकृतिक प्रकोप जैसे बाढ़, तूफान, भूकम्प, सुनामी, के कारण भी औद्योगिक इकाईयों पर इसका प्रभाव पड़ता हैं। इनसे वातावरण तो प्रभावित होता है साथ ही उत्पादकता भी प्रभावित होती हैं। उद्योगो के सामने अस्तित्व का संकट भी हो जाता हैं। इससे औद्योगिक रूग्णता बढ़ती हैं।

9.5 औद्योगिक रूग्णता के लक्षण (Symptoms of Industrial Sickness)

बिक्री में कमी– औद्योगिक इकाईयाँ रूग्णता को कम करने के लिए नकद छूट तथा व्यापारिक छूट में वृद्धि करके बिक्री को बढ़ाने का प्रयास करती हैं। लेकिन यह सब चीजें विक्रय में बढ़ोत्तरी नहीं कर पाती हैं। पुराने ग्राहकों से विवाद तथा उत्पादन तथा अन्य मामलों में विवाद औद्योगिक रूग्णता को बढ़ाता हैं।

रोकड़ प्रबन्ध की समस्या– औद्योगिक इकाई के पास रोकड़ आगमन में गिरावट तथा रोकड़ निर्गमन में अधिकता से औद्योगिक इकाई में रोकड़ की कमी हो जाती हैं जिससे रूग्णता की स्थिति आ जाती हैं।

बैंकों के ऋण वापसी में विलम्ब– औद्योगिक इकाइयाँ बैंक ओवर डाफ्ट, बैंक ऋण तथा ओवर ड्राफ्ट का भुगतान नहीं कर पाती हैं।

वैधानिक दायित्वों की पूर्ति में कमी– औद्योगिक इकाइयों सरकार द्वारा आरोपित करों का भुगतान, कर्मचारियों को दी जाने वाली भविष्यनिधि तथा ग्रेच्युटी का भुगतान, घोषित लाभांश का भुगतान आदि नहीं कर पाती हैं।

पूँजी ढाँचे में कमी– बाजार में कम्पनी की सम्पतियों में कमी, शेयर बाजार में कम्पनी के अंशों के मूल्य में कमी आदि कारण रूग्णता को दर्शाते हैं।

सम्पति का ह्रास– कम्पनी की सम्पति का उचित रख रखाव की कमी, मरम्मत आदि की व्यवस्था भी नहीं हो पाना, आदि भी रूग्णता को दर्शाते हैं।

9.6 औद्योगिक रूग्णता के परिणाम (Consequences of Industrial Sickness)

औद्योगिक रूग्णता के परिणाम अर्थव्यवस्था के विकास में रूकावट को दर्शाते हैं। यह रूकावट अर्थव्यवस्था के विकास को रोकती हैं। भारत जैसी अर्थव्यवस्था वाले देश में जहाँ श्रम की अधिकता तथा पूँजी की कमी हैं इससे समस्या और बढ़ जाती हैं। औद्योगिक रूग्णता के निम्न परिणाम हो सकते हैं।

रोजगार पर प्रभाव– भारत जैसी विकासशील देश में आज व्यापक स्तर पर बेरोजगारी हैं। कृषि क्षेत्र में व्यापक स्तर पर श्रमिक कार्य करता हैं। लेकिन कृषि में श्रम आधिक्य की स्थिति हैं। ऐसे में औद्योगिक रूग्णता होने पर रोजगार की स्थिति पर बुरा असर पड़ता हैं। आज व्यक्ति काम करना चाहता हैं लेकिन उसे रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता हैं। ऐसे में औद्योगिक रूग्णता होने पर बेरोजगारी की स्थिति और भयावह हो जाती हैं। जब बन्द होने वाली रूग्ण इकाइयाँ सूती कपड़ा मिल की तरह बहुत बड़ी हो और उसमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या बहुत ज्यादा हो।

औद्योगिक अशान्ति– औद्योगिक रूग्णता के कारण उद्योग और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में कर्मचारियों की छटनी तथा इकाइयों के बन्द होने से अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। श्रमिकों के बेरोजगार होने से वह हड़ताल तथा तालाबन्दी की कार्यवाही में अन्य उद्योगों को भी सम्मिलित कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में औद्योगिक अशान्ति बढ़ती है। तथा अन्य उद्योगों भी इससे प्रभावित होते हैं।

वित्तीय संस्थाओं पर प्रभाव– औद्योगिक इकाइयों के रूग्ण हो जाने से बैंको की उत्पादकता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता हैं। बैंको की ऋण की राशि वापस नहीं मिलने से बैकों के पास अन्य संस्थाओं को ऋण देनी की समस्या हो जाती हैं। क्योंकि जब बैंकों के पास धन होगा ही नहीं तो ऋण किसको वितरित करेगी। ऐसे में बैकों तथा वित्तीय संस्थाओं को बहुत नुकसान उठाना पड़ता हैं। रिर्जव बैंक भी रूग्ण औद्योगिक इकाइयों के ऋण वापसी के सम्बन्ध में कोई ठोस नीति नहीं बना पाया हैं।

निवेशकों पर प्रभाव– जब औद्योगिक इकाई रूग्ण होती हैं तो उस रूग्ण इकाई के अंशों के मूल्य में भी कमी हो जाती है। इससे उद्यम में धन लगाने वाले निवेशकों को हानि उठानी पड़ती हैं। इससे निवेशकों में निराशा उत्पन्न होती है। इसका

विपरीत प्रभाव अन्य निवेशको पर भी पड़ता है जो कि उसी तरह का उद्यम स्थापित कर उत्पादन करना चाहते हैं। इस प्रकार रूग्णता का प्रतिकूल प्रभाव निवेशको तथा अन्य उद्यमकर्ताओं पर भी पड़ता हैं। निराशा के वातावरण में इसका प्रभाव शेयर बाजार पर भी पड़ता हैं। निवेशक अपना धन शेयर में विनियोग करने से बचते हैं।

संसाधनों का दुरूपयोग– औद्योगिक इकाई की स्थापना में संसाधनों का बड़ी मात्रा में प्रयोग किया जाता हैं और ऐसे राष्ट्र के लिए जहाँ पर संसाधनो की कमी हो यदि पर्याप्त मात्रा में संसाधन लगाने के बाद औद्योगिक इकाई रूग्ण हो जाती है तो इससे संसाधना की हानि होती हैं और वह संसाधन बेकार हो जाते हैं। बड़े उद्योगो में तो यह समस्या और भी जटिल हो जाती हैं। क्योंकि बड़ी कम्पनियों में बड़ी धनराशि का निवेश परिसम्पतियों को व्यवस्थित करने के लिए किया जाता हैं। ऐसे में रूग्णता से संसाधनो की क्षति होती हैं।

सरकार पर वित्तीय भार तथा राजस्व की क्षति– औद्योगिक इकाई के रूग्ण होने पर सरकार को वित्तीय हानि उठानी पड़ती हैं। सरकार को रूग्ण औद्योगिक इकाई को पुनः संचालित करने के लिए अतिरिक्त वित की व्यवस्था करनी पड़ती हैं तथा साथ ही कर के रूप में प्राप्त होने वाली धनराशि उद्योग के रूग्ण होने पर सरकार को नहीं मिल पाती हैं। इससे सरकार को दोहरी हानि होती हैं।

सरकार को राजस्व की हानि– केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारें औद्योगिक इकाइयों से करों और शुल्क के रूप में काफी राजस्व प्राप्त करती हैं। अतः औद्योगिक इकाइयों की रूग्णता से सरकारों को राजस्व की हानि होती हैं।

सम्बंधित इकाइयों पर प्रभाव– औद्योगिक इकाई के रूग्ण होने पर उसका प्रभाव उद्योगो के साथ जुड़े हुए अन्य इकाइयों पर भी पड़ता हैं। कोई भी औद्योगिक इकाई सम्पूर्ण उत्पाद स्वंय नहीं बनाती हैं और उसे अन्य इकाइयों के साथ समन्वय द्वारा उत्पाद का निर्माण करना होता हैं। उद्योग का उत्पाद दूसरी इकाई के लिए कच्चे माल का काम करता हैं। ऐसे में यदि कोई इकाई रूग्ण होती है तो इससे सम्बंधित उद्योग भी प्रभावित होते हैं।

साधनों का अपव्यय– अर्थव्यवस्था में साधनों की कमी होती हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई भी औद्योगिक इकाई अस्वस्थ होकर बन्द हो जाय तो उसमें लगे हुए साधन बेकार हो जाते हैं। यह समस्या उस समय और गम्भीर हो जाती हैं जब रूग्ण इकाइयाँ बड़ी हो और उस पर मशीने तथा संयत्रों में भारी निवेश हो। इन इकाइयों का उत्पादन बन्द हो जाने से पूरे उद्योग का उत्पादन गिर जाता हैं। कीमती मशीने सयंत्र बेकार हो जाते हैं।

आर्थिक विकास में रूकावट– उद्योग के रूग्ण होने से आर्थिक विकास भी प्रभावित होता हैं। क्योंकि उद्योग के विकसित होने से आर्थिक विकास को रफ्तार मिलती हैं। अर्थव्यवस्था में सभी स्तरों पर तेजी आती हैं। रोजगार, उत्पादन, माँग, पूर्ति के मध्य संतुलन स्थापित होता हैं। इससे अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास होता हैं। लेकिन यदि उद्योग में रूग्णता होती है तो आर्थिक विकास की रफ्तार रूक जाती हैं। रोजगारी, महँगाई, माँग तथा पूर्ति में संतुलन नहीं हो पाता हैं।

9.7 औद्योगिक रूग्णता के उपचार के उपाय (Remedial Mearaxes for Industrial Sickness)

भारत में औद्योगिक रूग्णता की समस्या एक गम्भीर समस्या बनती जा रही हैं। और यह समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही रहती हैं। आज देश में 99 प्रतिशत रूग्ण औद्योगिक इकाइयाँ लघु क्षेत्र की हैं जो कि आर्थिक विकास तथा रोजगार की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। लेकिन अनेक उद्यमी अपनी गलत नियत से औद्योगिक इकाई को रूग्ण दिखाकर वित्तीय तथा अन्य सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। इसलिए इस प्रवृत्ति को रोका जाना बहुत जरूरी हैं। इसके लिए औद्योगिक रूग्णता के उपचार के उपाय निम्न हैं।

1– **वित्तीय सुविधा प्रदान करना**– औद्योगिक रूग्णता को दूर करने के लिए वित्तीय संस्थाओं को उद्यमों को आवश्यकतानुसार ऋण सुविधा प्रदान करनी चाहिए। यदि उद्यम की कार्यशील पूँजी में कमी हैं या पुरानी मशीनों के कारण रूग्णता हो रही हैं तो इसके लिए सस्ती ब्याज दर पर उद्यमों को ऋण सुविधाा प्रदान करनी चाहिए। ब्याज दरों में कमी से उद्यमों की ऋण वापिस करने की क्षमता बढ़ती हैं और उद्यमों द्वारा आवश्यक सुधार कर रूग्णता से बचाव किया जा सकता हैं।

2– **परामर्श सहायता**– उद्यमों में रूग्णता के विभिन्न कारण हो सकते हैं। जिसमें वेतन, भत्ते, कार्यवातावरण, तकनीकी, कच्चा माल की सुविधा जैसे कारण मुख्य हो सकते हैं। हड़ताल तथा तालाबन्दी के कारण भी रूग्णता की स्थिति आ जाती हैं। ऐसे में सम्बन्धित सरकारी ऐजेन्सी को चाहिए कि वह अपने अनुभवों द्वार ऐसी समस्याओं का निपटारा सभी पक्षों के साथ मिलकर करें। जिससे उद्योगों को रूग्णता से बचाया जा सके।

3– **इकाइयों का संविलयन**– औद्योगिक रूग्णता को दूर करने के लिए बीमार औद्योगिक इकाइयों का संविलयन बृहद तथा मजबूत प्रबन्ध क्षमता वाली इकाइयों में कर देना चाहिए। क्योंकि बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ की उत्पादन क्षमता तथा प्रबन्ध का लाभ लेकर छोटी इकाई भी अच्छा परिणाम दे सकती हैं और धीरे–धीरे रूग्णता की स्थिति से बाहर आ सकती हैं।

4– **सरकारी सहायता**– औद्योगिक रूग्णता को कम करने के लिए सरकारी सहायता के माध्यम से उद्यमों को फिर से पुर्नजीवित किया जा सकता हैं। क्योंकि बहुत बार रूग्णता किसी विशिष्ट घटक के कारण नहीं होती बल्कि सामान्य कारणें से भी होती हैं। ऐसे में सरकार ऐसे उद्यमों को वित्तीय पैकेज उपलब्ध करवाकर तथा कर आदि में छूट देकर उनको रूग्ण होने से बचा सकती हैं।

5– **शोध तथा विकास को बढ़ावा**– वर्तमान युग शोध तथा विकास का युग है। जो भी उद्यम शोध तथा विकास पर पर्याप्त धनराशि व्यय करता हैं वह उद्यम बाजार में लम्बे समय तक टिके रह सकता हैं। आज उपभोक्ता की इच्छा तथा आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही औद्योगिक संस्थाएं अपने उत्पाद को बढ़ाती हैं। ऐसे में शोध तथा विकास द्वारा उपभोक्ता को सर्वोपरि मानते हुए उत्पादन किया जाना चाहिए। इससे औद्योगिक रूग्णता में कमी आयेगी।

6– **आधुनिक तकनीक का प्रयोग**– औद्योगिक रूग्णता को कम करने लिए नई तकनीक तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाना चाहिए। नई तकनीक तथा मशीनों के प्रयोग से कम दर पर उचित मूल्य का उत्पाद बनाया जा सकता हैं। वर्तमान युग तीव्र प्रतिस्पर्धा का युग हैं। ऐसे में प्रतियोगिता में टिके रहने के लिए

आधुनिक तकनीक के प्रयोग द्वारा उत्पादन किया जाय जिससे उत्पादन की गुणवक्ता तथा कम लागत से बाजार में उत्पाद उपभोक्ता तक पहुच सके।

7– **शक्ति साधनों का प्रयोग**– शक्ति के साधनों में मुख्य रूप से विद्युत शक्ति, कोयला, गैस आदि आते हैं। शक्ति का साधनो का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन किया जाय जिससे वह उद्यमों की शक्ति की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में शक्ति की सुचारू व्यवस्था कर दी जाय तो उद्योग में समय पर उत्पादन शुरू किया जा सकता हैं और रूग्णता से बचाया जा सकता हैं।

8– **समन्वय**– औद्योगिक रूग्णता को कम करने के लिए औद्योगिक इाकईयों का समन्वय वित्तीय संस्थाओं, कच्चे माल की आपूर्ति करने वाली संस्थाओं, उत्पादन की विभिन्न इाकइयों के मध्य किया जाना चाहिए जिससे उद्यम अपने लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त कर सके।

9– **आतंकवादी गतिविधियों पर नियंत्रण**– औद्योगिक रूग्णता को कम करने के लिए आतंकवाद गतिविधियों तथा विध्वंशकारी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना जरूरी हैं। आतंकवादी धमकी देकर उद्योगों को बन्द करवा देते हैं। प्रबन्धको से अन्यायपूर्ण वसूली करते हैं जिससे भय का माहौल बन जाता हैं। ऐसे में प्रबन्धक उद्यम को बन्द करना ही उचित समझते हैं। ऐसे में उन उद्योगो में कार्य करने वाले कर्मचारियों तथा श्रमिकों को रोजगार का नुकसान होता हैं। साथ ही अर्थव्यवस्था में इसका विपरीत प्रभाव पड़ता हैं।

10– **करों में रियायत**– औद्योगिक रूग्णता को कम करने के लिए सरकार को उद्योगों में लगाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के करों में रियायतें दी जानी चाहिए तथा सभी क्षेत्रों के उद्योग के लिए करों की दरें समान रखनी चाहिए। राज्य सहायता के रूप में उद्योगो को दी जाने वाली सुविधाओं का पूर्ण उपयोग करने के लिए उद्योगो को प्रेरित करना चाहिए।

11– **आधारभूत सुविधाओं का विकास**– औद्योगिक रूग्णता आधारभूत सुविधाओं का विकास न होने के कारण भी आती हैं। उद्योगो के लिए आधरभूत सुविधाओं में सड़कों की व्यवस्था, व्यावसायिक वातावरण, पानी, बिजली जैसी सुविधायें मुख्य हैं। इन सुविधाओं का विकास होने से उद्योगों में कार्य वातावरण बढ़ता हैं। इन सुविधाओं की कमी से औद्योगिक विकास के साथ क्षेत्रीय विकास भी अवरूद्ध होता हैं।

9.8 औद्योगिक रूगणता के उपचार के सरकारी प्रयास

व्यापारिक बैंक रूग्ण औद्योगिक इकाइयों को अनेक रियायतें देते हैं। जिससे वह अपनी स्थिति को ठीक कर सके इसके लिए बैंक निम्न सुविधाएं प्रदान करते है।

1) इन इकाइयों को अतिरिक्त कार्यशील पूँजी की सुविधा देना जिससे वह उसके अभाव में उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर काबू पा सके।
2) ब्याज की घटी हुई दरों पर वसूली करना।
3) ब्याज के भुगतान को कुछ समय के लिए स्थगित करना।
4) बकाया ऋणों की वसूली को कुछ समय के लिए रोक देना।

रिर्जव बैंक आफ इडिया ने भी रूग्ण औद्योगिक इकाइयों के पुर्नउत्थान के लिए निम्न सुधारात्मक उपाय किये हैं जो निम्न हैं।

1– रिर्जव बैंक ने अपने यहाँएक रूग्ण औद्योगिक उपक्रम विभाग स्थापित किया हैं। जो रूग्ण औद्योगिक इकाइयों के बारे में जानकारी देगा। यह सरकार, बैंको तथा दूसरे वित्तीय संस्थाओं के बीच सम्बन्धित समस्याओं के समाधान की दृष्टि से एक तालमेल बैठाने वाली संस्था के रूप में कार्य करेगा।

2– रिर्जव बैंक ने बैकिग क्रिया एवं विकास विभाग के सभी क्षेत्रीय कार्यालयों में राज्य स्तर पर अर्न्तसंस्थागत समितियाँ स्थापित की गयी हैं। जिसका उद्देश्य बैकों, राज्य सरकारों, केन्द्र तथा राज्य स्तर की वित्तीय संस्थाओं और अन्य संगठन के बीच तालमेल बैठाना हैं।

3– रिर्जव बैंक द्वारा एक स्थायी समिति गठित की गयी हैं जिसका काम व्यापारिक बैंको और द्वीर्घकालीन ऋण देने वाली संस्थाओं के बीच समन्वय सम्बन्धी मुद्दों पर नियमित रूप से विचार करना हैं।

4– औद्योगिक विकास बैंक के औद्योगिक पुर्नरूद्धार विभाग प्रभार के अर्न्तगत एक विभाग की स्थापना की गयी हैं जो आने वाले रूग्ण अैद्योगिक इकाइयों मामलों पर गौर करेगा।

5– छोटे पैमाने के उद्योग के बारे में रिर्जव बैंक ने बैंको के उचित निर्देश दिये हैं ताकि बैंको से उन छोटी इकाइयों को समय पर सहायता मिल सके। जिनके फिर से सक्षम बनने की गुंजाइश हैं।

औद्योगिक रूग्णता की समस्या से निपटने के लिए अक्टूबर 1981 में केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक मंत्रालय, राज्य सरकारों और वित्तीय संस्थाओं के मार्गदर्शन की दृष्टि से निर्देशक सिद्धान्त बनाये जिसमें फरवरी 1982 में कुछ संशोधन किये गये थे। इन सिद्धान्त की मुख्य बाते निम्न हैं।

1) सरकार के प्रशासनिक मत्रालयों की यह जिम्मेदारी होगी कि वे अपने दायित्व में आने वाले औद्योगिक क्षेत्रों में रूग्णता को रोके और रूग्ण इकाइयों की समस्या को हल करने के लिए उपाय करे।

2) वित्तीय संस्थाएं औद्योगिक रूग्णता के बारे में जानकारी एकत्रित करने वाली व्यवस्था को सबल बनाने की दिशा में कार्य करेगी जिससे रूग्णता को रोका जा सके। रूग्णता बढ़ने की स्थिति में वित्तीय संस्थाओं को विश्वास हो कि इकाई को फिर से स्वस्थ बनाया जा सकता हैं तो इकाई का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने का विचार कर सकती हैं। यदि वित्तीय संस्था का निर्णय रूग्ण इकाई का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने के पक्ष में हो तो उसे इस सम्बन्ध में वित्त मंत्रालय से उचित दिशा निर्देश जारी किये जायेगे।

3) यदि बैंक और दूसरी वित्तीय संस्थाएं किसी औद्योगिक इकाई को रूग्णता से बचा पाने में असमर्थ हो तो वे अपने बकाया ऋणों की वसूली के लिए सामान्य बैंकिग कार्यविधि के अनुसार कार्यवाही करेगी। लेकिन ऐसा करने से पहले वह इस सम्बन्ध में सरकार को रिर्पोट देगी ताकि सरकार यह निर्णय कर सकेगी कि क्या इकाई का राष्ट्रीकरण होना है या फिर किसी अन्य उपाय के द्वारा जिसमे क्षमिकों की प्रबन्ध में भागीदारी हो सकती हैं। उसकों फिर से स्वस्थ बनाया जा सकता हैं।

4.) यदि किसी औद्योगिक इकाई के राष्ट्रीकरण के पक्ष में निर्णय लिया जाता हैं तो शुरू में उसका प्रबन्ध छः माह के लिए सरकार उद्योग नियमन और विकास

अधिनियम 1951 के अर्न्तगत अपने हाथ में लेगी ताकि इस अवधि में वह राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी कार्यवाही पूरी कर सके।

सरकार द्वारा रियायते– सरकार ने बिना सीधे हस्तक्षेप करे रूग्ण औद्योगिक इकाइयों को फिर ठीक करने के लिए कुछ रियायतें दी हैं। ये इस प्रकार हैं।

1) सरकार ने औद्योगिक रूग्ण इकाइयों को टैक्स में रियायत दी हैं तथा उन इकाइयों को भी रियायत दी हैं जो रूग्ण अैद्योगिक इकाइयों को ठीक करने के उद्देश्य से अपने में मिला लेती हैं।

2) छोटे पैमाने पर उत्पादन करने वाली रूग्ण इकाइयों को सरल शर्तों पर कुछ आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की गयी हैं। जिससे वे बैंको तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से भी आवश्यक मात्रा में ऋण लेकर अपने को रूग्णता से बाहर ला सके।

3) छोटे पैमाने पर उत्पादन के क्षेत्र में औद्योगिक रूग्णता कम करने के उद्देश्य से एक उदार अतिरिक्त मुद्रा राशि योजना शुरू की गयी। इस योजना के अर्न्तगत राज्य सरकारें छोटी औद्योगिक इकाइयों को अपनी रूग्णता को दूर कर फिर से स्वस्थ स्थिति में आने के लिए सहायता देती हैं। शर्त यह हैं कि इकाई जितनी राशि स्वयं जुटाती हैं। उसे उतनी ही राशि सरकार से मिलेगी।

सरकारी प्रयास– सरकार ने औद्योगिक रूग्णता को कम करने के लिए एक वैधानिक निगम की स्थापना की थी जिसमें आई० डी० बी० आई०, आई० एफ० सी० आई०, आई० सी० आई० सी० आई, एल० आई० सी०, एस० बी० आई तथा अन्य वाणिज्यिक बैंको ने अपन सहयोग दिया हुआ था। इस वैधानिक निगम का मुख्य कार्य रूग्ण औद्योगिक इकाइयों को वित्तीय सहायता प्रदान करना, तकनीकी तथा प्रबन्धकीय सहायता देना तथा संविलयन तथा एकीकरण की सुविधा प्रदान करना था। सन् 1985 में इस वैधानिक निगम के रूप में बदल कर इसका नाम भारतीय औद्योगिक पुर्ननिर्माण एवं विकास बैंक कर दिया गया। औद्योगिक विकास बैंक ने भी अपने यहाँ एक विशेष प्रकोष्ठ की स्थापना की गयी हैं। जो कि बीमार औद्योगिक इाकाइयों के रूग्णता के कारणों की जाँच तथा विशलेषण करती हैं और फिर उनके लिए पुर्नस्थापना कार्यक्रम चलाकर उनको रूग्णता से बाहर निकालने का प्रयास किया जाता हैं।

भारतीय औद्योगिक पुर्ननिर्माण बैंक के मुख्य कार्य निम्न हैं।

1– रूग्ण औद्योगिक इकाइयों को वित्तीय सहायता पहुचाना।

2– रूग्ण औद्योगिक इकाइयों को प्रबन्धीय तथा तकनीकी सहायता देना।

3– रूग्ण औद्योगिक इकाइयाँ फिर से स्वस्थ बन सके इसके लिए अन्य वित्तीय संस्थाओं और सरकारी संगठनों से उन्हें वित्तीय सहायता दिलाना।

4– सम्मेलन, विलयन, आदि के लिए मर्चेन्ट बैंकिग सेवाएं उपलब्ध करना।

5– बैंको को रूग्ण औद्योगिक इकाइयों के बारे में परामर्श सेवायें प्रदान करना।

औद्योगिक एंव वित्तीय पुर्ननिर्माण बोर्ड– रूग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 के अन्तर्गत भारत सरकार ने जनवरी 1987 में औद्योगिक एवं विशेष पुर्ननिर्माण बोर्ड की स्थापना की हैं। इसका कार्य अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनियों के विषय में वे सभी उपाय तय करना हैं जिससे रूग्णता को रोका जा सके और यदि कोई इकाई रूग्ण हो जाय तो उसकी रूग्णता को दूर किया जा

सके। उपाय तय हो जाने पर उन्हें किस तरह जल्दी से लागू किया जा सकता हैं। यह बताना भी बोर्ड का ही कार्य हैं। औद्योगिक इकाइयों को फिर से स्वस्थ बनाने के लिए योजना तैयार करना तय होती हैं। तो निम्न उपाय किये जा सकते हैं।

1– रूग्ण औद्योगिक कम्पनी का पुर्ननिर्माण अथवा पुनद्धार।

2– रूग्ण औद्योगिक कम्पनी के प्रबन्ध की उचित व्यवस्था के लिए प्रबन्ध को बदलना या प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेना।

3– रूग्ण औद्योगिक कम्पनी को किसी अन्य कम्पनी से मिला देना।

4– रूग्ण औद्योगिक कम्पनी के किसी हिस्से या पूरी कम्पनी को बेच देना या पट्टे पर दे देना।

5– वे सभी दूसरे उपाय करना जो अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनी की हालत ठीक करने के लिए उचित हो।

सीड़ पूँजी योजना– उद्योगो में रूग्णता को कम करने के लिए उन्हें प्रर्याप्त मात्रा में ऋण उपलब्ध करवाया जा सके इसके लिए बैंको ने सीड़ पूँजी योजना चलायी हैं। जो कि उद्योगो को रूग्णता से मुक्ति दिलाने के लिए ऋण प्रदान करती हैं।

9.9 औद्योगिक रूग्णता पर बनी हुई समितिया (Committee on Industrial Sickness)

औद्योगिक तथा निगम क्षेत्र की पुनः संरचना में आने वाली बाधाओं का अध्ययन करने के लिए तथा अक्षम इकाइयों के जल्दी समापन व श्रम इकाइयों के जल्दी पुर्ननिर्माण के लिए सुझाव देने हेतु सरकार ने मई 1993 में औद्योगिक रूग्णता तथा निगम पुनः संरचना से सम्बन्धित समिति का गठन किया।

गोस्वामी समिति– अप्रैल 1993 में औद्योगिक रूग्णता पर भारतीय सांख्यिकी संस्थान के डॉ० ओकार गोस्वामी की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया इस समिति को औद्योगिक रूग्णता एंव कम्पनियों के पुर्नगठन हेतु समिति (**Committee on Industrial Sickness and Corporate Reconstruction**) नाम से जाना जाता हैं। गोस्वामी समिति ने 13 जुलाई 1993 को अपनी रिपोर्ट वित मंत्रालय को प्रस्तुत कर दी। इस समिति की सिफारिशे निम्न हैं।

1– रूग्ण औद्योगिक इकाई के सम्बन्ध में नयी परिभाषा दी गयी तथा उन इकाइयों को रूग्ण माना गया जो उद्यम वित्तीय संस्थाओं को 180 दिन या उससे अधिक दिनों तक बैंक विस्त का भुगतान न कर पाया हो।

2– उद्यम की कार्यशील पूँजी में कमी आ गयी हो और वह अपने दैंनिक लेन–देन भी पूँजी के अभाव में नहीं कर पा रहे हैं। उनकी पूँजी की अपेक्षा दायित्वों में वृद्धि हो गयी हो।

3– रूग्ण औद्योगिक इाकइयों को दिये गये ऋणों की वसूली के लिए वसूली अभिकरण (Recovery Tribunal) बनाने की सिफारिश की हैं।

4– रूग्ण औद्योगिक इकाइयों के दावे निपटाने के लिए पाँच बड़े नगरों में फास्ट ट्रेक बाइडिंग अप ट्रिब्यूनल स्थापित करने की सिफारिशे की हैं। ये अधिकरण मुम्बई, कलकत्ता, चेन्नई, दिल्ली तथा बंगलौर में स्थापित करने का सुझाव दिया गया हैं।

5– औद्योगिक तथा वित्तीय पुर्ननिर्माण बार्ड (BIFR) की भूमिका में परिर्वतन करने की संस्तुति की हैं। समिति का दृष्टिकोण रहा है कि BIFR की रूचि बीमार

इकाइयों को बन्द करने के स्थान पर उसके पुर्नवास के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना रहा हैं। यह अकुशल तथा गैर जिम्मेदार उद्यमियों को पुरूस्कृत करने के समान हैं। इससे कर्मचारियों तथा श्रमिकों को अल्पकालीन लाभ हो सकता है। लेकिन दीर्घकाल में हानि ही होती हैं।

6 – रूग्ण औद्योगिक इकाइयों के लिए औद्योगिक एवं वित्तीय पुर्ननिर्माण बोर्ड में विवाद के निपटारे के लिए जाना अनिवार्य नहीं हैं। बोर्ड से बाहर भी विवादों का निपटारा करने के प्रयास किये जाने चाहिए।

7 – समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि औद्योगिक विकास अधिनियम में इस प्रकार परिवर्तन किये जाने चाहिए ताकि अस्वस्थ औद्योगिक इकाइयों के लिए श्रमिकों को निकालते समय या फिर इकाई को बन्द करते समय अनुमति आवश्यक न हो।

गोस्वामी समिति के सुझावों का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट होती हैं कि समिति का झुकाव पुर्ननिर्माण की तरफ न होकर रूग्ण औद्योगिक इकाइयों की बन्द करने पर अधिक हैं। सरकार का रवैया भी समिति के सुझावों पर अमल करने का रहता हैं।

बालकृष्ण इराड़ी समिति–

कम्पनियों के दिवालियापन के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए श्री बालकृष्ण इराड़ी की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया। समिति ने अपनी रिपोर्ट 31 अगस्त 2000 को तात्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को सौप दी थी। समिति ने कम्पनी के पुर्नगठन के सम्बन्ध में सरकारी नीतियों में परिवर्तन के सुझाव दिये थे। इसमें प्रस्तावित राष्ट्रीय न्यायाधिकरण (NLT- National Company Law Tribunal) के गठन की सिफारिश की गयी थी और उसे कम्पनी लॉ बोर्ड के सारे अधिकार प्राप्त न्यायाधिकरण बनाने की संस्तुति की गयी थी। समिति ने प्रस्तावित न्यायाधिकरण के माध्यम से ही वह सारे कार्य निपटारे की संस्तुति की थी जो रूग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम (SICA) के तहत फिलहाल औद्योगिक एवं वित्तीय पुर्नगठन बोर्ड (BIFR) और औद्योगिक एवं वित्तीय पुर्नगठन अपीलीय प्राधिकरण (AAIFR) द्वारा निपटाये जा रहे हैं। रूग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम (SICA) के साथ–साथ इन दोनो निकायों को समाप्त करने के सुझाव समिति ने अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत किये थे।

9.10 सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सभी क्षेत्रों का सतुलित विकास आवश्यक हैं। वही औद्योगिक रूग्णता की समस्या विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में एक अवरोध की तरह हैं। यह समस्या इतनी गम्भीर हैं कि अर्थशास्त्री तथा विद्वान भी इसे विकास को अवरूद्ध करने वाला बताते हैं। रूग्णता की यह समस्या दिनप्रतिदिन जटिल होती जा रही हैं। इसके लिए सरकार को उद्योगो को रूग्णता से बाहर लाने के लिए एक ठोस कार्ययोजना बनानी होगी जो कि सिर्फ कागजी न होकर धरातल पर काम करने वाली हो। इसके लिए सरकार को मिल मालिकों, श्रम संघो, वित्तीय संस्थाओं, के साथ मिलकर कार्य करना होगा। औद्योगिक रूग्णता का दुष्प्रभाव मिल मालिको तथा श्रमिको के साथ–साथ अर्थव्यवस्था तथा समाज सभी पर पड़ता हैं। उद्योगो

को रूग्णता से बाहर निकाल कर अर्थव्यवस्था को विकास के पथ पर ले जाया जा सकता हैं।

हमारे देश में औद्योगिक रूग्णता को एक सामाजिक समस्या के रूप में भी देखा जाता हैं। इस लिए रूग्ण औद्योगिक इकाइयों को अनेक रियायतें, प्रोत्साहन, अनुदान इस आशा दिये जाते हैं कि वे इकाइया फिर से स्वस्थ होकर उत्पादन कर सके। इसमें और तेजी से कार्य करने के प्रयास किये जाने आवश्यक हैं। क्योंकि नई औद्योगिक इकाई लगाने की अपेक्षा पुरानी औद्योगिक इकाई को पुर्नजीवित करने की लागत कम आती हैं। इससे श्रमिकों का रोजगार भी बना रहता हैं और अर्थव्यवस्था के विकास में सभी की भागादारी बनी रहती हैं।

9.11 शब्दावली

उद्योग– जहाँ वस्तुओ व सेवाओ के निर्माण के लिये व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध कार्य किया जाता है, उद्योग कहते हैं।

औद्योगिक रूग्णता– जब कोई औद्योगिक इकाई निरन्तर घाटा होने के कारण ऋण की अदायगी नहीं कर पाती हैं। तथा उसका ढ़ाचाँ असतुलित रहता हैं, उसे औद्योगिक रूग्णता कहते हैं।

कार्यशील पूँजी– कुल चालू सम्पत्ति और कुल चालू दायित्वों के अन्तर को कहतें हैं।

उदारीकरण– उदारीकरण से अभिप्राय उद्योग तथा व्यापार को अनावश्यक सरकारी नियंत्रण तथा प्रतिबन्धों से मुक्त कर स्वतंत्र इकाई के रूप में समृद्धि करने के अवसर देना हैं।

बाजारीकरण– बाजारीकरण का अर्थ माँग तथा पूर्ति की सहायता से उत्पादन के संसाधनो का आवंटन करना।

सार्वजनिक क्षेत्र– जिन उद्योगो में सरकार का स्वामित्व, प्रबन्ध और नियंत्रण होता हैं सार्वजनिक क्षेत्र कहाँ जाता हैं।

कारारोपण नीति– सरकार की विभिन्न करो से सम्बन्धित नीति।

राष्ट्रीयकरण– निजी क्षेत्र की इकाइयो का सरकार द्वारा अधिग्रहण

9.12 बोध प्रश्न

(अ) बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य :–

1. आद्योगिक रूग्णता पर गोस्वामी समिति ने 13 जुलाई 1993 को अपनी रिर्पोट वित्त मंत्रालय को दी।
2. भारतीय रिर्जव बैंक के अनुसार एक औद्योगिक इकाई उस समय रूग्ण मानी जाती है जब उसे एक साल नकद हानियां हो जाती है।
3. औद्योगिक रूग्णता से रोजगार पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।
4. वित्तीय अल्पता एवं त्रुटिपूर्ण वित्तीय प्रबन्ध भी औद्योगिक रूग्णता को जन्म देता है।
5. विकासशील राष्ट्रों में जनसंख्या का अधिकांश भाग उद्योगों में कार्यरत रहता है।

(ब) रिक्त स्थान की पूर्ति करियेः–

1. एक निवेशक के लिए वह इकाई रूग्ण है जो ..... नहीं देती है।
2. जिन उद्योंगो में सरकार का स्वामित्व, प्रबन्ध और नियंत्रण होता है .... कहा जाता हैं।
3. भारत सरकार ने औद्योगिक रूग्णता को कम करने के लिए एक वैधानिक निगम की स्थापना की जिसका नाम ..... है।

9.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)– 1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य. 5. असत्य

(ब)– (1.) लाभांश , (2.) सार्वजनिक क्षेत्र (3) भारतीय औद्योगिक पुर्ननिर्माण एवं विकास बैंक।

9.14 स्वपरख प्रश्न

1. औद्योगिक रूग्णता की परिभाषा देते हुए रूग्णता के कारण बताइये।
2. भारत में औद्योगिक रूग्णता के कारणों और परिणाम की व्याख्या किजिए।
3. औद्योगिक रूग्णता के उपचार के दीर्घकालीन उपाय क्या हैं। रूग्णता के प्रति सरकारी नीति लिखिए।
4. औद्योगिक रूग्णता के अर्थव्यवस्था पर क्या दुष्परिणाम पड़ते हैं समझाइये।
5. भारत में औद्योगिक रूग्णता की समस्या के समाधान हेतु उठाये गये विभिन्न कदमों का आलोचनात्मक मूल्याकंन किजिए।

9.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थिव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई –10 भारत में नियोजन (Planning in India)

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 भारत में नियोजन के उद्देश्य,
10.3 भारत में नियोजन की आवश्यकता
10.4 भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य प्रगति एंव मूल्यांकन
10.5 भारतीय नियोजन की उपलब्धियाँ
10.6 भारतीय नियोजन की असफलता/विफलताएँ
10.7 भावी नियोजन हेतु सुझाव
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 बोध प्रश्न
10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.12 स्वपरख प्रश्न
10.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- भारत में नियोजन की प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त कर सके।
- भारत में नियोजन की आवश्यकता क्यों हुई, इसकी जानकारी प्राप्त कर सके।
- भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों की जानकारी प्राप्त कर सके।
- पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता/असफलता तथा उपलब्धियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सके।
- भारत में भावी विकास नियोजन की सफलता के लिए सुझाओं का विश्लेषण कर सके।

10.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत को मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तथा तीव्र आर्थिक विकास के लिए एक सशक्त तथा दूरगामी परिणामों को देनेवाली योजना बनाने की आवश्यकता महसूस की गयी जिससे योजनाबद्ध आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ की जा सके। इसके लिए भारत में नियोजित आर्थिक विकास का प्रारम्भ 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ हुआ। लेकिन स्वतंत्रता के पूर्व से ही भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने तथा नियोजित विकास के लिए प्रयत्न किये जाने लगे। वर्ष 1934 ई० में सर एम० विश्वेश्वरैया ने भारत के लिए नियोजित अर्थव्यवस्था नामक पुस्तक लिखी, इन्होंने इसमें नियोजित विकास के लिए 10 वर्षीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया। 1938 में पं० जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन किया गया। लेकिन समिति की सिफारिसे द्वितीय विश्वयुद्ध तथा राजनीतिक परिस्थितियों में बदलाव के कारण क्रियान्वित नहीं की जा सकी।

सन् 1944 में मुम्बई के 08 उद्योगपतियों ने एक 15 वर्षीय योजना बाम्बे प्लान प्रस्तुत की जो कि क्रियान्वित नहीं हो पायी। लेकिन वर्ष 1950 में जयप्रकाश नारायण ने सर्वोदय योजना के नाम से योजना बनायी जिसके कुछ अंशों को सरकार ने अपनाया और साथ ही योजना आयोग का भी गठन किया। 1950 में गठित योजना आयोग को अब राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान (National Institution for Transforming India) नीति आयोग का नाम दिया गया हैं। सरकार ने यह माना हैं कि यह आयोग सरकार के थिंक टैंक (बौहिक संस्थान) के रूप में कार्य करेगा तथा केन्द्र तथा राज्यों के बीच नीति निर्माण करने वाले संस्थान की भूमिका निभायेगा।

योजना आयोग जो अब नीति आयोग बन चुका हैं। इसके द्वारा अब तक बारह पंचवर्षीय योजनाएं तथा सात वर्षीय योजनाएं बनायी जा चुकी हैं। इसमें प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 से प्रारम्भ होकर 1956 तक चलायी गयी । वर्तमान में बारहवी पंचवर्षीय योजना चलायी जा रही हैं, जो 2012 से 2017 तक चलायी जायेगी।

10.2 भारत में नियोजन के उद्देश्य

आर्थिक विकास के लिए नियोजन को महत्वपूर्ण माना गया हैं। अर्थव्यवस्था में सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखने हुए नियोजन किया जाता हैं। नियोजन के माध्यम से लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए साधनों का निर्माण किया जाता हैं। विकासशील देशों में तो सामाजिक विकास के लिए नियोजन नितान्त आवश्यक हैं। क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र अर्थव्यवस्था में तेजी लाने तथा आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए तथा लोगों के रहन सहन के स्तर को ऊपर उठाने के लिए नियोजन के मार्ग को अपनाता हैं। वर्तमान समय में आर्थिक नियोजन की धारणा से सारा विश्व प्रभावित हैं। और यह एक सर्वोत्तम प्रणाली के रूप में अपने आपको स्थापित कर चुका हैं। भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्य निम्न हैं –

1. आय की असमानता को कम करना।
2. प्राकृतिक साधनों का विदोहन एंव अधिकतम उत्पादन।
3. अधिकतम कल्याण तथा सामाजिक सुरक्षा।
4. उत्पादन को अधिकतम सीमा तक बढ़ाना।
5. पूर्ण रोजगार को प्राप्त करना।
6. विकास की गति को तेज कर आत्मनिर्भरता बढ़ाना।
7. आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को कम करना।
8. राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्ति आय को बढ़ाना ।
9. देश में विकास कार्यक्रमों का तेजी से क्रियान्वयन।
10. समाज में धन के वितरण में समानता लाना।
11. पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास करना।
12. औद्योगिक विकास को बढ़ावा देना।

इस प्रकार भारत में नियोजन के माध्यम से आर्थिक विकास की गति को बढ़ाने के प्रयास किये गये हैं। उद्देश्य के बिना नियोजन नहीं हो सकता हैं। नियोजन को कल्याणकारी राज्य के आदर्श की प्राप्ति का एक साधन माना गया

हैं। नियोजन का प्रारम्भ तथा विकास आर्थिक सम्पन्नता को प्राप्त करने के लिए ही हुआ हैं।

10.3 भारत में नियोजन की आवश्यकता

1. **कृषि क्षेत्र को विकसित करनाः**– कृषि में आत्म–निर्भर बनने के लिए नियोजन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी, क्योंकि कृषि में जनसंख्या का सबसे ज्यादा दबाव है जिससे इसमें अर्दृश्य बेरोजगारी हैं। कृषि का मानसून पर निर्भरता के कारण सिंचाई की अपर्याप्त अवस्था हैं। कृषि औजार तथा यंत्रीकरण का पिछड़ापन हैं जिससे प्रति हेक्टेयर फसल कम मिल पाती है।
2. **प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय को बढ़ाना** – नियोजन के माध्यम से मुख्य रूप से राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय को तीव्र गति से बढ़ाना हैं। पूर्व में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर बहुत धीमी रही हैं जिससे धीमी गति से प्रति व्यक्ति आय बढ़ने से सुरआ की भावना में कमी आती है और अनिश्चिता का माहौल रहने से निराशा फैलती हैं। इस तरह की स्थिति से अर्थव्यवस्था को बचाने की आवश्यकता महसूस की गयी।
3. **रोजगार के साधनों में वृद्धि करनाः**– नियोजन के माध्यम से देश की बढ़ती श्रम शक्ति को रोजगार के अवसर उपलब्ध करना जरूरी है। क्योंकि भारत में बेरोजगारी की स्थिति काफी गम्भीर हैं। देश में विद्यमान बेरोजगारी तथा अदृश्य बेरोजगारी को समाप्त करना तथा बढ़ती हुई श्रम शक्ति के लिए लाभप्रद रोजगार के अवसर प्रदान करना नितान्त जरूरी हो गया हैं।
4. **पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास** :– ऐसे क्षेत्र जहाँ पर विकास की सभावनाएं तो बहुत है लेकिन विकास नहीं हो पाया है वहाँ पर नियोजन के माध्यम से विकास कार्यक्रम चलाकर समृद्धि के द्वार खोले जा सकते हैं। वहाँ पर सड़के, पेयजल, बिजली जैसी मूलभूत सेवायें उपलब्ध कराकर लोगों को विकास के लिए प्रेरित किया जा सकता है।
5. **औद्योगिक विकास की रूकावटों को दूर करना**– नियोजन के माध्यम में किसी क्षेत्र में औद्योगिककरण के विकास में आने वाली रूकावटों को दूर किया जा सकता है। उद्योंगो में लाइसेसिंग प्रणाली, कर संरचना, सरकार की उद्योंगो के प्रति नीति, कर्मचारियों की परिवेदनायें आदि को व्यवस्थित नियोजन के माध्यम से संचालित किया जा सकता है।
6. **सन्तुलित विकास**– नियोजन के माध्यम से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का सन्तुलित विकास किया जा सकता हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने तथा सामाजिक समानता लाने के लिए अविकसित भागों का विकास करना बहुत जरूरी है। इससे सामाजिक समरसता तथा सन्तुलन बना रहता है। प्रो०बी० विटठल बाबू ने लिखा हैं नियोजन की मुख्य आवश्यकता केवल अवकसित क्षेत्र के विकास की ही नही वरन् नागरिको के जीवन स्तर में वृद्धि करने हेतु, राष्ट्रीय सकल उत्पाद को बढ़ावा देते हुए विकसित क्षेत्र को और अधिक विकसित बनाने से है।
7. **अवसर की समानताः**– राष्ट्र की सम्पूर्ण जनसंख्या को काम करने, जीविकोपार्जन के अवसर देने, तथा विकास करने के अवसर प्रदान करने

आवश्यक है। इसके लिए सभी वर्गों के लागों को शिक्षक, प्रशिक्षण तथा विकास के समान अवसर देने चाहिए, इसके लिए सभी को शिक्षा जैसे कार्यों में भागीदारी करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और नियोजन के माध्यम से रोजगार परक शिक्षा का विकास करना चाहिए।

10.4 भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य प्रगति एवं मूल्यांकन

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण योजना आयोग जिसे वर्तमान में नीति आयोग के नाम से जाना जाता है, के द्वारा किया जाता है। आयेाग पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में विभिन्न बजट प्रणाली, अन्तर उद्योग तालिकाएं रेखीय कार्यक्रम प्रणाली, विभिन्न कार्यक्रम तकनीक, सन्तुलन प्रणाली आदि का प्रयोग करता है। पंचवर्षीय योजनाओं के साथ एकवर्षीय योजनाओं का भी निर्माण आयोग द्वारा किया जाता है। योजनाओं के निर्माण में अनेकों सलाहकार समितियाँ तथा परामर्श समितियाँ आयोग को योजना निर्माण में सहायता प्रदान करती है। सन् 1951 से भारत में सुव्यवस्थित नियोजन प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। सन् 1951 से लेकर अब तक बारह पंचवर्षीय योजनाएं अपने विकास के पथ पर चल रही है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (First Five Year Plan, 1951-1956) :–

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1951 से प्रारम्भ हुई। यह योजना हैरोड़–डोमर के विकास मॉडल पर आधारित थी। इस योजना का प्रारूप दिसम्बर 1952 में प्रकाशित किया गया था। इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न है।

1. युद्ध तथा देश विभाजन से उत्पन्न आर्थिक असन्तुलन को दूर करना।
2. खाद्यान्न तथा कच्चे माल की उपलब्धता तथा उत्पादन को बढ़ाना।
3. ऐसी योजनाओं को कार्यान्वित करना जो आर्थिक सुविधाओं का निर्माण करे तथा रोजगार के सुअवसर बढ़ाये।
4. सामाजिक सेवाओं का बड़े पैमाने पर विस्तार करना, स्फीतिकारी प्रभावों को रोकना।
5. भविष्य के लिए अर्थव्यवस्था में सन्तुलित विकास की प्रक्रिया शुरू करना।
6. मूलभूत विकास कार्यक्रमों को संचालित करना।
7. देश में विकास कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए दक्ष प्रशासकीय मशीनरी का प्रबन्ध करना।

योजना की प्राथमिकताएं :–प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनने के लिए इसे सर्वाधिक महत्व दिया गया है। कृषि फसल में बढ़ोत्तरी के लिए आधुनिक उपकरण, उन्नत बीज, रासायनिक खाद्य, सिचाई की सुविधाओं का विकास करना मुख्य है।

मूल्यांकन

प्रथम पंचवर्षीय योजना– प्रथम पंचवर्षीय योजना में पाँच वर्ष की अवधि में कुल धनराशि 2378 करोड़ व्यय करने की व्यवस्था की गयी थी। किन्तु योजनावधि में केवल 1960 करोड़ ही व्यय किये गये। इसका 96 प्रतिशत घरेलू साधनों से और 6 प्रतिशत विदेशी स्त्रोंतों से उपलब्ध हुआ था। अपने उद्देश्यों को काफी सीमा

तक पूरा करके प्रथम पंचवर्षीय योजना ने नीति निर्माताओं की आशा के अनुरूप परिणाम दिये। इससे घरेलू स्तर पर उत्पादन में बढ़ोतरी हुई और अर्थव्यवस्था को मजबूती मिली। इसमें राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत की प्रति व्यक्ति आय में 11 प्रतिशत, प्रति व्यक्ति उपभोग में 80 प्रतिशत और विनियोग में 2.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। खाद्यान्न में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan, 1956-1961) :–

प्रथम पंचवर्षीय योजना के समाप्त होते ही 1 अप्रैल 1956 से 31 मार्च 1961 तक द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ किया गया। भारतीय साख्यिकीय संगठन कोलकत्ता के निर्देशक प्रो०पी०सी० महालनीबिस के मॉडल पर द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया गया। प्रथम योजना में कृषि को उच्च प्राथमिकता दी गयी थी। कृषि के क्षेत्र में लक्ष्यों को प्राप्त कर चुके थे । इसलिए द्वितीय योजना में देश में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को प्रारम्भ करना था। इससे अर्थव्यवस्था में औद्योगिक विकास को बढावा देना था। इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं।

1. राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि करना जिससे देश के नागरिकों का जीवन स्तर उन्नत हो सके।
2. उद्योंगो के विकास को बल देना जिसमें आधारभूत तथा भारी उद्योगों का विकास किया जा सके।
3. देश में बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसरो में वृद्धि करना।
4. आय तथा सम्पत्ति की विषमताओं को कम करना जिससे समानता को बनाये रख सके।

योजना की प्राथमिकताएं :– द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कृषि के विपरीत उद्योगों को महत्व दिया गया तथा एक सुदृढ़ औद्योगिक आधार का निर्माण किया गया। इस योजना का महत्वपूर्ण पहलू कल्याणकारी राज्य में समाजवादी ढ़ाँचे की स्थापना करना था। इस योजना में औद्योगिक विकास के साथ–साथ आधारभूत सुविधाओं यातायात, संचार, विद्युतिकरण जैसी सुविधाओं पर भी कार्य किया गया।

मूल्यांकन

द्वितीय पंचवर्षीय योजना– द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सरकारी क्षेत्र में वास्तविक व्यय लगभग 4672 करोड़ हुआ। द्वितीय योजना में राष्ट्रीय आय में 4.1 तथा प्रति व्यक्ति आय में 2.0 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। द्वितीय योजना में कुल परिव्यय की राशि 4672 करोड़ के सापेक्ष 1049 करोड़ की विदेशी सहायता प्राप्त हुई। इस योजना में रासायनिक उर्वरकों, बीजों आदि में भी प्रगति के कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया गया तथा ग्राम पंचायतों का विकास किया गया। इस योजना में आद्यौगिकीकरण में तेजी आयी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (Third Five Year Plan, 1961–1966)

तृतीय पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1 अप्रैल 1961 से प्रारम्भ होकर 31 मार्च 1966 तक रहा। यह योजना जॉन सैण्डी व एस० सी० चक्रवर्ती मॉडल पर आधारित थी। दो पंचवर्षीय योजनाओं के संचालन के साथ देश में नियोजन के लिए वातावरण बन चुका था। इसमें इस बात का ध्यान रखा गया कि दूसरी

योजना के कार्य को आगे बढ़ाना हैं। दूसरी योजना की धीमी प्रगति से यह पता चला कि भारत के आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा कृषि उत्पादन का धीमी गति से बढ़ना हैं। अतः तीसरी योजना में कृषि उत्पादन को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए कृषि उत्पाद का विस्तार करने और कृषि पर से जनसंख्या का दबाव कम करने के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास कम करने के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास करने का लक्ष्य रखा गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य स्वालम्बी और स्वंय स्फूर्त अर्थव्यवस्था का रखा गया। तृतीय योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं।

1) राष्ट्रीय आय में प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत से अधिक वार्षिक वृद्धि करना तथा विनियोग का ढ़ाँचा ऐसा बनाना कि अगामी योजनाओं की अवधि के दौरान यह दर नीचे न गिर पाये।
2) खाद्यानों के सम्बन्ध में आत्म निर्भर होना तथा कृषि उत्पादन बढ़ना ताकि उद्योगो की आवश्यकता पूरी की जा सके।
3) आधारभूत उद्योगो जैसे रसायन उद्योग, इस्पात, ईधन व शक्ति का विस्तार करना तथा मशीन निर्माण क्षमता विकसित करना जिससे औद्योगिकीकरण की आवश्यकताएं पूरी की जा सके।
4) देश के जनशक्ति साधनों का अधिकतम उपयोग करना तथा रोजगार के अवसरों में ठोस वृद्धि सुनिश्चित करना।
5) जनता को समान अवसर उपलब्ध कराये जाये जिससे आय तथा सम्पत्ति की असमानताओं को कम किया जा सके।

योजना की प्राथमिकताएं– इस योजना में कृषि, सिंचाई, शक्ति पर काफी बड़ी धनराशि व्यय करने की व्यवस्था की गयी। इसमें कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। साथ ही उद्योग के विस्तार को भी अनिवार्य समझा गया।

मूल्यांकन

तृतीय पंचवर्षीय योजना– तृतीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय की प्रस्तावित राशि 7500 करोड़ थी जबकि वास्तविक व्यय 8577 करोड़ था। राष्ट्रीय आय की वृद्धि 5 प्रतिशत अनुमानित की गयी लेकिन वृद्धि आधी हुई। खाद्यान्न उत्पादन में 6 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि तथा औद्योगिक उत्पादन में 14 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित था। किन्तु योजना अवधि में खाद्यान्न उत्पादन में 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। इस योजना की असफलता का मुख्य कारण मौसम सम्बन्धी प्रतिकूल परिस्थितिया, प्रारम्भिक कार्यवाही में असफलता, कार्यक्रम को अन्तिरूप देने में विलम्ब चीन तथा पाकिस्तान के साथ 1962 तथा 1965 के युद्ध आदि रहे।

वार्षिक योजनायें (Annual Plans, 1966–69)

तृतीय योजना मार्च 1966 में समाप्त हो गयी तथा अप्रैल 1966 से चतुर्थ योजना का आरम्भ होना था। वर्ष 1962 और 1965 में चीन तथा पाकिस्तान से युद्ध तथा कृषि में सूखे के कारण उत्पादन की मात्रा में भयंकर कमी के कारण विदेशी से खाद्यान्न आयात करना पड़ा। इस प्रकार आर्थिक विषमता के कारण चर्तुथ योजना को लागू नहीं किया जा सका। इसके लिए तीन वार्षिक योजनाओं के माध्यम से भारत में नियोजन की प्रक्रिया को जारी रखने का प्रयास किया । इसे योजना अवकाश भी कहा जाता हैं। तीन वार्षिक योजनाओं का लक्ष्य निम्न लिखित हैं:

1) युद्ध से उत्पन्न स्थितियों का निराकरण
2) खाद्यान्न संकट का समाधान
3) मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण
4) चौथी पंचवर्षीय योजना के लिए आधार तैयार कना।

चौथी पंचवर्षीय योजना (Fourth Five Year Plan, 1969–74)

तीन वाषिक योजनाओं को लागू करने के पश्चात अप्रैल 1969 में चौथी पंचवर्षीय योजना को तैयार कर लागू किया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना ए० एस० मान और अशाक रूद्र मांडल पर आधारित हैं। इस योजना में दो प्रमुख लक्ष्य रखे गये पहला स्थिरता के साथ विकास तथा दूसरा आत्म निर्भरता की प्राप्ति। चतुर्थ योजना में विकास क्रिया की गति को उस सीमा तक बढ़ाना रहा जहाँ पर वह आत्मनिर्भरता की ओर स्थिरता तथा प्रगति बनाये रखता हो। चर्तुथ पंचवर्षीय योजना के मूल उद्देश्य निम्न हैं:

1) लोगो के रहन–सहन के स्तर में ऐसे उपायों के माध्यम से वृद्धि करना जो समानता तथा सामाजिक न्याय को भी बढ़ावा दे।
2) राष्ट्रीय आय को 5.5 प्रतिशत वार्षिक विकास दर प्राप्त करना।
3) खाद्यानों की कीमतों तथा सामान्य कीमत को स्थिर रखना ।
4) आत्मनिर्भरता प्राप्त करना ।
5) सन्तुलित क्षेत्रीय विकास करना तथा आर्थिक क्रियाओं का विकेन्द्रीकरण करना।
6) निर्यातों को बढ़ाना तथा विदेशी सहायता राशि को घटा कर उसके वर्तमान स्तर में आधे पर लाना।

योजना की प्राथमिकताएं– चौथी पंचवर्षीय योजना में न्यायपूर्ण वितरण अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का सन्तुलित विकास, औद्योगिक विकास की गति को तेज करना, तथा औद्योगिक इकाईयों, आधारभूत और भारी उद्योगों पर विशेष बल दिया गया।

मूल्यांकन

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना– चर्तुथ पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय की राशि रूपये 15902 करोड़ थी। जबकि वास्तविक व्यय रूपये 15,779 करोड़ या इससे राष्ट्रीय आय में औसत वार्षिक वृद्धि दर 3.8 प्रतिशत प्रति व्यक्ति आय की वार्षिक वृद्धि दर 1.5 प्रतिशत रही जो लक्ष्य से नीचे थी। खाद्यान्नों का औसत वार्षिक उत्पादन 2.7 प्रतिशत की दर से बढ़ा। औद्योगिक उत्पादन में औसत वार्षिक वृद्धि दर 4 प्रतिशत रही जो लक्ष्य से बहुत कम थी। घरेलू बचत की दर को 8.4 प्रतिशत से बढ़ाकर 11.5 प्रतिशत और विनियोग की दर को 9.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 13.1 प्रतिशत करने का अनुमान लगाया गया था।

पांचवी पंचवर्षीय योजना (Fifth Five Year Plan, 1974–79)

31 मार्च 1974 को चौथी पंचवर्षीय योजना समाप्त हो गयी और 1 अप्रैल 1974 से पाँचवी योजना प्रारम्भ हुई। पाँचवी योजना से सम्बंधित सभी प्रलेखों में इस बात पर बल दिया गया कि भारत जैसे विकासशील देश में निर्धनता का अन्त तथा आर्थिक आत्म निर्भरता की प्राप्ति महत्वपूर्ण हैं जिसे प्राप्त करना बहुत आवश्यक हैं। देश में आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को रोकना, आय तथा सम्पत्ति की विषमता कम करना, तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों का सन्तुलित विकास आदि

लक्ष्यों पर पंचवर्षीय योजना में ध्यान दिया गया। पाँचवी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य निम्न हैं।

1) गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाना।
2) रोजगार के अवसरों को बढ़ाना।
3) क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करना।
4) निर्धन वर्गो को उचित स्थिर मूल्यों पर आवश्यक उपभोग की वस्तुए उपलब्ध करना।
5) जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण करना।
6) अनावश्यक उपभोग पर प्रतिबन्ध।
7) सामाजिक, आर्थिक और क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना तथा अवसरों को बढ़ावा।
8) निर्यातों को बढ़ावा आयात में कमी करना।
9) न्यूनतम आवश्यकताओं का कार्यक्रम जिसमें प्राथमिक शिक्षा, स्वच्छ पेयजल, चिकित्सालय, पौष्टिक भोजन ग्राम सड़के, आवास, ग्रामीण विद्युतीकरण, मलिन बस्तियों का सुधार कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए योजना बनायी गयी हैं।

योजना की प्राथमिकता– पाँचवी पंचवर्षीय योजना का निर्माण तकनीकी दृष्टि से पिछली योजनाओं को देखते हुए अधिक श्रेष्ठ ढंग से किया गया। अधिकतम रोजगार और अधिकतम उत्पादन के मध्यमार्गीय विकल्प को स्वीकराते हुए पाँचवी योजना से श्रम प्रधान उपभोक्ता वस्तु उद्योग को बढ़ावा दिया गया। उसमें जन सहयोग को बढ़ावा देने पर बल दिया गया।

मूल्यांकन

पाँचवी पंचवर्षीय योजना– पांचवी पंचवर्षीय योजना में सरकारी क्षेत्र में 36,250 करोड़ रूपये के परिव्यय की व्यवस्था की गयी थी। लेकिन बाद में 39,303 करोड़ का संशोधन योजना परिव्यय के रूप में कर दिया गया। योजना का कुल परिव्यय अनुमान 53411 करोड़ रूपया लगाया गया। पाँचवी योजना में कुल उत्पादन में प्रतिवर्ष 5.5 प्रतिशत की दर से वृद्धि का अनुमान किया गया था। कृषिगत क्षेत्र में प्रतिवर्ष 4.8 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया लेकिन लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ। इस योजना के अन्त तक लगभग 12500 मेगावाट बिजली की उत्पादन क्षमता में वृद्धि की गयी। 1976–77 में 2387 मेगावाट विद्युत की वृद्धि हुई।

छठी पंचवर्षीय योजना (Sixth Five Year Plan, 1980–85)

जनता सरकार ने सत्तासीन होने पर पाँचवी पंचवर्षीय योजना को एक वर्ष पहले ही समाप्त किया और 1978–80 की अवधि के लिए परिश्रमिक योजना (Rolling Plan) बनायी। जिसे छठी पंचवर्षीय योजना कहाँ गया। लेकिन सरकार गिरने के साथ ही नयी कांग्रेस सरकार ने छठी पंचवर्षीय योजना वर्ष 1980–85 प्रस्तुत की। छठी पंचवर्षीय योजना में बढ़ती हुई गरीबी के प्रति विस्तृत कार्ययोजना पर काम किया गया क्योंकि पिछले तीन दशकों में राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय में सुधार होने के बावजूद गरीबी कम होने के बजाय बढ़ रही थी। छठी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य निम्न हैं।

1) अर्थव्यवस्था के विकास में वृद्धि तथा संसाधनों के प्रयोग में कुशलता और उत्पादकता बढ़ना।
2) आर्थिक तथा तकनीकी आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए आधुनिकीकरण की प्रवृति को बढ़ावा देना।
3) गरीबी और बेरोजगारी के प्रभाव में उत्तरोतर कमी लाना।
4) ऊर्जा के देशीय संसाधनों में विकास तथा उपयोग में संरक्षण।
5) विकास की प्रक्रिया में जनता के सभी वर्गो की सहभागिता को बढ़ावा देना।
6) क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाना।
7) परिवार नियोजन कार्यक्रम को स्वैच्छिक स्वीकृति के जरिये आगे बढ़ाना।
8) आय तथा सम्पत्ति की विषमताओं को कम करना।
9) सामाजिक दृष्टि से कमजोर लोगो के जीवन स्तर में सुधार लाने के प्रयास करना।
10) शिक्षा, संचार और संस्थागत कार्यो द्वारा विकास प्रक्रिया में जनता की सहभागिता को बढ़ावा देना।

योजना की प्राथमिकता– यह योजना आगमी 15 वर्ष की द्धीर्घ अवधि को ध्यान में रखकर बनायी गयी थी। गरीबी की खराब स्थिति को सुधारने के लिए बेरोजगारी तथा गरीबी उन्मूलन के चार महत्वपूर्ण कार्यक्रम IRDP, NREP, RLEGP और TRYSEM शुरू किये गये।

मूल्यांकन

छठी पंचवर्षीय योजना– इस योजना में कुल परिव्यय 1,72,210 करोड़ रूपया निर्धारित किया गया था जिसमें से 97500 करोड़ रूपया सार्वजनिक क्षेत्र के लिए था। सार्वजनिक क्षेत्र के कुल परिव्यय का 97500 करोड़ रूपयों में इस योजना के अन्तर्गत ऊर्जा, विज्ञान और तकनीकी विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयीं । इनके विकास पर कुल व्यय का 28.1 प्रतिशत भाग व्यय किया जाना था। इस मद पर कुल व्यय का 25.4 प्रतिशत भाग निर्धारित किया गया। छठी योजना में 5.2 प्रतिशत वार्षिक विकास की दर प्राप्त करने का लक्ष्य था। इसमें कृषि क्षेत्र में 11.00 मिलियन हेक्टेयर की वृद्धि हुई।

साँतवी पंचवर्षी योजना (Seventh Five Year Plan ,1985–90)

छठी पंचवर्षीय योजना की सफलता के परिपेक्ष्य में ही साँतवी योजना तैयार की गयी। द्धीर्घकालीन विकास कार्यक्रमों पर आधारित सांतवी योजना के भीतर भारतीय योजना के आधारभूत लक्ष्य वृद्धि, आधुनिकरण, आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय के अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि, रोजगार के अवसर बढ़ाना और उत्पाकदता बढ़ाने पर बल दिया गया।

साँतवी पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं:

1) गाँव तथा शहरों में गरीबी तथा विषमताओं को कम करना।
2) शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषक आहार और आवास सुविधाओं का विकास करना।
3) रोजगार के साधनों में वृद्धि करना।
4) खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता लाना।
5) उद्योगो में प्रतिस्पर्धा, कुशलता तथा आधुनिकीकरण को बढ़ावा देना।
6) छोटे परिवार के सिद्धान्त पर स्वेच्छा से अमल करना।

7) विकास कार्यक्रमों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाना।
8) ऊर्जा की बचत तथा उसके गैर परम्परागत स्त्रोतों का विकास।
9) योजना के विकेन्द्रीकरण तथा जनता की पूर्ण भागीदारी को बढ़ावा देना।
10) पारिस्थितिकी और पर्यावरण संरक्षण तथा वानिकीकरण को प्रोत्साहन देना।

योजना की प्राथमिकताएं– साँतवी पंचवर्षीय योजना में मानव संसाधन विकास, निर्धनता निवारण, ऊर्जा संरक्षण, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि दर को कम करना, स्फीतिक प्रभावों पर निंयत्रण करना आदि को प्राथमिकता दी गयी। इस योजना में निजी क्षेत्रों में किये जाने वाले क्रियाकलापों को वरीयता दी गयी। इस योजना के द्वारा गरीबी, बेरोजगारी, क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करने वाले महत्वाकाक्षी कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया गया।

मूल्यांकन

सातवी पंचवर्षीय योजना– साँतवी पंचवर्षीय योजना के लिए कुल 3,22,366 करोड़ रूपया परिव्यय निर्धारित किया गया था जिसमें 1,60,000 करोड़ रूपया सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय किये गये। इस योजना में ऊर्जा विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी। इस मद पर समस्त सार्वजनिक परिव्यय का 30.5 प्रतिशत भाग व्यय किया जाना था। छठी योजना में 5.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर को प्राप्त करने का लक्ष्य पूरा हो गया था। अतः इस आधार पर साँतवी योजना में वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 5 प्रतिशत रखा गया था। साथ ही कृषि उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 4 प्रतिशत खाद्यान्नों का 3.7 प्रतिशत और औद्योगिक उत्पादन का 8 प्रतिशत रखा गया था। साँतवी पंचवर्षीय योजना में संसाधन गतिशीलता के लिए राजकीय या सार्वजनिक उद्यमों पर अत्यधिक ध्यान केन्द्रीय किया गया था।

वार्षिक योजनाएं (Annual Plan 1990–91, 1991–92)

साँतवी पंचवर्षीय योजना के बाद आठवी पंचवर्षीय योजना 1990 से लागू होनी थी लेकिन देश में राजनीतिक अनिश्चिता के कारण इसको इसको लागू नही किया जा सका । लेकिन विकास प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए दो वार्षिक योजनाएं चलायी गयी । इन योजनाओं को योजनावकाश का नाम दिया गया।

आँठवी पंचवर्षीय योजना (Eighth Five Year Plan, 1992–1997)

आँठवी पंचवर्षीय योजना कांग्रेस सरकार द्वारा 1992–1997 तक के लिए लागू की गयी. जान डब्ल्यू मिलर मॉडल पर आधारित आँठवी पंचवर्षीय योजना में मानव संसाधनों के गुणवत्ता में व्यापक सुधार के प्रयास किये गये. इसमें नियोजन के आधारभूत अवधारणा में परिवर्तन के प्रयास किये गये है।

आँठवी पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न है–:

1. पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहूँचने क लिए वर्ष 2000 तक का समय निर्धारित किया गया।
2. सबके लिए प्राथमिक शिक्षा तथा 15–35 वर्ष की आयु वर्ग के बीच निरक्षता का उन्मूलन करना।
3. कृर्षि के विकास को बढ़ावा देना जिससे खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकें।
4. जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण करना

5. सभी गावों में स्वच्छ पीने का पानी तथा प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाये का विकास करना।

योजना की प्राथमिकता –: आँठवी पंचवर्षीय योजना में घरेलू क्षेत्रों की निवेश हेतू प्रोत्साहन दिया गया, देश में विज्ञान तथा तकनीकी के विकास के लिए तकनीकी क्षमता को बढानें पर जोर दिया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था के समग्र विकास के लिए आधुनिकीकरण तथा प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को बढ़ाने पर जोर दिया गया।

मूल्यांकन

आँठवी पंचवर्षीय योजना– आँठवी योजना में 7,98,000 करोड़ रूपये के कुल परिव्यय का प्रावधान था। जिसमें से 4,34,100 करोड़ का परिव्यय सार्वजनिक क्षेत्र के लिए था। सार्वजनिक क्षेत्र की इस राशि में से 361000 करोड़ की राशि का निवेश तथा 73100 करोड़ रूपया चालू खर्च के लिए रखे गये। योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक परिव्यय 4,95,669 करोड़ रहा था। योजना में वार्षिक विकास दर का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत निर्धारित किया गया था। योजना में शिक्षा सामाजिक सेवायें तथा अवस्थापना क्षेत्र में सुधार हुआ हैं। योजना तक विद्यालयों की संख्या बढ़कर 5.98 लाख हो गयी। योजना में औद्योगिक क्षेत्र की कुल वृद्धि दर 7.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही जो कि निर्धारित लक्ष्य से कम थी।

नौवी पंचवर्षीय योजना (Ninth Five Year Plan, 1997–2000)

देश की स्वतंत्रता की 50वी वर्षगांठ पर नौवी पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1997 से लागू की गयी नौवी योजना में प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि विकास जल संसाधन, तथा सूचना तकनीकी पर विशेष जोर दिया गया। इस योजना में निजी संसाधानों को जुटाने तथा प्रोत्साहन पर अधिक बल दिया गया। यह योजना 15 वर्षीय दीर्घकालीन विकास को ध्यान में रखते हुए तैयार की गयी थी, इसमें विकास के लिए जीवन की गुणवत्ता, उत्पाद, रोजगार, क्षेत्रीय संतुलन तथा आत्मनिर्भरता को महत्वपूर्ण माना, नौवी योजना का लक्ष्य वृद्धि के साथ सामाजिक न्याय तथा समानता था । इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं:

1. पर्याप्त रोजगार अवसरों का सृजन तथा निर्धनता निवारण के लिए कृषि एवं ग्रामीण विकास को बढ़ावा देना
2. सभी के लिए खाद्यान्न तथा पौष्टिक आहार की सुरक्षा।
3. जनसंख्या वृद्धि दर को रोकना।
4. सभी के लिए स्वच्छ पेयजल, प्राथमिक स्वास्थ्य, सुविधायें, प्राथमिक शिक्षा तथा आवास की सुविधा प्रदान करना।
5. महिलाओं तथा समाज के पिछड़े वगों को ज्यादा अधिकार देना।
6. पंचायती राज संस्थाओं, सहकारिता तथा स्वंय सहायता समूह में लोगों की भागीदारी को बढ़ाना
7. सभी का आत्मनिर्भर बनाने हेतु अवसर प्रदान करना।

योजना की प्राथमिकता –: न्यायपूर्ण वितरण तथा समानता के साथ विकास के लक्ष्य को लेकर शुरू की गयी नौवी पंचवर्षीय योजना में कृषि, ग्रामीण विकास रोजगार, एवं निर्धनता निवारण तथा सभी के सामाजिक आर्थिक उत्थान के लिए सजगता दिखायी गयी। इस योजना के शुरू करने से यह माना गया कि इससे गरीबी तथा बेरोजगारी में कमी आयेगी तथा लोगों के जीवन स्तर में सुधार आयेगा।

मूल्यांकन

नवी पंचवर्षीय योजना– नौवी योजना में कुल रूपया 8,59,200 करोड़ रूपया खर्च करने का प्रावधान किया गया था। इस योजना में कृर्षि, सिचाई, बाढ़ नियंत्रण तथा ग्रामीण विकास के लिए कुल 1,72,568 करोड़ रूपया आवंटित किये गये थे। ऊर्जा क्षेत्र के लिए सर्वाधिक 2,22,375 करोड़ रूपया आवंटित किया गया था। नौवी योजना के लिए सवृद्धि दर 6.5 प्रतिशत निर्धारित कि गयी थी। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सकल घरेलू उत्पाद की 28.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष विनियोग की आवश्यकता रखी गयी थी। योजना में 26.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष घरेलू बचत का लक्ष्य था।

दसवी पंचवर्षीय योजना (Tenth Five Year Plan, 2002–2007)

अप्रैल 2002 को दसवी पंचवर्षीय योजना को प्रारंभ किया गया। इस योजना से पहले 5 दशकों की विकास यात्रा में आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की आधारशिला का निर्माण कर लिया गया। इसी को ध्यान में रखतें हुए दसवी पंचवर्षीय योजना में उदारीकरण निजीकरण, भूमडलीयकरण जैसे अवधारणाओं को भी ध्यान में रखते हुए कार्यक्रम तैयार किये इस योजना में जीवन की गुणवत्ता सुधार पर विशेष ध्यान आकर्षित किया गया दसवी पचंवर्षीय योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्न है–

1. इस योजना में 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धिदर का लक्ष्य रखा गया ।
2. मूलभूत सामाजिक सेवाओं जैसे–शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल तथा सफाई सुविधाओं को सभी को उपलब्ध करवाना
3. खाद्यान्न तथा अन्य उपभोग वस्तुओं में आत्मनिर्भर बनना।
4. सभी व्यक्तियों तथा समूहों को अवसरों का आवटंन ।
5. संसाधनों के उपयुक्त प्रयोग के लिए प्रशासन में सुधार ।
6. सभी को रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाना।
7. सामाजिक विषमताओं में कमी करना ।
8. साक्षरता दर में वृद्धि करना ।
9. शिशु मृत्यु दर को घटाना ।
10. सभी गांवों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध करवाना ।
11. वृक्षारोपण तथा वानिकी कार्यो का विस्तार करना ।
12. सभी बड़ी तथा छोटी प्रदूषित नदियों की सफाई कर उन्हें स्वच्छ करना ।
13. जनसंख्या वृद्धि दर को कम करना ।

योजना की प्राथमिकताएं– शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल तथा विकास सभी के साथ मिलकर कार्य करने की योजना पर कार्य किया गया । इससे अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय संरचनात्मक परिवर्तन की आशा की गयी क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर कर सन्तुलित क्षेत्रीय विकास तथा निर्धनता को कम करने को प्राथमिकता दी गयी ।

मूल्यांकन

दसवीं पंचवर्षीय योजना– दसवी योजना के अर्न्तगत सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय 15,92,300 करोड़ रूपया प्रस्तावित किया गया था। जिसमें से 9,21,291 करोड़ रूपये केन्द्रीय योजना एवं 6,71,000 रूपया राज्यों एवं संघ शासित प्रदेशों के लिए परिव्यय निर्धारित किया गया। इस योजना में 7.74 प्रतिशत की औसत

सालाना वृद्धि दर प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया हैं। कृषि में सालाना 4 प्रतिशत वृद्धि दर का लक्ष्या था। लेकिन 2.30 का वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त किया जा सका। उद्योग तथा सेवाओं मे क्रमशः 8.90 प्रतिशत तथा 9.40 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था। जिसमें 9.17 तथा 9.30 प्रतिशत की सालाना वृद्धि प्राप्त की गयी।

ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना (Eleventh Five Year Paln, 2007–2012)

भारत में ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना का अनुमोदन राष्ट्रीय विज्ञान परिषद द्वारा 19 दिसम्बर 2007 को कर दिया गया । इस योजना में लक्ष्य तीव्र और अधिक समावेशी विकास की ओर रखा गया। ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना की रणनीति का एक लक्ष्य प्राथमिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाएं जनसंख्या के एक बडे भाग को उपलब्ध करवाना है। इस योजना में मानव संसाधन को और विकसित करने तथा सशक्त करने के लिए प्रौद्योगिकी तथा इंजीनियरिंग संस्थानों पर जोर दिया गया। पर्यावरण संरक्षण तथा पुर्नवास पर योजना में महत्वपूर्ण कार्य करने हेतू योजना चलाने का भी प्रावधान किया गया ।ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न है–

1. सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि को 9 प्रतिशत पर बनायें रखना ।
2. शिक्षित बेरोजगारी को घटाकर 5 प्रतिशत से नीचे करना।
3. साक्षरता प्रतिशत को बढाना ।
4. प्राथमिक शिक्षा को और विस्तार देना तथा सभी क्षेत्रों के बच्चों को शिक्षा उपलब्ध करवाना ।
5. महिलाओं तथा बालिकाओं के लिए 30 प्रतिशत पर आरक्षण का प्रावधान ।
6. सभी गांवो को टेलीफोन तथा ब्राडबैंड़ से जोडना ।
7. गरीबों के लिए आवास उपलब्ध करवाना ।
8. वनीकरण तथा वानिकी के वृद्धि करना ।
9. शहरों में डब्ल्यू0 एच0 ओं0 के मानक के अनुरूप वायु गुणवत्ता प्रदान करना ।
10. नदियों तथा नगरीय जल को स्वच्छ करने के लिए योजना को बनाना ।

योजना की प्राथमिकता –

ग्यारहवी योजना 9 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य रखकर बनायी गयी थी। इस योजना में 7 करोड़ से रोजगार अवसर उपलब्ध करवाने का लक्ष्य रखा गया था । इसके साथ ही साक्षरता दर को बढाकर 75 प्रतिशत करने का लक्ष्य था ।ऊर्जा संकट से निवारण के लिए नाभिकीय शक्ति तथा नवकरणीय ऊर्जा का विस्तार किया गया। साथ ही निर्धन गरीब परिवारों को निःशुल्क विद्युत उपलब्ध करवाने के प्रयास किये गये

मूल्यांकन

ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना– ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय 36,44,718 करोड़ रूपया प्रस्तावित किया गया हैं। जिसमें से 21,56,571 करोड़ रूपया केन्द्रीय योजनाओं एवं 14,88,147 राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों के लिए परिव्यय निधारित किया गया हैं। दसवीं योजना की तुलना में सर्वाजनिक क्षेत्र में कुल परिव्यय में लगभग 13.9 प्रतिशत की वृद्ध की गयी हैं। योजना में 9 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया था। जिसे बाद में संशोधित

करके 8.1 प्रतिशत किया गया हैं। कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत विकास दर निर्धारित की गयी थी। किन्तु योजना में 3.2 प्रतिशत की विकास दर हासिल की जा सकी। खाद्यान्न के उत्पादन में 2 करोड़ टन की वृद्ध का अनुमान लगाया गया और राष्ट्रीय खाद्य मिशन योजना लागू की गयी और साफ्टवेयर और सेवाओं में निर्यात को बढ़ाने के लिए प्रयास किये गये थे।

बाहरवी पंचवर्षीय योजना (Twelfh Five Year Plan, 2012–2017)

देश की बारहवी पंचवर्षीय योजना का प्रारंभ अप्रैल 2012 से किया गया इस योजना की औसत वार्षिक वृद्धि दर के लक्ष्य को 8 प्रतिशत कर दिया गया। साथ ही पाँच वर्ष की अवधि में गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार के पाँच करोड़ न्झये अवसर सृजित करने तथा देश में निर्धनता अनुपात में 10 प्रतिशत की कमी करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। बारहवी पंचवर्षीय योजना क उद्देश्य निम्न है–

1. कृषि उत्पादन को बढ़ावा ।
2. गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का सृजन ।
3. निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों का संचालन ।
4. सभी गावों में विद्युतीकरण ।
5. योजना के अन्त तक सभी गांवा को बारहमासी सड़को से जोड़ना ।
6. शिशु मृत्यु दर में कमी लाना।
7. रोजगार के नये अवसरों का सृजन करना।
8. सभी को प्राथमिक से लेकर उच्चशिक्षा के समान अवसर उपलब्ध करवाना। निर्धन छात्रों को शिक्षा हेतु छात्रवृत्ति प्रदान करना।
9. प्रत्येक गाँवों में स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था करना।
10. शहरों तथा गाँवों में बैंकिग सेवाओं का विस्तार करना।
11. आधार सम्बद्ध बैंक खातों के माध्यम से बारहवी योजना के अन्त तक बड़े सब्सिडी एवं कल्याकारी सम्बंधित लाभार्थी भुगतानों को प्रत्यक्ष नकदी हस्तान्तरण योजना के अन्तर्गत लाना।

योजना की प्राथमिकताएं– बारहवीं पंचवर्षीय योजना में ऊँची संवृद्धि दर तथा विकास के लिए अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र को बढ़ाने की योजना बनायी गयी जिससे विकास की गति को तीव्र किया जा सके। योजना में बारहमासी सड़के, रेल सुविधा का विस्तार, विमान सेवा, जल परिवहन, दूरसंचार, सिंचाई विद्युत, पेयजल, आदि को शामिल किया गया हैं।

10.5 भारतीय नियोजन की उपलब्धियाँ (Achievements of the Indian Planning)

प्रथम पंचवर्षीय योजना जो कि सन् 1951 में शुरू की गयी थी। वर्तमान तक नियोजन की अनेक उपलब्धियाँ है। जो निम्न प्रकार हैं।

1. **आर्थिक विकास की दर–** योजना काल में विकास दर में वृद्धि हुई हैं। जो कि निम्न तालिका से स्पष्ट हैं।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में विकास की दर (प्रतिशत)

(योजना)	(लक्ष्य)	(वास्तविक विकास दर)
प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56)	2.1	3.3
द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61)	4.5	4.3

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–66)	5.6	2.8
चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–74)	5.7	2.1
पंचम पंचवर्षीय योजना (1974–79)	4.4	4.9
छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85)	5.2	5.6
सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90)	5.0	6.0
आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97)	5.6	6.8
नौवी पंचवर्षीय योजना (1997–02)	6.5	5.4
दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–07)	8.0	7.7
ग्यारवी पंचवर्षीय योजना (2007–12)	9.0	7.9
बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17)	8.0	–

प्रथम पंचवर्षी योजना से लेकर बारहवीं पंचवर्षीय योजना तक आर्थिक विकास दर के लक्ष्यों को प्राप्त करने के साथ ही उसमें वृद्धि भी देखी जा सकती हैं।

2. **कृषि क्षेत्र में विकास–** प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि पर ही मुख्य फोक्स था और यह योजना अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल भी रही। भारत कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की तरफ बढ़ रहा हैं। वर्ष 1950–51 में कृषि विकास की दर 0.5 प्रतिशत थी। वही यह 2007–12 में 3.2 प्रतिशत हो गयी तथा 2012–17 के लिए कृषि क्षेत्र में 4.0 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया हैं। सरकार कृषि क्षेत्र में खाद्य सुरक्षा पर कार्य कर रही हैं जिसमें खाद्यान्न उत्पादन को इतना बढ़ाना है कि आगे दस वर्षो तक भारत में कोई भूखा न रहे। कृषि क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाकर रोजगार तथा आय में वृद्धि के प्रयास भी किये जा रहे हैं। कृषि में प्रति हेक्टेयर क्षेत्रफल में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए पानी, उर्वरकों, कीटनाशकों तथा उन्नत बीजों के संरक्षण को बढ़ाया गया। देश में हरित क्रांति को लाने का प्रयास किया गया जिसमें हमारे वैज्ञानिक सफल भी हुए हैं।

3. **उद्योगों में प्रगति–** द्वितीय पंचवर्षीय योजना से औद्योगिक क्षेत्र में तीव्र गति से वृद्धि हुई तथा औद्योगिक विकास को उन्नति के मार्ग पर बढ़ाने के लिए एक मजबूत आधार का निर्माण किया गया। इस योजना के समय तथा उसके बाद कई नये उद्योगों की स्थापना की गयी। आज भारत इंजीनियरिंग तथा मशीनों के निर्माण तथा निर्यात में तेजी से काम कर रहा हैं। तृतीय योजना में तो आधारभूत उद्योगों जैसे इस्पात, रसायन उद्योग, ईधन व शक्ति का विस्तार करना तथा मशीन निर्माण क्षमता स्थापित करना जिससे देश में आगामी 10 वर्षो में स्वय के साधनों से औद्योगिकीकरण की आवश्यकता पूरी की जा सकें। प्रथम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास दर 5.54% थी 1951–74 का औसत विकास दर 2.81 प्रतिशत थी। जो 1974–90 की औसत विकास दर बढ़कर 5.81 प्रतिशत हो गयी। दसवीं तथा ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास दर 9.17 तथा 6.6 प्रतिशत रही। परन्तु वर्ष 2012–13, 2013–14 तथा 2014–15 में यह दर 2.3 प्रतिशत 4.5 प्रतिशत तथा 5.9 प्रतिशत रही। आज विज्ञान तथा टैक्नोलॉजी के विकास में भारत की विदेशी विशेषज्ञों पर निर्भरता भी कम हो गयी हैं। आज लेटिन अमेरिकी देशों

तथा अफ्रीका के देशों को टैक्नोलॉजी तथा विशेषज्ञों की सुविधा भी भारत प्रदान करने लगा हैं।

4. **परिवहन तथा संचार साधनों में प्रगति**– कोई भी अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास के बिना लम्बे समय तक अपने सदस्यों का कल्याण नहीं कर सकती हैं। इसलिए आर्थिक विकास के लिए विद्युत, परिवहन तथा संचार आदि क्षेत्रों पर ज्यादा ध्यान देना होगा तभी जनसामान्य के हितों के साथ न्याय हो सकेगा। इसी को ध्यान में रखते हुए नियोजन काल में परिवहन तथा संचार साधनों का विस्तार तथा विकास हुआ हैं। पंचवर्षीय योजनाओं में परिवहन तथा संचार में कुल व्यय की स्थिति निम्न प्रकार हैं।

वर्ष	कुल परिव्यय	कुल का प्रतिशत भाग
1956–57	1300	28 प्रतिशत
1951–62 से 1965–66	5112	24.6 प्रतिशत
1979–80	15546	15.9 प्रतिशत
1985–90	44804	16.36 प्रतिशत
1992–97	81036	18.7 प्रतिशत
1997–2002	236653	19.4 प्रतिशत
2002–2007	324945	15.2 प्रतिशत
2007–2012	667823	15.7 प्रतिशत

सरकार ने परिवहन तथा संचार में बारहवी योजना में 1,28,5056 करोड़ रूपया व्यय करने के लक्ष्य रखा हुआ हैं। रेलमार्गो की लम्बाई जो वर्ष 1951 में 53.6 हजार कि० मी० थी । वह मार्च 2012 तक बढ़कर 64,400 कि० मि० हो गयी हैं। इसी प्रकार राष्ट्रीय राजमार्गो की लम्बाई जो 22.2 हजार कि० मी० थी। मार्च 2012 तक 70.9 हजार कि० मी० हो गयी हैं। सड़क परिवहन तथा राजमार्गा मंत्रालय भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के साथ मिलकर स्वर्णिम चतुर्भुज योजना पर कार्य कर रहा हैं। जिसमें 13150 किमी० राजमार्गो का विकास किया जाना शामिल हैं। संचार के क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के साथ–साथ निजी क्षेत्र में भी काफी तेजी से बढ़ोतरी हो रही हैं। भारत का दूर संचार नेटवर्क एशिया का सबसे बड़ा दूर संचार नेटवर्क हैं। भारत में 1950–51 में 36000 हजार डाकघर थे। जो वर्तमान में बढ़कर 2,00,000 से ऊपर हो चुके हैं।

5. **सामाजिक सेवाओं का विकास**– सामाजिक सेवाओं में शिक्षा, स्वास्थ, आवास, पेयजल, विद्युत को शामिल किया जाता हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर वर्तमान तक सरकार ने निरक्षता को दूर करने, प्राथमिक शिक्षा को सभी के लिए सुलभ बनाने और शिक्षा को अधिक रोजगाररोनमुखी और समाज के लिए सार्थक बनाने को प्राथमिकता दी गयी। ग्रामीण क्षेत्रों और शहरों की गरीब जनता के लिए स्वास्थ की देखभाल तथा चिकित्सा सेवाएं सुलभ करवाने के लिए अस्पतालों, मेडिकल कालेजों के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा हैं। परिवार कल्याण कार्यक्रमों, पोलियो उन्मूलन कार्यक्रमों, टीकाकरण कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा हैं। सभी गाँवों को बिजली पहुँचाना सरकार का मुख्य लक्ष्य हैं और इसके लिए सरकार काफी तेजी से काम कर रही हैं।

पेयजल के लिए सरकार ने योजना बनायी है जिसके तहत सभी को स्वस्थ पेयजल मुहौया करने का लक्ष्य रखा हैं। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में निर्धन व्यक्तियें के लिए सस्ते दर पर आवासों का निर्माण किया जा रहा हैं। तथा उसके साथ ही शौचालयों का निर्माण को प्राथमिकता के साथ पूरा किया जा रहा हैं।

6. **रोजगार अवसरों में वृद्धि**– आर्थिक नियोजन का दूसरा प्रमुख उद्देश्य देश की बढ़ती श्रम शक्ति को लाभप्रद रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाना हैं। इसके लिए योजनाकाल में 25 करोड़ अतिरिक्त रोजगार का सृजन किया गया। सरकार ने रोजगार में वृद्धि के लिए स्वरोजगार कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया। स्वरोजगार के लिए बेरोजगारों को अनेक प्रकार से सहायता दी गयी। जैसे उनके लिए व्यवसाय सम्बन्धी प्रशिक्षण की व्यवस्था, आधारित संरक्षण का निर्माण, वित्तीय सहायता की व्यवस्था की गयी। इसके साथ–साथ रोजगार के लिए कुछ विशिष्ट कार्यक्रम भी अपनाये गये। जिसमें जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम योजना, अधमित विकास कार्यक्रम, प्रधानमंत्री रोजगार योजना, मनरेगा, रोजगार छतरी योजना जैसे अनेक महत्वाकाक्षी योजनाये मुख्य हैं। इन योजनाओं के माध्यम से अतिरिक्त रोजगार का सृजन कर ग्रामीण विकास के साथ–साथ अधिकतर व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करना मुख्य लक्ष्य हैं।

7. **पर्यावरण सुरक्षा**– पंचवर्षीय योजना में पर्यावरण को प्रदूषित होन से बचाव करने हेतु अनेकों महत्वाकाक्षी परियोजनाओं का सुभारम्भ किया गया हैं। गंगा को प्रदूषण से मुक्त करने हुते नमामि गंगे परियोजना गोमुख से कन्याकुमारी तक चलायी गयी हैं। साथ ही अन्य नदियों को प्रदूषण मुक्त हेतु कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। वातावरण को प्रदूषण मुक्त करने हेतु विदेशों की तर्ज पर मानक निर्धारित किये गये हैं।

8. **विज्ञान एवं तकनीकी**– पंचवर्षीय योजनाअें में विज्ञान तथा तकनीकी में काफी प्रगति हुई हैं। आज भारत अंतरिक्ष में अपने स्वदेश निर्मित सेटेलाइट तथा उपकरण प्रक्षेपित करने की दिशा में आत्म निर्भर हो गया है। साथ ही विदेशी सेटेलाइटों को भी अंतरिक्ष में प्रक्षेपित कर रहा हैं। आज भारत में तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी में मानव शक्ति विशषज्ञों की एक बड़ी संख्या हैं जो विश्व में विज्ञान के क्षेत्रों में कई मिशनों में कार्य कर रही हैं।

9. **सामाजिक सुरक्षा तथा जीवन स्तर में सुधार**– पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक सुरक्षा से संबन्धित विभिन्न कार्यक्रमों के संचालन द्वारा समाज में व्यक्तियों को विकास के अवसर प्रदान किये गये हैं जिससे उत्पादन, रोजगार तथा उपभोग आदि क्षेत्रों में काफी सुधार हुआ हैं। इससे लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ हैं। आज भारतीय अर्थव्यवस्था दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में शामिल हैं जो कि सामाजिक सुरक्षा तथा जीवन स्तर में सुधार हेतु विशेष कार्य कर रहे हैं।

10.6 भारत में आर्थिक नियोजन की सफलताएं विफलताएं (Failure of Economic Planning in India)

भारत में नियोजन के 66 वर्षों में अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ तथा प्रगतिशील बनाने का प्रयास किया गया हैं। लेकिन इसमें जितनी सफलता मिलनी चाहिए थी उतनी सफलता नहीं मिल पायी हैं। आज भी हमारी 26 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी के नीचे जीवन यापन करने को मजबूर हैं। आज ग्रामीण तथा शहरों में स्वच्छ पेयजल बिजली, आवास जैसी मूलभूत सेवायें भी सभी लोगों को नहीं मिल पायी हैं। नियोजन की विफलताएं निम्न हैं।

1. **न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम की विफलता**– नियोजन काल में शुरू किये गये न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का उद्देश्य लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना उनके स्वास्थय तथा शिक्षा को प्रोन्नत करना हैं। इस योजना में प्रारम्भिक शिक्षा, प्रौढ़शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ, जलपूर्ति, ग्रामीण सड़के, ग्रामीण विद्युतीकरण ग्रामीण आवास, गन्दी बस्तियों का सुधार, पोषाहार आदि शामिल हैं। लेकिन इन कार्यक्रमों में उतनी प्रगति नहीं हो पायी हैं। जितनी होनी चाहिए थी।
2. **रोजगार के प्रति उपेक्षा**– भारत में आर्थिक नियोजन के प्रमुख उद्देश्य में बढ़ती श्रमशक्ति को रोजगार के प्रर्याप्त अवसर उपलब्ध करवाना है लेकिन नियोजन के 65 वर्ष बाद भी रोजगार के उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पाये हैं । योजना में स्वरोजगार के द्वारा रोजगार उपलब्ध करवाने की बात कही गयी थी। लेकिन इस सम्बन्ध में कोई व्यापक दृष्टि का विकास नहीं हो सका हैं और न ही कोई कार्यक्रम प्रस्तुंत किया जा सका। कृषि क्षेत्र में तो रोजगार के अवसर काफी कम है बल्कि ज्यादा व्यक्ति कृषि कार्यों में लगे हैं। कृषि क्षेत्र में रोजगार लम्बे समय के लिए भी नहीं होता है योजना में भारी उद्योग एवं विकास की असन्तुलित तकनीक को महत्व देकर बेरोजगारी बढ़ाने के और आसार पैदा कर दिये हैं।
3. **निर्धनता पर प्रहार बही**– भारत में आज भी लगभग 26% प्रतिशत लोग आज भी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे है। सरकार ने गरीबी को दूर करने के लिए तथा बेरोजगारी को कम करने के लिए अनेक विकास कार्यक्रम चलाये हैं। लेकिन इसके बावजूद गरीबी का स्तर वही पर बना हुआ है तथा निर्धनता अनुपात अभी भी काफी ऊँचा हैं।
4. **राष्ट्रीय आय तथा प्रतिव्यक्ति आय में धीमी प्रगति**– आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय आय तथा प्रतिव्यक्ति आय को बढ़ाना है । योजना काल में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि भी हुई है लेकिन वृद्धि की यह दर काफी धीमी रही । कमोबेश इसमें और वृद्धि के लिए कोई नहीं पहल शुरू नहीं की जा सकी और राष्ट्रीय आय तथा प्रतिव्यक्ति आय न्यूनतम स्तर पर ही बनी हुई हैं।
5. **आय तथा सम्पत्ति की विषमताएं**– भारत में नियोजित विकास के फलस्वरूप आय तथा धन का वितरण निर्धन वर्ग के बजाय धनी वर्ग की तरफ ज्यादा हुआ है। इससे आय तथा सम्पत्ति का संकेन्द्रण इस तरह का हुआ है कि अमीर और अमीर हो गये है और निर्धन और निर्धन हो गये है। यह स्थिति ग्रामीण तथा शहरों दोनों ही क्षेत्रों में हो गयी है। शहरों में चन्द्र लोग बेहद समृद्ध हैं और बहुसंख्यक निर्धन अति निर्धन है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृर्षि भूमि के वितरण में भी विषमताएं है लाभाश 3 प्रतिशत

उच्चवर्ग के परिवारों के पास कुल कृषि भूमिका लगभग आधा भाग है। जबकि 75 प्रतिशत परिवारों के पास केवल 10 प्रतिशत भूमि है।

6. **अवैध आय और कालेधन में वृद्धि**– भारत में नियोजन के बाद से अनुचित साधनों द्वारा प्राप्त आय, तथा काले धन में लगातार वृद्धि हुई है। इसके लिए कोटा व लाइसेंस प्रणाली कीमत स्फीति, नियंत्रण व्यवस्था, कर वचन तथा गैर कानूनी सट्टेबाजी मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं। इसके परिणाम स्वरूप यह धारणा बन गयी है कि भारत में कालेधन की एक समानान्तर अर्थव्यवस्था और समानान्तर शासन विद्यमान है।
7. **कृषि क्षेत्र मं असफलता** – प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि में आत्मनिर्भर बनने के लिए पहल की गयी और इसका साकारात्मक परिणाम भी आने लगे लेकिन उससे बहुत सी समस्याएं का हल नहीं निकल पाया। कृषि की मानसून पर निर्भारता में कमी नही आयी हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अर्दृश्य बेरोजगारी रहती हैं। कृषि यन्त्रीकरण का पिछाड़ापन हैं। रासायनिक खाद एवं नवीन पद्धति का अभाव हैं। तथा कृषि पर जनसंख्या का दबाव है जिसके कारण कृषि में आशातीत परिणाम नहीं निकल पाये हैं।
8. **औद्योगिक विषमता**– नियोजन काल में औद्योगिक उत्पादन तथा औद्योगिकीकरण में वृद्धि हुई हैं। लेकिन इसकी तुलना में मध्यम तथा छोटे आकार के उद्योगों की उपेक्षा की गयी। कुछ बड़े औद्योगिक घराने ही लाइसेंस तथा कोटा नीति के माध्यम से सामर्थवान बन गये। इसका विपरीत प्रभाव सार्वजनिक उद्योगो पर पड़ा और सार्वजनिक उद्योग गलत निर्णयों के कारण बन्दी के कगार पर पहुँच गये।
9. **मानवीय मूल्यों में कमी**– भारत में नियोजन काल के दौरान मानवीय मूल्यों में काफी गिरावट आयी हैं। व्यक्तियों में बेईमानी, छूसखोरी, धोखेबाजी, चोरी जैसे अनैतिक प्रवृत्तियां तेजी से बढ़ती जा रही हैं। आज राजनीतिक तथा प्रशासनिक भष्टाचार अपनी चरम सीमा पर हैं। आज येन केन प्रकारेण अपने लक्ष्यों में प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

10.7 भावी नियोजन हेतु सुझाव

नियोजन काल में योजनाओं को सफल बनाने हेतु सुझाव निम्न हैं :

1. **जन सहयोग को बढ़ावा**– योजना को सफल बनाने के लिए आवश्यक हैं कि व्यापक स्तर पर जन सहयोग को बढ़ावा दिया जाये। जनता को योजनाओं के बारे में जानकारी देकर तथा उसमें उनकी भागीदारी को सुनिश्चित कर उत्तम परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। यह सिद्ध भी हो चुका हैं जहाँ पर जनता ने अपना सहयोग दिया है वहाँ पर सरकार के द्वारा उनके लिए किये गये कार्य सफल भी हुए हैं।
2. **कृषि क्षेत्र को बढ़ावा**– हमारी अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती हैं और कृषि कार्य ही उसकी आजीविका का मुख्य साधन हैं। इसके लिए आवश्यक है कि कृषि में आधुनिक यन्त्रों, उर्वरकों, बीजों के माध्यम से प्रति हेक्टयर उत्पादकता को बढ़ावा जाय जिससे लोगों को रोजगार के साथ–साथ धन लाभ भी मिले । उत्पादन बढ़ने पर उससे अनेक उत्पाद बनाये जा सकते हैं। इसके लिए ग्रामीणों को प्रशिक्षित कर लाभ दिया जा सकता हैं।

3. **बचत तथा विनियोग को प्रोत्साहन**– पंचवर्षीय योजना में देश में पूँजी निर्माण को गति देने के लिए बचत तथा विनियोग को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। लोगो में बचत को प्रोत्साहित करने के लिए व्यापक कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए तथा उन्हें अपने धन को विकास कार्यो में लगाने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।
4. **मूल्यों पर नियंत्रण**– देश में अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए मूल्यों में नियंत्रण बनाये रखना आवश्यक हैं। इसके लिए राजकोषीय तथा मौद्रिक नीति को इस प्रकार लागू करना चाहिए जिससे वह बाजार में स्फीतिक प्रभावों को नियंत्रित कर सके।
5. **सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों में समन्वय**– सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों में समन्वय द्वारा नियोजन काल में किये जाने वाले कार्यो को समन्वित प्रयास द्वारा सफल बनाया जा सकता हैं। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी न होकर सहयोगी होने चाहिए। एक दूसरे के व्यापारिक हितों को ध्यान में रखते हुए यदि यह समन्वित प्रयास करेगे तो नियोजन काल में सरकार इसका लाभ अर्थव्यवस्था के विकास में सभी तक पहुँचा सकती हैं।
6. **जनसंख्या वृद्धि पर रोक**– नियोजन की सफलता के लिए बढ़ती हुई जसंख्या पर रोक लगाना बहुत जरूरी हैं। योजना का लाभ तभी सभी व्यक्तियों तक पहुँच सकता है जब सदस्यों की संख्या सीमित हो। बढ़ती हुई जनसंख्या को योजना का पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाता हैं। इसलिए बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित करना आवश्यक हैं। तभी योजना का लाभ सभी व्यक्तियों तक पहुँच पायेगा।
7. **विलासिता की वस्तुओं पर रोक**– योजना का लाभ सभी व्यक्तियों तक पहुँचाया जाय । इसके लिए विलासिता की वस्तुओं पर रोक लगायी जानी आवश्यक हैं।
8. **केन्द्र तथा राज्य में समन्वय**– नियोजन की सफलता केन्द्र तथा राज्यों के मध्य अच्छे सम्बन्धों पर निर्भर करती हैं। केन्द्र तथा राज्यों के बीच आपसी समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। इन योजनाओं में चूकि केन्द्र बिन्दु एक व्यक्ति होता हैं जिसको एक अच्छा जीवन जीने के लिए योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता हैं। ऐसे में केन्द्र तथा राज्य मिलकर उसका जीवन उन्नत करने के लिए मिलकर समन्वित प्रयास करेगे तो इसका लाभ निश्चित रूप से उस व्यक्ति को जरूर मिलेगा जिसके लिए योजना बनायी गयी हैं।

10.8 सारांश

भारत में नियाजन के 67 वर्ष के काल में अनेक उतार चढ़ाव आये और इसमें उपलब्धियों तथा विफलताओं का मिश्रित संयोग भी रहा हैं। आज योजना में काफी सुधार की गुंजाइश हैं और इसमें सुधार करने की आवश्यकता भी हैं। आज पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत क्षेत्रीय नियोजन की आवश्यकता पर बल देना जरूरी हैं। क्योंकि अलग–अलग क्षेत्रों में विकास की आवश्यकताएं अलग–अलग हैं। आज पिछड़े क्षेत्रों तथा पिछ़ड़े वर्गो कें विकास के लिए प्राथमिकताएं अलग हो सकती हैं। इसके लिए जरूरी है कि सभी क्षेत्रों के लिए एक नीति न बनाकर क्षेत्रवार

योजनाएं बनाना, उनका क्रियान्वयन, समन्वय तथा उसकी सफलता को सुनिश्चित करना जरूरी हो गया हैं। आर्थिक नियोजन की क्रियाओं को व्यवस्थित तथा सुचारू रूप से चलाकर एक आम नागरिक के हितों को ध्यान में रखकर कार्य किया जायेगा तो योजना की सफलता को सुनिश्चित किया जा सकता हैं और वैश्वीकरण के इस युग में सार्थक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

10.9 शब्दावली

मिश्रित अर्थव्यवस्था– वह अर्थव्यवस्था जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र दोनो का सह अस्तित्व हो।

प्रति व्यक्ति आय– प्रति व्यक्ति आय से आशय किसी देश के लोगों की एक निश्चित अवधि में प्राप्त होने वाली औसत आय से हैं। इसका अनुमान राष्ट्रीय आय को जनसंख्या से भाग देकर लगाया जाता हैं।

सार्वजनिक सेक्टर– उस क्षेत्र को सार्वजनिक सेक्टर कहते हैं जिसके अन्तर्गत संसाधन सरकार के स्वामित्व में होते हैं।

बेरोजगारी– बेरोजगारी से आशय एक ऐसी स्थिति जिसमे व्यक्ति वर्तमान मजदूरी की दर पर काम करने को तैयार हैं परन्तु उसे काम नहीं मिलता हैं।

निर्धनता– निर्धनता से तात्पर्य समान का एक वर्ग जो अपने जीवन स्वास्थ्य, कार्य कुशलता के लिए आवश्यक न्यूनतम उपयोग आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता हैं।

क्षेत्रीय नियोजन– अर्थव्यवस्था में किसी क्षेत्र विशेष तथा स्थान विशेष के लिए किया गया नियोजन क्षेत्रीय नियोजन कहलाता हैं।

10.10 बोध प्रश्न

(अ) बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य

1. योजना आयोग की स्थापना 15 मार्य 1950 में की गयी।
2. द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया था।
3. चौथी योजना का प्रमुख लक्ष्य आत्मनिर्भरता की प्राप्ति था।
4. राष्ट्रीय विकास परिषद् नियोजन से सम्बन्धित नीति निर्धारण करने वाली उच्चस्तरीय संस्था हैं।
5. भारत में नीति आयोग को संवैधानिक शक्ति प्राप्त हैं।

(ब) रिक्त स्थान की पूर्ति करिये।

1. भारत में योजनावकाश का काल ..... माना जाता हैं।
2. दूसरी पंचवर्षी योजना ..... विकास मॉडल पर आधारित हैं।
3. प्रथम पंचवर्षीय योजना में ..... को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गयी।

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) (1) सत्य (2) असत्य (3)सत्य (4) सत्य (5) असत्य

(ब) 1. 1966–67 से 1967–69 तक, 2. महालनोविस मॉडल 3. कृषि

10.12 स्वपरख प्रश्न

1. भारत में आर्थिक नियोजन के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. आर्थिक नियोजन से क्या अभिप्राय हैं? भारत जैसी एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन के महत्व की विवेचना कीजिए।
3. बारहवीं पंचवर्षीय योजना का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
4. भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों एवं असफलताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
5. हमारी पंचवर्षीय योजनाओं की सीमित सफलता के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।

10.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–11 नई आर्थिक नीति (New Economic Policy)

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 नई आर्थिक नीति की आवश्यकता
11.3 नई आर्थिक नीति का स्वरूप और क्षेत्र
11.3.1 सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार
11.3.2 उदारीकरण
11.3.3 निजीकरण
11.3.4 वैश्वीकरण
11.4 नई आर्थिक नीति का मूल्यांकन
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 बोध प्रश्न
11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.9 स्वपरख प्रश्न
11.10 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- नई आर्थिक नीति की आवश्यकता को स्पष्ट कर सकें।
- नई आर्थिक नीति के स्वरूप और क्षेत्र का वर्णन कर सकें।
- नई आर्थिक नीति के कार्यान्वयन में प्रगति और उससे संबंधित समस्याओं के संबंध में बता सकें।
- नई आर्थिक नीति का मूल्यांकन कर सकें।

11.1 प्रस्तावना

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करने के पहले की नीतियों ने सार्वजनिक क्षेत्र को अकुशल बना दिया था तथा इस क्षेत्र में बहुत अधिक हानि हो रही थी। लाइसेस और नियंत्रण प्रणाली ने निजी क्षेत्र द्वारा निवेश पर रोक लगा दिया तथा इसके कारण विदेशी निवेशक भी हतोत्साहित हो रहे थे। अतः विकास कें पहले चार दशकों में अपनाई गई आर्थिक नीतियों के संबंध में फिर से विचार करने की आवश्यकता थी। इसी के फलस्वरूप सरकार ने आर्थिक सुधार की शुरूआत की। इस इकाई में आप नई आर्थिक नीति के स्वरूप और उसके क्षेत्र के संबंध में पढ़ेंगे। नई आर्थिक नीति के कार्यान्वयन की प्रगति और समस्याओं के संबंध में अध्ययन किया जाएगा तथा इस नीति का विश्लेषण किया जाएगा।

11.2 नई आर्थिक नीति की आवश्यकता (Need for New Economic Policy)

स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में शुरू की गई आर्थिक नीति में निम्नलिखित का प्रावधान था :

(i) युद्ध, भारी और मूल उद्योगों की स्थापना में सार्वजनिक क्षेत्र की मुख्य भूमिका, (ii) परमाणु, जल, विद्युत शक्ति परियोजनाओं, बांधों, सड़कों और संचार के निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से सरकार की भूमिका का विस्तार, तथा (iii) स्कूलों कालेजों, विश्वविद्यालयों, तकनीकी और इंजीनियरों संस्थानों के रूप में सामाजिक आधारभूत संरचनाओं के विकास में तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, अस्पतालों एवं डाक्टरों, नर्सों आदि को प्रशिक्षित करने के लिए चिकित्सा संस्थाओं की स्थापना में सरकार की भूमिका।

यद्यपि अर्थव्यवस्था का शेष क्षेत्र निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया था, फिर भी इस भाग में विनियमन और नियंत्रण की प्रणाली लागू की गई थी। इसके फलस्वरूप लाइसेंस/परमिट राज की शुरूआत हुई। नौकरशाही एवं राजनीतिज्ञ लाइसेंस प्रणाली का दुरूपयोग करके धन कमाने लगे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्य के नेतृत्व में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के फलस्वरूप भारी और मूल उद्योगों के रूप में औद्योगिक आधार का निर्माण हुआ। इसकी सहायता से सड़कों, रेलवे, संचार और जल–विद्युत कार्यों और थर्मल पावर फ्लांटों का निर्माण हुआ तथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रसार हुआ।साथ ही साथ कुछ समस्याएं भी सामने आई। ये समस्याएं निम्नलिखित थी :

1. अत्यधिक नियंत्रणों और लाइसेंस–नीति के कारण निजी क्षेत्र में निवेश के सम्बन्ध में बाधायें उत्पन्न हुई।
2. सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश तो बहुत बड़ी मात्रा में हो रहा था परन्तु उनसे आय बहुत ही कम होती थी। अकुशलता एवं नौकरशाही के नियमों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र की हालत खराब हो रही थी।
3. जो क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित थे उन सभी में इस क्षेत्र का एकाधिकार था। इन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र को सार्वजनिक क्षेत्र के साथ प्रतियोगिता करने का अधिकार नही था। इसका परिणाम यह हुआ सार्वजनिक क्षेत्र ने अपनी लागतों को कम करने की ओर ध्यान नही दिया।
4. एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम 1969 के कारण बड़े–बड़े व्यपारिक प्रतिष्ठान बड़ी परियोजनाओं में बड़ी मात्रा में निजी निवेश के रूप में धन नही लगा सके।
5. लाइसेंस आदि से संबंधित जटिल नियमों–विनियमों के होने से विदेशी निवेशकर्ता भी हतोत्साहित हो गए।

उपर्युक्त कारणों से आर्थिक नीति मे ंपरिवर्तन की आवश्यकता हुई, जिससे एक ओर तो सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार हो सके और दूसरी ओर प्रतिबंधित क्षेत्रों को निजी क्षेत्र (भारतीय और विदेशी दोनों ही) के प्रवेश के लिए खोला जा सके। संवृद्धि और कुशलता में सुधार लाने के लिए विकास के प्रथम चार दशकों में अपनाई गई आर्थिक नीति के संबंध में पुनः विचार करने की आवश्यकता थी। क्योंकि 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष गंभीर संकट उत्पन्न हो गया था।

11.3 सरकार की वर्तमान नयी आर्थिक नीति का स्वरूप एवं क्षेत्र (Nature & Scope of Govt's Present Economic Policy)

1. **कर सुधार (Tax Reforms):** सरकार करवंचना को रोकने व अधिक कर वसूल करने के उद्देश्य से करों में सुधार कर रही है जिनके अंतर्गत प्रो0 चलैया समिति की रिपोर्ट के आधार पर प्रयत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों (Direct & Indirect Taxes) से सम्बन्धित अनेक सिफरिशों को सरकार ने मानकर कार्यरूप में परिणत कर दिया है:
   (i) व्यक्तिगत आयकर (Individual Income) की अधिकतम दर 30 प्रतिशत कर दी गई है।
   (ii) दुकानदारो व छोटे व्यापारियों को निश्चित रकम के रूप में कर देने की सुविधा प्रदान की गई है।
   (iii) आयात–निर्यात शुल्क के ढ़ाँचे को सरल बनाया है।
   (iv) D.T.C. (Direct Tax Code) और GST (Goods and Services Tax) को लागू करना।
2. **वित्तीय क्षेत्र में सुधार (Reforms in Financial Sector):** सरकार ने वित्तीय क्षेत्र में सुधार के लिए निम्न कार्य किये है:
   (i) बैंकों के लिए नवीन सिद्धान्त बनाये गये है जिससे कि उनके वार्षिक खाते सही स्थिति (real position) को बता सकें।
   (ii) बैकों के लिए SLR की सीमा घटाई जा रही है।
   (iii) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को पूँजी बाजार से अपनी पूंजी एकत्रित करने की अनुमति प्रदान की गई है, लेकिन 51 प्रतिशत पूँजी सदा ही सरकार के पास रहेगी।
   (iv) निजी क्षेत्र के बैंक अपना विकास, बिना राष्ट्रीयकरण के भय के कर सकते हैं।
   (v) सेबी (SEBI) को वैधानिक अधिकार दे दिये गये हैं। पूँजी नियन्त्रक का कार्यालय बन्द कर दिया गया है। सेबी ने पूँजी बाजार को नियमित करने के लिए अनेक नियम उपनियम लागू किये हैं। 'राष्ट्रीय स्कन्ध विपणि' स्थापित किया जा चुका है।
3. **सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार (Reforms in Public Sector):** सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) ने आशा के अनुरूप कार्य नहीं किया है। अधिकांश इकाइयाँ घाटे में चल रही है: अतः
   (i) घाटे वाली इकाइयों को गैर–योजना ऋण नहीं दिये जायेंगे।
   (ii) लाभ देने वाली सार्वजनिक इकाइयों को अपनी पूँजी का 49 प्रतिशत तक निजी क्षेत्र को देने की अनुमति दी गई है।
4. **औद्योगिक नीति में सुधार (Reforms in Industrial Policy):** नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत औद्योगिक नीति (Industrial Policy) में मूलभूत परिवर्तन किये गये हैं:
   (i) औद्योगिक लाइसेन्स प्रणाली समाप्त कर दी गई है।
   (ii) MRTP औद्योगिक गृहों को अब विनियोग व विस्तार के लिये अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है।
   (iii) सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से घटाकर 3 कर दी गई है।

5. **राजकोषीय घाटे को ठीक करना (Correction of Fiscal Imbalances):** आर्थिक सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत राजकोषीय घाटा कम करने की बात कही गई है। यह घाटा 1990–1991 में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 6. 6 प्रतिशत था। जो 2004–05 में 5.6 प्रतिशत जबकि 2012–13 में 5.2 प्रतिशत रहा।

6. **विदेशी व्यापार एवं विनिमय दर नीतियाँ (Trade & Exchange Rate Policies):** विगत वर्षों में विदेशी व्यापार एवं विनियम दर नीतियों पर कड़े सरकारी नियन्त्रण थे, परन्तु अब–

   (i) आयात शुल्क जो काफी अधिक थे उन्हें कई स्तरों पर कम कर दिया गया है जैसे जुलाई 1991 में अधिकतम 150 प्रतिशत तक करना, फरवरी 1992 में 110 प्रतिशत, फरवरी 1993 में 85 प्रतिशत व मार्च 1995 में 50 प्रतिशत तक करना। वर्ष 2005–06 यह 20 से 40 प्रतिशत कर दिया गया है।

   (ii) सोना व चादी के आयात का उदारीकरण करना।

   (iii) रुपये की विनिमय दर विदेशी विनिमय बाजार में माँग व पूर्ति (Demand & Supply) के अनुसार निर्धारित करना।

7. **विदेशी विनियोग नीति (Foreign Investment Policy):** देश के औद्योगिक विकास में विदेशी विनियोग नीति महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। नई औद्योगिक नीति की घोषणा से लेकर 2004–05 तक विदेशी विनियोजकों को 2,84,812 करोड़ रुपये विनियोजित करने की अनुमति दी जा चुकी है परन्तु वास्तविक विनियोग 1,29,828 करोड़ रुपयें का ही हुआ है जो कुल अनुमति का 45.6 प्रतिशत है। इसमें वे विदेश कम्पनियाँ भी शामिल हैं जिनकों शत–प्रतिशत विदेशी विनियोग की अनुमति दी गई है।

11.3.1 सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार (Reforms of the Public Sector)

सार्वजनिक क्षेत्र के सुधार के अनेक उपाय किये गए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैः

(i) सार्वजनिक क्षेत्र को सामरिक और हाई टेक के उद्योगों एवं आरक्षित संरचनाओं तक सीमित रखा जाएगा। अब तक जो क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित रखे गए थे उनमें से कुछ को निजी क्षेत्र के लिए मुक्त कर दिया जाएगा।

(ii) सार्वजनिक क्षेत्र के जो उद्यम दीर्घकाल से रोगग्रस्त है, उनके संबंध में बोर्ड फार इन्डस्ट्रियल एंड फाइनेन्सियल रिकंस्ट्रक्शन (BIFR) की सलाह ली जाएगी। यह बोर्ड यदि उन्हें आजीवन क्षय (Non-viable) घोषित कर देता है तो उनका समापन कर दिया जायेगा। लेकिन यदि बोर्ड की राय है कि उनको पुनः जीवित करने की संभावना है तब उनके पुनर्जीवन/पुनर्वास योजना को कार्यन्वित किया जाएगा। इस प्रक्रिया में जिन श्रमिकों को काम से हटाया जायेगा उन्हें सामाजिक सुरक्षा तंत्र (Social Security Mechanism) के अधीन सहायता दी जाएगी।

(iii) श्रमिकों की कार्यकुशलता को बढ़ाने एवं कार्य के साथ उनके हित को जोड़ने के लिए उद्यम के शेयरों का एक भाग श्रमिकों को दिया जाएगा।

(iv) सर्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के लिए संसाधनों को जुटाने की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधन को अनुमति दी जाएगी कि वे म्युचुअल फंडो और अन्य वित्तीय संस्थाओं को अपने स्वामित्व का एक भाग देकर उनसे धन ले सकते हैं।

(v) सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंध को अधिक पेशेवर बनाया जाएगा तथा निर्णय लेने के संबंध में उन्हें अधिक स्वायत्तता प्रदान की जाएगी।

(vi) सर्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां सरकार के साथ मेमोरेंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग (MoU) पर हस्ताक्षर करेंगी जिससे कि एक ओर तो वह स्वायत्त हो सकें ओर दूसरी ओर उत्तरदायी हो जाएं।

11.3.2 उदारीकरण (Liberalisation)

उदारीकरण से तात्पर्य उद्योग तथा व्यापार को अनावश्यक प्रतिबन्धों से मुक्त करना है ताकि उन्हें अधिक प्रतियोगी बनाया जा सके। दूसरे शब्दों में, उदारीकरण एक प्रक्रिया है जिसमें देश के शासन तन्त्र द्वारा राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु अपनाये जा रहे विभिन्न कदमों जैसे लाइसेंसिंग नियंत्रण, कोटा प्रणाली इत्यादि प्रशासकीय अवरोधों को कम किया जाता है। इससे आर्थिक व्यवस्था में सरकार की भूमिका क्रमशः कम होती जाती है।

उदारीकरण के उद्देश्य (Objectives of Liberalisation)- उदारीकरण के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

(1) व्यवसाय के क्षेत्र में सरकार व नौकरशाही के हस्तक्षेप को न्यूनतम करना,

(2) घरेलू उत्पादन प्रणाली में सुधार करके उत्पादन क्षमता में विकास करना,

(3) आर्थिक क्षेत्र में अनुसंधान के माध्यम से वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार लाना,

(4) देश की अर्थव्यवस्था में आमूल–चूल सुधार करके कृषि, उद्योग, परिवहन आदि के क्षेत्र में तीव्र विकास को सम्भव करना,

(5) प्रबन्धकीय दक्षता एवं निष्पादन में सुधार लाना,

(6) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना,

(7) सार्वजनिक क्षेत्र के अनावश्यक एकाधिकार को समाप्त करना,

(8) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में शामिल होना,

(9) सूचनाओं के आदान–प्रदान प्रणाली को प्रभावी बनाना,

(10) सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के चहुँमुखी विकास की दशा में कदम बढ़ाना।

उदारीकरण के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Liberalisation)

(1) विदेशी मुद्रा भण्डार में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है। जुलाई, 1991 में विदेशी मुद्रा भण्डार मात्र एक अरब डालर था, जो जुलाई, 2010–11 में बढ़कर 61,851 मिलियन डॉलर हो गया।

(2) कृषि, उद्योग आदि में उदार नीति अपनाने से विभिन्न सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर हुए हैं।

(3) भारत के निर्यातों में वृद्धि हुई है। जहाँ 1991–92 में कुल निर्यात 44,041 करोड़ रुपये के थे, वहाँ जनवरी, 2011–12 में ये बढ़कर 3,04,624 मिलियन डालर के हो गये।

(4) प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग में वृद्धि तथा राजकोषीय घाटे में कमी हुई है।

(5) उदारीकरण से भारतीय उपभोक्ताओं को सस्ती, आकर्षक तथा टिकाऊ वस्तुओं को प्राप्त करने का अवसर मिल रहा है जिससे जनसाधारण के जीवन स्तर में सुधार हुआ है।

(6) उदरीकरण की नीति अपनाने से देश की अर्थव्यवस्था का विश्वव्यापीकरण दृष्टिगोचर हो रहा है।

11.3.3 निजीकरण (Privatisation)

व्यवसाय, सरकार तथा शैक्षणिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 'निजीकरण' शब्द ध्यान आकर्षित करता रहा है। 'निजीकरण' शब्द को खोजने का श्रेय पीटर एफ. ड्रकर (Peter F. Drucker) को जाता है, जिन्होंने इस शब्द का प्रयोग अपनी पुस्तक 'The Age of Discontinuity (1969) में किया। इसके दस वर्ष बाद जब श्रीमती माग्रेट थ्रैचर ब्रिटेन की प्रधानमंत्री बनीं तब उन्होंने निजीकरण को व्यवहारिक रूप दिया। इसके पश्चात् एक–एक करके अनेक देशों द्वारा निजीकरण को अपनाया गया।

संकुचित रूप में, निजीकरण से तात्पर्य है ऐसी औद्योगिक इकाईयों के स्वामित्व को निजी क्षेत्र में हस्तान्तरित कर देना जोकि अभी तक सरकारी स्वामित्व तथा नियंत्रण में थी। व्यापक अर्थ में, निजीकरण से अभिप्राय निजी उद्योगों के सम्बन्ध में सरकार द्वारा उदार औद्योगिक नीति अपनाने से है जिससे सरकार निजी उद्यमियों के विभिन्न आर्थिक क्रिया–कलापों पर न्यूनतम नियंत्रण तथा नियमन करती है। निजीकरण में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा निजी क्षेत्र की तुलना में कम किया जाता है। निजीकरण के आधारभूत उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(1) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के निष्पादन में सुधार करना ताकि करदाताओं पर पड़ने वाले वित्तीय भार को कम किया जा सके।

(2) निजी क्षेत्र के विनियोगों को प्रोत्साहित करना तथा सरकार हेतु आय में वृद्धि करना।

(3) सरकार पर पड़ने वाले प्रशासनिक व प्रबंधकीय भार को कम करना।

(4) निजीकरण का एक उद्देश्य निजी क्षेत्र को सामान्य जनता में लोकप्रिय बनाना भी है।

बाधायें (Obstacles)- निजीकरण के मार्ग में आने वाली वाली प्रमुख बाधायें निम्नलिखित हैं:

(1) सरकार सामान्यतया अलाभकर सार्वजनिक इकाईयों को बेचना चाहती है, जिन्हें निजी क्षेत्र सरकार द्वारा माँगें जाने वाले मूल्य पर नहीं खरीदना चाहता है।

(2) तुलनात्मक रूप से अविकसित पूँजी बाजारों के कारण सरकारे शेयर निर्गमित करने में कठिनाई महसूस करती है। दूसरी तरफ बड़े क्रेताओं को वित्त उपलब्ध कराने में भी सरकार को समस्या का सामना करना पड़ता है।

(3) सार्वजनिक उद्योग का स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार निजी क्षेत्र को दिये जाने पर राजनैतिक विरोध का सामना करना पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त, उद्योग में कार्यरत कर्मचारी भी विरोध करते हैं क्योकि उन्हें अपने रोजगार के छिनने का भय रहता है।

निजीकरण के पक्ष में तर्क (Arguments In favour of Privatisation)-

निजीकरण के पक्ष में विचार व्यक्त करने वालों का विश्वास है कि सार्वजनिक क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं का हल निजीकरण में है। वे निजीकरण के पक्ष में अग्रलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैः

(1) उत्तरदायित्व के निर्धारण में सरलता (Fixing the responsibility)– किसी कमी या दोष के लिए सार्वजनिक उद्योगों में किसी कर्मचारी या अधिकारी को उत्तरदायी या जवाब देह ठहराना मुश्किल होता है, लेकिन निजी क्षेत्र में उत्तरदायित्व का क्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित कर दिया जाता है। सार्वजनिक उद्योग में अगर उत्तरदायित्व निर्धारित कर भी दिया जाय तो विभिन्न दबावों तथा शक्तियों के कारण उनका प्रभावी क्रियान्वयन सम्भव नहीं हो पाता है।

(2) कुशलता तथा निष्पादन में वृद्धि (Improvement in efficiency and performance) - निजी क्षेत्र में प्रत्येक निर्णय 'लाभ–आधारित' होता है। कार्य तथा पुरस्कार में सीधा सम्बन्ध होने के कारण कुशलता तथा निष्पादन में सुधार के लिए निरंतर प्रयास किये जाते हैं।

(3) उपभोक्ताओं को अच्छी सेवायें (Better Services to the customers)– निजी क्षेत्र का अस्तित्व मुख्य रूप से उपभोक्ताओं के संतोष पर निर्भर करता है क्योंकि यह संतोष ही उपभोक्ताओं को पुनः क्रय करने हेतु प्रेरित करता है। लोक उद्योगों में सामान्यता उपभोक्ताओं की रूचि, आवश्यकताओं आदि की अवहेलना देखने को मिलती है। एक बार निजीकरण होने से लोक उद्योगों के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन होने की सम्भावना व्यक्त की गयी है। इसके फलस्वरूप सेवाओं की गुणवत्ता में भारी सुधार होने की आशा है।

(4) निजी क्षेत्र में उपचारात्मक उपाय शीघ्र उठाना (Remedial measures are taken early in Private Sector)- किसी कमी या दोष को दूर करने के सम्बन्ध में निजी क्षेत्र में तत्काल उपचारात्मक कदम उठाये जाते है। लोक क्षेत्र में ऐसे कदम उठाने के सम्बन्ध में निर्णय लेने में काफी समय निकल जाता है और समस्या विकराल रूप धारण कर लेती है और कभी–कभी उस दोष या कमी को दूर करना लगभग असम्भव हो जाता है।

(5) आर्थिक समाजवाद (Economic Socialism)- निजीकरण के द्वारा 'राज्य एकाधिकार' समाप्त होगा तथा नीति निर्धारण, मूल्य निर्धारण तथा विभिन्न निर्णयों की स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप आर्थिक समाजवाद की दिशा में प्रगति होगी। ऐसी व्यवस्था में सरकार के साथ–साथ उद्यमियों, बाजार शक्तियों आदि का भी हस्तक्षेप होगा।

(6) राजनैतिक हस्तक्षेप न होना (No Political Interference)- रिजर्व बैंक के गर्वनर विमल जालान का सही कहना है कि सार्वजनिक क्षेत्र में राजनैतिक हस्तक्षेप की अवहेलना नहीं की जा सकती हैं जिसे उन उद्योगों की कार्यकुशलता में कमी आने का एक कारण कहा जा सकता है। ऐसी बात निजी क्षेत्र पर लागू नहीं होती है।

(7) नयी प्रौद्योगिकी (New Technology)- निजीकरण से देश में नये–नये उद्यमियों तथा साहसियों का प्रादुर्भाव होता है। वे नयी किस्मों की वस्तुओं को बाजार में लाने के लिए नयी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करते हैं।

(8) उत्तराधिकार सम्बन्धित नियोजन (Succession related planning)- अनेक लोक उद्योग अक्सर लम्बे समय तक 'मुखियाविहीन' (Headless), रहते हैं। इससे निर्णय लेने में विभिन्न आशंकाएँ बनी रहती हैं क्योंकि यह कोई नहीं जानता कि आने वाले मुखिया (प्रधान संचालक या जनरल मैनेजर) का क्या दृष्टिकोण होगा ऐसी परिस्थिति निजी क्षेत्र में उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि इसमें उत्तराधिकारी का निर्धारण जल्दी तथा समय से कर लिया जाता है।

(9) लाभों का सृजन (Creation of Profits)- निजीकरण से देश में पूँजी, कोष तथा लाभों का सृजन होता है। निजी क्षेत्र का मूल उद्देश्य लाभोपार्जन ही होता है। निजी क्षेत्र व्यवसाय में हुए विनियोग को बढ़ाने का निरंतर प्रयास करते हैं। इसके फलस्वरूप देश में आधिक्य तथा विनियोग हेतु कोष उपलब्ध रहते हैं।

11.3.4 वैश्वीकरण (Globalisation)

वैश्वीकरण का अर्थ भिन्न–भिन्न लोगों के लिए भिन्न–भिन्न होता है। विकासशील देशों के लिए देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने को वैश्वीकरण कहते हैं। साधारण शब्दों में, यह एक प्रक्रिया है जिसमें विश्व एकीकृत होकर एक विशाल बाजार में परिवर्तित हो जाता है। ऐसा होने के लिए समस्त व्यापारिक अवरोधों (Trade Barriers) को दूर करना आवश्यक है। वैश्वीकरण में राजनैतिक तथा भूगोलीय अवरोधक कोई अर्थ नहीं रखते हैं। वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषतायें निम्ननिखित हैः

1. व्यापार का तीव्र विकास होता है, विशेष तौर से बहुराष्ट्रीय निगमों (Multinational Corporations) का विस्तार होता है।
2. देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किया जाता है जिसमें राजनैतिक व भूगोलीय अवरोधक समाप्त हो जाते है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय लेन–देन अथवा कार्य कलापों में तेजी आती है।
4. अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का प्रदुर्भाव होता है अर्थात् वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी, तकनीक तथा श्रम सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों का एकीकरण हो जाता है।

भारत में वैश्वीकरण को प्रेरित करने वाले घटक (Factors Fostering Globalisation in India)

(1) **राजनैतिक कारक (Political Cause)**- गत वर्षों में आये राजनैतिक उतार–चढ़ाव का वैश्वीकरण पर गहरा प्रभाव पड़ा। सोवियत संघ का विखण्डन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका का एकमात्र महाशक्ति के रूप में रह जाना आदि सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना रही। अमेरिका की करंसी 'डालर' में अन्तर्राष्ट्रीय बाजार संचालित किया जाने लगा जिससे वैश्वीकरण को प्रोत्साहन मिला।

(2) **तकनीकी प्रगति (Technological Progress)**- परिवहन, संम्प्रेषण तथा सूचना आदि के क्षेत्र में हुई तकनीकी क्रान्ति ने वैश्वीकरण के विकास में

महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कम्प्यूटर तथा सैटेलाइट के प्रयोग ने सम्पूर्ण संम्प्रेषण प्रणाली में आमूल चूल परिवर्तन कर दिये हैं। सम्पूर्ण विश्व एक छोटा–सा गाँव हो गया है जिसमें ई–मेल, मोबाइल फोन, पर्सनल कम्प्यूटर आदि के माध्यम से कुछ क्षणों में ही एक सूचना किसी भी दूसरे स्थान पर प्रेषित की जा सकती है। तकनीकी प्रगति ने कम लागत पर उच्च किस्म का उत्पादन करना सम्भव बनाया है।

(3) विकासशील देशों के अनुभव (Experiences of Developing Countries)- विकासशील देशों ने वैश्वीकरण की नीति अपना कर अपनी अर्थव्यवस्था में काफी सुधाार किया। ताइवान, कोरिया, थाईलैण्ड, सिंगापुर, हाँगकाँग इत्यादि इसके उदाहरण है। इन देशों के सफल विश्वव्यापीकरण को भारत में प्रोत्साहित किया है।

(4) उदारवादी नीतियाँ (Liberalised Policies)- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों ने 'व्यापार उदारीकरण' (Trade Liberalisation) की नीति अपनायी। इसके परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक लेन–देन पर लगे व्यापारिक अवरोधों को दूर कर दिया गया जिससे वैश्वीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला। इससे व्यापार तथा विदेशी निवेश क्षेत्र में उदारता का प्रादुर्भाव हुआ।

(5) औद्योगिक संगठन की विशेषताएँ (Features of Industrial Organisation)- औद्योगिक संगठन में उभरती नयी प्रवृत्तियों ने भी वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया है। औद्योगिक संगठनों की लोचपूर्ण उत्पादन प्रणाली, तकनीकी प्रगति, संगठनीय विशेषताओं (मुख्यतया जापानी प्रबंध पर आधारित) ने राष्ट्रीय सीमाओं के पार आर्थिक गतिविधियाँ करने को प्रेरित किया है।

(6) प्रतिस्पर्धा (Competition)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता अन्य क्षेत्र (सार्वजनिक क्षेत्र) से प्रतिस्पर्धा होना है। इसी प्रतिस्पर्धा के कारण उद्यमी को विदेशों में नये बाजार खोजने की आवश्यकता होती है। विदेशी निगमों से प्रतिस्पर्धा के कारण ही घरेलू निगम भी विश्व परिप्रेक्ष्य में अपने को स्थापित करने लगे हैं।

(7) अर्न्तसम्बन्धित एवं स्वतंत्र अर्थव्यवस्थायें (Interlinked and Independent Economics)- आर्थिक कल्याण के संदर्भ में, वैश्वीकरण से तात्पर्य आर्थिक रूप से अन्तर्सम्बन्धित पर्यावरण से है। प्रत्येक राष्ट्र की सम्पन्नता में विश्व के अन्य राष्ट्रों का योगदान होता है अर्थात् कोई अकेला राष्ट्र बिना अन्य राष्ट्रों के सहयोग के प्रगति नहीं कर सकता है। भारत तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों में विपरीत भुगतान संतुलन जैसी वित्तीय समस्याओं ने वैश्वीकरण को आवश्यक बना दिया है।

भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया तेजी से आगे बढ़ रही है। इसके कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैः

(1) बहुराष्ट्रीय निगमों (MNCs) ने बड़ी संख्या में भारत में प्रवेश किया है।

(2) 2200 की संख्या के आसपास भारतीय कम्पनियों ने ISO-9000 प्रमाण–पत्र प्राप्त किये हैं जो कि उच्च गुणवत्ता की गारण्टी हैं।

(3) भारतीय निगमों की गतिविधियाँ अमेरिकी ऋण बाजार में बढ़ी हैं।

(4) केवल तटकर में ही कमी नहीं की गयी है वरन् अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग (FDI) तथा विदेशी प्रौद्योगिकी के लिए भी खोल दिया गया है।

(5) गत कुछ वर्षों में व्यापार एवं निर्यात गहनता दोनों में वृद्धि हुई है। गत वर्ष की तुलना में 2002–03 में भारत का निर्यात 19 प्रतिशत बढ़ा है।

(6) देश में भारी मात्रा में विदेशी विनियोग हुआ है तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने देश में प्रवेश किया है।

11.4 नई आर्थिक नीति का मूल्यांकन (Assessment of New Economic Policy)

नई आर्थिक नीति का सूत्रपात्र बहुत उत्साह के साथ किया गया था। इसके अनेक लाभ हुए है परन्तु अनेक क्षेत्रों में सफलता नहीं मिल पाई है। नीचे इस नीति का मूल्यांकन किया जा रहा है। प्रथम, अर्थव्यवस्था की सुवृद्धि में धीरे–धीरे सुधार हुआ और तीन वर्षों (1994–96 से 1996–97 तक) में संवृद्धि दर बढ़ाकर GDP का 7 प्रतिशत हो गई। संवृद्धि दर की वृद्धि के संबंध में यह रिकार्ड था।

द्वितीय, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों (PSUs) को अब आर्थिक सुधारों के कारण निजीकरण की चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। अपने आस्तित्व को बचाने के लिए वे अपने कार्यों में सुधार लाने का प्रयास कर रहे है। 1995–96 वर्ष में केन्द्रीय सरकार के उद्यमों ने निवेशित पूंजी पर 16.1 प्रतिशत की दर से सकल आय अर्जित किया जो एक रिकार्ड दर थी। विनिवेश से 2005–06 49214 करोड़ रूपये प्राप्त हुआ।

तृतीय, मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति को रोकने में आर्थिक सुधार सफल रहे है। 1991–92 में यह 10 प्रतिशत से अधिक थी जबकि जनवरी 2007 में 6.11 प्रतिशत रही।

चौथा, औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक से पता चलता है कि इस क्षेत्र में समग्र संवृद्धि दर 1991–92 के 0.6 प्रतिशत से बढ़कर 1995–96 में 11.8 प्रतिशत हो गई, हालांकि 1996–97 में यह दर गिरकर 6.6 प्रतिशत हो गई। फिर 2006–07 में 8.2 प्रतिशत हो गई।

पांचवा, निर्यात की वृद्धि दर 1992–93 में 3-8% (यू. एस. डालर में मापित) थी। 1995–96 तक यह दर बढ़कर 20-8% हो गई। लेकिन वर्ष 1996–97 वर्ष में यह दर फिर घट कर 4.1% हो गई। उसी प्रकार आयात में वृद्धि दर 1992–93 के 12.7 से बढ़कर 1995–96 में 28.6% हो गई थी लेकिन बाद में इसमें कमी हुई और 1996–97 में यह 5.1% हो गई। 2005–06 में यह 23.4% बढ़ा।

अंततः, विदेशी मुद्रा रिजर्व 1990–91 तक गिरकर 2.24 बिलियन यू. एस. डॉलर हो गया था। अप्रैल 2007 तक यह बढ़कर 2.00 बिलियन डॉलर हो गया। इससे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी है।

आर्थिक सुधारों के अंतर्गत उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के सुधार के कार्यक्रम आते हैं। यह नीति अल्पकालिक उद्देश्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित करती रही है जैसे कि भुगतान–संतुलन की बिगड़ती हुई

स्थिति पर नियंत्रण, विदेशी मुद्रा रिजर्व का निर्माण, राजकोषीय घाटे को कम करना तथा मुद्रास्फीति पर नियंत्रण। लेकिन यह नीति गरीबी को कम करने, पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने, स्वावलंबन, धन की असमानता को दूर करने, अवसर की स्थापना का प्रावधान करने तथा सामाजिक न्याय स्थापित करने के दीर्घकालिक लक्ष्यों की ओर ध्यान नहीं दे पाई है। मुद्रास्फीति पर नियंत्रण और निजीकरण जैसे कुछ अल्पकालिक लक्ष्यों के संबंध में भी इस नीति को केवल आंशिक सफलता ही मिल पाई है।

नई आर्थिक नीति में जिन प्रमुख क्षेत्रों की ओर पुनः ध्यान देना चाहिए वे निम्नलिखित है–

i) इसका कार्यक्षेत्र सीमित रहा है। मुख्यतः इसने अपना ध्यान बड़े कंपनी क्षेत्रों पर ही केन्द्रित किया है। इसके फलस्वरूप छोटे पैमाने के क्षेत्र और कृषि की उपेक्षा हुई है, जोकि रोजगार के मुख्य स्रोत हैं। अतः आवश्यक है कि समग्र आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाने तथा दीर्घकालिक दृष्टि से इसे और सफल करने के लिए छोटे पैमाने के क्षेत्र और कृषि क्षेत्र को मजबूत बनाया जाए।

ii) निजीकरण के क्षेत्र में मजदूर संघों की ओर से विरोध के कारण आर्थिक सुधार को कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई है। अतः उसने प्रतीकात्मक निजीकरण का मार्ग अपनाया है। यह कार्य अत्यंत स्वस्थ सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के विनिवेश की प्रक्रिया द्वारा किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त विनिवेश से जो आय होती है उसका उपयोग अब तक केन्द्रीय सरकार के घाटे को पूरा करने के लिए किया जाता है। ऐसा करना उचित नहीं है।

iii) थोक कीमत सूचकांक में वृद्धि दर को तो आर्थिक सुधार नियंत्रित कर पाये है परन्तु वह उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों या कृषि मजदूरों के उपभोक्ता कीमत सूचकांक में होती हुई वृद्धि को नहीं रोक पाये है। 1991–92 से 1996–97 के बीच की अवधि में उपभोक्ता कीमत सूचकांक में औसत वृद्धि 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष हुई। इसमें आम जनता का कल्याण निहित है।

iv) आर्थिक सुधार दीर्घकालिक आधार पर राजकोषीय घाटे में कमी नहीं कर पाये है। गैर–योजना गत व्ययों पर नियंत्रण रखने में यह असफल रहा है, लेकिन राजकोषीय घाटे में कमी को दिखाने के लिए इसने योजनागत व्ययों (plan expenditure) में कटौती कर दी है। पांचवे वेतन आयोग और अब छठे वेतन आयोग की रिपोर्ट को कार्यान्वित करने के बाद गैर–योजनागत व्ययों (non-plan expenditure) का बहुत अधिक हो जाने की संभावना है परन्तु स्वेच्छा से आय प्रकट करने की योजना (voluntary disclosure of income scheme) द्वारा सरकार की आय बढ़ने की संभावना कम ही है।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आर्थिक सुधारों ने सम्पन्न वर्ग के लोगों पर कर की अधिकतम दर का घटाकर 30% करके उन्हें काफी रियायत दी है लेकिन कर छिपाने वालों को वह अपनी आय प्रकट करने के लिए प्रेरित नहीं कर पाई है।

v) आधारभूत संरचनाओं के निर्माण के लिए आर्थिक सुधार विदेशी निजी क्षेत्रों पर अधिक निर्भर रही है, लेकिन इस संबंध में यह असफल रहा। उदाहरणार्थ पिछले पांच वर्षों में विदेशी फर्मे इस देश की बिजली की पूर्ति में एक भी किलोवाट की वृद्धि नहीं कर पाई है। आठवीं योजना में बिजली के उत्पादन क्षमता में 30,538 MW वृद्धि करने का लक्ष्य था लेकिन वास्तव में 16,243 MW की ही वृद्धि हो पाई जो कि निर्धारित लक्ष्य से 46% कम था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नई आर्थिक नीति में आर्थिक सुधार के आधार को अधिक व्यापक बनाने के लिए इसे पुनः दिशा देने की आवश्यकता है जिससे इसमें कृषि और छोटे पैमाने के उद्योगों को भी शामिल किया जा सके। देश के निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र को बराबरी का दर्जा दिया जाना चाहिए, जिससे ये बिजली, दूरसंचार, सड़क आदि के क्षेत्रों में आधारभूत संरचना के निर्माण में योगदान कर सकें। इसी के महत्व को ध्यान में रखते हुए पूर्व प्रधान मंत्री श्री गुजराल ने कंफडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्री ;ब्प्द्ध के सम्मेलन को 16 अगस्त 1997 को संबोधित करते हुए कहा था कि ''11वीं सदी के पूंजीवाद के वे दिन समाप्त हो गए जब कोई भी विदेशी इस देश में आकर आय पर हावी हो सकता था। विदेशियों का हम स्वागत तो करते हैं परन्तु उन्हें इस इस बात की अनुमति नहीं दी जाएगी कि वे इस देश की कंपनियों को नष्ट कर दें या उन्हें अपने अधिकार में ले लें। उन्हें केवल उन्हीं क्षेत्रों में निवेश करने की अनुमति दी जाएगी, जिनमें हमें उनके सहयोग की आवश्यकता है। भारत के उद्योगों को सभी प्रकार का संरक्षण प्राप्त होगा तथा अनुचित प्रतियोगिता से उनकी रक्षा की जाएगी।

11.5 सारांश

विकास के प्रथम तीन दशकों में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की नीतियों तथा लाइसेंस और नियंत्रण की प्रणाली के फलस्वरूप निजी क्षेत्र द्वारा निवेश पर प्रतिबंध लगा रहा। इसके फलस्वरूप अकुशल सार्वजनिक क्षेत्र का जन्म हुआ, जिनमें प्रति वर्ष हानि होती हुई। अत्यधिक नौकरशाही तथा लाइसेंस और नियंत्रण की प्रणाली के फलस्वरूप विदेशी निवेश का भी उत्साह भंग हो गया।

आर्थिक सुधार में चार प्रकार के परिवर्तनों पर जोर दिया गयाः (i) उदारीकरण, (ii) सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार, (iii) निजीकरण, तथा (iv) वैश्वीकरण।

उदारीकरण ने निजी क्षेत्र को अपनी क्षमता बढ़ाने में, नये क्षेत्रों में प्रवेश करने में तथा नई वस्तुओं के उत्पादन में सहायता की है। सार्वजनिक क्षेत्र में छंटनी तथा स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति की नीति द्वारा इस क्षेत्र में सुधार लाकर इसमें श्रमिकों के अति भार को कम किया जा सका है। बहुत समय से बीमार चल रही सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों (PSUs) को बन्द कर दिया गया। कुछ स्थितियों में उन्हें पुनः जीवित करने के उपाय किए गए। इन सबके फलस्वरूप PSUs के कार्य–निष्पादन में सुधार हुआ तथा वर्ष 1995–96 में कुछ निवेशित पूंजी पर 16% की दर से आय में सकल वृद्धि हुई जो वृद्धि का रिकार्ड थी। बजट घाटे को पूरा करने के लिए सरकार ने सबसे अधिक स्वस्थ PSUs का विनिवेश भी किया। मजदूर संघों एवं वामपक्षी राजनैतिक दलों की ओर से कड़े विरोध के कारण निजीकरण के कार्यक्रम के ठोस परिणाम नहीं हो पाए हैं। नौकरशाही भी अप्रत्यक्ष

रूप से निजीकरण का विरोध करती रही है। एक–एक करके PSUs का निजीकरण तो नहीं हो पा रहा है, लेकिन व्यापक रूप में अर्थव्यवस्था के निजीकरण की चल रही प्रक्रिया के फलस्वरूप निजी क्षेत्र को निवेश करने के संबंध में प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है।

आर्थिक सुधार अपना ध्यान अल्पकालिक लक्ष्यों को प्राप्त करने पर केन्द्रित करता रहा है, जैसे कि भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार लाना, विदेशी मुद्रा रिजर्व बनाना, मुद्रास्फीति का नियंत्रण एवं राजकोषीय घाटे को कम करना। बेरोजगारी और गरीबी को घटाने तथा सामाजिक और आर्थिक न्याय की व्यवस्था करने संबंधी दीर्घकालिक लक्ष्यों की उपेक्षा कर दी गई है।

भारतीय उद्योगों के लिए संरक्षणात्मक उपायों की व्यवस्था करके चयनात्मक वैश्वीकरण करने की आवश्यकता है जिससे संयुक्त क्षेत्र में प्रवेश के बाद विदेशी फर्मे भारतीय फर्मो को निगल न पाएं।

11.6 शब्दावली

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment) : विदेशी निवेश का वह रूप जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होता है और इस प्रकार वह अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को भी बढ़ाता है।

वैश्वीकरण (Globalisation) : इससे आशय अर्थव्यवस्था को शेष विश्व के लिए खोलने से होता है जिससे वस्तुओं, सेवाओं, प्रौद्योगिकी और निवेश का मुक्त रूप से प्रवाह हो सके।

उदारीकरण (Liberalisation) : इससे आशय है निजी क्षेत्र की स्वतंत्रता पर लगाए गए अनावश्यक प्रतिबंधों को हटाने की प्रक्रिया।

एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (MRTP) आयोग : वह आयोग जिसकी स्थापना का उद्देश्य है नए निवेशों के लिए आवेदन पत्रों की जांच करना तथा उन व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के आवेदन पत्रों को नामंजूर करना है जिनकी परिस्थिति MRTP अधिनियम (1969) द्वारा एवं समय–समय पर इस अधिनियम में किए गए संशोधनों द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक है।

पोर्ट फोलियो निवेश (Portfolio Investment) : विदेशी नागरिकों या विदेशी कंपनियों द्वारा ईक्विटी, स्टाकों, बांडों और डिबेंचरों के रूप में भारत में किया गया वित्तीय निवेश।

निजीकरण (Privatisation) : वह प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई के स्वामित्व का हस्तांतरण निजी क्षेत्र हो जाता है।

11.7 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न क (Check YourProgress-A)

1. विकास के प्रथम चार दशकों में अपनाई गई आर्थिक नीति के तीन प्रमुख तत्वों को सूचीबद्ध कीजिए।

.....

.....

बोध प्रश्न ख (Check your progress B)

1. उदारीकरण (Liberalisation) की नीति के मुख्य तत्व क्या है? संक्षेप में विवेचन कीजिए।

.....

.....

2. निजीकरण (privatisation) क्या है? निजीकरण के पक्ष में चार तर्क दीजिये।

.....

.....

बोध प्रश्न गः खाली स्थानों को भरिये।

i) सार्वजनिक क्षेत्र को .....हाई टेक और आवश्यक आधारिक संरचना (infrastrutre) तक सीमित रखा जाएगा।

ii) सार्वजनिक क्षेत्र के जो उद्यम बहुत समय से ..... हैं उनके संबंध में BIFR से सलाह ली जाएगी।

iii) निजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई के .....का हस्तांतरण निजी क्षेत्र को हो जाता है।

iv) वैश्वीकरण का मुख्य उद्देश्य शेष विश्व के साथ भारत की अर्थव्यवस्था का .....करना है।

v) विकसित देशों के अनुसार वैश्वीकरण की परिभाषा तीन घटकों तक सीमित है। ये घटक हैं.....और.....।

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न **ग** –

(i) सामरिक (ii) बीमार (iii) स्वामित्व (iv) एकीकरण (v) मुक्त व्यापार, पूंजी एवं मुक्त प्रौद्योगिकी प्रवाह

11.9 स्वपरख प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. भारत में आर्थिक सुधार कार्यक्रमों की आवश्यकता एवं क्षेत्र के बारे में बताइये।

   Discuss the need and scope of economic reforms in India.

2. उदारीकरण के अर्थ एवं उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए। इसके गुण–दोषों का मूल्यांकन कीजिए।

   Explain the meaning and objectives of liberalisation. Evaluate its merits and demerits.

3. 'निजीकरण' को परिभाषित कीजिए। इसकी शक्तियाँ तथा कमियाँ क्या हैं?

   Define 'Privatisation'. What are its strengths and weaknesses?

4. निजीकरण से आप क्या समझते हैं ? भारत में निजीकरण पर एक लेख लिखिए।

   What do you understand by Privatisation? Write an essary on Privatisation in India.

5. वैश्वीकरण क्या है? भारत में वैश्वीकरण को प्रेरित करने वाले घटकों का वर्णन कीजिए।

   What is Globalisation? Discribe the factors fostering globalisation in India.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Question)

1. उदारीकरण के अर्थ एवं उद्देश्य बताइये।
   Describe the meaning and objectives of liberalisation.
2. उदारीकरण के पक्ष में विभिन्न तर्को का उल्लेख कीजिए।
   Write different arguments in favour of liberalisation.
3. निजीकरण के अर्थ एवं उद्देश्य को लिखिए।
   Write meaning and objectives of privatisation.
4. भारत में निजीकरण पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on privatisation in India.

11.10 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–12 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर्यावरण (International Trading Environment)

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आशय
12.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता
13.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व
12.5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ एवं हानियां
12.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव
12.7 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और राष्ट्रीय हितों में संघर्ष
12.8 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भविष्य
12.9 सारांश
12.10 शब्दावली
12.11 बोध प्रश्न
12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.13 स्वपरख प्रश्न
12.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ, उसकी आवश्यकता एवं महत्व को बता सकें।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यार के लाभ एवं हानियों की व्याख्या कर सकें।
- विभिन्न देशें की अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव को बता सकें।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के भविष्य के बारे में बता सकें।

12.1 प्रस्तावना

जब व्यक्ति की आवश्यकताएं सीमित थी तब वह एक प्रकार से स्वावलम्बी था अर्थात् वह स्वयं अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर लेता था, किन्तु जैसे–जैसे मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ती गयीं, उसके लिए यह कठिन हो गया कि वह स्वयं के उत्पादन से अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। जब उसका ध्यान विशिष्टीकरण की ओर गया और उसने अनुभव किया कि यदि वह किसी एक ही वस्तु का उत्पादन करे तो अधिक उत्पादन कर सकता है। लेकिन प्रश्न यह था कि फिर वह अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे करेगा? मनुष्य ने इसका हल भी खोज लिया कि वह स्वयं निर्मित वस्तु का अन्य आवश्यक वस्तुओं से विनिमय करेगा और इस प्रकार अदल–बदल की प्रथा का सूत्रपात हुआ जो व्यापार का प्रारम्भिक चरण था। प्रारम्भ में केवल वस्तुओं का ही विनिमय किया जाता था तथा मुद्रा का प्रयोग नही होता था, किन्तु जैसे ही मुद्रा का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय प्रत्यक्ष न होकर मुद्रा के माध्यम से होने लगा। यही कारण है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था को मौद्रिक अर्थव्यवस्था कहते हैं। इस व्यवस्था ने व्यापार

को बहुत सरल तथा सुविधाजनक बना दिया है। पहले व्यापार एक देश की सीमा के भीतर ही होता था जो कालान्तर में देश की सीमाओं को पार कर विदेशी व्यापार में परिवर्तित हो गया।

12.2 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आशय (Meaning of International Trade)

यदि हम व्यापार का अर्थ समझ लें तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अर्थ को सरलता से समझ सकतें हैं। साधारण तौर पर लोगों के बीच होने वाले वस्तुओं और माल के विनिमय को व्यापार कहते हैं जो लाभ के उद्देश्य से किया जाता है। यदि विस्तृत अर्थ में देखा जाय तो व्यापार के अन्तर्गत उन सभी आर्थिक क्रियाओं का समावेश हो जाता है जिनका सम्बन्ध उत्पादित वस्तुओं के वितरण से होता है। वस्तुओं का वितरण इसलिए किया जाता है क्योंकि उपभोग के लिए इनकी मांग की जाती है।

व्यापार को निम्नलिखित दो भागों में बांटा जा सकता है :

(i) आन्तरिक अथवा अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार (Inter-regional Trade)

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विदेशी व्यापार (International or Foreign Trade)

(i) आन्तरिक व्यापार : आन्तरिक व्यापार से तात्पर्य उस व्यापार से है जो किसी एक देश की सीमा के भीतर विभिन्न स्थानों अथवा क्षेत्रों के बीच किया जाता है। जैसे यदि कोई मध्य प्रदेश का व्यापारी गुजरात के व्यापारी के साथ व्यापार करता है अथवा इन्दौर का व्यापारी जबलपुर के व्यापारी के साथ व्यापार करता है तो इसे आन्तरिक व्यापार कहेंगे। इसे गृह व्यापार अथवा अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार भी कहते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हेबरलर के अनुसार, ''गृह–व्यापार अथवा अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार का अर्थ साधारण तौर पर उस क्षेत्र के भीतर व्यापार है जिसकी समृद्धि में सम्बन्धित सरकार की अभिरूचि रहती है अथवा वह क्षेत्र उस सरकार की सीमा में आता है।''

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ उस व्यापार से है जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि भारत का व्यापार ब्रिटेन अथवा अमरीका के साथ किया जाता है तो यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होगा। इसे बाह्य व्यापार अथवा विदेशी व्यापार भी कहते हैं।

12.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता (Need of International Trade)

वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सभी देशों कें लिए आवश्यक हो गया है। उसका प्रमुख कारण यह है कि प्रायः सब देशों ने भौगोलिक विशिष्टीकरण को अपना लिया है क्योंकि तकनीकी विकास और वैज्ञानिक आविष्कार के कारण विशिष्टीकरण का क्षेत्र काफी व्यापक हो गया है। इसके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन कर रहा है जिनमें वह सर्वाधिक कुशल है और जिनकी तुलनात्मक लागत कम है अर्थात वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है तो उसे अपनी वस्तुओं का निर्यात करना होगा तथा विदेशों से आवश्यक वस्तुओं का आयात करना होगा। एल्सवर्थ का तो यहां तक कहना है कि बहुत–से देशों के लिए तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार जीवन अथवा

मृत्यु का प्रश्न बन गया है। वर्तमान समय मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं में प्रमुख है :

(1) **श्रम–विभाजन (Division of Labour)** : देशों में बढ़ते हुए श्रम–विभाजन के कारण विदेशी व्यापार आवश्यक हो गया है क्योंकि जो देश कुछ विशेष वस्तुओं का उत्पादन करता है, वह उनका निर्यात करना चाहता है तथा उसके बदले अपने लिए आवश्यक वस्तुओं को विदेशों से आयात करना चाहता है। यह विदेशी व्यापार के माध्यम से ही सम्भव है।

(2) **कच्चे माल की उपलब्धि (Avaitability of Raw Materials)** : कुछ देंशों के पास मशीनें और तकनीकी ज्ञान तो उपलब्ध होता है किन्तु औद्योगिक उत्पादन करने के लिए पर्याप्त कच्चा माल नही होता। यदि वे उत्पादन करना चाहते हैं तो विदेशों से कच्चा माल आयात करना आवश्यक है जो विदेशी व्यापार से ही सम्भव है। ब्रिटेन ने विदेशी व्यापार की सहायता से ही विदेशों से पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल आयात कर औद्योगिक उत्पादन का नेतृत्व किया है।

(3) **प्राकृतिक साधनों का पूर्ण प्रयोग (Full Utilization of National Resources)** : विदेशी व्यापार इसलिए भी आवश्यक है कि देश के प्राकृतिक साधनों का उचित प्रयोग किया जा सके। इन साधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग तभी सम्भव है जब अधिकतम उत्पादन हो तथा अधिकतम उत्पादन का औचित्य उसी समय है जब अतिरिक्त माल का निर्यात किया जा सके । विदेशी व्यापार के माध्यम से प्रचुर प्राकृतिक साधनों का निर्यात करना सम्भव होता है तथा देश में सीमित पूर्ति वाले प्राकृतिक एवं अन्य उत्पत्ति के साधनों का आयात करना आसान हो जाता है।

(4) **विदेशी प्रतियोगिता के लिए (For Foreign Competetion)** : विदेशी व्यापार इसलिए भी आवश्यक है कि देश के उद्योग विदेशी उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा कर सकें। प्रतियोगिता के अभाव मे यह सम्भव है कि देश के उद्योगों में एकाधिकार की प्रवृत्ति पनपने लगे जो कि देश के लिए घातक है। यह विवादास्पद है कि आर्थिक विकास की किस अवस्था में देश के उद्योगों को विदेशी उद्योगों से प्रतियोगिता करा देना चाहिए। फ्रेडरिक लिस्ट के अनुसार जब तक देश के उद्योग पूर्णरूप से विकसित नही हो जाते, उन्हें विदेशों से प्रतियोगिता नही करने देना चाहिए।

(5) **उपभोक्ताओं के लिए वस्तुओं की उपलब्धि (Availability of Goods for Consumers)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इसलिए भी आवश्यक है कि उपभोक्ताओं को विश्व के बाजार से आवश्यक वस्तुएं सस्ते दामों पर उपलब्ध हो सकें। विदेशी व्यापार ने उपभोक्ताओं की रूचियों को विविध एवं सम्पन्न बना दिया है।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक कारण हैं जिससे विदेशी व्यापार आवश्यक हो गया है। इनकी विस्तार से चर्चा विदेशी व्यापार के लाभ के अन्तर्गत की जायेगी क्योंकि इनका सम्बन्ध लाभों से अधिक है।

हैरोड के विचार में ''जिस प्रकार श्रम–विभाजन के लिए विनिमय आवश्यक होता है, उसी प्रकार जब श्रम–विभाजन देश की सीमा को लांघ जाता है तो विदेशी व्यापार आवश्यक हो जाता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम–विभाजन का आवश्यक परिणाम है।''

12.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व (Importance of Foreign Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है तथा इसी कारण से देशों में आपसी सहयोग भी बढ़ रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का समान महत्व होता है क्योंकि जिस देश में कुल उत्पादन में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भाग अधिक होता है उसके लिए विदेशी व्यापार का महत्व अधिक होता हे तथा जहां विदेशी व्यापार का भाग कम होता है, वहां उसका महत्व कम होता है। फिर भी कुछ न कुछ महत्व तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रत्येक देश के लिए होता ही है।

किसी देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आर्थिक महत्व, आन्तरिक व्यापार के समान ही है अर्थात् जीवन–स्तर में वृद्धि करना। सत्य तो यह है कि विदेशी व्यापार के अभाव में न तो अधिक लोग इतनी प्रसन्नता से जीवनयापन कर सकते थे न इतनी अधिक विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते थे और न इतना उच्च जीवन–स्तर बिता सकते थे जितना कि आज सम्भव हो सका है। यदि विदेशी व्यापार न होता तो संयुक्त राज्य अमरीका के लोगों को अनेक वस्तुओं, से चाय, कॉफी, चाकलेट, केला, इत्यादि के उपभोग से वंचित रहना पड़ता। विदेशी व्यापार का स्पष्ट महत्व तो यह है कि इसके माध्यम से विदेशों सें ऐसी वस्तुओं का आयात किया जा सकता है जिन्हें देश में पैदा नही किया जा सकता अथवा जिन वस्तुओं का उत्पादन देश में ऊंची लागत पर किया जा सकता है, उन्हें कम लागत पर विदेशों से आयात कर सकते हैं । प्रो0 एल्सवर्थ के शब्दों में, ''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अधिक लोगों के रहने, विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं उच्च जीवन–स्तर को सम्भव बनाता है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अभाव में सम्भव नही होता।''

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व केवल सस्ती और विविध वस्तुओं को उपलब्ध कराने तक ही सीमित नही है वरन् देश में आर्थिक विकास को गतिशील बनाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। बहुत से अर्थशास्त्री इस बात को स्वीकार करते हैं कि बीसवीं सदी का आर्थिक विकास मुख्यतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण सम्भव हो सका है। यदि यूरोप में विदेशी व्यापार के माध्यम से विदेशों से खाद्यान्न और कच्चे माल का आयात सम्भव न हुआ होता तो वहां जों औद्योगिक क्रान्ति हुई, वह या तो होती ही नहीं या बहुत ही सीमित रही होती। प्रो0 मियर के अनुसार, ''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने ऐसे अनेक देशों के विकास को आगे बढ़ाने का कार्य किया है जो आज विश्व के सर्वाधिक समृद्ध देश समझे जाते हैं। ब्रिटेन का आर्थिक विकास ऊनी तथा सूती कपड़ों के निर्यात के कारण, स्वीडन का लकड़ी के व्यापार से, डेनमार्क का डेयरी के निर्यात द्वारा तथा जापान का रेशम के व्यापार से हुआ है। प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले देशों में भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है।'' इसी सन्दर्भ में पश्चिमी यूरोप का उदाहरण देते हुए

एल्सवर्थ कहते हैं कि ''मलाया के रबर तथा मध्यपूर्व के पेट्रोल के बिना, पश्चिम यूरोप के देशों की कारें तथा यात्री बसें गतिहीन हो जाती।''

12.5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ एवं हानियाँ (Advantages and Disadvantages of International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों का अध्ययन निम्न दो उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है : (I) आर्थिक लाभ, तथा (II) गैर–आर्थिक लाभ।

I. आर्थिक लाभ इसके अन्तर्गत अग्रलिखित लाभों का विवेचन किया जाता है :

(1) श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण के लाभ (Benefits Division of Labour & Specialization) : जिस प्रकार एक देश के भीतर उत्पादकों में श्रम–विभाजन के कारण उत्पादन कुशलतापूर्वक एवं अधिकतम मात्रा में किया जा सकता है, उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भौगोलिक अथवा क्षेत्रीय श्रम–विभाजन से कुल उत्पादन अधिकतम किया जा सकता है। यह क्षेत्रीय विशिष्टीकरण का परिणाम है कि हम जिन वस्तुओं का बहुत महंगी लागत पर देश में उत्पादन कर पाते, उन्हें हम कम कीमत पर विदेशों से आयात कर सकते हैं। श्रम–विभाजन के कारण ही विभिन्न देश उन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिनमें उनकी लागत न्यूनतम होती है एवं उन्हें सर्वाधिक लाभ प्राप्त होता है। एल्सबर्थ के शब्दों में, ''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देश की सीमा के बाहर का एक विस्तार मात्र है, यह विशिष्टीकरण और उससे उपलब्ध होने वाले लाभों के क्षेत्र को अधिक विस्तृत बना देता है।''

(2) उपभोक्ताओं की सस्ती कीमत पर अनेक वस्तुओं की उपलब्धि (Availability of goods to Consumers at Cheeper Rate) : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण एक देश के उपभोक्ता न केवल ऐसी वस्तुओं का उपभोग कर सकते हैं जिनका उत्पादन उनके देश में सम्भव नहीं है, वरन् ऐसी वस्तुओं को विश्व–बाजार से सस्ती कीमतों में प्राप्त किया जा सकता है। विदेशों से वस्तुओं का आयात इस बात का सूचक है कि ये वस्तुएं हमें अपेक्षाकृत सस्ती कीमतों में उपलब्ध हो रही है।

(3) प्राकृतिक साधनों का समुचित प्रयोग (Better Utilization of Natural Resources) : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्तर्गत देश में ऐसे उद्योग विकसित किये जाते हैं जिनके लिए दशाएं सर्वाधिक अनुकूल रहती है। स्वाभाविक है कि देश में जो प्राकृतिक साधन विपुल मात्रा में होंगे, उनसे ही सम्बन्धित उद्योग स्थापित किये जायेंगे। इससे उन उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का समुचित प्रयोग किया जा सकता है। बेस्टेबल के अनुसार, ''देश में उत्पादन शक्तियां देश के प्राकृतिक साधनों का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग करती हैं जिससे अधिकतम लाभ की सम्भावना रहती है।

(4) अकाल व संकट के समय सहायता (Helpful in the event of Famine): देश में अकाल एवं खाद्यान्न के अभाव की स्थिति में, विदेशी व्यापार द्वारा खाद्यान्न का आयात विदेशों से किया जा सकता है जिससे न केवल लोगों के जीवन की रक्षा की जा सकत है वरन् उनके जीवन–स्तर को भी कायम रखा जा सकता है। विदेशी व्यापार के अभाव में, अकाल की स्थिति में लाखों लोगों को

अपने प्राणों को गंवाना पड़ता है जैसा कि 1943 में बंगाल में हुआ जब युद्ध के कारण वहां बर्मा सें चावल का आयात नही किया जा सका।

(5) **औद्योगिक विकास (Industrial Development)** : जिन देशों के पास उद्योगों के लिए कच्चे माल का आभाव होता है, वह उसे विदेशी व्यापार के माध्यम से आयात कर सकते हैं इससे औद्योगिक विकास किया जा सकता है। आज अर्द्ध–विकसित देशों में जो औद्योगीकरण हो रहा है, उसका महत्वपूर्ण कारण विदेशी व्यापार है। जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसार, ''विदेशी व्यापार..... एक ऐसे देश में जिसके संसाधन अविकसित अवस्था में हों, कभी–कभी औद्योगिक क्रान्ति का कारण बन जाता है।'' भारत में जो औद्योगिक विकास हुआ है उसके पीछे विदेशी मशीनें और तकनीक के आयात का महत्वपूर्ण हाथ है जो विदेशी व्यापार के कारण ही सम्भव हुआ।

(6) **विदेशी प्रतियोगिता से लाभ (Benefit of Foreign Competition)** : विदेशी व्यापार के अन्तर्गत देश की फर्मों को विदेशी माल से प्रतियोगिता करनी पड़ती है, अतः देश की फर्में अपनी उतपादन व्यवस्था के आधुनिकतम एवं दुरूस्त रखती है। इसका एक लाभ यह भी होता है कि इन फर्मों में एकाधिकार की भावना नही पनपने पाती जिससे कीमतें कम रहती हैं तथा उपभोक्ताओं को लाभ होता है।

(7) **बाजार का विस्तार (Expansion of Market)** : विदेशी व्यापार का लाभ यह भी होता है कि देश के बाजार में वृद्धि होती है। यदि बाजार देश की सीमा के भीतर तक ही सीमित रहता है तो मांग कम होती है तथा विक्रय भी कम होता है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार होने से मांग भी व्यापक हो जाती है तथा उत्पादन का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। विदेशी व्यापार के कारण ही भारत की चाय की उपभोग विदेशों में व्यापक पैमाने पर किया जाता है।

(8) **राष्ट्रों का आर्थिक विकास (Economic Development of Nations)** : वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पिछड़े देशोंके आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण कारण बन गया है। मार्शल के अनुसार, ''राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति का निर्धारण कने वाले कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अध्ययन के अन्तर्गत आते हैं।'' इसका अध्ययन एक अलग अध्याय के अन्तर्गत किया जायेगा।

(9) **रोजगार में वृद्धि (Increase in Employment)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से क्षेत्रीय श्रम–विभाजन सम्भव होता है जिससे उत्पादन की मात्रा और रोजगार में वृद्धि होती है। विदेशी व्यापार से निर्यात उद्योगों में उत्पादन बढ़ता है जहां श्रमिकों को अधिक रोजगार मिलता है। प्रतिष्ठित अर्थशात्रियों का विश्वास था कि विदेशी व्यापार से ही अधिकतम रोजगार सम्भव है। प्रारम्भ में प्रो0 केन्स का भी यही मत था कि स्वतन्त्र व्यापार से ही पूर्ण रोजगार सम्भव है। रोजगार में वृद्धि इसलिए सम्भव होती है क्योंकि देश की अर्थव्यवस्था पर विदेशी व्यापार का गुणक प्रभाव पड़ता है जिससे उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती है।

(10) **मूल्यों में समता (Equality in Prices)** : जिस प्रकार एक देश में विभिन्न क्षेत्रों में वस्तुओं को भेजकर मूल्यों में समानता स्थापित की जा सकती है, उसी प्रकार विभिन्न देशों में भी आयात–निर्यात के द्वारा वस्तुओं के मूल्यां में समता स्थापित की जा सकती है। इससे मूल्यों मे भारी अन्तर को रोका जा सकता है। मांग और पूर्ति में सामंजस्य स्थापितकर यह समानता स्थापित की जा सकती है।

(II) गैर–आर्थिक लाभ (Non Economic Advatages) : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जो गैर–आर्थिक लाभ होत हैं, वे इस प्रकार है :

(1) **सभ्यता का विकास (Progress of Civilization)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से विभिन्न देशों में आपसी सम्पर्क स्थापित हुआ है, अर्द्ध विकसित देश, विकसित देशों के सम्पर्क में आये हैं जिससे वहां नयी सभ्यता और विकसित अभिरूचियों का सूत्रपात हुआ है। एडम स्मिथ का कथन है कि विश्व में सभ्यता और संस्कृति विदेशी व्यापार के माध्यम से ही सम्भव हो सकी है। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सभ्यता की बड़ी एजेन्सी कहा जाता है।

(2) **शिक्षाप्रद महत्व (Educational Significance)** : विकसित देशों से सम्पर्क स्थापित होने का अवसर मिलने से विदेशी व्यापार कई शिक्षात्मक लाभ प्रदान करता है जो भौतिक वस्तुओं के प्रत्यक्ष आयात से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। अन्य शब्दों में, कहा जा सकता है कि विदेशी व्यापार ज्ञान को भी स्थानान्तरित करता है। विकास की प्रक्रिया में ज्ञान की कमी अन्य किसी भी घटक की कमी से अधिक व्यापक रूकावट है। प्रो0 मियर के अनुसार, ''विदेशी व्यापार चूंकि निर्धन देशों को अपनेसे अधिक समृद्ध देशों की सफलताओं एवं असफलताओं से सीख लेने का अवसर प्रदान करता है अतएव विदेशी व्यापार उनके विकास की गति बढ़ाने में बहुत अधिक सहायता प्रदान कर सकता है।'' जे0एस0 मिल के अनुसार ''विदेशी व्यापार एक देश के निवासियों में नवीन विचारों को जाग्रत कर तथा उनकी आदतों को बदलकर उनमें नवीन इच्छाओं, बड़ी आकांक्षाओं एवं दूरदर्शिता को जन्म देता है।''

(3) **देशों में पारस्परिक सहयोग (Mutual Cooperation in Nations)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से देशों में पारस्परिक सहयोग और मैत्री भावना का विकास होता है जिससे विश्वशान्ति की स्थापना में सहायता मिलती है। बहुत–से देशों में बढ़ते हुए राष्ट्रवाद, बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीयवाद अथवा दोनों की बढ़ती हुई दुनिया में, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ज्ञान और समझौतों का महत्वपूर्ण साधन है।''

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों का उल्लेख करते हुए बर्टिल ओहलिन ने अपने विचार प्रस्तुत किए है। उनके अनुसार, ''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से व्यापारी देशों में आर्थिक जीवन के मूल तत्व बदल जाते हैं। इसके बारे में परोक्ष प्रभाव बहुत अधिक दीर्घकालीन होते हैं। यह सबसे अच्छी तरह तब हो सकता है जबकि हम इस बात पर विचार करें कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार न हुआ होता तो विश्व के लोगों की क्या दशा होती, पूंजी उपकरणों का क्या होता तथा वह अपनी वर्तमान स्थिति से कितने भिन्न होते।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से हानियां–

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से केवल लाभ ही नहीं होते वरन् कुछ हानियां भी होने की आशंका रहती हे जो निम्नलिखित हैं :

(1) **विदेशों पर निर्भरता (Dependance on Foreign Country)** : विदेशी व्यापार के कारण विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्था विदेशों पर निर्भर करती है क्योंकि वह कुछ विशेष वस्तुओं के आयात के लिए विदेशों पर ही निर्भर करने लगते हैं, किन्तु यदि युद्ध या अन्य ऐसी ही परिस्थितियों के कारण विदेशी व्यापार अवरूद्ध हो जाता है तो देश की अर्थव्यवस्था पंगु हो जाती है और उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विदेशों में होने वाली मन्दी का

प्रभाव उन देशों पर भी पड़ता हे जिनके आपस में व्यापारिक सम्बन्ध होते हैं। सन् 1929–32 में जो महान मन्दी आयी थी वह इसलिए विश्वव्यापी हो गयी क्योंकि विश्व में स्वतंत्र व्यापार की नीति प्रचलन में होने के कारण देशों के आपस में व्यापारिक सम्बन्ध थे।

(2) **खनिज पदार्थों की समाप्ति (Deplition of minerals)** : विदेशी व्यापार के अन्तर्गत अपने निर्यातों को बढ़ाने के लिए बहुत से अर्द्ध–विकसित देशों द्वारा उन बहुमूल्य खनिज पदार्थों का निर्यात कर दिया जाता है जिसको पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता, किन्तु यदि इन्हें बचाकर रखा जाय तो भविष्य में अधिक लाभ के लिए उन्हें प्रयुक्त किया जा सकता है। भारत से कच्चा मैंगनीज, अभ्रक, खनिज, लोहा आदि निरन्तर निर्यात किये जाते रहे हैं इनका प्रयोग देश मे करने से औद्योगिक विकास को बल मिल सकता है।

(3) **विदेशी प्रतियोगिता से हानि (Loss from Foreign Competition)** : विदेशी व्यापार के कारण देश की औद्योगिक इकाइयों को विदेशी उद्योगों से प्रतियोगिता करनी पड़ती है, किन्तु विदेशी प्रतियोगिता के सामने ये उद्योग टिक नहीं पाते और इनका ह्रास होने लगता है। इसका कारण यह है कि विकसित देशों की वस्तुएं उन्नत तकनीक के कारण अधिक सस्ती और टिकाऊ होती है। उन्नीसवीं सदी में विदेशी प्रतियोगिता के कारण भारतीय लघु और कुटीर उद्योगों को भारी आघात लगा जिससे कृषि पर जनसंख्या का भार बढ़ा और हमारी अर्थव्यवस्था का सन्तुलन बिगड़ गया।

(4) **राशिपातन से हानि (Loss from Dumping)** : राशिपातन के अन्तर्गत एक देश अपने देश में वस्तु की कीमत से भी कम मूल्य पर वस्तुओं का विदेशी बाजारों में बेचता है। इसका उद्देश्य विदेशी बाजारों पर कब्जा करना होता हैं अनेक बार इस नीति द्वारा देशी उद्योगों को हानि पहुंचने की आशंका रहती है।

(5) **उपभोग की आदतों पर प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Effection Consuming Habbits)** : विदेशी व्यापार के अन्तर्गत एक देश में ऐसी वस्तुओं का आयात किया जा सकता हे जो हानिकार हों तथा जिनका उपभोक्ताओं की शारीरिक और मानसिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। चीन में यद्यपि अफीम पैदा नही होती, किन्तु वहां अफीम का आयात किया गया जिससे चीन के लोग अफीम के प्रयोग के अदी हो गये जिससे उस देश के सामाजिक ढांचे पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

(6) **अर्थव्यवस्था का असन्तुलित विकास (Under Development of Economy)** : विदेशी व्यापार में तुलनात्मक लागतों के अन्तर्गत एक देश कुछ विशेष वस्तुओं के उत्पादनों में विशिष्टीकरण प्राप्त करता है जिससे देश में सीमित उद्योग–धन्धों का ही विकास हो पाता है और लोगों के विभिन्न व्यवसायों में जाने के अवसर बहुत ही सीमित हो जाते हैं। इससे न केवल देश के आर्थिक जीवन में अस्थिरता आती है वरन् देश का सन्तुलित विकास भी नही हो पाता। अर्द्ध–विकसित देशों को इससे भारी हानि होती है। ऐसे देशों में विदेशों से व्यापार होने से दोहरी अर्थव्यवस्था का निर्माण होता है। कुछ के क्षेत्र तो विकास के द्वीप बन जाते हैं, किन्तु

शेष अर्थव्यवस्था में कोई विकास नहीं हो पाता अर्थात् निर्यातक क्षेत्र ऐसी व्यवस्था से घिरा रहता है जो पिछड़ी और निर्वाह की स्थिति के समीप होती है।

(7) **प्रदर्शन प्रभाव–जनित हानि (Loss from Demonstration Effect)** : प्रदर्शन प्रभाव तो आन्तरिक हो सकता है अथवा अन्तर्राष्ट्रीय। जब एक देश में उपभोक्ता अपने से ऊंचे आय–वर्ग के लोगों के उपभोग स्तर को अपनाते हैं तो यह आन्तरिक प्रदर्शन प्रभाव है और जब विदेशों के सम्पर्क में आकर पिछड़े देशों के उपभोक्ता, विदेशी उच्च उपभोग के स्तर की नकल करते हैं, तो इसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव कहते हैं। इसका परिणाम यह होता हे कि एक ओर तो उपभोक्ता विदेशी आयातों पर निर्भर हो जाते हैं दूसरी ओर उपभोग–प्रवृत्ति बढ़ जाने से देश से बचत की मात्रा धट जाती है।

(8) **अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य (International Exemity)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बढ़ती हुई प्रतियोगिता के कारण प्रत्येक देश अपने निर्यातों को बढ़ाना चाहता है। अतः इसके लिए ये–नये बाजारों की खोज करता है और उन्हें हथियाना चाहता है जिसके फलस्वरूप देशों के बीच प्रायः भीषण प्रतिस्पर्द्धा होने लगती है जो कभी–कभी द्वेष और वैमनस्य में बदल जाती है। बजारों के साथ ही साथ कच्चे माल को प्राप्त करने के लिए भी प्रतियोगिता होती है जिससे युद्धों का जन्म होता है और उपनिवेशों की स्थापना होती है।

(9) **पिछड़े देशों का शोषण (Exploitation of Backword Countries)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विपक्ष में एक शक्तिशाली तर्क यह भी दिया जाता है कि इससे विकसित देशों द्वारा, पिछड़ेदेशों का लगातार शोषण होता है। इस मत का समर्थन प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो0 मिर्डल, मिन्ट, आर्थर लुईस एवं सिंगर द्वारा किया गया है। इनका कहना है कि अर्द्ध–विकसित देशों का विकसित देशों के साथ व्यापार होने से विश्व अर्थव्यवस्था में ऐसी असन्तुलन पैदा करने वाली शक्तियां पैदा हुई जिनसे विदेशी व्यापार का लाभ केवल विकसित देशों को ही मिला है।

(10) **राजनैतिक दासता का प्रसार (Expansion of Political Slavery)**: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का यह दुष्प्रभाव भी हुआ कि इससे साम्राज्यवाद का प्रसार हुआ। बहुत से विकसित देशों ने विदेशी व्यापार के माध्यम से छोटे और पिछड़े देशों में राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना की तथा उनकी राजनीतिक स्वतन्त्रता का हनन किया। इसके साथ ही ऐसे पिछड़े देशों पर उन्होंने अपनी आर्थिक और राजनीतिक नीतियों को आरोपित भी किया।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से बहुत–सी हानियां भी हैं। इसका मूल कारण है कि जब ऐसे दो देशों में व्यापार होता हे जो आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में रहते हैं तब पिछड़े देश को हानि होती है। हां, यदि दोनों देश विकास के समान स्तर पर हों तो दोनों प्रायः समान रूप से लाभान्वित हो सकते हैं।

12.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव (Effects of International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रभाव :

विश्व की अर्थव्यवस्था पर व्यापार के विभिन्न प्रभाव होते हैं। यद्यपि कुछ प्रभावों का अध्ययन हम विदेशी व्यापार के लाभों के अन्तर्गत कर चुके हैं, किन्तु इसके कुछ प्रभाव ऐसे हैं जिनका पृथक रूप से अध्ययन किया जाना चाहिए। मुख्य प्रभाव निम्न प्रकार है :

(1) **उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में समानता (Similarity in Price of Inputs)** : जब विदेशी व्यापार होता है तब विभिन्न देशों मे उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में समानता की प्रवृत्ति को लेकर अर्थशास्त्रियों की विचारधाराओं में अन्तर है। कुछ अर्थशास्त्री उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में पूर्ण समानता की प्रवृतित को व्यक्त करते हैं तो कुछ आंशिक समानता की प्रवृत्ति को। प्रो0 ओहलिन का मत है कि स्वतन्त्र व्यापार से साधनों की कीमतों में पूर्ण समानता स्थापित नही होती। इसके विपरीत, सेमुअलसन का मत है कि कुछ विशेष मान्यताओं के अन्तर्गत व्यापार करने वाले दोनों देशों में वास्तविक साधनों की कीमत बिल्कुल समान होने की प्रवृत्ति रहती है। ये मान्यताएं इस प्रकार है :

(i) केवल दो देश हें तथा प्रत्येक देश केवल दो वस्तुओं का उत्पादन कर रहा है।

(ii) प्रत्येक वस्तु का उत्पादन दो साधनों की सहायता से किया जा रहा है तथा प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन उत्पत्ति समता नियम के अन्तर्गत है।

(iii) यदि केवल किसी एक साधन में वृद्धि की जाती है, तो उसकी सीमान्त उत्पादकता गिरती है।

(iv) दोनों देशों में दोनों साधन गुणों में समान है।

(v) दोनों देशों में वस्तुओं की पूर्ण गतिशीलता है, और

(vi) प्रत्येक देश दोनों वस्तुओं की कुछ न कुछ मात्रा का उत्पादन करता है।

इन मान्यताओं के आधार पर साधनों की कीमतों में समानता को एक उदाहरण से समझाया जा सकता है– दो देश हैं A और B तथा दो साधन हें श्रम और भूमि। देश A के पास श्रम की मात्रा ज्यादा है तथा देश B के पास भूमि ज्यादा है। दोनों देशों में व्यापार होने के पहले देश A में श्रम की कीमत तुलनात्मक रूप से कम होगी तथा भूमि की कीमत अधिक होगी। देश B में ठीक इसके विपरीत स्थिति होगी। अब दोनों देशों में व्यापार होने से देश A में उस वस्तु के उत्पादन का विशिष्टीकरण होगा जिसमें अधिक श्रम और कम भूमि की मांग होगी (जैसे कपड़ा) तथा देश B में उस वस्तु का उत्पादन होगा जिसमें अधिक भूमि तथा कम श्रम की मांग होगी (जैसे गेहूं) देश A में कपड़े के उत्पादन का विशिष्टीकरण होगा तथा गेहूं के उत्पादन में लगे साधनों को कपड़े के उत्पादन की ओर प्रवाहित किया जायेगा। A में कम भूमि तथा अधिक श्रम की मांगी होगी इसके अन्तर्गत देश A को उस अनुपात में सामंजस्य करना होगा जिसमें दोनों उद्योगों में श्रम और भूमि विनियोजित है ताकि दोनों साधनों के उपयोग को अधिकतम किया जा सके। सन्तुलन की स्थिति में दोनों उद्योगों में

श्रम और भूमि की सीमान्त उत्पादकता का अनुपात तथा उनकी कीमतें समान रहनी चाहिए तथा कपड़े और गेहूं की कीमतों के अनुपात के बराबर होनी चाहिए। विदेशी व्यापार की स्थिति दोनों उद्योगों में सन्तुलन की स्थिति पैदा कर देती है। यही प्रक्रिया देश B में भी होती है जिसके फलस्वरूप दोनों देशों में श्रम और भूमि की कीमतों का अनुपात एकसमान हो जाता है।

यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उक्त उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में दो देशों में समानता सदैव स्थापित नहीं हो पाती क्योंकि ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार ही समाप्त होने लगता है।

(2) **वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों में समानता (Similarity in Prices of Goods and Services)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव यह भी होता है कि विभिन्न देशों में वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों में समानता स्थापित होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। यह उसी समय सम्भव है जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पूर्ण प्रतियोगिता हो तथा आयात–निर्यात में कोई परिवहन लागत न लगती हो, किन्तु वास्तविक जगत में विभिन्न देशों के बीच मे वस्तुओं का आवागमन बिना लागत के सम्भव नहीं होता। परिवहन व्यय के साथ बीमा शुल्क और तटकर भी लगता है और फिर विभिन्न देशों में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाएं विद्यमान रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि दो देशों के बीच स्थायी तौर पर वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों में समानता स्थापित नहीं हो पाती। उनमें उतना अन्तर तो होता ही है जितना व्यय परिवहन लागत, सीमाकर और बीमा शुल्क, इत्यादि में होता है।

(3) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का साधन मांग पूर्ति पर प्रभाव (International Trade-Effect on Demand and Supply)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण प्रत्येक देश उन उद्योगों में विशिष्टीकरण प्राप्त करता है जिसमें देश में उपलब्ध प्रचुर साधनों का प्रायोग किया जाता है। अतः जो साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं, उनकी मांग बढ़ जाती है एवं सीमित साधनों की मांग घटने लगती है। फलस्वरूप प्रचुर साधनों की कीमतें बढ़ने लगती हैं और सीमित साधन की कीमतें घटने लगती है। कीमतों में वृद्धि होने से प्रचुर साधनों की पूर्ति बढ़नें लगती है तथा कीमतें घटने से सीमित साधनों की पूर्ति घटती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव यह होता है कि प्रचुर साधनों की मांग होती है, और सीमित साधनों की मांग घटती है जिससे इन दोनों साधनों के बीच का अन्तर और बढ़ता है और इसी प्रकृति के व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है। उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति की लोच जितनी अधिक होती है, विभिन्न देशों में उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में समानता की प्रवृत्ति का उतना ही अभाव रहता है। वे व्यापार एवं उसकी मात्रा को प्रोत्साहन मिलता है।

(4) **श्रम एवं पूँजी में गुणात्मक सुधार (Quality Improvement in Labour and Capital)** : व्यापार में विशिष्टीकरण होता है तथा विशिष्टीकरण से श्रम और पूंजी में गुणात्मक सुधार होता हे जो पुनः विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन देता है। प्रो0 ओहलिन के अनुसार, ''व्यापार लोगों के गुणों में परिवर्तन ला देता है, उन्हें नयी वस्तुओं के उपभोग और पुरानी वस्तुओं को नये तरीके से प्रयोग करने की शिक्षा देता है। तकनीकी ज्ञान मुख्य रूप से विशिष्टीकरण का परिणाम है जिसे व्यापार ने सम्भव बनाया है। व्यापार से न केवल तकनीकी श्रम का वरन् कुशल और

अकुशल श्रम का स्तर भी बदलता है।'' इस प्रकार व्यापार से श्रम और पूंजी के प्रयोग के तरीकों में परिवर्तन होता हे जिससे इनकी कुशलता में वृद्धि होती है।

(5) **कुल उत्पादन में वृद्धि (Increase in Total Production)** : विदेशी व्यापार का यह प्रभाव भी होता है कि कुल उत्पादन में वृद्धि हो जाती है। एक निश्चित समय में उत्पत्ति के साधनों का कुल मूल्य उन वस्तुओं और सेवाओं के बराबर रहता है जो उन साधनों द्वारा पेदा की जाती है। जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रारम्भ होता है तो विशिष्टीकरण के कारण उपलब्ध साधनों का अधिक मितव्ययता के साथ प्रयोग किया जाता है जिससे उत्पादन में कुशलता की वृद्धि होती है अतः उन्हीं उत्पत्ति के साधनों द्वारा अब पहले से अधिक मात्रा में उत्पादन किया जाता है। अन्य शब्दों में अधिक उत्पादन के सन्दर्भ में अब साधनों का मूल्य बढ़ जाता है।

(6) **विश्व मांग पर प्रभाव (Effect on World Demand)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का वस्तुओं और सेवाओं की मांग पर दो तरह से प्रभाव होता है। एक तो व्यापार के कारण लोगों की आय में वृद्धि होती है जिससे वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ती है। दूसरे, लोगों की मांग के स्वयं में भी परिवर्तन होता है तथा लोग नयी वस्तुओं की मांग पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार विदेशी व्यापार विभिन्न देशों में वस्तुओं और सेवाओं की मांग को काफी प्रभावित करता है।

(7) **रोजगार पर प्रभाव (Effect on Employment)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्तर्गत रोजगार की तात्कालिक प्रवृत्ति तो यह होती है कि उसकी मात्रा घटने लगती है क्योंकि व्यापार से केवल निर्यात उद्योगों को ही प्रोत्साहन मिलता है तथा देश के अन्य उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने से वहां रोजगार की मात्रा घटने लगती है। यद्यपि निर्यात उद्योगों में रोजगार की मात्रा बढ़ती है, किन्तु उसकी तुलना में अन्य उद्योगों में बेरोजगारी अधिक फैलती है। किसी भी पिछड़े हुए देश में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रारम्भिक प्रभाव यही होता है, किन्तु जैसे–जैसे निर्यात उद्योगों का विकास होता है रोजगार की मात्रा में भी वृद्धि होने लगती है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का देश के साधनों, वस्तुओं के उत्पादन, मांग की मात्रा और रोजगार, इत्यादि पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

12.7 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और राष्ट्रीय हितों में संघर्ष (International Trade & Conflicts in Interest)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रतियोगिता से जुड़ा हुआ दूसरा प्रश्न यह है कि जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इतना लाभदायक है तो उसके साथ राष्ट्रीय हितों का संघर्ष क्यों होता है अर्थात् राष्ट्रीय हितों की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को तिलांजलि क्यों दे दी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का राष्ट्रीय हितों के साथ संघर्ष होने के प्रमुख कारण है :

(1) **रोजगार का प्रश्न (Question of Employment)** : प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की यह धारणा रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से देश में उत्पादन, रोजगार और आय के स्तर को अधिकतम किया जा सकता है। उनकी व्याख्या यह थी कि जिस प्रकार देश में घरेलू विनियोग से उत्पादन और रोजगार बढ़ता है, उसी प्रकार निर्यात से होने वाली आय का प्रभाव भी ''विदेशी व्यापार गुणक'' के माध्यम से

देश के उत्पादन और रोजगार पर पड़ता है अर्थात् निर्यात में होने वाली वृद्धि का कई गुना प्रभाव देश में होता है।

उपर्युक्त तर्क सही नही है क्योंकि उसका आधार यह है कि समस्त देशों के निर्यात में सतत् वृद्धि हो। यह तभी सम्भव है जब विभिन्न देश आयात भी करें, किन्तु जब प्रत्येक देश अपने निर्यात को बढ़ाना चाहता है तो आयात कौन करेगा? एक देश का निर्यात किसी–न–किसी देश का आयात होता है। एक देश के आयातों पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रभाव यह होगा कि अन्य देश भी ऐसा ही करेंगे जिससे निर्यातों में वृद्धि नहीं हो पायेगी। अतः रोजगार की मात्रा में वृद्धि करने के लिए विभिनन देश अपने राष्ट्रीय साधनों एवं गृह उद्योगों को विकसित करने की अधिक चिन्ता करते हैं।

(2) **श्रमिकों का आवागमन (Commutation of Labour)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक प्रभाव यह होता है कि उत्पत्ति के साधनों की कीमतो में समानता आती है। आज विश्व के विभिन्न देशों में, मजदूरी की दरों में भिन्नता है अतः यह वांछनीय है कि स्वतन्त्रतापूर्वक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हो जिससे मजदूरी की दरों में समानता हो, किन्तु जिन देशों में ऊंची मजदूरी है, वहां के मजदूर ऐसे देशों से वस्तुओं के आयात को हतोत्साहित करते हैं अथवा श्रमिकों के आवागमन का विरोध करते हैं। जहां मजदूरी सस्ती है, क्योंकि ऊंची मजदूरी वाले देशों को यह भय रहता है कि इससे उनकी मजदूरी कम हो जाएगी। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों के विपरीत राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दी जाती है।

उपर्युक्त तर्क भी दोषपूर्ण है क्योंकि मुख्य प्रश्न नकद मजदूरी की भिन्नता का नहीं बल्कि मजदूरों की कार्यक्षमता की भिन्नता का है।

(3) **एकाधिकार की स्थिति (Monopoly Situation)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सभी देश उसी समय लाभान्वित हो सकते हैं जब विश्व बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो, किन्तु कभी–कभी ऐसी स्थिति आती है कि एक राष्ट्र वस्तुओं की पूर्ति को नियंत्रित करके एकाधिकार की स्थिति बना लेता है। जिस प्रकार एक देश के भीतर एकाधिकार से अन्य उद्योगपतियों एवं उपभोक्ताओं को हानि होती है उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे एकाधिकार से अनेक देशों को हानि होती है अतः उस स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की तुलना में राष्ट्रीय हितों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(4) **अर्द्ध–विकसित देशों की स्थिति (Condition of Undeveloped Countries)** : जब दो समान रूप से विकसित राष्ट्रों में व्यापार होता है तो राष्ट्रीय हितों में कोई संघर्ष नही होती, किन्तु जब एक अर्द्ध–विकसित देश विकसित राष्ट्र के साथ व्यापार करता है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को समानता के साथ प्राप्त नहीं कर सकता तथा उसके राष्ट्रीय हितों का शोषण होता है। अतः वह अर्द्धविकसित राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देता है।

यह एक वास्तविक स्थिति है जो यह स्पष्ट करती है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और राष्ट्रीय हितों में संघर्ष क्यों होता है।

(5) **युद्ध की स्थिति (Situation of War)** : आर्थिक आधार पर विभिन्न आवश्यकाताओं के लिए तो विभिन्न देशों में विदेशी व्यापार के अन्तर्गत सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं, किन्तु जहां युद्ध की स्थिति आती है तो प्रत्येक राष्ट्र आत्म–निर्भर होना चाहता है तथा राष्ट्रीय हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती

है। यदि कोइ राष्ट्र रक्षा सामग्री के लिए भी विदेशी व्यापार पर निर्भर रहता है तो वह अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को खतरे में डालता है।

12.8 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भविष्य (Future of International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भविष्य :

अन्त में, अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि राष्ट्रीय हितों और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संघर्ष के बावजूद क्या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार चलता रहेगा अथवा इसका अन्त हो जाएगा। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि विदेशी व्यापार दो तरह से अर्थ–व्यवस्था को प्रोत्साहित करता है। एक तो साधनों की उपलब्धि के अन्तर को तीव्र करके और द्वितीय, साधनों के गुणों में अन्तर को तीव्र करके। वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पीछे मुख्य कारण क्षेत्रीय विशिष्टीकरण तो है ही, किन्तु दूसरा कारण भी महत्वपूर्ण है जो है तकनीक और पूंजी की मात्रा में अन्तर। विभिन्न देशों में तकनीक और पूंजी में भारी अन्तर है। विकसित देशों को आज जो निर्माण उद्योगों में तुलनात्मक रूप से अधिक लाभ है, उसका कारण अनुकूल प्राकृतिक साधन नहीं है वरन् यह है कि इन देशों के पास श्रेष्ठ उत्पादन तकनीक और बड़ी मात्रा में पूंजी है। यदि अर्द्ध–विकसित देशों के पास यह तकनीक और पूंजी उपलब्ध हो तो वे अधिक सस्ते में निर्माण उद्योगों की वस्तुओं को तैयार कर सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि विकसित देशों को जो तुलनात्मक लाभ प्राप्त हो रहा है, वह प्राकृतिक न होकर, प्राप्त किया हुआ है जिसमें तकनीक और पूंजी का प्रमुख हाथ है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से अर्द्ध–विकसित देश भी मशीनों और तकनीकी ज्ञान का आयात कर अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार विकसित और अर्द्ध–विकसित देशों में तकनीकी स्तर के अन्तर को कम किया जा सकता है। इससे क्रमशः एक ऐसी स्थिति भी आ सकती है, जब अर्द्ध–विकसित देश तुलनात्मक रूप से कम लागत पर निर्माण उद्योगों की वस्तुएं एवं पूंजीगत वस्तुएं तैयार कर सकते हैं । इस प्रकार दोनों प्रकार के देशों का तकनीकी और पूंजी का अन्तर समाप्त होने पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समाप्त हो जायेगा, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समाप्त नही होगा क्योंकि विभिन्न देशों के बीच प्राकृतिक साधनों का अन्तर विद्यमान रहेगा। हां, इसके पहले तकनीकी और पूंजी के अन्तर के आधार पर जो व्यापार हो रहा है उसका स्थान वह व्यापार ले लेगा जो प्राकृतिक साधनों के अन्तर के कारण होगा। जब तक प्राकृतिक संसाधनों में अन्तर रहेगा, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए क्षेत्र खुला रहेगा। यहां तक कि समान प्राकृतिक साधनों के होने पर भी विशिष्टीकरण और बड़े पैमाने की बचतों के कारण विदेशी व्यापार होता रहेगा। इसके साथ ही राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं के कारण भी तुलनात्मक लागत में अन्तर बना रहेगा जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करेगा।

यद्यपि पिछले वर्षों मे अर्द्ध–विकसित देशों में औद्योगीकरण के कारण उनकी राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है तथा इन देशों ने उन वस्तुओं का उत्पादन भी प्रारम्भ कर दिया हे जिनका पहले आयात किया जाता था, किन्तु फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समाप्त नही हुआ है। ऐसे देशों में अब अधिक उच्च उपभोग की वस्तुओं की मांग उत्पन्न हुई है और उसका आयात किया जा रहा है। जहां

तक विभिन्न देशों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की स्थिति का प्रश्न है, आंकड़ों से स्पष्ट है कि विकसित देशों के बीच में अधिक पैमाने पर व्यापार किया जाने लगा है। इसकी तुलना में विकसित तथा अर्द्ध–विकसित और आपस में अर्द्ध–विकसित देशों के बीच व्यापार की मात्रा कम है।

विश्व में तेजी से बढ़ रहे भू–मण्डलीकरण के दौर में विभिन्न देश उदारीकरण प्रक्रिया को अपनाकर अपनी देश की सीमाएं दूसरे देशों की वस्तुओं के लिए खोल रहे हैं। भारत में अपनाई गई आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया भी इसका एक उदाहरण है। इस दिशा में GATT (जो 1995 में समाप्त हो गया) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान में GATT के स्थान पर गठित विश्व संगठन (WTO) एक सजग प्रहरी के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सबल बनाने की भूमिका निभा रहा है। विभिनन अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों पर सभी राष्ट्रों की निर्भरता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भविष्य उज्जवल है।

12.9 सारांश

प्राचीन काल में जब आवश्यकतायें सीमित थी विदेशी व्यापार बहुत कम था। मुद्रा के आविष्कार के बाद से विदेशी व्यापार तेजी से आगे बढ़ा। विदेशी व्यापार श्रम विभाजन, कच्चे माल की उपलब्धि, नयी वस्तओं के आविष्कार विदेशी प्रतियोगिता आदि कारणों से आगे बढ़ता गया। विदेशी व्यापार जहां अनेक लाभ है वही कुछ हानियाँ भी हैं। आज राजनैतिक वैमनस्य, पिछड़े देशों का शोषण एवं राजनैतिक आर्थिक दासता का मुख्य कारण विदेशी व्यापार ही है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आज के युग में अपरिहार्य हो गया है। इसीलिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को नियोजित करने के लिये GATT एवं WTO जैसी संस्थाओं की आवश्यकता पड़ी। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इन्ही की देखरेख में संचालित किया जा रहा है।

12.10 शब्दावली

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार : ऐसा व्यापार (क्रय–विक्रय) जो दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच वस्तुओं एवं सेवाओं के लिये किया जाता है।

श्रम विभाजन : कुछ कार्य कुछ लोगों के द्वारा विशिष्टता से सम्पादित किये जाने को श्रम विभाजन कहते हैं।

विदेशी प्रतियोगिता : विदेशी व्यापार में एक देश दूसरे देश से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति होती है।

राशिपातन : किसी देश द्वारा दूसरे देश में उसकी आवश्यकता से अधिक वस्तुओं को सप्लाई कर देना राशिपातन कहलाता है।

12.11 बोध प्रश्न

1. ..... से तात्पर्य उस व्यापार से है जो किसी एक देश की सीमा के भीतर विभिन्न स्थानों अथवा क्षेत्रों के बीच किया जाता है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ उस व्यापार से है जिसके अन्तर्गत .... अधिक राष्ट्रों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय किया जाता है।

3. यह ..... विशिष्टीकरण का परिणाम है कि हम जिन वस्तुओं का बहुत महंगी लागत पर देश में उत्पादन कर पाते, उन्हें हम कम कीमत पर विदेशों से आयात कर सकते हैं।
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से देश भी मशीनों और तकनीकी ज्ञान का आयात कर अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ा सकते हैं।

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. आन्तरिक व्यापार, 2. दो या दो से, 3. क्षेत्रीय, 4. अर्द्ध–विकसित

12.13 स्वपरख प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर्यावरण को दर्शाते हुये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता को समझाइये।
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और आन्तरिक व्यापार में अन्तर समझाइये।
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभ–हानियों की विवेचना कीजिए। क्या पूर्णरूप से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का समर्थन किया जा सकता है?
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रभावों की विवेचना करते हुए समझाइए कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रतियोगिता क्यों होती है?
5. जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से विनिमय करने वाले दोनों देशों को लाभ होता है तो उसका राष्ट्रीय हितों के साथ संघर्ष क्यों होता है, स्पष्ट कीजिए?
6. देशों के विकसित होने पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ता है? अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर GATT एवं WTO के नियंत्रण को समझाइये।

12.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–13 विश्व व्यापार संगठन एवं भारत (World Trade Organisation & India)

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य एवं कार्य
13.2.1 उद्देश्य
13.2.2 कार्य
13.3 विश्व व्यापार संगठन के सम्मेलन
13.4 दोहा घोषणा पत्र
13.5 विश्व व्यापार संगठन समझौतों के मुख्य प्रावधान
13.6 विश्व व्यापार संगठन का भारत पर प्रभाव
13.6.1 भारत पर बुरे प्रभाव
13.6.2 भारत को लाभ
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 बोध प्रश्न
13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.11 स्वपरख प्रश्न
13.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- विश्व व्यापार संगठन की स्थापना कब और कैसे हुई, के बारे में बता सकें।
- विश्व व्यापार संगठन के कार्यों एवं उद्देश्यों के बारे में बता सकें।
- विश्व व्यापार संगठन के विभिन्न सममेलनों के बारे में बता सकें।
- विश्व व्यापार संगठन का भारत की अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव रहा, के बारे में बता सकें।

13.1 प्रस्तावना

1944 में ब्रेटनवुड सममेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की भी स्थापना की सिफारिश की गई थी। लेकिन आम सहमति न बनने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना नही की जा सकी। इसके बाद 1947 में जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड) में 23 देशों द्वारा सीमा शुल्क से सम्बन्धित एक सामान्य समझौते पर हस्ताक्षर किये गये जिसे प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (General Agreement on Tarrif and Trade-GATT) के नाम से जाना जाता है। वास्तव में गैट का मुख्य उद्देश्य प्रशुल्क को कम करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की बाधाओं को दूर कर सदस्य देशों के आर्थिक विकास को तीव्र करना था। गैट ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तीन सिद्धान्तों (अ) भेदभाव रहित व्यापार को बढ़ावा देना,

(ब) व्यापार पर न्यूनतम प्रतिबन्ध लगाना एवं (स) आपसी विचार–विमर्श से व्यापारिक विवादों का निपटारा करना, को स्वीकार किया।

बहुत सी कमियों के बावजूद गैट के सदस्य देशों की संख्या लगातार बढ़ती रही। 1995 तक यह संख्या 128 पहुँच गयी। गैट की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि व्यापार में अवरोधों को कम करने के लिए एक निरन्तर विचार–विमर्श का फोरम बना तथा व्यापक व्यापारिक उदारीकरण प्राप्त हुआ। लेकिन कृषि के क्षेत्र में सब्सिडी, विकसित देशों को विशेष दर्जा तथा कपड़ा उद्योग के क्षेत्र में मल्टी फाइबर एग्रीमेन्ट्स को लेकर विवाद तथा आलोचना की स्थिति बनी रही।

गैट की 8वें दौर की वार्ता जो उरूग्वे में 1986 से शुरू हुई 1994 तक चली और जेनेवा में समाप्त हुई। 15 अप्रैल 1994 की वार्ता के दौरान एक समझौता हुआ जिसमें सभी सदस्य देश इस बात पर सहमत हुये कि गैट को समाप्त कर विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की जाय। गैट की आठवें दौर की वार्ता में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का प्रस्ताव गैट के तत्कालीन महानिदेशक आर्थर डंकल द्वारा किया गया था इसलिये डेंकल प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है।

लगभग पाँच दशक तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की निगरानी करने वाली संस्था गैट का अस्तित्व 12 दिसम्बर 1995 को समाप्त हो गया। 1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन की स्थापना कर दी गई। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना में भारत संस्थापक सदस्य के रूप में शामिल हुआ। जून 2000 तक विश्व व्यापार संगठन को सदस्य देशों की संख्या 153 थी।

सदस्यता व संगठन का मुख्यालय (Membership and Head Quarter)

1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना हो चुकी थी। यह एक शक्तिशाली संगठन बन कर उभर गया है। विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय गैट के मुख्यालय के समान ही जेनेवा में स्थित है। यह एक स्थायी संगठन है। विश्व व्यापार संगठन के कार्यों का संचालन करने के लिए निम्न व्यवस्था को अपनाया गया है:

1. **सचिवालय–** विश्व व्यापार संगठन के संचालन के लिए एक सचिवालय की स्थापना की गई है। यह संगठन अपने सचिवालय की देख–रेख में काम करता है। सचिवालय के प्रमुख को महानिदेशक कहा जाता है। महानिदेशक को सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं।
2. **मंत्रियों का सम्मेलन–** समय–समय पर सदस्य देशों के व्यापार एवं वाणिज्य मंत्रियों का सम्मेलन बुलाया जाता है। इस सम्मेलन में व्यापार–वाणिज्य मंत्री की अनुपस्थिति में मंत्री के द्वारा नामित सदस्य भी भाग ले सकते हैं। इस सम्मेलन में व्यापार, पर्यावरण व भुगतान सम्बन्धी निर्णयों पर विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण कार्यों को करवाने के लिए मंत्रियों का संगठन अलग–अलग समितियों का गठन करता है जो विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है।
3. **सामान्य परिषद–** विश्व व्यापार की सफलता के लिए यह संगठन सामान्य परिषदों का गठन करता है। मंन्त्रिपरिषद के द्वारा लिये गये निर्णयों को लागू करने में इन परिषदों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विश्व व्यापार

संगठन पर्यावरण के बारे में बहुत अधिक जागरूक है, वह इसके लिए अलग से एक परिषद का गठन कर चुका है।

4. **बहुपक्षीय समझौतों के लिए परिषदों का गठन–** विश्व व्यापार संगठन को अपने उद्देश्य में सफल होने के लिए अलग–अलग परिषदों का गठन करना होता है। इसे विभिन्न प्रकार के समझौते करने होते हैं। उदाहरण के लिए, व्यापारिक निवेश सम्बन्धी समझौतों के लिए परिषद का गठन करना, टेक्सटाइल व वस्त्रों पर समझौते के लिए परिषदों का गठन आदि।

13.2 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य व कार्य (Objectives and Functions of Word Trade Organisation)

विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य व कार्यों को नीचे दिया गया है–

13.2.1 उद्देश्य

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की गयी थी–

(1) विश्व व्यापार संगठन का मुख्य उद्देश्य विश्व में पर्यावरण की सुरक्षा को बनाये रखना है। वह विशेषकर अपने सदस्य देशों को ऐसा करने के लिए दबाव बनाता है।

(2) विश्व में जो भी प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध है उन सब संसाधनों को मितव्यतापूर्वक दोहन करवाने के लिए सदस्य देशों को परिपत्र भेजना।

(3) विकसित एवं विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए उत्पादन एवं रोजगार को बढ़ाना। इससे लोगों के रहन–सहन के स्तर में सुधार होगा। अतः विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का उद्देश्य यही था कि लोगों के आर्थिक स्तर में सुधार लाया जाय।

(4) विकास की अवधारणा को जीवित रखना तथा सतत् विकास के प्रवाह को बनाये रखना।

(5) विश्व व्यापार संगठन का उद्देश्य विश्व की आर्थिक दशा में लगतार परिवर्तनों के कारण जो बदलाव हो रहे हैं, उसके अनुसार नयी व्यापारिक नीति को विश्व व्यापार में प्रतिस्थापित करना था।

(6) विश्व व्यापार में जो विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही हैं अथवा पक्षपाती नीति अपनायी जा रही है उसे समझौते के आधार पर दूर करना।

(7) विश्व व्यापार संगठन ने उपभोक्ताओं के हितों की अनदेखी नहीं की है। इसका उद्देश्य यह है कि उपभोक्ताओं को कम कीमत पर अच्छी वस्तुएं उपलब्ध हो सकें। अतः वह देशों के बीच में उत्पादक प्रतियोगिता को बढ़ाने का प्रयत्न करता है।

13.2.2 विश्व व्यापार संगठन के कार्य (Functions of WTO)

विश्व व्यापार संगठन के कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) विश्व स्तर पर आर्थिक नीतियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक के साथ सहयोग स्थापित करना।

(2) विश्व व्यापार संगठन एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है जिसमें उरूग्वे चक्र के परिणामों तथा गैट के संशोधित समझौतों को मिला दिया गया है। इसके नियमानुसार कार्य करना।

(3) विश्व व्यापार संगठन की दो इकाइयाँ हैं– Dispute Settlement Body (DSB) और Trade Policy Review Body (TPRB)। इन दोनो इकाइयों की सहायता के लिए तीन परिषदों का गठन किया गया है। यदि कोई देश किसी देश के व्यापार में बाधा डालता है या WTO के नियमों का उल्लंघन करता है तो WTO का महाप्रबन्धक विशेषज्ञों की एक समिति बनाकर उसकी आख्या माँगेगा और उसे DSB के पास कार्यवाही के लिए भेज देगा। यदि किसी देश का जुर्म स्थापित हो जाता है तो उसे उस देश को क्षतिपूर्ति देनी होगी जिसे क्षति पहुँचायी गयी थी।

(4) यदि देशों के बीच में व्यापार एवं शुल्क नीति से सम्बन्धित कोई गतिरोध उत्पन्न होता है तो WTO दोनों देशो के बीच समझौता कराकर गतिरोध को दूर करता है।

(5) व्यापारिक समझौतों को कराना, व्यापार सम्बन्धी नीतियों को बनाना तथा उन्हें लागू कराने का काम करना।

(6) विश्व व्यापार संगठन अपने सदस्य राष्ट्रों को बौद्धिक सम्पदा अधिकार दिलाने का कार्य करता है तथा विश्व व्यापार में प्रत्येक सदस्य देश के लाभ का निर्धारण करने के लिए नीति निर्धारित करता है।

3.3 विश्व व्यापार संगठन के सम्मेलन (Conferences of WTO)

विश्व व्यापार संगठन में सदस्य देशों के व्यापार वाणिज्य मंत्री देश का प्रतिनिधित्व करतेहैं या उनके द्वारा नामित व्यक्ति सम्मेलन में भाग लेते हैं। सर्वोत्तम प्रशासनिक परिषद मंत्री स्तर की कौंसिल है। इसकी बैठक दो वर्ष में एक बार होती है। नीचे इसकी बैठकों की संक्षिप्त बातें दी जा रही हैं।

1 प्रथम सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन का प्रथम मंत्रिस्तरीय सममेलन 9 दिसम्बर 1996 से 13 दिसम्बर 1996 तक सिंगापुर में हुआ था। प्रथम बैठक के समय विश्व व्यापार संगठन के 125 सदस्य देश उपस्थित थे। इस बैठक में 3 देशों को और सदस्यता प्रदान की गयी थी। इस सममेलन में प्रमुख रूप से इन मुद्दों में चर्चा की गई– (1) श्रम मानकों, (2) पूंजी निवेश, (3) सूचना प्रौद्योगिकी (4) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा टेक्सटाइल आदि। विकासशील देश श्रम मानकों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि इससे विकासशील देशों को कोई लाभ मिलने वाला नहीं था। विकसित यूरोपीय देश तथा विशेषकर अमरीका इस पक्ष में थे कि श्रम मानकों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ा जाए। विकासशील देशों की दलील थी कि यह विषय विश्व व्यापार संगठन का न होकर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का है। अतः लम्बे विचार–विमर्श के बाद भारत व अन्य विकासशील देशों के इस तर्क को मान लिया गया कि विकासशील देशों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बाधित करने के लिए श्रम मानकों का प्रयोग फिलहाल नहीं किया जायेगा।

2 द्वितीय सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन का दूसरा महत्वपूर्ण सम्मेलन जेनेवा में 18 मई 1998 से 20 मई 1998 तक चला। इस सममेलन में भाग लेने वाले 132 देशों के व्यापार एवं वाणिज्य मंत्रिगण शामिल हुए थे। इस सम्मेलन में भी पहले

सम्मेलन की तरह ही गरमा–गरम चर्चाएं हुई, क्योंकि विकासशील देशों के द्वारा यह अनुभव किया जाने लगा था कि विश्व व्यापार संगठन पश्चिमी विकसित देशों के हाथ की कठपुतली बनने जा रहा है। वे प्रथम सम्मेलन में इस बात को देख चुके थे। इस दूसरे सम्मेलन में यह महत्वपूर्ण चर्चा का विषय बन गया था कि विश्व व्यापार संगठन क्षेत्रीय व्यापारिक गुटों को बढ़ावा देने जा रहा है। यह एक भेदात्मक नीति थी, जिसका विरोध भारत सहित अन्य विकासशील देशों के द्वारा किया गया था। यह सम्मेलन केवल तीन दिन तक चला था।

3 तीसरा सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन का तीसरा सम्मेलन 30 नवम्बर 1999 से 3 सिम्बर 1999 तक अमरीका के सियटल नगर में हुआ था। इस सम्मेलन में 135 सदस्य देशों द्वारा भाग लिया गया था। यह सम्मेलन विगत दो सम्मेलनों की तुलना में हंगामेदार हुआ था। इस सम्मेलन में पुनः श्रम मानकों को उठाया गया था। इसके अतिरिक्त सूची में शामिल किये गये अन्य चर्चित विषयों– (1) कृषि व्यापार, (2) बायोटेक्नोलाजी, (3) बाजार पहुँच, (4) श्रम मानक आदि पर चर्चा होनी थी। परन्तु सदस्य देशों ने यह कहकर विरोध जताया कि कार्य सूची में मानवाधिकार जैसे विषयों को सम्मिलित नहीं किया गया है। अमरीका के द्वारा जो बायोटेक्नोलाजी का प्रस्ताव रखा था, उसका अनेक देशों के द्वारा पुरजोर विरोध किया गया है। इस प्रकार अनेकानेक मुद्दों पर सदस्य देशों की नोक–झोंक होती रही जिसके कारण तीसरे सम्मेलन का घोषणा पत्र भी नहीं बन पाया था। हंगामें के बीच सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा कर दी गयी।

इस सम्मेलन से पूरे विश्व के उन सदस्य देशों को काफी निराशा हुई जिन्हें यह आशा थी कि विश्व व्यापार संगठन में उनके हितों का विशेष ध्यान रखा जायेगा। वे इसी उद्देश्य की पूर्ति से इस संगठन में शामिल हुए थे।

4 चौथा सम्मेलन

विश्व व्यापार का चौथा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन 9 नवम्बर 2001 से 14 नवम्बर 2001 तक सबसे लम्बा सम्मेलन हुआ। यह सम्मेलन दोहा, कतर, में हुआ था। इसमें मुख्य रूप से निवेश की बहुपक्षीय व्यवस्था, व्यापार सरलीकरण, पर्यावरण आदि बातों पर चर्चा करनी थी। भारत ने इस सम्मेलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। दोहा सम्मेलन में जो घोषणा पत्र जारी किया गया उसकी मुख्य बातें आगे दी जायेगी।

5 पाँचवाँ सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन का पाँचवां मंत्रिस्तरीय सममेलन कानकुन में हुआ। इस सम्मेलन में विश्व व्यापार संगठन के 148 देशों के द्वारा भाग लिया गया था। सममेलन की कार्य सूची में अनेक विषयों पर चर्चा की जानी थी। इसमें चर्चा के प्रमुख विषय इस प्रकार से थे– औद्योगिक टैरिफवार्ता बौद्धिक सम्पत्ति, कृषि मानवीय सेवाएं, गैर कृषि वस्तुओं का बाजार प्रवेश, व्यापार सम्बन्धी अधिनियम, विवादों का समझौता, पर्यावरण व्यापार तकनीक का हस्तान्तरण आदि।

कानकुन सम्मेलन मे महत्वपूर्ण बातों पर चर्चा की गयी थी। इस सम्मेलन में प्रथम मंन्त्रिस्तरीय सम्मेलन जो 1996 में सिंगापुर में हुआ था

उसकी महत्वपूर्ण बातों पर भी चर्चा की गयी थी। सिंगापुर मुद्दे की प्रमुख बातें जैसे– व्यापार एवं निवेश, व्यापार एवं प्रतियोगिता, सरकारी खरीद तथा सुगम व्यापार–व्यवस्था आदि पर सदस्य देशों की सहमति नहीं हो सकी थी। विकसित एवं विकाशील देशों के मध्य जो भेद बना हुआ था उस पर भी सहमति नहीं हो सकी थी। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि विश्व व्यापार संगठन कें एक ग्रुप में 22 देश हैं जिसे हम जी–22 के नाम से जानते हैं। इस ग्रुप में इन देशों को रखा गया है– चिली, ब्राजील भारत, क्यूबा, ग्वाटेमाला, अजेण्टीना, चीन, कोलम्बिया, पेरू, पेराग्वे, नाइजीरिया, इण्डोनेशिया, मैक्सिको, पाकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैण्ड, बोलिविया, इक्वाडोर, इजिप्ट, फिलीपीन्स, वेनेजुएला तथा कोस्टारीका। दूसरा ग्रुप विकसित देश का है जिसमें अमेरिका, जापान तथा यूरोपीय संघ के देश शामिल हैं।

विकसित देशों के द्वारा कृषि सब्सिडी को धीरे–धीरे समाप्त करने के विषय में कोई सहमति नहीं बन पायी है। विकासशील देशों का कहना था कि यूरोपीय संघ के देशों व अमरीका ने कभी भी कृषि सब्सिडी की समस्या को प्रभावी ढंग से नहीं उठाया है।

यहाँ यह भी कहा जाता है कि विश्व व्यापार संगठन ने जी–22 के देशों की समस्या को प्रभावी ढंग से नहीं लिया है। कानकुन सम्मेलन के प्रारम्भ होने से कुछ समय पूर्व व्यापार सम्बन्धित बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार (Trade Related Intellectual Property Rights- TRIPS) के कुछ पहलुओं तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के विषय में समझौता हो गया था। कई ऐसे विषय अभी भी अनसुलझे रहे हैं, जबकि इनके पूरा करने की समय अवधि बीत चुकी है इस प्रकार यह कहा जाता है कि विश्व व्यापार संगठन प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर पाया है जैसा कि उससे उम्मीद थी।

6 छठवाँ मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन

149 सदस्यीय विश्व व्यापार संगठन के 13–18 दिसम्बर 2005 को हांग–कांग (चीन) में सम्पन्न छठे मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में विकासशील देशों ने ग्राण्ड एलायन्स (जी–110) बनाकर एकजुटता दिखाई जिससे विकसित देशों को कृषि सब्सिडी समाप्त करने को सहमत होना पड़ा। साथ ही औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्क से जुड़े मुद्दों पर भी विकासशील देशों को कुछ राहत प्रदान करने को विकसित देश सहमत हुए । इससे वर्ष 2006 के अन्त तक नये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया।

हांगकांग घोषणा पत्र–6 दिन चले विश्व व्यापार संगठन सम्मेलन में कृषि सब्सिडी औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्क व सेवाओं के व्यापार आदि संवेदनशील मुद्दों पर विकसित एवं विकासशील देशों के बीच विचार होता रहा। अन्तिम दिन 18 दिसम्बर 2005 को सहमति बन सकी, जिसके पश्चात हांगकांग घोषणा पत्र जारी किया गया। इसकी प्रमुख बातें निम्न हैं–

(1) घोषणा पत्र के अनुसार विकसित देश अपनी कृषि निर्यात सब्सिडी को चरणबद्ध तरीके से 2013 तक पूर्णतः समाप्त करने को सहमत हुए।

(2) कृषि व्यापार समझौते में विकासशील देशों के लिए पर्याप्त ढील की व्यवस्था की गई। इसमें यह सुनिश्चित किया गया कि भारत जैसे

विकासशील देशों को कृषि क्षेत्र की योजनाओं पर किये जाने वाले शासकीय व्यय में कटौती की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

(3) कृषि क्षेत्र के विकास से सम्बन्धित सभी योजनाओं को विश्व व्यापार संगठन के नियमों की परिधि से बाहर रखा गया।

(4) विकासशील देशों के औद्योगिक आयातों पर प्रशुल्क कटौती (Non-Agricultural Market Access-NAMA) के सम्बन्ध में यूरोपीय संघ द्वारा प्रस्तुत स्विस फार्मूले को अर्जेन्टीना, ब्राजील व भारत द्वारा लाए गये प्रस्तावों को घोषणा पत्र में स्वीकार कर लिया गया, इससे विकासशील देशों को थोड़ी बहुत राहत मिल पायेगी।

जेनेवा सम्मेलन (30 नवम्बर–3 दिसम्बर) 2009 : डब्ल्यूटीओ की सातवीं मंत्रीस्तरीय बैठक, जो वैश्विक आर्थिक मन्दी के आलोक में डब्ल्यूटीओ की पहली पूर्ण मंत्री स्तरीय बैठक थी। यह 30 नवम्बर से 3 दिसम्बर, 2009 के बीच जेनेवा में आयोजित की गयी। यद्यपि सम्मेलन वार्ता मंच के रूप में आशयित नही था, इसने वार्ता की दिशा का मूल्यांकन करने के लिए विभिन्न समूहों एवं चोगुटों को एक मंच प्रदान किया। भारत एवं इसके गठबन्धन साझेदारों ने बहुपक्षीय प्रक्रिया के केन्द्र कें विकास आयात को बनाये रखने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता तथा अपने देशों में विशेष रूप से गरीबों के जीविका सरोकारों एवं किसानों के भरण–पोषण की रक्षा करने की आवश्यकता को दोहराया।

विश्व व्यापार संगठन का आठवाँ मंत्रीस्तरीय सम्मेलन दिसम्बर 15 से 17 दिसम्बर, 2011 : विश्व व्यापार संगठन का मंत्रिस्तरीय आठवाँ सम्मेलन जेनेवा में हुआ। इस बैठक में भी कोई बड़ी उपलब्धि नही प्राप्त हो सकी। इस बैठक में भी अमेरिका एवं चीन बीच असहमति रही तथा दूसरी ओर अफ्रीकी सदस्य तथा अमेरिका एवं यूरोपीय समुदाय के बीच कपास उत्पादन को लेकर असहमति बनी रही। इसमें सदस्यों ने संरक्षणवाद को हटाकर खुले बाजार व्यवस्था के महत्व को उजागर किया। भारत ने अपने एवं विकासशील देशों के हित में किये जाने वाले फैसलों पर जोर दिया। भारत, ब्राजील, चीन एवं दक्षिणी अफ्रीका ने एक अलग रूख अपनाते हुए विकास के मुद्दे पर जोर दिया।

विश्व व्यापार संगठन का लघु मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन

दोहा वार्ता में विकसित देशों द्वारा अपने किसानों को दी जा रही भारी कृषि सब्सिडी मुद्दे पर दोहा दौर की वार्ता के गतिरोधों को दूर करने के उद्देश्य से संगठन का लघु मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन 29 जून से 2 जुलाई 2006 तक जेनेवा में सम्पन्न हुआ, किन्तु भारत के बहिष्कार के चलते यह सममेलन असफल हो गया।

भारत के वाणिज्य मंत्री श्री कमल नाथ के नेतृत्व में विकासशील देशों ने अपने यहाँ के किसानों के हितों को ध्यान में रखते हुए इस प्रस्ताव पर व्यापक विरोध दर्ज कराया था। इसके चलते वार्ता को स्थगित करना पड़ा। उद्योग मंत्री ने यह कहकर बैठक का बहिष्कार कर दिया कि यहॉ अब बात करने के लिए कुछ भी बचा हुआ नहीं है। उन्होंने कहा कि भारत के 65 करोड़ किसानों की चिन्ताओं को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता है। उन्होंने

कहा कि वह किसी ऐसी बैठक में मौजूद नहीं रह सकते हैं जिसमें भारतीय किसानों के हितों का ध्यान नहीं रखा जाय। वाणिज्य मंत्री का कहना था कि वे जेनेवा इसलिए नहीं गये थे कि विकसित देशों की अर्थव्यवस्था को उबारने के तौर–तरीकों पर चर्चा की जाय।

13.4 दोहा घोषणा पत्र (Doha Declaration)

दोहा घोषणा पत्र में अनेक प्रकार की बातों को करने का विश्वास दिलाया गया था। घोषणा पत्र में अनेक बातें थी, उनमें से कुछ बातों को नीचे दिया जा रहा हैः–

1. **इलेक्ट्रानिक्स एवं श्रम सम्बन्धी विषय–** विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों के सन्दर्भ में इस बात की घोषणा की गयी थी कि सदस्य देशों में वर्तमान समय में इलेक्ट्रानिक्स प्रसारण पर जो प्रशुल्क न लगाने की नीति अपनायी गयी है, वह नीति कुछ समय तक जारी रहे।

2. **ट्रिप्स एवं जन–स्वास्थ्य–** व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार (Trade Related Intellectual Property Rights : TRIPS) को इस प्रकार से लागू किया जाय कि प्रत्येक सदस्य देश जन–स्वास्थ्य कार्यक्रम अपनाने और उन्हें लागू करने के लिए स्वतंत्र हो सकें। प्रत्येक व्यक्ति तक औषधि आवश्यक रूप से पहुँच सके। TRIPS का मुख्य उद्देश्य है– बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का दुरूपयोग न हो।

3. **व्यापार सम्बन्धी समझौते–** यह एक महत्वपूर्ण घोषणा थी। इसमें (Agreement on Trade Related Investment Measures (TRIPs) के प्रावधानों के अनुसार विश्व व्यापार संगठन के प्रत्येक सदस्य देश को उसके द्वारा विदेशी व्यापार में यदि कोई प्रतिबन्ध लगाये गये हैं तो उन सभी प्रावधानों को समाप्त करना होगा। यदि किसी सदस्य देश में कोई बाहरी देश निवेश करता है, तो उसे वहॉ की सरकार वे सब सुविधाएँ उपलब्ध करायेगी जो सुविधाएं वह अपने देश के निवेश करने वाले उद्यमी को देती है। इस घोषणा से स्पष्ट होता है कि जो विकसित देश विकासशील देशों में या जो विकासशील देश विकसित देशों में निवेश करने जायेंगे उनके बीच किसी प्रकार का भेदभाव नही किया जायेगा।

4. **व्यापार एवं सामान्य सेवा समझौता–** घोषणा पत्र में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया था कि सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता, जिसे हम (General Agreement on Trade in Service or GATS) कहते हैं, उसका सम्बन्ध सेवाओं के विदेशी व्यापार पर लगे प्रतिबन्धों को समाप्त करना है। इस घोषणा पत्र में केवल उन्हीं सेवाओं को शामिल किया गया है जिनके लिए तकनीक की जरूरत होती है।

5. **पर्यावरण–** दोहा घोषणा पत्र में पर्यावरण पर विशेष ध्यान दिया गया है। सदस्य देशों से इस बात के लिए आग्रह किया गया है कि उद्योग धन्धों को लगाते समय पर्यावरण सुरक्षा का विशेष ध्यान रखेंगे। इस घोषणा पर सभी सदस्य देशों ने एकमत से अपनी सहमति दे दी थी।

6. **कृषि–** विकासशील देशों की आन्तरिक अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए कृषि को विशेष महत्व देने की बात कही गयी है। कृषि व्यवसाय ही उद्योगों को कच्चा माल आदि उपलब्ध कराता है। जब तक कृषि को महत्व

नही दिया जायेगा, तब तक आन्तरिक अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं हो सकता है।

7. **श्रम–** श्रम मानकों के सम्बन्ध में काफी चर्चा की गयी थी। श्रम मानकों को विकाशील देशों में इस पर रोष प्रकट करते हुए कहा कि श्रम मानकों की चर्चा विश्व व्यापार संगठन के कार्य क्षेत्र में नहीं आती है। अतः इस मुद्दे की चर्चा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में होनी चाहिए।

8. **निर्यात प्रोत्साहन–** दोहा सममेलन के घोषणा पत्र मे इस बात को महत्व दिया गया है कि विकासशील देशों के हित में निर्यातों को बढ़ाने के लिए औद्योगिक शुल्क में कटौती की जाय अथवा इसे पूर्णतया समाप्त कर दिया जाय।

9. **गैट के उद्देश्यों की पूर्ति–** घोषणा पत्र में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया था कि गैट के उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए पूर्वनिर्धारित समझौतों एवं क्रियाओं के आधार पर समय–समय पर वार्ता जारी रखी जाय।

13.5 विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के मुख्य प्रावधान (Main Provisions of World Trade Organisation Agreement)

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना आर्थिक क्रान्ति के रूप में की गयी थी। सदस्य देशों के द्वारा बहुपीय वार्ताओं व समझौतों के कारण वर्ष 2005 तक विश्व की आय बढ़कर 745 अरब डॉलर तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया था, जो प्राप्त हो चुका है। विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के मुख्य प्रावधान निम्न है–

1. **निर्यात में वृद्धि–** समझौते में इस बात को प्रमुखता से रखा गया था कि विभिन्न देशों में निर्यात बढ़ाने के लिए देशों के बीच निर्यात प्रतियोगिता को बढ़ाना है।

2. **वस्त्र निर्यात प्रोत्साहन–** विकासशील देशों में विकसित देशों को कपड़ा तथा बने–बनाये कपड़ों के निर्यात को बढ़ावा देने का हर सम्भव प्रयत्न जारी रखने का प्रावधान रखा गया था। उद्देश्य यही लगता है कि विकासशील देशों का अधिकाधिक विकास हो सके।

3. **विदेशी सेवाएँ प्रतिबन्ध रहित–** उच्च तकनीक की विदेशी सेवाओं को प्रतिबनधों से मुक्त कर देने का समझौता किया गया है। अब कोई भी देश अपने यहाँ बिना रोक टोक के विदेशी सेवा को आयात कर सकता है और अपनी सेवा को विदेशों को दे सकता है।

4. **तकनीकी बाधाओं को दूर करना–** विश्व व्यापार में रूकावटों के कारण जो बाधाएं आ रही हैं, उन तकनीकी बाधाओं को दूर करने के लिए सदस्य देशों ने जो समझौते किये, उनसे सदस्य देशों को अनेक लाभ मिले हैं। इसके साथ ही यह समझौता भी किया गया था कि प्रत्येक देश विदेशी निवेशकों को भी वहीं सुविधाएं दें, जो वे अपने निवेशकों को दे रहे हैं।

5. **विवादों का निपटारा–** समझौते में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि व्यापार में आनेवाली सभी बाधाओं को दूर कर लिया जायेगा। सभी प्रकार के भेदभाव दूर कर लिए जाएँ ताकि व्यापार का विकास हो सके।

13.6 विश्व व्यापार संगठन का भारत पर प्रभाव (Effects of WTO on India)

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के समय से ही विकासशील देशों के द्वारा इसकी आलोचनाएँ होती रही है। अर्थशास्त्रियों का कहना था कि पश्चिमी विकसित देश अपने हितों की रक्षा के लिए विश्व व्यापार संगठन का गठन कर रहे हैं। इसे विकासशील देशों की आर्थिक स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप माना जा रहा था। यहाँ तक कहा जाने लगा था कि विश्व व्यापार संगठन के कारण विकासशील देश विकसित देशों के आर्थिक उपनिवेश बन जायेंगे। भारत के सन्दर्भ में इसके अच्छे व बुरे दोनों प्रभावों को नीचे दिया जा रहा है–

13.6.1 भारत पर बुरे प्रभाव

अर्थशास्त्रियों का मत है कि विश्व व्यापार संगठन से भारत को लाभ की तुलना में हानि अधिक होगी। इस सन्दर्भ में निम्न बातें कह सकते हैं–

1. **भारत विदेशी विनिमय पर नियन्त्रण नहीं लगा सकेगा–** विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अनुसार कोई भी सदस्य देश विदेशी निवेशकों को वही सुविधा देगा, जो सुविधा वह अपने देश के निवेशकों को देता है। इस समझौते का अर्थ यह हुआ कि विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ भारत में प्रवेश करेंगी। विदेशी निवेशकों के पास अत्याधुनिक तकनीक है, पूँजी की कमी नहीं है। उनके प्रवेश पा लेने से देश के निवेशकों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। देश के उद्योग प्रभावित होंगे। प्रतियोगिता में स्वदेशी निवेशकों को हानि भी हो सकती है। विदेशी कम्पनियों का राजनीतिक हस्तक्षेप बढ़ेगा जो स्थिति भारत के सन्दर्भ में है लगभग वही स्थिति अन्य विकासशील देशों की भी हो सकती है।
2. **कृषि व्यवसाय को हानि–** विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अन्तर्गत कृषि के बारे में जो बातें दी गयी है उसमें भारत की कृषि व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ने लगा है। हमारे देश के किसान को अब बीज व कृषि तकनीक के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दया पर निर्भर रहना होगा। छोटे–छोटे किसानों की दशा और भी खराब हो जायेगी। कृषि व्यवसाय पर जो छूट दी जाती थी, उसमें भी कमी होगी। आलोचकों का यहाँ तक कहना है कि पर्यावरण की दुहाई देकर पश्चिम के विकसित देश भारत से कृषि पदार्थों का आयात नहीं करेंगे। कहा जा सकता है तो वह कृषि के क्षेत्र में देखा जा सकता है। आज भारत के किसान सबसे अधिक आत्महत्याएँ करने लगे हैं। विगत 10 वर्षों के भीतर इस बात को देखा जा सकता है।
3. **आर्थिक शोषण–** आलोचकों का कहना है कि भारत जैसे प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न देश में विदेशी कम्पनियों के प्रवेश के कारण भारत का हित कम, विदेशी कम्पनियों का हित अधिक होगा। वास्तव में, आज यह बात सामने आने लगी है। विदेशी कम्पनियों के भारत में प्रवेश होने के कारण उनका आर्थिक एकाधिकार बढ़ने लगा है। वे अपनी उच्च औद्योगिक तकनीक की सहायता से धीरे–धीरे आर्थिक शोषण करते जा रहे हैं। यह शोषण चाहे मानव श्रम का हो या बौद्धिक क्षमता का या हमारे प्राकृतिक संसाधनों का। कुल मिलाकर देश को परजीवी बनाने का उपक्रम विश्व व्यापार संगठन के द्वारा किया जा रहा है।
4. **पेटेन्ट कानून–** विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अनुसार औषधियों, कृषि पदार्थों, पशुओं पौधों आदि का पेटेन्ट कराना अति आवश्यक है। क्या धनाभाव के कारण भारत जैसा देश उन तमाम चीजों का पेटेन्ट करा सकता

है। उत्तर है– नहीं। इसके विपरीत अमरीका जेसा धनी देश जिसके पास आधुनिकतम प्रयोगशालाएं हैं उसके द्वारा ही ऐसा किया जायेगा और वह कर भी रहा है। अतः हमें रॉयल्टी आदि का भुगतान इन विकसित देशों को करना होगा, तभी हम उन वस्तुओं को या सेवाओं को प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार, अनावश्यक रूप से हमारे देश से विकसित देशों को संचित पूँजी जाने लगेगी। हमारा लाभ शून्य होगा। विदेशियों के भण्डारों में स्वतः ही बृद्धि होगी। वह दिन दूर नही जब हमें विदेशों द्वारा पेटेन्ट किये हुए कच्चे माल को बड़े पैमाने में आयात करना होगा। कल्पना कीजिए विश्व व्यापार संगठन के द्वारा किन देशों का हित हो रहा है और किन देशों का अहित।

5. **विश्व व्यापार संगठन भारत के लिए छलावा–** इस बात को साधिकार रूप से कहा जा सकता है कि विश्व व्यापार संगठन भारत के लिए छलावा साबित हो गया है। भारत उसके जाल में बिना सोचे समझे फँसा हुआ है। विश्व व्यापार संगठन में अधिकांश समझौते विकसित देशों को लाभ पहुँचाने वाले है। अबन्ध व्यापार नीति, प्रतियोगिता आदि अनेक बातें ऐसी हैं जो भारत की सामर्थ्य से बाहर की है। क्या विश्व व्यापार की प्रतियोगिता में भारत विकसित देशो के अपने निर्यात बढ़ा सकता है ? जो विदेशी कम्पनियाँ हमारे देश में निवेश कर रही है। संभवतः उन्हीं के उत्पादों का निर्यात अधिक होगा। हमारा उनकी तुलना में निर्यात कम होगा, लाभ भी उन्हें होगा। जब हम विनिमय नियत्रण ही नहीं कर सकते हैं और विदेशी कम्पनियों के प्रभाव क्षेत्र को नहीं रोक पाते हैं, तब विश्व व्यापार संगठन से हमें क्या लाभ मिलने जा रहा है? मात्र वह एक रोते हुए बच्चे को बरगलाने के लिए उसके हाथ में झुनझुना ही दे सकता है, उसका पेट नहीं भर सकता है।

6. **धनिकों का क्लब–** विश्व व्यापार संगठन गैट का ही प्रतिरूप है। लोगों का कहना है कि विश्व व्यापार संगठन विकसित देशों के धनी मानी कम्पनियों का एक क्लब है। विकसित देशों की सरकारें व उनके सदस्य जब चाहें और जैसी चाहें वैसी नीति का पालन करने के लिए विश्व व्यापार संगठन को प्रभावित करते रहते हैं। इस क्लब में विकासशील देशों का हित कम व विकसित देशों का हित अधिक है। इन देशों के निवेशक जब चाहें, तब किसी भी देश में आ–जा सकते हैं और अपने व्यापार को बढ़ा सकते हैं जबकि विकासशील देशों के निवेशकर्ताओं में इतना दमखम नहीं होता है।

7. **बाल श्रमिकों द्वारा निर्मित वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबन्ध–** विश्व व्यापार संगठन की साजिश का एक प्रकरण हाल ही में सामने आया है, जिसमें हमारे देश के कालीन उद्योग पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। हुआ यह कि हारकिन बिल की आड़ में अमरीका, फ्रांस, आदि देशों ने इस बात के लिए विश्व व्यापार संगठन में दबाव बनाया कि जिन वस्तुओं का उत्पादन बाल श्रमिकों के द्वारा किया जा रहा है उन वस्तुओं के निर्यात व्यापार को बन्द कर दिया जाये। भारत में हीरे की तराशी, कालीन, जरी काम आदि शिशु श्रमिकों के द्वारा किया जाता है। अतः ऐसी नकारात्मक नीति के कारण अनेक लोगों के मुँह से निवाला छीन लिया गया।

8. **निर्यात व्यापार पर पर्यावरणीय प्रभाव–** प्रकृति के साथ छेड़–छाड़ करनेका दुष्परिणाम आज पूरा विश्व भोग रहा है। औद्योगिक क्रान्ति, यातायात

क्रान्ति, युद्ध सामग्री के विस्फोट, वैज्ञानिक प्रयोग, जल और जंगलों का प्रदूषण आज जानलेवा बन चुका है। ऐसी स्थिति में विश्व व्यापार संगठन ने अपने सदस्य देशों को पर्यावरणीय सुरक्षा का संदेश दिया है। उसका यह प्रयास जहॉ एक ओर सराहना के योग्य है वहीं प्रतिबन्ध ऐसा लगा दिया है कि विकासशील देशों को मुँह की खानी पड़ी है। जिन देशों में पर्यावरण को शुद्ध रखने के सम्बन्ध में कार्य नहीं किये जायेंगे उनसे कोई भी वस्तु आयात नहीं की जायेगी। ऐसी स्थिति में निर्यात व्यापार को काफी धक्का पहुँच सकता है। लगता है इसमें भी विकसित देशों का हित निहित है।

13.6.2 विश्व व्यापार संगठन का भारत को लाभ

अभी ऊपर हमने अनेक तर्कों के आधार पर जो अनेक अर्थशास्त्रियों के विचारों को आधार मानकर यह बताया है कि विश्व व्यापार संगठन एक ऐसा व्यापारिक संगठन है जो विकासशील देशों का आर्थिक क्लब बनकर रह गया है। भारत जैसे अनेक देशों के हित का उसे ध्यान नही है। सच्चाई इसके विपरीत है। जहाँ थोड़ी बहुत बुराई उसमें है उसकी तुलना में विश्व व्यापार संगठन की अनेक अच्छाइयों का लाभ मिल रहा है। उसमें से कुछ बातों को नीचे दिया जा रहा है।

1. **निर्यात में वृद्धि–** भारत को सबसे अच्छा फायदा निर्यात में वृद्धि का होना है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से पूर्व भारत के निर्यात व्यापार का आँकड़ा जो 26.33 अरब डॉलर था, वह विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता लेने के बाद 2011–2012 में बढ़कर 304624 मिलियन डालर तक पहुँच चुका है।

2. **सूती वस्त्रों के निर्यात में वृद्धि–** भारत सूती कपड़ों व बने–बनाये कपड़ों का प्रमुख उत्पादक देश है। 1974 से कपड़ों के निर्यात पर जो कोटा तय किया गया था उसे विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनने के बाद हटा दिया गया है। अब भारत से अन्य देशों को सिले सिलाये वस्त्रों का निर्यात व्यापार बहुत अधिक बढ़ चुका है।

3. **विदेशी निवेशकों को प्रोत्साहन–** विदेशी निवेशकों को स्वदेश में विनियोग करने की खुली छूट दे देने से भारत में उद्योग धन्धों का विकास होगा। लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध होने लगे हैं। देश के पढ़े–लिखे युवाओं को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में ऊँचा वेतनमान मिलने लगा है। 2010–11 तक कुल 61851 मिलियन यू0एस0 डालर का निवेश हुआ।

4. **आधुनिक तकनीक का लाभ–** भारत में विदेशी कम्पनियों के आगमन से स्वदेशी उद्योगों के साथ उनकी प्रतियोगिता होने लगी है। भारत के उद्योगपति भी विदेशी उद्योगपतियों की देखा देखी अपने उद्योगों में नयी तकनीक का प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाने लगे हैं। इससे जहाँ उत्पादन बढ़ा है, वहीं निर्यात में भी वृद्धि होने लगी है।

5. **विदेशी वस्तुओं का लाभ–** स्वतंत्र व्यापार व्यवस्था के कारण आयात व निर्यात प्रतिबन्धित न होने के कारण भारत को कम कीमत पर विदेशी वस्तुऍ उपलब्ध होने लगी है। इससे पूर्व देश में विदेशों से जो भी वस्तु आती थी वे चोरी छिपे अथवा तस्करी से ही उपलब्ध हो पाती थी। ऊँची कीमतों में विदेशी

वस्तुएं मिलती थीं। आज सस्ती कीमत में अच्छी विदेशी वस्तुएँ उपलब्ध हो रही है।

6. **भारत की अन्तर्राष्ट्रीय छवि–** विश्व व्यापार संगठन का भारत को यह लाभ मिला कि उसकी छवि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की बन गई है। यदि भारत विश्व व्यापार संगठन का सदस्य नही बना होता तो वह विश्व समुदाय से अलग–थलग हो गया होता।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि विश्व व्यापार संगठन स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की एक आवश्यकता है जिसे अपनाना भारत के लिए आवश्यक हो गया था। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसे जो थोड़े बहुत फायदे विश्व व्यापार संगठन से मिल रहे हैं वे भी नहीं मिल पाते।

13.7 सारांश

1944 में ब्रेटनबुड सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना की भी सिफारिश की गई थी। लेकिन आम सहमति न बनने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना नही की जा सकी। इसके बाद 1947 में जेनेवा (स्विटजरलैण्ड) में 23 देशों द्वारा सीमा शुल्क से सम्बन्धित एक सामान्य समझौता अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की बाधाओं को दूर करने के लिये तथा सदस्य देशों के आर्थिक विकास को तीव्र करने के उद्देश्य से किया गया।

1986 में गैट की 8वे ंदौर की वार्ता जो उरूग्वे में हुई यह बातचीत 1994 तक चली एवं विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का प्रस्ताव गैट के तत्कालीन महानिदेशक आर्थर डंकल द्वारा की गई। इस प्रकार लगभग पॉच दशक तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की निगरानी करनेवाली संस्था गैट का अस्तित्व 12 दिसम्बर 1995 को समाप्त हो गया। 1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई और भारत उसके संस्थापक सदस्यों में से एक है। जून 2009 तक इससे सदस्य देशों की संख्या 153 तक पहुँच गयी। इसका मुख्यालय जेनेवा में स्थित है।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य विश्व में पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए विकसित एवं विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाने का प्रयास करना, विश्व व्यापार में पक्षपाती नीति को समझौते से दूर करना, उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना, आर्थिक नीतियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बेंक के साथ सहयोग स्थापित करना है। विश्व व्यापार संगठन अपनी दो इकाइयों Dispute Settlement Body एवं Trade Policy Review Body की सहायता से सदस्य देशों के बीच व्यापार की बाधाओं को दूर करता है। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौतों के द्वारा प्रशुल्क सम्बन्धी गतिरोध को दूर करता है। बौद्धिक सम्पदा अधिकार दिलाने का कार्य तथा विश्व व्यापार में सदस्य देशों के लाभ के निर्धारण की नीति तय करता है।

विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों के वाणिज्य मंत्रियों का सम्मेलन समय–समय पर होता है। प्रायः यह दो वर्ष में एक बार होता है। इसका प्रथम सम्मेलन दिसम्बर 1996 में सिंगापुर में, द्वितीय सम्मेलन मई 1998 में जेनेवा में, तीसरा सम्मेलन नवम्बर 1999 में अमेरिका के सियटल में, चौथा सम्मेलन

नवम्बर 2001 में दोहा, कतर में, पांचवा सम्मेलन कानकुन में, छठा सम्मेलन दिसम्बर 2005 में हांगकांग (चीन) में तथा जून जुलाई 2006 में दोहा वार्ता एक लघु सममेलन के रूप में हुआ। अलग–अलग सम्मेलनों में विभिन्न मुद्दों जैसे प्रशुल्क, कृषि, श्रम सम्बन्धी, बौद्धिक सम्पदा सम्बन्धी, जन स्वास्थ्य तथा पर्यावरण, निर्यात प्रोतसाहन, सेवा व्यापार, एवं निवेश सम्बन्धी मुद्दों पर मंत्री स्तरीय वार्ता हुई और विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने की कोशिश की जा रही है।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना आर्थिक क्रान्ति के रूप में की गई। इसकी स्थापना के बाद विश्व व्यापार काफी बढ़ा है। विभिन्न सदस्य देशों की व्यापार आय में वृद्धि हुई है। भारत पर विश्व व्यापार संगठन का मिलाजुला प्रभाव रहा है। भारत कें निर्यात में वद्धि हुई, विदेशी निवेश में वृद्धि हुई, आधुनिक तकनीक का लाभ मिला, विश्व में भारत की छवि में सुधार हुआ, रोजगार के अवसर बढ़े वहीं दूसरी ओर कुछ ऋणात्मक प्रभाव भी रहे विदेशी विनिमय पर नियंत्रण नही रहा, कृषि व्यवसाय को हानि हुई, विदेशी कम्पनियों द्वारा श्रमिकों एवं उपभोक्ताओं का शोषण हुआ है, निर्यात व्यापार में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय मानक की अड़चने आ रही है।

विश्व व्यापार संगठन स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की एक आवश्यकता है जिसे अपनाना भारत के लिए आवश्यक हो गया था।

13.8 शब्दावली

गैट (GATT): प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (General Agreement on Tarrifs andTrade) 1947 में स्थापित किया गया।

विश्व व्यापार संगठन (WTO): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन जो विश्व व्यापार के अवरोधों एवं विश्व व्यापार को बढ़ाने तथा पर्यावरण की रक्षा के लिए 1 जनवरी 1995 को जेनेवा में स्थापित किया गया।

DSB : Dispute Settlement Body जो विश्व व्यापार संगठन को सदस्य देशों के बीच किसी विवाद को निबटाने का कार्य करती है। ,

TPRB : Trade Policy Review Body विश्व व्यापार के लिए व्यापारिक नीतियों के पुनरीक्षण के लिए काम करती है।

G-22 विश्व व्यापार संगठन के 22 देशों का ग्रुप जिसमें अनेक विकासशील देशों के साथ भारत भी शामिल है।

TRIPS: Trade Related Intelletual Property Rights बौद्धिक सम्पदा अधिकार।

NAMA: Non Agricultural Market Access के अन्तर्गत विकासशील देशों के औद्योगिक आयातों पर प्रशुल्क कटौती के सम्बन्ध में प्रस्ताव की घोषणा पत्र में शामिल किया गया।

13.9 बोध प्रश्न

1. 1947 में जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड) में ..... देशों द्वारा सीमा शुल्क से सम्बन्धित एक सामान्य समझौते पर हस्ताक्षर किये गये जिसे प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (General Agreement on Tarrif and Trade-GATT) के नाम से जाना जाता है।

2. 1 जनवरी ..... को विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना हुई।
3. विश्व व्यापार संगठन का प्रथम मंत्रिस्तरीय सममेलन 9 दिसम्बर 1996 से 13 दिसम्बर 1996 तक .....में हुआ था।
4. विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों के वाणिज्य मंत्रियों का सम्मेलन समय–समय पर होता है। प्रायः यह .....वर्ष में एक बार होता है।

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 23, 2. 1995, 3. सिंगापुर, 4. दो

13.11 स्वपरख प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. विश्व व्यापार संगठन क्या है? इसके कार्यों व उद्देश्यों को स्पष्ट करें।
   What is WTO? Explain its function and objectives.
2. विश्व व्यापार संगठन के सदस्य होने के नाते भारत को लाभ व हानि की विवेचना कीजिए।
   Discuss the advantages and disadvantages to India as a member of WTO.
3. विश्व व्यापार संगठन तथा भारत पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
   Write a detailed note on 'WTO and India'
4. गैट क्या है?
   What is GATT?
5. WTO के कार्य लिखिए।
   Write about the functions of WTO.
6. WTO एवं भारत पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
   Write a short note on 'WTO and India'.
7. WTO के क्या उददेश्य हैं?
   What are the objectives of WTO?
8. दोहा घोषणा पत्र का उल्लेख करें
   Describe the Doha Declaration
9. विश्व व्यापार संगठन के ढॉचे के बारे में लिखिए।
   Write about the organisational Set up of W.T.O.
10. विश्व व्यापार संगठन के प्रथम मंत्रिस्तरीय सम्मेलन से आप क्या समझते हें?
    What do you understand by the first Ministrial level conference of WTO?

13.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई–14 विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (World Bank and International Monetery Fund)

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 विश्व बैंक
14.2.1 विश्व बैंक के उद्देश्य
14.2.2 विश्व बैंक के कार्य
14.2.3 विश्व बैंक के कार्यों का मूल्यांकन
14.2.4 विश्व बैंक एवं भारत
14.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
14.3.1 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य
14.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता
14.3.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के आर्थिक साधन
14.3.4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की उपलब्धियाँ
14.3.5 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं भारत
14.4 सारांश
14.5 शब्दावली
14.6 बोध प्रश्न
14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.8 स्वपरख प्रश्न
14.9 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- विश्व ब्बैंक के उद्देश्यों तथा कार्यों की व्याख्या कर सकें।
- विश्व बैंक की नीतियों का वर्णन कर सकें ।
- IMF के वित्तीय सहयोग उपलब्धियों तथा अन्य क्रियाओं का वर्णन कर सकें।

14.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, विश्व अर्थव्यवस्था का पुनर्वास अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए एक प्रमुख चिन्ता का विषय थां । युद्ध के परिणामस्वरूप विश्व भुगतानों की संपूर्ण प्रणाली के उपाय चकनाचूर हो गए थे। 1944 में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के समय, प्रमुख पश्चिमी सरकारें उन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानो के पुनर्वास के लिए ब्रेटन बुड्स, हैम्पशायर में मिली, जो आर्थिक स्थिरता तथा विकास लाने के लिये आवश्यक थी। इस मीटिंग के परिणामस्वरूप, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा पुनर्निर्माण तथा विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक, जो कि प्रसिद्ध रूप से विश्व बैंक के नाम से जाना जाता हे, की स्थापना 1945 में की गई। इन संस्थानों ने एक विनिमय दर प्रणाली की स्थापना एवं रख रखाव तथा पूंजी धनी देश से पूंजी निर्धन विदेशों में कोष के हस्तांतरण की प्रणाली की व्यवस्था द्वारा विश्व व्यापार के सुधार तथा तदन्तर विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अन्तर्राष्ट्रीय

आर्थिक पर्यावरण को समझने के लिए संस्थानों के उद्देश्य तथा कार्यप्रणाली की समझ अति आवश्यक है। इस इकाई में आप अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक के कार्यों का अध्ययन करेंगे।

14.2 विश्व बैंक (World Bank)

युद्धजनित अव्यवस्था को दूर करने तथा अविकसित और अल्प–विकसित देशों को विकास करने के लिए दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बेंक अथवा विश्व बैंक की स्थापना की गई। विश्व बेंक ने जून 1946 से कार्य करना आरंभ कर दिया थां विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक दूसरे की पूरक संस्थाएं हैं।

14.2.1 विश्व बैंक के उद्देश्य (Objectives of World Bank)

विश्व बैंक की स्थापना 1945 में, विश्व के विकासशील देशों में आर्थिक विकास को गतिशील बनाने के उद्देश्य से की गई थी। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैंः

1. **पुनर्निर्माण और विकास (Reconstruction and Development)**– विश्व बैंक का प्रथम उद्देश्य युद्ध–पीड़ित देशों के पुनर्निर्माण तथा पिछड़े हुए देशों के आर्थिक विकास में सहायता देना थां । इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसने सदस्य देशों को उत्पादक कार्यों के लिए पूँजी लगाने में प्रोत्साहन दिया।

2. **पूंजी विनियोजन (Capital Investment)-** उत्पादन तथा विकास के लिए जिन क्षेत्रों में पूंजी की आवश्यकता होती है विश्व बैंक उनमें निजी उद्योगपतियों की पूंजी लगाने की सलाह देता हे और आवश्यकता होने पर स्वयं भी उसके साझे में पूंजी विनियोग करता है। यदि किसी क्षेत्र में पूंजी उचित शर्तों पर उपलब्ध न हो तो विश्व बैंक स्वयं उस क्षेत्र में पूंजी लगाता हे ताकि धन की कमी के कारण आवश्यक विकास कार्यों में बाधा उत्पन्न न हो।

3. **भुगतान सन्तुलन (Balance of Payment)**– अन्तर्राष्ट्रीय बैंक विकसित देशों को अल्प–विकसित देशों में पूंजी लगाने के लिए प्रोत्साहित करता है ताकि उन देशों में उत्पादन में वृद्धि हो, श्रमिकों का रहन–सहन और जीवन–सतर सुधर सके तथा सम्बन्धित देशों का भुगतान सन्तुलन भी व्यवस्थित होता रहे। इन सब कार्यों का उद्देश्य दीर्घकाल में अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को साथ एवं सन्तुलित अवस्था में रखना है।

4. **पूंजी की व्यवस्था (Arrangement of Capital)**– अन्तर्राष्ट्रीय बेंक सदस्य देशों में स्वयं पूंजी लगाता है तथा दूसरे देशों के पूंजीपतियों स पूंजी लगवाता है। इन दोनों वर्गों की पूंजी का इस ढंग से सामंजस्य होना आवश्यक है कि आवश्यक क्षेत्रों में पूंजी पहले नियोजित की जाय और विदेशों से प्राप्त मशीनें अथवा अन्य प्राविधिक सामान का श्रेष्ठतम प्रयोग हो सके, विश्व बैंक विकास कार्य में पूंजी को प्राथमिकता के सम्बन्ध में मार्गदर्शक का कार्य करता है।

5. **शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था (Peacetime Economy)**– विश्व बैंक का यह दायित्व है कि वह सदस्य देशों में लेन–देन अथवा ऋण सम्बन्धी जो भी कार्य करे उससे किसी देश की व्यापारिक व्यवस्था को हानि पहुंचने की आशंका नही होनी चाहिए। युद्ध–पीड़ित देशों की अर्थव्यवस्था को शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करने में विश्व बैंक को अत्यन्त गम्भीर एवं महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि विश्व बैंक का मुख्य उद्देश्य वे सब कार्य करना है जो सदस्य देशों के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सके।

विश्व बैंक की सदस्यता (Membership of World Bank)–

संसार का कोई भी देश विश्व बैंक का सदस्य हो सकता है, किन्तु विश्व बैंक की सदस्यता प्राप्त करने के लिए पहले अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष का सदस्य बनना अनिवार्य है। मुद्रा–कोष की सदस्यता छोड़ते ही उस देश की विश्व बैंक की सदस्यता अपने आप समाप्त हो जाती है। यदि बैंक की कुल मत शक्ति के 75 प्रतिशत मत से उस देश को सदस्य बनाए रखने का प्रस्ताव पास कर दिया जाय तो वह देश मुद्रा–कोष का सदस्य न रहते हुए भी विश्व बैंक का सदस्य बना रह सकता हैं । अब कोई देश विश्व बेंक की सदस्यता त्याग देता हे तो वहां की सरकार तब तक बैंक की किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होती है जब तक कि उस देश में दिया गया ऋण चुकता नहीं हो जाता। वर्तमान में विश्व बैंक के सदस्यों की संख्या 184 है।

14.2.2 विश्व बैंक के कार्य : (Functions of World Bank)

1. ऋण देना (Giving of Loans)–

बैंक के समझोता पत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि बैंक को केवल उत्पादक कार्यों के लिए ऋण देना चाहिए तथा इस ऋण के फलस्वरूप विकासशील देशों में आर्थिक विकास प्रोत्साहित होना चाहिए, प्रत्येक ऋण या तो देश की सरकार को दिया जाता है अथवा सम्बन्धित देश की सरकार द्वारा ऋण की गारण्टी दी जानी चाहिए। ऋण की विस्तृत कार्यप्रणाली इस प्रकार हैः

सामान्य रूप से बैंक दीर्घकालीन और मध्यकालीन अवधि की परियोजनाओं एवं विनियोग के लिए ऋण देता है । बैंक निम्न तीन प्रकार से ऋण देने की व्यवस्था करता है :

(i) अपने स्वयं के कोषों से ऋण देता है,

(ii) मुद्रा बाजार से ऋण लेकर सदस्य देशों को ऋण देता है,

(iii) बैंक उन ऋणों की पूर्ण अथवा आंशिक रूप से गारण्टी देता है जो विनियोग एजेन्सियों अथवा निजी विनियोजकों द्वारा दिए जाते हैं।

ब्याज की दर– विश्व बैंक द्वारा जो ऋण दिए जाते हैं उस पर ब्याज की दर प्रति 6 माह के लिए निर्धारित की जाती है। जिस ब्याज की दर पर विश्व बैंक ऋण लेता हे, उसकी तुलना में वह ऋण लेनेवाले देशों से 0.5 प्रतिशत ब्याज की दर अधिक लेता है।

ऋण की सीमा– बैंक किसी भी परियोजना में होने वाले पूरे व्यय की राशि ऋण के रूप में नहीं देता वरन् बैंक द्वारा स्वीकृत योजना के सम्पूर्ण व्यय का वह भाग ऋण के रूप में दिया जाता है जो विदेशों से माल खरीदने के लिए व्यय किया जाता हे, किन्तु यह भाग कुल लागत के 50 प्रतिशत से अधिक नही होना चाहिए। ऋणी देश को ऋण का भुगतान उस मुद्रा में करना होता है जिसमें वह ऋण लिया गया था।

(II) गारण्टी देना (Giving of Guarantee)–

विश्व बैंक का दूसरा कार्य है गारण्टी देना। बैंक सदस्य देशों के लिए अन्य वित्तीय संस्थाओं (बैंकों, आदि) से ऋण की व्यवस्था करवा सकता है और

उनके द्वारा दिए जाने वाले ऋणों के समय पर भुगतान की गारण्टी करता हैं। बैंक प्रत्येक गारण्टी पर कमीशन लेता हैं। बैंक के समझौता–पत्र के अनुसार अपने कार्यकाल के पहले दस वर्षों में उसके लिए प्रत्येक गारण्टी के लिए कम से कम 1 प्रतिशत और अधिक से अधिक 1.5 प्रतिशत गारण्टी कमीशन लेना आवश्यक था। यह कमीशन बिना चुकाई हुई ऋण राशि पर लिए जाने की व्यवस्था है। दस वर्ष की अवधि के बाद बैंक को इस कमीशन की राशि में परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया थां विश्व बैंक ने आरम्भ से ही इस कमीशन की दर 1 प्रतिशत रखी और उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं समझी।

बैंक 1949 से ही ऋणों तथा ऋणपत्रों की गारण्टी करता रहा है। गारण्टी कार्य पिछले कुछ वर्षों में सर्वथा समाप्त हो गया है क्योंकि 1986 के पश्चात एक भी ऋण की गारण्टी नहीं दी गई इसके दो कारण है– एक तो विश्व बैंक के दो सहयोगी अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ ने अविकसित देशों के उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में दीर्घकालीन ऋण पूंजी देनी आरम्भ कर दी है, दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग बढ़ जाने से बड़े देश विश्व बैंक की गारण्टी के बिना ही विदेशों में ऋण देने लगे हैं।

(III) प्राविधिक सहायता (Technical Assistance)–

बैंक का तीसरा कार्य है प्राविधिक सहायता की व्यवस्था करना। इस कार्य की पूर्ति के लिए बैंक ने यह निश्चित किया है कि अविकसित सदस्य देशों के विस्तृत आर्थिक सर्वेक्षण किए जायें जिससे उन देशों के प्राकृतिक साधन, आर्थिक एवं औद्योगिक सम्भावनाएं, परिवहन के साधन, आदि की एक साथ ही पूर्ण जानकारी हो जायं सम्पूर्ण आर्थिक सर्वेक्षण के अतिरिक्त बैंक अपने विशेषज्ञों को विभिन्न नियोजन कार्यों में सहायता देने के लिए सदस्य देशों में भेजता रहता है। यह विशेषज्ञ आर्थिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक अथवा अन्य कार्यों में सहायता देते हैं। बैंक द्वारा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले आर्थिक सर्वेक्षणों तथा अनुसन्धानों में सहयोग प्रदान किया जाता है। अनेक अफ्रीकी एवं अन्य देशों के आर्थिक सर्वेक्षण प्रकाशित किए जा चुके हैं।

(IV) प्रशिक्षण व्यवस्था (Training)-

नियोजित आर्थिक विकास आज का युगधर्म बन गया है और प्रत्येक देश के विभिन्न क्षेत्रों में योजनाओं का संचालन करने के लिए प्रशिक्षित अधिकारियों की आवश्यकता है। विश्व बैंक ने इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर 1 जनवरी, 1949 को सदस्य देशों के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए एक वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ किया। 1950 से कनिष्ठ कर्मचारियों के लिए भी लोक वित्त तथा हिसाब–किताब ठीक ढंग से रखने के लिए प्रशिक्षण कार्य आरम्भ किए गए।

(V) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा (Settlement of International Disputes)–

एक अन्तर्राष्ट्रीय निष्पक्ष संगठन होने के नाते विश्व बैंक एक ऐसी संस्था बन गई है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समस्याएं सुलझाने के लिए मध्यस्थ बनाया जा सकता है। इस दिशा में बैंक के दो कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं :

(1) भारत–पाक नहरी पानी विवाद (Indo-Pak river Water Dispute)- भारत का विभाजन होने से भारत और पाकिस्तान में पंजाब की नदियों के

जल–विभाजन सम्बन्धी विवाद उत्पन्न हो गया था जो क्रमशः गंभीर रूप धारण कर गयां । अन्ततः विश्व बैंक की इस विवाद में मध्यस्थता से 1951 में दोनों देशों के अधिकारियों के बीच वार्ता आरम्भ हुआ और 1954 में बैंक ने दोनों देशों के सामने सिन्धु घाटी के जल–विभाजन सम्बन्धी योजना प्रस्तुत की। विचार करते–करते अन्त में 19 जनवरी, 1960 को इस विवाद का निपटारा हो गया और दोनों के बीच एक महत्वपूर्ण समस्या का अन्त हो गया।

(2) **स्वेज नहर विवाद (Swez Canal dispute)-** विश्व बैंक द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग अथवा शान्ति की दिशा में किया गया दूसरा कार्य स्वेज नहर विवाद से सम्बन्धित है। 1956 के अन्तिम दिनों में जब मिस्र द्वारा स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण करने की घोषणा कर दी गई तो राजनीतिक निपटारा तो हो गया, परन्तु स्वेज नहर कम्पनी में ब्रिटेन के अंशों का हर्जाना देने के प्रश्न पर विवाद उत्पन्न हो गया। लगातार छः माह तक विचार–विमर्श के पश्चात बैंक दोनों देशों में समझौता कराने मे सफल हो गया।

14.2.3 विश्व बैंक के कार्यों का मूल्यांकन : (Evaluation of world Bank's Functions High Interest Rate)

1. **ऊंची ब्याज दर (High Interest Rate)** : आलोचकों के अनुसार बैंक की ब्याज दर ऊंची है। बैंक विशेष रूप से पिछड़े देशों के आर्थिक पुनरूत्थान के लिए ऋण देता है अतः ऐसे देशों के सन्दर्भ में बैंक की ब्याज की दर काफी अधिक है। विश्व बेंक द्वारा लिए जाने वाले ब्याज में तीन बातों का समावेश होता हे– प्रथम, बैंक को ब्याज का भुगतान कर बाजार से ऋण लेना होता है; द्वितीय बैंक सब प्रकार के ऋणों पर क्षतिपूर्ति के लिए 1 प्रतिशत कमीशन लेता हे, तीसरे, बैंक 1/4 से 1 प्रतिशत तक वसूली प्रशासनिक लागत और निधि कोष के लिए करता है। इसे दृष्टि में रखते हुए बेंक रियायती दर पर ऋण नही दे पाता। अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ की स्थापना से ऊंची ब्याज की शिकायत काफी हद तक दूर हो गई है। IDA विश्व बैंक की रियायती ऋण की खिड़की के रूप में जाना जाता है।

2. **अपर्याप्त सहायता (Insufficiant Assistance)** : आलोचकों का यह भी मत है कि विकासशील देशों की भारी आवश्यकताओं को देखते हुए, उनके लिए विश्व बैंक द्वारा दी जाने वाली सहायता अपर्याप्त है।

वर्तमान में उक्त आलोचना सही नहीं है क्योंकि बैंक ने उक्त सीमा को स्वीकार कर अपनी पूंजी में वृद्धि की है तथा सदस्य देशों का अभ्यंश बढ़ा दिया है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बैंक कुछ निश्चित उत्पादक योजनाओं के लिए ऋण देता है । अतः देशों को भी हर प्रकार की परियोजना के लिए बैंक से ऋण की आशा नहीं करनी चाहिए।

3. **पुनः भुगतान क्षमता पर अधिक जोर (Stress on Repayment Capacity)**– बैंक की यह भी आलोचना की जाती है कि ऋण देने के पूर्व बैंक सम्बन्धित देश की भुगतान क्षमता पर अधिक बल देता है। पिछड़े देशों की सहायता देते समय इस प्रकार की शर्त नहीं लगाई जानी चाहिए। किन्तु बैंक के समर्थक कहते हैं कि बैंक की पूंजी को सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है।

4. **कार्यो में विलम्ब एवं जटिलताएं (Delay & Difficulty)**– यह भी आलोचना की जाती है कि बैंक की ऋण देने की प्रक्रिया जटिल है एवं इसमें काफी विलम्ब लगता है तथा इसमें विकासशील देशों को ऋण प्राप्त करने में

कठिनाई होती है। किन्तु, यह आलोचना भी सही नहीं है क्योंकि विश्व बेंक 184 देशों का बैंक है और उसके विस्तृत कार्यक्षेत्र को देखते हुए कुछ विलम्ब होना स्वाभाविक है।

5. **पक्षपातपूर्ण व्यवहार (Favourtism)**– विश्व बैंक पर अमरीका एवं ब्रिटेन सरीखे कुछ विकसित देशों का अधिक प्रभाव है। बैंक के मताधिकार का लगभग 43 प्रतिशत विश्व के पांच बड़े देशों के हाथ में हैं बैंक के प्रबन्ध विभाग एवं अन्य सहयोगी कर्मचारियों में अधिकांश अमरीका तथा यूरोप के हैं इस प्रकार बैंक पर राजनीति प्रभाव अधिक है।

6. **ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी हटाने में असफल एवं पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव (Not able in removing rusal poverty and climatic change)** : आलोचकों का कहना हे कि विश्व बैंक की ऋण नीति विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी दूर करने में असफल रही है जिससे इन देशों की गरीब जनसंख्या को आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक साधनो पर निर्भर रहना पड़ा है जिससे पर्यावरण पर कुप्रभाव पड़ा है। विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित आर्थिक विकास पर्यावरण को कमजोर करने के मूल्य पर प्राप्त हुआ है। किन्तु वर्तमान में बैंक द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु किए गए उपायों को देखते हुए इस आलोचना को उचित नही कहा जा सकता।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद इस तथ्य से इन्कार नही किया जा सकता कि अर्द्ध–विकसित देशों के आर्थिक विकास का पथ प्रशस्त करने में बैंक ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। यह विश्व बैंक की सहायता का ही परिणाम है कि पहले की बंजर जमीन अब फसलों से लहलहा रही है, बिजली की रोशनी ने अन्धकार को मिटा दिया है तथा यातायात और ऋण के पुनर्भुगतान की शर्तों को भी सरल बना दिया है तथा अल्प–आय एवं मध्यम–आय वाले देशों को कई प्रकार की रियायतों की घोषणा की गई है।

विश्व बैंक के पूर्व अध्यक्ष ब्लेक के शब्दों में, ''संसार के कम विकसित देशों (अर्थात् विकासशील देशों) के लिए विश्व बैंक एक अपूर्व सहारा है। बैंक का उद्देश्य ऐसी व्यवस्था और विचारधारा का निर्माण करना है जिससे समृद्धि केवल कल्पना न रहकर ठोस और साकार बन जाए।''

14.2.4 विश्व बैंक और भारत : (World Bank and India)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के प्रारम्भिक आर्थिक विकास में विश्व बैंक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एशियाई राष्ट्रों में पहला ऋण विश्व बैंक द्वारा 1949 में भारत को ही दिया गया। बैंक के भारत के साथ दीर्घ एवं रचनात्मक सम्बन्धों ने विश्व बैंक को एक विकास संस्था के रूप में विकसित होने में काफी सहायता की है।

भारत विश्व बैंक के प्रारम्भिक सदस्यों में से एक है। शुरू में भारत का अभ्यंश 400 मिलियन डॉलर था एवं उसका नाम अधिकतम पूंजी वाले 5 देशों में शामिल था जिससे भारत को विश्व बैंक में एक स्थाई कार्यकारी संचालक नियुक्त करने का अधिकार मिल गया था। किन्तु अब अन्य देशों का अभ्यंश भारत से अधिक हो जाने के कारण प्रथम 5 देशों में भारत का स्थान नहीं रह गया है। वर्तमान में भारत का अभ्यंश 5404 मिलियन डॉलर है जिसमें से बैंक को प्रदत्त राशि 333.7 मिलियन डॉलर है तथा शेष 5070 मिलियन डॉलर मांग के अन्तर्गत

हैं। विश्व बैंक के कुल अंशदान में भारत का प्रतिशत 3.28 है। विश्व बैंक के कुल शेयरों में भारत के शेयर 44.795 है तथा मतों की संख्या 45045 है जो कुल मतों का 3.46 प्रतिशत है। भारत विश्व बैंक के चारों संघटकों का सदस्य है।

14.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund)

संयुक्त राष्ट्रों का मौद्रिक एवं वित्तीय सममेलन 22 जुलाई, 1944 में ब्रेटनवुड्स, अमरीका में हुआ। इसमें 44 देशों ने भाग लिया। इसी सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक की स्थापना का निर्णय लिया गया। मुद्राकोष की स्थापना 27 दिसम्बर, 1945 में हुई, किन्तु इसने 1 मार्च, 1947 से अपना कार्य आरम्भ किया।

14.3.1 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष के उद्देश्य : (Objective of I.M.F.)

मुद्रा–कोष के समझौता पत्र के अनुसार इसके निम्नलिखित उद्देश्य है :

1. **अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग की स्थापना (Establishing International Monitary Cooperative):** मुद्रा कोष का प्रथम उद्देश्य सदस्य देशों में मुद्रा नीति सम्बन्धी सहयोग स्थापित करना है। इसके लिए कोष द्वारा विशेषज्ञों का एक दल रखा जाता है जो अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक समस्याओं के समाधान के लिए समय–समय पर सुझाव देता है।

2. **सन्तुलित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा (Encouragement to Foreign Trade):** द्वितीय युद्धकाल में सब देशों द्वारा आयात–निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिए गये थे। अनेक आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों से भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की मात्रा में बहुत कमी हो गई। कोष के अनुसार मुद्रा–कोष का कोई भी सदस्य कोष की अनुमति लिए बिना अन्तर्राष्ट्रीय लेन–देन अथवा भुगतानो पर कोई बन्धन नहीं लगा सकता। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सन्तुलित विकास करना है।

3. **विनिमय स्थायित्व (Exchange Rate Stability)** : मुद्रा कोष का तीसरा उद्देश्य विनिमय दरों में स्थायित्व लाना है। सदस्य बनने के समय ही प्रत्येक देश की विनिमय दर SDR में निर्धारित कर दी जाती है। (15 अगस्त, 1971) से पूर्व प्रत्येक सदस्य देश की मुद्रा की विनिमय दर स्वर्ण और डालर में निर्धारित की जाती थी और प्रत्येक सदस्य उस दर को बनाए रखने की चेष्टा करता है। यदि किसी देश की विनिमय दर गिरने की आशंका उत्पन्न हो जाती है तो मुद्रा कोष न केवल उसे उचित सलाह द्वारा स्थिति को संभालने में मदद करता है बल्कि उसे आवश्यक मुद्रा उधार भी देता है।

4. **बहुमुखी भुगतान (Multilateral Payments):** अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का उद्देश्य विनिमय नियन्त्रणों को धीरे–धीरे हटाकर बहुमुखी भुगतान व्यवस्था लागू करना है।

5. **आर्थिक सहायता (Financial Assistance)** : अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष सदस्य देशों के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए आर्थिक सहयोग प्रदान करता है। यह सहयोग अल्पकालीन ऋण देकर (जो किसी भी मुद्रा में प्राप्त किया जा सकता है।) किया जाता है जिससे सम्बन्धित देशों को न केवल आर्थिक सहायता ही मिलती है बल्कि आर्थिक व्यवस्था ठीक करने के लिए परामर्श एवं तकनीकी सहायता भी मिलती है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का

उद्देश्य सदस्य देशों के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

6. असन्तुलन की अवधि तथा मात्रा (Duration & Degree of Disequillibrium): कुछ देशों की आधारभूत अर्थव्यवस्था तो दृढ़ होती है, परन्तु विशेष कारणों से उनका भुगतान सन्तुलन बिगड़ जाता है। यह सन्तुलन न तो तत्काल ठीक करना उचित ही है न सम्भव ही। अतः मुद्रा–कोष समुचित सहायता द्वारा इसे शीघ्रातिशीघ्र ठीक करने का प्रयत्न करता है। उसके प्रयत्नों से सन्तुलन की अवधि और मात्रा में कमी हो जाती है जिससे उस देश की आर्थिक स्थिति पर बहुत भार नहीं पड़ने पाता। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का उद्देश्य सदस्य देशों के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन की अवधि एवं सम्बद्ध घाटे के परिणाम को न्यूनतम करने का प्रयास करना है।

14.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष की सदस्यता : (Membership of the I.M.F.)

मुद्रा–कोष की सदस्यता कोई भी देश प्राप्त कर सकता है, परन्तु सदस्य देश को इसके समझौता–पत्र की सब धाराओं का पालन करने का वचन देना पड़ता है। जो देश कोष का सदस्य न रहना चाहे वह सूचना मात्र से ऐसा कर सकता है। यदि कोई सदस्य मुद्रा–कोष के समझौता–पत्र की किसी धारा की अवहेलना करता है तो उसे सदस्यता से पृथक किया जा सकता है। मार्च, 1947 को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के केवल 40 सदस्य थे जिनकी संख्या वर्तमान में बढ़कर 184 हो गई ळें

14.3.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष के आर्थिक साधन : (Financial Resources of the I.M.F.)

कोटा एवं उनका निर्धारण (Quotas and their Fixation) : मुद्रा–कोष का सदस्य बनने से पूर्व प्रत्येक देश का अभ्यंश निश्चित कर दिया जाता है। यदि कोई देश अपने कोटा में परिवर्तन करना चाहे तो मुद्रा–कोष उस पर विचार कर सकता है। परन्तु, जब तक कुछ मत शक्ति का 80 प्रतिशत पक्ष में न हो, कोटा में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। किसी देश का कोटा उसकी सहमति बिना बदलने की व्यवस्था नहीं है।

प्रारम्भ में मुद्रा–कोष के साधन 1000 करोड़ डालर निश्चित किए गए थे तथा यह व्यवस्था की गई थी कि प्रत्येक देश अपने कोटा का कम से कम 25 प्रतिशत अथवा अपने देश की कुल स्वर्ण एवं डालर निधि दोनों का 10 प्रतिशत (दोनों में जो भी कम हो) स्वर्ण में देगा, किन्तु 1976 से मुद्रा कोष मे स्वर्ण जमा करने की प्रणाली समाप्त कर दी गई और यह प्रावधान रखा गया कि सदस्य देश अपने कोटा का 75 प्रतिशत अपनी मुद्रा में तथा शेष 25 प्रतिशत किसी भी कोष मुद्रा में जमा करवा सकता है।

कोटा में परिवर्तन (Charging Quota) : अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कोटा के सम्बन्ध में हर पांचवे वर्ष पुनर्विचार होता है और आवश्यकता होने पर उनमें परिवर्तन कर दिया जाता है। मुद्रा–कोष की स्थापना के पहले दस वर्ष में इसके साधनों को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं समझी गई। अभ्यंशों में पहला परिवर्तन 15 सितम्बर, 1959 को किया गया जिससे मुद्रा–कोष की कुल पूंजी बढ़कर 1500 करोड़ डालर हो गई। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अभ्यंशों का 11वां पुनरीक्षण विगत

6 फरवरी, 1998 को अनुमोदित किया गया जिसके अनुसार दो महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये–

1. सदस्य राष्ट्रों के कोटा में 45 प्रतिशत वृद्धि का निर्णय,
2. सदस्य राष्ट्रों को एस0डी0आर0 का पुर्नआबंटन

12वां सामान्य कोटा पुनरीक्षण जनवरी 31, 2003 को हुआ। इसमें कोटा में वृद्धि के पक्ष में निर्णय नहीं लिया अपितु 11वें पुनरीक्षण को जारी रखने में सहमति दिखाई। फलतः 12वें पुनरीक्षण पश्चात भी मुद्रा कोष।

3. **प्राविधिक सहायता (Technical Assistance)** : कोष द्वारा वांशिंगटन स्थित प्रधान कार्यालय तथा अन्य देशों में अपने प्रतिनिधि भेजकर आर्थिक नीतियों के सम्बन्ध में सहायता देने की व्यवस्था की जाती है। यह सहायता सामान्य भुगतान सन्तुलन की समस्या से लेकर आर्थिक एवं वित्तीय क्षेत्र की किसी भी विशेष समस्या के बारे में हो सकती है। कोष के विशेषज्ञों द्वारा कई देशों को मुद्रा, कर विनिमय तथा विकास नीतियों के सम्बन्ध में सहायता दी गई है। कुछ देशों के केन्द्रीय बैंकों की स्थापना तथा उनके विभिन्न विभागों की व्यवस्था मुद्रा कोष के सहयोग से की जा सकी है। इन कार्यों के लिए मुद्रा–कोष के विशेषज्ञों को एक सप्ताह से लेकर एक वर्ष तक सम्बन्धित देशों में रहना पड़ा है। अफ्रीका के कुछ ऐसे देशों में भी, जो मुद्रा–कोष के सदस्य नहीं है, केन्द्रीय बैंकों को मुद्रा तथा बैंक नीति निर्माण करने में सहयोग दिया गया है।

4. **प्रशिक्षण कार्यक्रम (Training Programme)** : सन् 1951 से मुद्रा कोष सदस्य देशों के प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था कर रहा है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान, आर्थिक विकास और वित्तीय व्यवस्था तथा अंक–संकलन और विश्लेषण से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण अवधि प्रायः 6 से 12 मास की होती है। प्रशिक्षण प्रायः केन्द्रीय बैंकों तथा सरकार के वित्त विभाग के उच्च पदाधिकारियों के लिए होते हैं और उनमें मौखिक भाषणों तथा वाद–विवादों के अतिरिक्त समुचित मात्रा में व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

कोष प्रशिक्षणालय (IMF Training Centre) : कोष की प्रशिक्षण क्रियाओं का विस्तार एवं विकास करने के लिए मई 1963 में एक प्रशिक्षणालय स्थापित किया गया। यह विभिन्न भाषाओं में वित्तीय नीति विश्लेषण सम्बन्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है।

5. **पर्यावरण के प्रति जागरूकता (Anaounce for Environment)** : यह मुद्रा–कोष का नवीनतम कार्य है कि उसने आर्थिक नीतियों के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव पर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। इसे दृष्टि में रखकर कोष ने 1991 में महत्वपूर्ण निर्देश जारी किए एवं ऐसे कार्यों के लिए ऋण देने से इन्कार किया जाने लगा जिनका पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में कोष ने अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से भी सम्पर्क स्थापित किया है जो पर्यावरण के क्षेत्र में शोध कर रही है।

6. **विश्व बैंक से सहयोग स्थापित करना (Collaboration with world Bank)**: मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक दोनों ही आर्थिक विकास एवं स्थिरता बढ़ाने हेतु प्रयास करते हैं । यद्यपि दोनों के चार्टर के अनुसार उनकी स्थिति भिन्न है किन्तु दोनों एक दूसरे से सहयोग से कार्य करते हैं। मुद्रा कोष ऐसे कार्यो के दुहराव से

बचनें का प्रयास करता है जो विश्व बैंक द्वारा किए जाते हैं। इस सम्बन्ध में दोनों संस्थाओं ने 1986 से निदेशक सिद्धान्त बनाए है जिसकी समय–समय पर समीक्षा की जाती है।

7. **विदेशी विनिमय नियंत्रण सम्बन्धी सलाह (Advice regarding foreign exchange control)** : मुद्रा कोष अधिकारियों द्वारा विकासशील देशों को विदेशी विनिमय सम्बन्धी उचित सलाह देने की व्यवस्था है। विदेशी विनिमय सम्बन्धी सलाह देते समय प्रायः मुद्रा तथा वित्त नीतियों सम्बन्धी विचार विमर्श होता है और उनमें सुधार करने का अवसर मिलता है।

8. **संरचनात्मक समायोजन सुविधा (Adjustment Facility)** : अल्प आय वाले सदस्य देशों को रियायती दर पर अतिरिक्त भुगतान सन्तुलन सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से मुद्रा–कोष ने मार्च 1986 में संरचनात्मक समायोजन सुविधा स्थापित की। दिसम्बर 1987 में इस सुविधा का विस्तार किया गया और गरीब देशों को 6 बिलियन एस0डी0आर0 के तुल्य रियायती सहायता प्रदान करने का प्रावधान रखा गया। इस सहायता का उद्देश्य इन देशों की भुगतान सन्तुलन की स्थिति में सुधार कर उनमें विकास की गति तेज करना है। भारत सहित 62 देश वर्तमान में यह सहायता पाने के पात्र है।

9. **मुद्रा–कोष की रिपोर्ट के प्रकाशन (Publication of IMF Report)**: अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा अपनी वार्षिक रिपोर्ट, विदेशी विनिमय नियन्त्रण सम्बन्धी वार्षिक रिपोर्ट, भुगतान सन्तुलन (वार्षिक), अन्तर्राष्ट्रीय वित्त समंक (मासिक), वित्त एवं विकास (त्रैमासिक) तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय समाचार सर्वेक्षण (साप्ताहिक) प्रकाशित किए जाते हैं जिनमें विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा शोधकर्ताओं एवं सरकारी कार्यालयों के लिए अत्यन्त मूल्यवान सामग्री मिलती है। मुद्रा–कोष के स्टाफ पेपर्स में अत्यन्त उच्चस्तरीय लेख प्रकाशित होते हैं।

14.3.4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष की उपलब्धियाँ : (Achievements of I.M.F.)

अपनी स्थापना काल से लेकर मुद्रा–कोष ने विभिन्न क्षेत्रों में अपने कार्यों में उल्लेखनीय प्रगति की है जिसे हम उसकी सफलताएं अथवा उपलब्धियां कह सकते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :

1. **सदस्य संख्या में वृद्धि (Increase in No. of Members)** : मुद्रा केष की सदस्य संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1 मार्च 1947 को मुद्रा कोष के केवल 40 सदस्य थे। यह संख्या वर्तमान में बढ़कर 184 हो गई है।

2. **कोष की तरलता एवं ऋण लेना (Liquidity of Fund and Loaning)** : कोष कें तरल संसाधनों में प्रयोज्य मुद्राओं तथा एस0डी0आर0 का समावेश होता है जिन्हें सामान्य संसाधन लेखे में रखा जाता है। कोष का सबसे बड़ा संसाधन प्रयोज्य मुद्राएं हैं तथा उन्हीं देशों की मुद्राओं को इसमें शामिल किया जाता है जिनकी भुगतान सन्तुलन एवं रिजर्व की स्थिति मजबूत होती है। इन मुद्राओं को कार्यात्मक बजट में शामिल किया जाता है। कोष ने अपने संसाधनों की पूर्ति करने एवं सदस्य देशों के क्रय की वित्तीय व्यवस्था (विस्तृत पहुंच नीति 1981 के अन्तर्गत) करने हेतु अधिकृत स्रोतों से ऋण लिया है। इस दिशा में कोष में सराहनीय भूमिका निभाई है

3. **ऋण वचन एवं विस्तारित सुविधा** : कोष द्वारा विकासशील देशों को 21 ऋण वचन अथवा वक्त जरूरत सुविधा प्रदान की जाती है। इसके अन्तर्गत सदस्य देश को एक निश्चित अवधि के लिए एक निश्चित राशि तक मुद्रा कोष से वक्त जरूरत ऋण मिल सकता है। उक्त 21 समझौतों के अन्तर्गत 5.6 बिलियन एस0डी0आर0 देनें का प्रावधान किया गया। भारत, ब्राजील, अर्जेन्टीना आदि देशों के साथ ऐसे समझौते किये गये हैं।

4. **ढांचागत समायोजन सुविधा एवं विस्तारित ढांचागत समायोजन सुविधा (Infrastructural Facility & Adjusktment)** : इस सुविधा के अर्न्तगत अल्प आय वाले सदस्य देशों को रियायती दर पर ऋण सुविधा प्रदान की जाती है जो मार्च 1986 में प्रारम्भ की गई। दिसम्बर 1987 में इस सुविधा का विस्तार किया गया और गरीब देशों को 6 बिलियन एस0डी0आर0 के तुल्य रियायती सहायता प्रदान करने का प्रावधान रखा गया। इस सहायता का उद्देश्य भुगतान सन्तुलन की स्थिति में सुधार कर पिछड़े देशों में विकास की गति तेज करना है। इन दोनों सुविधाओं के अन्तर्गत ऋण कोष के विशेष भुगतान लेखा में से दिया जाता है तथा वर्तमान में इस पर ब्याज की दर 0.5 प्रतिशत वार्षिक है।

5. **सदस्यों को वित्तीय सुविधा की वृद्धि (Financial Facility to members)** : नब्बे के दशक के आरम्भ में कोष द्वारा सदस्य देशों की सहायता में वृद्धि की गई जिसके दो प्रमुख कारण थे– प्रथम, तीन बड़े ऋण लेने वाले देशों (अर्जेण्टाइना, ब्राजील, भारत) द्वारा कोष की आर्थिक एवं ढांचागत सुविधा के अन्तर्गत ऋण लिया जाना जिसकी राशि 6.1 बिलियन एस0डी0आर0 थी। दूसरे, खाड़ी संकट के कारण तेल की कीमतों में भारी वृद्धि जिसके कारण कई देशों ने क्षतिपूरक एवं आकस्मिक वित्तीय सुविधा के अन्तर्गत ऋण लिया।

6. **विश्व व्यापार मे सहायता (Assistance in World Trade)** : अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में सन्तुलित व्यापार का विकास करना कोष का एक प्रमुख उद्देश्य है। इसके लिए कोष, व्यापार एवं भुगतानों के नियन्त्रणों को दूर करता है। समझौता पत्र की धारा IV में व्यापार के क्षेत्र में सुधारों का प्रावधान है। स्वतन्त्र व्यापार को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से मुद्रा–कोष GATT के साथ भी सहयोग करता है। धारा VIII में यह भी प्रावधान है कि कोष का कोई सदस्य चालू अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहं लगाएगा। उदार व्यापार नीतियों के बढ़ाने की दृष्टि से कोष ने क्षेत्रीय एकीकरण बढ़ाने पर भी जोर दिया है तथा व्यापार के क्षेत्र से सम्बन्धित संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित किया है जिनमें विश्व बैंक, गैट, आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन प्रमुख है। कोष समय–समय पर अपनी उन नीतियों की समीक्षा भी करता है जो विश्व व्यापार से सम्बन्धित होती हैं। यह कोष की नीतियों का ही परिणाम है कि कई विकासशील देशों ने व्यापार के क्षेत्र में संरक्षण की नीति को सीमित कर दिया है तथा प्रशुल्क क दरों को भी घटा दिया है।

7. **तकनीकी सहायता एवं प्रशिक्षण (Technical Assistance & Training)** : कोष की सदस्यता बढ़ने एवं सदस्य देशों द्वारा बाजार अर्थव्यवस्था का स्वरूप अपनाए जाने के कारण तकनीकी सहायता एवं प्रशिक्षण की मांग में विस्तार हुआ है। IMF की तकनीकी सहायता, सदस्य देशों को अपने आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे में सुधार में सहायक होती है। अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम में कोष सरकारी

अधिकारियों को कोष आर्थिक प्रबन्ध, केन्द्रीय बैंकिंग विकास, कर प्रणाली एवं कर प्रशासन में सुधार, सांख्यिकी आंकड़ों में सुधार, इत्यादि विषयों का समावेश करता है। वियना (आस्ट्रीया) में एक नया क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने में कोष, पांच अन्तर्राट्रीय संस्थाओं को सहयोग कर रहा है जो अर्थव्यवस्थाएं बाजार–आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो रही है, उनमें तकनीकी सहायता की अधिक मांग है, जैसे पूर्वी यूरोप के देश एवं पूर्व सोवियत संघ के राज्यं तकनीकी सहायता देनें की दृष्टि से न केवल कोष के विभिन्न विभागों में सहयोग बढ़ा है वरन् कोष विभिन्न बहुपक्षीय संस्थानों के साथ भी सहयोग कर रहा है जैसे विश्व बैंक संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम, यूरोपीय समुदाय, यूरोपियन पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक, इत्यादि।

कोष, तकनीकी सहायता के लिए संसाधन दो स्रोतों से प्राप्त करता है– प्रथम, संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम की एक एजेंसी की तरह मुद्रा–कोष 1989 के समझौते के अन्तर्गत कार्य करता है, एवं द्वितीय, तकनीकी सहायता लेखा जिसकी वित्तीय व्यवस्था जापान करता है तथा इसकी स्थापना मार्च 1990 में की गई थी।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विभिन्न विभाग प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन करते हैं जैसे केन्द्रीय बैंकिंग विभाग, राजस्व अथवा राजकोषीय मामलों का विभाग, कानूनी विभाग, सांख्यिकी विभाग, इत्यादि।

14.3.5 मुद्रा–कोष और भारत : (IMF and India)

प्रबन्धक मण्डल की सदस्यता (Membership of Managing Board) : भारत उन प्रारम्भिक 44 देशों में से एक है जिन्होंने ब्रेटनवुड्स सम्मेलन में भाग लिया। शुरू में भारत उन पांच देशों में एक था जिनका कोटा सबसे अधिक था। अतः भारत को मुद्रा–कोष के संचालक मण्डल में स्थाई स्थान दिया गया था। किन्तु, 1970 के बाद अन्य देशों का कोटा अधिक हो जाने के कारण संचालक मण्डल में भारत की स्थाई सदस्यता समाप्त हो गई है।

भारत का प्रारम्भिक कोटा 400 मिलियन डालर था जो क्रमशः बढ़ते हुए 1976 मं 1145 मिलियन एस0डी0आर0 तथा 1984 में 2208 मिलियन एस0डी0आर0 तथा नवम्बर 1992 में 30555 मिलियन एस0डी0आर0 हो गया। 11वीं कोटा समीक्षा के बाद भारत का कोटा फरवरी 1998 में बढ़कर 4158.2 मिलियन एस0डी0आर0 हो गया है जो अब भी कायम है। किन्तु कोष की कुल कोआ राशि में उसका अंश 2.09 प्रतिशत से घटकर 1.961 प्रतिशत ही रह गया है।

भारत द्वारा मुद्रा कोष से लिये गये ऋण (Loan Taken by India form I.M.F.) :

भुगतान शेष की कठिनाईयों को दूर करने के लिए भारत ने मुद्रा–कोष से समय–समय पर ऋण लिए हैं। 1948–49 में भारत ने मुद्रा कोष से 100 मिलियन डालर का ऋण लिया। 1956–57 तक इसे वापस कर दिया। द्वितीय योजना के दौरान 1957 में भारत ने कोष से 200 मिलियन डालर के ऋण का समझौता किया ताकि वह विकास कार्यों के कारण भुगतान शेष में होने वाले अस्थायी घाटा का वित्त पोषण कर सके। इस रकम में से अभी 63 मिलियन डालर वापस करना बचा हुआ ही था कि 1961 में कोष से 250 मिलियन डालर के अतिरिक्त ऋण लेने का समझौता किया। यह सहायता अत्यन्त मूल्यवान साबित हुई क्योंकि भारत का

विदेशी विनिमय भण्डार उस समय खतरनाक ढंग से कम हो गया था। 1965–66 में भारतीय विदेशी विनिमय भण्डार एक बार फिर अत्यन्त कम हो गया। कोष ने ससमय भारत को फिर 300 मिलियन डालर का ऋण देकर उसे संकट से उबारा।

जुलाई 1975 में कोष ने तेल सुविधा के अन्तर्गत 210.3 मिलियन एस0डी0आर0 का ऋण दिया। 1976 में भी इसी सविधा के अन्तर्गत 200 मिलियन एस0डी0आर0 एक अन्य ऋण दिया और 1977 में भी इतनी ही रकम प्रदान की।

1981 में भारत ने मुद्रा–कोष से 5000 मिलियन एस0डी0आर0 का विशाल ऋण लिया ताकि वह भुगतान शेष की समस्या का समाधान कर सके। यह समस्या मुख्य रूप से तेल आयात के कारण उत्पन्न हुई थी जब तेल निर्यातक देशों ने 1973–74 के बाद दूसरी बार 1974 में पेट्रोलियम की कीमत में भारी वृद्धि कर दी (1973–74 में चार गुना तथा 1979 में दुगुना)। मुद्रा–कोष द्वारा किसी एक देश को दिया गया यह सबसे बड़ा ऋण था। इस रकम का केवल 3900 मिलियन एस0डी0आर0 भारत ने उपयोग किया तथा 1100 मिलियन एस0डी0आर0 को वापस लौटा दिया।

1988–89 में भारतीय भुगतान शेष एक बार फिर दबाव में आ गया। इस वर्ष विदेशी चालू खाते में 8 बिलियन डालर का धाटा हो गया। फलतः भारतीय विदेशी विनिमय भण्डार काफी कम हो गया। 1990–91 में स्थिति और भी खराब हो गई क्योंकि बाह्य वाणिज्य बैंकों ने ऋण देना बन्द कर दिया तथा अनिवासी भारतीयों ने अपनी जमा से निकलना शुरू कर दिया। इन परिस्थितियों में भारत एक बार फिर मुद्रा–कोष के पास गया तथा 1.2 बिलियन डालर का ऋण लिया। ऋण की स्वीकृति निम्न शर्तों पर दी गई।

1 रूपए का 22 प्रतिशत अवमूल्यन,
2. आयात शुल्क में भारी कटौती
3. उत्पाद शुल्क में वृद्धि तथा
4. लोक व्यय में कटौती

1990 के दशक में विस्तारित कोष सुविधा, ऋण–वचन साख प्रबन्ध तथा क्षतिपूरक एवं आकस्मिक वित्त सुविधा के अन्तर्गत भारत ने मुद्रा–कोष से जो ऋण लिया उसका ब्यौरा इस प्रकार है :

वर्ष (मार्च के अन्त तक लिया ऋण)	कुल ऋण (मिलियन अमरीकी डॉलर)
1991	2623
1992	3451
1993	4799
1994	5040
1995	4300
1996	2374
1997	1313
1998	664
1999	287
2001	26

31 मार्च 2000 कें बाद भारत ने IMF से कोई ऋण नही लिया है।

14.4 सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक बहुपक्षीय भुगतान प्रणाली है जो चालू लेन–देनों के हस्तांतरण को बढ़ाने के लिए कार्य करता है। IMF विनिमय दर नीतियों तथा चालू लेन–देनों के भुगतान पर प्रतिबन्ध के लिये आचार संहिता का निर्माण तथा प्रशासन करता है तथा सदस्यों को वित्तीय संसाधन, भुगतान असंतुलनो को दूर करने तथा उसमें संशोधन के लिए उपलब्ध कराता है। इसके अलावा यह एक फोरम भी उपलब्ध कराता है जिसमें IMF सदस्य एक दूसरे के साथ परामर्श कर सकें तथा अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक मामलों पर सहयोग कर सकें।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष भुगतान शेष में सहयोग सदस्यों को विनिमय में अपनी मुद्रा अन्य सदस्यों की मुद्रा या विशेष आहरण अधिकारों के रूप में प्रदान करता है। कोष द्वारा वित्तीय सहयोग प्रदान करने वाली अनेक सुविधाएं 1970 के मध्य से बढ़ चुकी है। इन सुविधाओं का उदारीकरण आंशिक तौर पर कोटा की सीमा तथा आंशिक तौर पर संच किये गये ट्रांच में से निकाली जा सकने वाली धनराशि के निर्धारण में संचय क्रेडिट ट्रांच सुविधाएंतथा बफर स्टाक सुविधाएं उपलब्ध कराता है। निम्न आय देशों के लिए संरचना समायोजन सुविधा (SAF) तथा विस्तृत संरचना समायोजन सुविधा (ESAF) बनाई गई है। इसके अलावा, SDRs को भी बनाया गया है जिनका उपयोग सदस्य देशों के द्वारा एक आरक्षित सम्पत्ति के रूप में किया जा सकता है। SDRs का उपयोग अन्य सदस्य देशों की मुद्राओं को प्राप्त करने के लिए भी किया जा सकता है।

वित्तीय सहयोग प्रदान करने के अतिरिक्त, IMF एक फोरम प्रदान करता है जिसमें IMF अपने सदस्य देशों के साथ परामर्श कर सकता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा मामलों में सहयोग कर सकता है। भुगतान शेष तथा सम्बन्धित मुद्दों पर गहन अनुसंधान भी करता है तथा IMF संस्थान पर सदस्य देशों के वरिष्ठ अधिकारियो को प्रशिक्षण भी देता है। इसके अलावा अपने तकनीक सहयोग कार्यक्रम के अंतर्गत IMF भी अपने सदस्य देशों को परामर्श सुविधाएं भी प्रदान करता है।

विश्व बैंक की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध के बाद, मुख्यतः पश्चिमी यूरोप की पुनर्निर्माण तथा उत्पादक सुविधाओं के लिए वित्त प्रदान करने तथा तथा जीवन स्तर तथा उत्पादकता को बढ़ाने के लिए, विशेषकर विश्व के अविकसित क्षेत्रों में हुआ। विश्व बैंक ने अपना कार्य 1946 से शुरू किया। यह संयुक्त राष्ट्र की एक विशेष एजेंसी है।

14.5 शब्दावली

बफर स्टाक वित्तीय सुविधा (Buffer Stock Financing Facility) : IMF अपने सदस्यों को स्वीकृत बफर स्टाक में अंशदान के लिए वित्त प्रदान करता है।

फ्लोटिंग मुद्रा (Floating Currency) : वह मुद्रा जिसका मूल्य उस मुद्रा की पूर्ति तथा मांग के अनुरूप परिवर्तित होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष (International Monetary Fund) : एक बहुसरकारी संगठन, जो विनिमय दर स्थिरता को बढ़ावा देता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओं के प्रवाह को सुविधा प्रदान करता है।

सम स्तरीय मूल्य (Par Value) : एक मुद्रा की बैंचमार्क मूल्य, जो कि स्वर्ण या अमेरिकी डॉलर के संबंध में उल्लेखित है।

विशेष आहरण अधिकार (Special Drawing Rights): अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष के द्वारा विभिन्न देशों को अपने आधिकारिक संचय आधारों को बढ़ाने के लिए जारी किये गये खाते की एक इकाई।

कोषों के लेन–देन (Transaction of Fund) : मौद्रिक सम्पत्ति का अन्य सम्पत्तियों के साथ विनिमय।

14.6 बोध प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा पुनर्निर्माण तथा विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक, जो कि प्रसिद्ध रूप से विश्व बैंक के नाम से जाना जाता हे, की स्थापना ..... में की गई।
2. .....का प्रथम उद्देश्य युद्ध–पीड़ित देशों के पुनर्निर्माण तथा पिछड़े हुए देशों के आर्थिक विकास में सहायता देना थां ।
3. विश्व बैंक की सदस्यता प्राप्त करने के लिए पहले .... का सदस्य बनना अनिवार्य है।
4. मुद्राकोष की स्थापना ..... दिसम्बर, 1945 में हुई ।

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1945, 2. विश्व बैंक, 3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, 4. 27

14.8 स्वपरख प्रश्न

1. विश्व बैंक के क्या उद्देश्य हैं? उसके कार्यों की व्याख्या कीजिए।
2. भारत विश्व बैंक से किस सीमा तक लाभान्वित हुआ है? विस्तार से समझाइए।
3. ''वर्तमान समय में दो मौद्रिक संस्थाओं–अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अन्तर्राष्ट्रीय पुनः निर्माण एवं विकास बैंक की स्थापना वरदान स्वरूप सिद्ध हुई है।'' स्पष्ट कीजिए।
4. अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
5. अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक के संगठन, उद्देश्य एवं कार्यों की विवेचना कीजिए।
6. विश्व बैंक के उद्देश्यो पर प्रकाश डालिए और यह स्पष्ट कीजिए कि उनकी प्राप्ति मे वह कहां तक सफल रहा है?
7. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को स्थापित करने के लिए आधारभूत कारण क्या थे?
8. वर्तमान विनिमय दर प्रणाली में IMF की भूमिका की विवेचना कीजिए।
9. क्या IMF अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने में सफल हुआ है? IMF द्वारा अपने क्रियाकलापों के संचालन में सामना की जा रही बाधाओं पर प्रकाश डालिये।
10. IMF के उद्देश्य तथा कार्यों की व्याख्या कीजिए।

14.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई –15 विदेशी विनियोग एवं इसका नियमन
(Foreign Investment and Its Regulation)

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 विदेशी विनियोग : आशय एवं अवधारणा
15.3 विदेशी विनियोग के स्वरूप
15.4 विदेशी विनियोग के प्रकार
15.5 विदेशी विनियोग के लाभ
15.6 विदेशी विनियोग की संभावित हानियॉ
15.7 विदेशी विनियोग का औचित्य
15.8 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश : आशय एवं उपयोगिता
15.9 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के मार्ग
15.10 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का भारतीय अर्थ व्यवस्था
15.11 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की स्थिति आवश्यकता
15.12 विदेशी विनियोग नियमन
15.13 विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम के प्रावधान
15.14 विदेशी निवेश नीति का उदारीकरण
15.15 विदेशी विनियोग की भारी संभावनायें
15.16 सारांश
15.17 शब्दावली
15.18 बोध प्रश्न
15.19 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.20 स्वपरख प्रश्न
15.21 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- विदेशी विनियोग के आशय व स्वरूपों का ज्ञान प्राप्त कर सके।
- विदेशी विनियोग के उद्देश्यों का वर्णन कर सके।
- विदेशी विनियोग से प्राप्त लाभों का वर्णन कर सके।
- विदेशी विनियोग से उत्पन्न संभावित हानियों व दोषों का विवेचन कर सके।
- विदेशी विनियोग के औचित्य की व्याख्या कर सकें।
- विदेशी विनियोग के नियमन की आवश्यकता का वर्णन कर सके।
- भारत में विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सके।
- विदेशी विनियोग की भावी सम्भावनाओं की व्याख्या कर सकें।

15.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के लिये विकास की इच्छा तो पूर्व शर्त है पर केवल इच्छा मात्र से विकास संभव नहीं है। विकास की इच्छा की पूर्ति के लिये संगठन, श्रम, पूंजी व तकनीक की आवश्यकता होती है। व्यवसायिक पर्यावरण तथा सरकार की

नीति भी एक महत्वपूर्ण घटक है। आर्थिक विकास के तीन प्रमुख संसाधन हैं : प्राकृतिक संसाधन , भौतिक संसाधन तथा मानवीय संसाधन । प्राकृतिक संसाधन तो प्रकृति द्वारा प्रदान किये जाते हैं पर उन प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर कृषि, उद्योग व व्यापार के द्वारा आर्थिक विकास मानवीय संसाधनों द्वारा किया जाता है। भौतिक संसाधनों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है पूंजी । क्योंकि पूंजी विनियोग के द्वारा ही आर्थिक क्रियायें गतिमान होती है। यह पूंजी विनियोग देश के निकासियों से भी उपलब्ध हो जाता है और विदेशी भी इसका माध्यम बनते हैं। देशी और विदेशी पूजी के उपयोग की तीव्रता, सघनता और उद्देश्य परक सक्रियता से ही आर्थिक विकास की गति और दिशा तय होती है।

15.2 विदेशी विनियोग : आशय एवं अवधारणा (Meaning and Concept of Foreegn Investment)

विनियोग का आशय व उद्देश्य भविष्य में आय तथा सम्पत्ति का अर्जन है। व्यय और विनियोग मे यह मूलभूत अंतर है कि व्यय का उद्देश्य व परिणाम तात्कालिक और उपयोग मूलक होता है जबकि विनियोग दीर्घकालिक एवं आय तथा संपत्ति के अर्जन के उद्देश्य से प्रेरित होता है।

यह विनियोग दो प्रकार का होता है 'देशी एवं विदेशी । जब किसी देश की सीमाओं में रहने वाले लोग अपने ही देश में पूंजी निवेश करते हैं तो यह देशी विनियोग कहलाता है और जब यह पूंजी निवेश देश की सीमाओं से बाहर होता है तो इसे विदेशी विनियोग कहा जाता है।

विदेशी विनियोग को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है – ''किसी देश की सरकार या निवासियों द्वारा विदेशों में सम्पत्तियॉ अर्जित करने के उद्देश्य से किया गया व्यय व निवेश विदेशी विनियोग कहलाता है।''

15.3 विदेशी विनियोग के स्वरूप (Forms of Foreign Investment)

विदेशी विनियोग के स्वरूप निम्नवत है :–

1. विदेशी उद्यम के अंशों का अधिग्रहण ।
2. शत प्रतिशत स्वामित्व के साथ विदेशों में एक सहायक कंपनी की स्थापना।
3. विदेशों में कारखाने, शाखायें व कार्यालय स्थापित करके ।
4. वर्तमान में स्थित शाखाओं व कार्यालयों का विस्तार ।
5. प्रबंधन में भाग लेने के लिये मताधिकार युक्त अंशों का क्रय ।
6. विदेशी कंपनियों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना ।

15.4 विदेशी विनियोग के प्रकार (Types of Foregn Investment)

विदेशी विनियोग अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र का परिणाम है। विश्व के सभी राष्ट्रों में परस्परता का भाव तथा आवश्यकता पडने पर एक दूसरे की तन, मन, धन से सहायता करने की वृत्ति ही विदेशी विनियोग को जन्म देती है।

विदेशी विनियोग दो प्रकार का हो सकता है – अंतप्रवाही और वहिप्रवाही

1 अंतःर्प्रवाही (Inflow) :– जब विदेशी व्यक्ति , व्यक्ति समूह, संस्थायें व सरकारें हमारे देश में निवेश करती है तो यह अंतःर्प्रवाही विनियोग कहलाता है।

2 वहिर्प्रवाही विनियोग (Outflow) :– जब भारत के निवासी, कंपनियॉ या सरकार विदेशों में पूंजी निवेश करते हैं तो इसे वहिर्प्रवाही विनियोग की संज्ञा दी जाती है।

15.5 विदेशी विनियोग के लाभ

जिस राष्ट्र को विदेशी विनियोग प्राप्त होता है उसे प्राप्त होने वाले लाभ निम्नवत हैं :–

1. देश में वांछित पूंजी निवेश तथा उपलब्ध पूंजी निवेश मे प्रायः अंतर रहता है विदेशी निवेश इस खाई को पाट देता है।
2. पूंजी निवेश के साथ प्रोद्यौगिकी एंव तकनीक का भी आगमन होता है जिससे सीधा लाभ प्राप्त होता है।
3. विकासशील राष्ट्रों को उन्नत मशीनें व उन्नत प्रोद्यागिकी प्राप्त होने से देशी तकनीक व प्रोद्यौगिकी के स्तर में वृद्धि होती है।
4. विदेशी विनियोग के माध्यम से उोगों की उत्पादकता में भारी सुधार होता है।
5. राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। जीडीपी बढने से प्रति व्यक्ति आय बढ जाती है।
6. व्यक्तियों व राष्ट्र की आर्थिक सम्पन्नता बढती है।
7. निर्यात की क्षमता बढ जाती है और विनिमय कोष में वृद्धि होती है।
8. विदेशी विनियोग से रोजगार के अवसर बढते हैं जिससे बंरोजगारी कम होती है।
9. उपभोक्ताओं को लाभ होता है उन्हें तरह तरह की अधिक से अधिक वस्तुये उपभोग के लिये उपलब्ध होती है। माल की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है।
10. सरकार को कर के रूप में अधिक राजस्व प्राप्त होता है।
11. राष्ट्र के गौरव में वृद्धि होती है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसका मान बढता है रेटिंग अच्छी हो जाती है।

विनियोगकर्ता राष्ट्र को लाभ :– विदेशी विनियोग का लाभ विनियोगकर्ता राष्ट्र को भी होता है प्रमुख लाभ निम्नवत हैं :–

1. बेकार पडी पूंजी को निवेश का अवसर प्राप्त हो जाता है।
2. विनियोग से अच्छी, सतत और दीर्घकालिक आय प्राप्त होती है।
3. राष्ट्र का विदेशी विनिमय कोष बढता है।
4. धीरे धीरे आर्थिक उपनिवेश स्थापित हो जाते हैं।
5. उन्नत प्रोद्यौगिकी तथा श्रेष्ठ मानव पूंजी पर भारी रोयल्टी, वेतन व लाभांश प्राप्त होता है।
6. दूसरे राष्ट्र में रोजगार के अवसर बढाना उन्हें रोजगार देने से मानव जाति के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह होता है।

15.6 विदेशी विनियोग की संभावित दोष (हानियॉ)

विदेशी विनियोग पूरी तरह निरापद नहीं है इससे कुछ हानियां भी होती है जिनका विवरण निम्नलिखित है :–

1. आर्थिक साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का भय रहता है। कहा जाता है ध्वजा व्यापार का अनुगमन करती है। व्यापार करते करते विदेशी विनियोग कर्ता राष्ट्र का स्वामित्व प्राप्तकर लेते हैं। भारत को ईस्ट इंडिया कम्पनी का बहुत कटु अनुभव हैं।
2. विदेशी विनियेाग अपनी शर्तों पर आता है । अतः राष्ट्र को समझौते करने पडते हैं।
3. विदेशी तकनीक और प्रोद्यौगिकी के आने से देश के घरेलू छोटे और माध्यम आकार के उद्योगों का सफाया हो जाता है।
4. विदेशी विनियोग कर्ताओं के करों में छूट के साथ कुछ अतिरिक्त सुविधायें भी प्रदान की जाती है जिससे प्रत्यक्ष हानि होती है।

15.7 विदेशी विनियोग का औचित्य (Rational of Foregin Investment)

विकासशील राष्ट्रों के पास कच्चा माल और श्रम तो रहता है, प्रोद्यौगिकी व पूंजी का अभाव रहता है । विदेशी विनियोग के द्वारा पूंजी और प्रोद्यौगिकी सुलभ हो जाती है इससे अविकसित राष्ट्रों का विकासशील तथा विकासशील राष्ट्रों को विकसित बनने का पथ प्रशस्त होता है।

श्रम व पूंजी को सक्रिय होकर उत्पादन में योगदान का अवसर मिलता है । रोजगार के अवसर बढते हैं, बाजार का विस्तार हेाता है, उपभोक्ताओं को श्रेष्ठतम वस्तुयें सुलभ होती हैं, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग होता है, पूंजीनिर्माण की गति बढती है, भुगतान शेष को अपने पक्ष में संतुलित करने का अवसर प्राप्त होता है सरकार का राजस्व बढता है राष्ट्री आय और प्रतिव्यक्ति आय बढती है, निर्धनता में कमी आती है, राष्ट्र में भौतिक अवरंचना (Physical Infra Structure) बढता है। संवृद्धि, सम्पन्नता और समृद्धि बढती है। अतः विदेशी विनियोग का औचित्य स्वयं सिद्ध है ।

प्रायः विकासशील देशों के पास प्राकृतिक और मानवीय संसाधन तो प्रचुर मात्रा में होते हैं पर इन संसाधनों को उत्पादक और विनिर्माण कार्यों में लगाने के लिये आवश्यक पूंजी और तकनीकी ज्ञान का अभाव रहता है जिसके लिये उन्नत देशों से प्राप्त विनियोगों पर निर्भर रहना पडता है। यद्यपि वैश्वीकरण आर उदारीकरण के दौर में कच्चा माल, उन्नत श्रम, तकनीक, मशीन और निर्मित माल का प्रवाह,सामान्य गति से हो सकता है पर इसका मूल्य चुकान के लिये विदेशी विनिमय की आवश्यकता पडती है। इन देशों की निर्यात की स्थिति पहले से ही कमजोर हेाती है, अतः निर्यात के द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित कर पाना सम्भव नहीं हेाता। यही विदेशी विनियोग की आवश्यकता उदित होती है। आयात और निर्यात के परिणाम स्वरूप नकारात्मक भुगतान शेष को सकारात्मक भुगतान शेष में परिवर्तित करने के लिये विदेशी विनियोग अपरिहार्य हो जाता है। पूंजी निर्माण की धीमी दर के कारण विनियोग की आवश्यकता देशी बाजार से पूरी करना सीाव नहीं होता अतः विदेशी विनियोग की आवश्यकता और औचित्य स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।

विदेशी विनियोक्ताओं को यह अधिकार है कि वे अपने द्वारा विनियोजित धन पर अर्जित आय, ब्याज या लाभांश (आवश्यक देय कर काटने के पश्चात) अपने गृह राष्ट्र को वापस ले जा सकते हैं जब तक कि निर्गमन में ऐसी कोई अन्य शर्त का उल्लेख न हो।

15.8 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश : आशय एवं उपयोगिता (Foreign Direct Investment : Meaning and Usefulness)

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश विदेशी व्यक्तियों, संस्थाओं, कंपनियों व सरकारों द्वारा किसी राष्ट्र में किया गया प्रत्यक्ष निवेश है। ऐसे निवेश में निवेशकर्ता राष्ट्र के विनियोगकर्ताओं की पहल प्रधान होती है। विदेशी विनियोगकर्ता किसी दूसरे राष्ट्र में विनियोग की संभावनाओं के आधार पर अपना धन, प्रोद्यौगिकी व तकनीक का विनियोग करते हैं । ऐसा निवेश उस राष्ट्र की सरकार की अनुमति व सहमति के आधार पर या इसके बगैर ही किया जा सकता है।

इसे प्रत्यक्ष निवेश इसलिये कहा जाता है कि विनियोगकर्ता दूसरे राष्ट्र की अनुनय, विनय के आधार पर नहीं स्वयं अपने विवेक सम्मत निर्णय के आधार पर निवेश का निर्णय करते हैं।

जब किसी देश के विनियोगकर्ता विदेश में स्थित उद्योग के परिचालन, कंपनी के संचालन और नियंत्रण का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं ताकि अर्जित आय व्याज या लाभांश के रूप में प्राप्त कर स्वदेश लाया जा सके तो यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिये प्रेरणा है और ऐसे निवेश को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश कहा जाता है। जिन राष्ट्रों में कच्चेमाल व सस्ते श्रम की उपलब्धता रहती है वहॉ कम लागत पर उपलब्ध हो जाने वाले कच्चे माल और श्रम से तकनीक और प्रोद्यौगिकी की सहायता से कम लागत पर माल बना कर ऊॅचें मूल्यों पर बेचकर लाभ कमाने की अपार संभावनायें हैं।

सरल शब्दों में किसी देश की कंपनी द्वारा दूसरे देश में किया गया निवेश प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहलाता है। इस प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ0डी0आई0) से निवेशकों को दूसरे देश की उस कंपनी में जिस में निवेश किया जाता है उसके प्रबन्धन में कुछ अधिकार मिल जाता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि किसी निवेश को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहे जाने के लिये कम से कम 10 प्रतिशत भाग खरीदना होता है और इसी के साथ मत व्यक्त करने का अधिकार भी प्राप्त करना होता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश भी दो प्रकार का होता है इनवार्ड तथा आउटवार्ड (अंतमुर्खी तथा वर्हिमुखी) । इनवार्ड एफ0डी0आई0 में विदेशी निवेशक भारत में कंपनी शुरूकर यहॉ के बाजार मे ंसीधे प्रवेश कर सकता है। वह किसी भारतीय कंपनी के साथ संयुक्त उपक्रम प्रारंभ कर सकता है अथवा पूर्ण स्वामित्ववाली सहायक कम्पनी (Wholly Owned Subcidiary Company) के रूप मे व्यापार आरम्भ कर सकता है।

इसके अतिरिक्त यह भी विकल्प है कि वह विदेशी कम्पनी के रूप में ही भारत में संपर्क, परियोजन या शाखा कार्यालय खोल लें।

प्रायः प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की प्रकृतिदीर्घ कालिक होती है उससे पूंजी निवेश के स्वयं ही तकनीक कौशल आदि का भी योगदान प्राप्त होता है।

अपनी क्लासिक परिभाषा मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एक राष्ट्र द्वारा किसी दूसरे राष्ट्र में किसी उत्पाद या संस्था के निर्माण या उत्पादन की क्रिया में लगे भौतिक निवेश का नाम है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश किसी विदेशी फर्म के अधिग्रहण की प्रक्रिया है। यह किसी सुविधा के निर्माण या संयुक्त उद्यम में निवेश अथवा प्रोद्यौगिकी का इनपुट प्रदान करने, बौद्धिक सम्पदा के लाइसेन्स के साथ स्थानीय कंपनियों के साथ रणनीतिक गठबन्धन के रूप मे हो सकता है।

रणनीतिक गठबंधन तीन प्रकार से आ सकता हैः क्षैतिज निवेश, कार्य क्षेत्र में सहभागिता तथा समूह का निर्माण । क्षैतिज निवेश में कंपनी अपनी ही क्रियाओं का विदेश में विस्तार करती है जो कार्य अपने देश मे ंसम्पन्न हो रहा हो उसी का यथावत दूसरे राष्ट्र में कर लिया जाता है। कार्य क्षेत्र में सहभागिता – इस स्थिति में कम्पनी दूसरे देशों मे ंचल रहे उत्पादन या विपणन के कार्य में सहयोगी बन जाती है जैसे टोयोटा एक कार निर्माता, रबर निर्माता या रबर के बागानों मे ंआधे से अधिक पूंजी निवेश कर देती है।

समूह निर्माण :– प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के इस स्वरूप में निवेश के माध्यम से विदेशेां में कोई भी व्यापार प्राप्त करने के समूह का निर्माण किया जाता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बाहर से बिल प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण श्रोत है।

विश्वबैंक के अनुसार प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कम आय वाली अर्थव्यवस्थाओं में निजी क्षेत्र के विस्तार के माध्यम से निर्धनता उन्मूलन का एक प्रभावी माध्यम है। वैश्वीकरण के युग में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हेतु एक अनुकूल वातावरण बना हुआ है। यह ठीक है कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में राजनीतिक जोखिम और विदेशी मुद्रा जोखिम दोनों व्याप्त हैं।

15.9 भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के मार्ग (Routes of Foreign Direct Investment in India)

भारत मे ंप्रत्यक्ष विदेशी निवेश के दो मार्ग पाये जाते हैं एक स्वयं भू मार्ग (Automatic Route) और दूसरा स्वीकृति एंव अनुमति पर आधारित मार्ग (Approued Route) ये दोनों ही मार्ग विदेशी विनियोग के नियमन की दृष्टि से बने हैं।

1 स्वयं चालित स्वयं भू मार्ग (Automatic Route) :– इस मार्ग से विदेशी निवेश एक निश्चित मात्रा में निश्चित शर्तों के साथ पूर्व निर्धारित क्षेत्रों में सरकार की अनुमति के बिना ही किया जा सकता है। सरकार क्षेत्र सीमा व शर्तों की समय समय पर घोषणा करती रहती है। इस मार्ग से विनियोग के लिये रिजर्व बैंक की भी पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं पडती । अनुमति आदि औपचारिकताएं न होने के कारण इस मार्ग से निवेश प्राप्त हो जाता है।

2 सरकारी मार्ग (Government Route) :– इस रूट से विनियोग आने में नियमानुसार संख्या तथा भारतीय रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति आवश्यक हेाती है। जिन गतिविधियों मे आटोमैटिक रूट स्वीकृत नहीं है उनमें वित मंत्रालय के आर्थिक क्रियाओं के विभाग के विदेशी विनियोग संवर्द्धन परिषद (Foregn Investment Promotion Board) के कार्यालय में आवेदन के माध्यम से विनियोग की अनुमति प्राप्त की जाती है। इस आवेदन के साथ कोई शुल्क या फीस नीं जमा करना पडती।

15.10 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कर भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव (Impact of FDI on Indian Economy)

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अर्थ व्यवस्था में बराबर कार्य करता हे। इसके माध्यम से प्राप्त धन, प्रोद्यौगिकी एवं प्रंध कौशल से भारत को अनेक लाभ प्राप्त हुये हैं :–

1. बुनियादी ढांचा अर्थात् आधारभूत अवसंरचना का निर्माण होता है जिसका अर्थ व्यवस्था के सभी अवयवों कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र को प्रत्यक्ष लाभ होता है।
2. रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है।
3. राष्ट्रीय आय सकल घरेलू उत्पाद GDP और प्रति व्यक्ति आय बढती है।
4. आर्थिक क्रिया में तेजी से चलती है । अतः सभी क्षेत्रों को लाभ होता है। सरकारी खजाने में करों के माध्यम से भारी धन जमा होता है।

इस सबके सामूहिक परिणाम से भारतीय अर्थयवस्था विश्व की छठी बडी अर्थव्यवस्था है और शीघ्र ही तीसरी बडी अर्थव्यवस्था बनने की ओर अग्रसर है। आज भारत विश्वभर के विनियोक्ताओं के लिये पसंदीदा स्थान बन गया है। उल्लेखनीय है कि पिछले 15 वर्षों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश राशि में 9 गुना वृद्धि हुयी है । प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की प्रवाह की वृद्धि दर 2016 में 23 प्रतिशत हो गयी है।

सरकार ने विनियोग के नियमों में उदार दृष्टिकोण अपना कर भारत में विनिर्मित तथा उत्पादित खाद्य उत्पादों में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अनुमति दे दी है। पशुपालन खुदरा व्यापार, नागर विमानन क्षेत्र, औषधीय क्षेत्र, प्रसारण सुविधायें, परिवहन सुविधायें, बैंक, बीमा, शिक्षा व चिकित्सा में प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था पर अनुकूल प्रभाव हुआ है।

15.11 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की स्थिति (Status of Foreign Direct Investment)

1 **विनियोग राशिवार विवरण** :– भारत सरकार की वैश्वीकरण के प्रति प्रतिबद्धता और उदार विनियोग नीति के कारण भारत विश्व के सभी राष्ट्रों की विनियोग की दृष्ट्रि से पहली पसंद है। भारत की प्रत्यक्ष विदेशी निवेष की स्थिति निम्नवत है :–

वर्ष 2015–16 में (अप्रैल –फरवरी) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश 51 बिलियन डॉलर के रिकॉर्ड स्तर पर पहुॅच गया। इससे पूर्व 2011–12 में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश 44.55 बिलियन डॉलर तथा 2014–15 में 44.29 बिलियन डॉलर रहा था।

अप्रैल 2000 से दिसम्बर 2015 की अवधि में कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्त र्प्रवाह 408.676 बिलियन डॉलर रहा है। इसी अवधि मे विदेशी प्रत्यक्ष निवेश ईक्विटी अन्तर्प्रवाह 277.954 बिलियन डॉलर रहा । अप्रैल 2000 से दिसम्बर 2015 की अवधि विश्व के शीर्ष पॉच देशों से होने वाली विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह निम्नलिखित प्रकार रहा (बिलियन डॉलर) –

मॉरिशस	93.660	34%
सिंगापुर	43.172	16%
यू0के0	22.714	8%
जापान	19.434	7%
यू0एस0ए0	17.263	6%

2 **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का क्षेत्रवार विवरण** :– वर्ष 2000 से 2015 तक अवधि में सर्वाधिक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्राप्त करने वाले शीर्ष पांच क्षेत्र निम्नवत थे।

1. सेवाएं (वित्तीय, बैंकिंग, बीमा, गैर–वित्तीय/व्यवसाय) आउटसोर्सिंग, अनुसंधान एवं विकास, कोरियर, तकनीकी परीक्षण एवं विश्लेषण
2. निर्माण, विकास (टाउनशिप, आवास बिल्ट–अप अधोरचना)
3. कम्प्यूटर हार्डवेयर–सॉफ्टवेयर
4. दूरसंचार
5. ऑटोमोबाइल उद्योग

अप्रैल 2000 – दिसम्बर 2015 की अवधि में सर्वाधिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश महाराष्ट्र, दादर नागर हवेली, दमन एवं दीव (78.334 बिलियन डॉलर : 29 प्रतिशत) क्षेत्र को प्राप्त हुआ है। दिल्ली–हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश के कुछ भागों को 60.056 बिलियन डॉलर (22 प्रतिशत) , तमिलनाडु एवं पाण्डिचेरी को 21.282 बिलियन डॉलर (8 प्रतिशत) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्राप्त हुआ है।

2011–12 से 2015–16 (नवम्बर) तक शीर्ष पॉच देशों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अन्तर्वाह का क्षेत्रवार ब्यौरा (प्रतिशत में)

क्षेत्र	सिंगापुर	मॉरिशस	नीदरलैण्ड्स	यू0एस0	जापान
सेवा क्षेत्र	18.6	18.9	15.4	19	20
कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर व हार्डवेयर	13.8	6.2	3.2	9.8	1
व्यापार	11.8	2.4	10	3.2	4.6
दूरसंचार	8.6	11.5	0.3	2	0.1
ड्रग व भेषज	6.6	1.0	0.6	2	3
विद्युत	5.0	6.1	2.7	4	0.3
निर्माण (अवसंरचना)	3.5	3.9	0.2	3.5	0.5
होटल पर्यटन	2.3	10.6	0.6	0.8	0.1
ऑटोमोबाइल	1.9	1.5	8.7	17.8	21
रसायन	NA	1.6	8.9	1.8	2.7
पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैस	0.7	1.1	8.4	0.1	1.2

स्त्रोत – डीआईपीपी

15.12 विदेशी विनियोग का नियमन (Regulation of Foreign Investments)

विदेशी विनियोग एक संवेदनशील विषय है । सदियों की दासता से मुक्ति के पश्चात भारत सरकार फूंक फूंक कर पॉव रखने वाली नीति पर चली और विदेशी विनियोग का उर्वाध गति से स्वागत करने के स्थान पर बहुत जरूरी होने पर ही विनियोग स्वीकार करने की नीति बनायी ।

यद्यपि 1991 में घोषित नयी आर्थिक नीति तथा उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में उदार विनियोग नीति स्वीकार की गयी जिसके तहत एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र को नकदी, माल तथा व्यक्तियों का अवधि आवागमन प्रारंम्भ हुआ। वैश्वीकरण की नीति से राष्ट्र की सीमाओं पर लगे कठोर प्रतिबन्ध समाप्त हो गये, विश्व बाउण्डरी विहीन हो गया और मुक्त अर्थ व्यवस्था की ओर कदम बढने लगे। फैरा (FERA) (Foreign Exchange Regulation Act) के स्थान पर FEMA (Foreign Exchange Management Act) विदेशी विनियाम प्रबंधन अधिनियम पारित हो गया और शर्तें कुछ उदार हो गयी।

क्षेत्र जिनमें विदेशी विनियोग पूरी तरह प्रतिबाधित है :– निम्नलिखित क्षेत्रों में विदेशी विनियोग पूरी तरह प्रतिबंधित है :–

1. लाटरी व्यवसाय
2. चिटफंड
3. जुआ और बाजी का व्यापार
4. निधि कम्पनियॉ
5. हस्तातरणशील विकास अधिकार
6. रियलइस्टेट व्यापार
7. सिगार और सिगरेट निर्माण वाले उद्योग तथा तम्बाकू निर्माण वाले उद्योग
8. निजी क्षेत्र के लिये प्रतिबंधित क्षेत्र जैसे आणविक ऊर्जा, रेलवे आदि । केवल पूंजी निवेश नहीं इन क्षेत्रों में फ्रेजाइजी या ट्रेडमार्क ब्राण्ड आदि के उपयोग की अनुमति भी अनुमन्य नहीं है।

विदेशी विनियोग हेतु स्वीकृत प्रपत्र :– (Instruments Permitted for Foreign Investment) :– भारतीय कंपनी विदेशी विनियोग निम्न प्रकार के प्रपत्रों के माध्यम से प्राप्त कर सकती है 5–

1. कंपनी अधिकनियम 2013 के प्रावधानों के अनुसार निर्गत समता अंश
2. परिवर्तनीय पूर्वाधिकारी अंश
3. परिवर्तनीय ऋण पत्र
4. के0 अधिनियम 2013 के प्रावधानों के अंतर्गत निर्गयति अंशदत्त अंश ।

सामूहिक निवेश पर नियंत्रण :– विदेशी निवेश को काला धन सफेद धन में बदलने (मनी लौड्रिग) के लिये प्रयोग किये जाने की शिकायतें प्राप्त होने के पश्चात सरकार ने 1 जनवरी 2014 को सामूहिक निवेश योजना फंड में समस्त निवेश नकदी के स्थान पर बैंक के माध्यम से करना अनिवार्य कर दिया है।

सेबी ने सामूहिक निवेश नियमावली में यह संशोधन निवेश की अवैध गतिविधियॉ को नियंत्रित करने के लिये किया है।

15.13 विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम (FEMA) (Foreign Exchange Management Act)

भारत में विदेशी विनियम नियमन अधिनियम 1973 (FEMA) (Foreign Exchange Management Act) द्वारा विदेशी विनियोग का नियंत्रण एवं नियमन किया जाता था। इस अधिनियम के प्रावधान अपेक्षाकृत कठोर थे । अतः उदारीकरण के दौर में कुछ शिथिल प्रावधानों से मुक्त विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम बनाया गया जिसने 1 जून 2000 से कार्य करना प्रारंभ कर दिया।

फेरा (FERA) और (FEMA)फेमा में मुख्य अंतर

अंतर का आधार	फेमा (FEMA)	फेरा (FERA)
उद्देश्य	फेमा का उद्देश्य विदेशी व्यापार वं भुगतानों को सुविधाजनक और सुगम बनाना है।	फेरा का प्रमुख उद्देश्य विदेशी मुद्राओं का संरक्षण करना था।
उदारता का भाव	फेमा अधिक उदार एवं पारदर्शी है।	फेरा अपेक्षाकृत कठोर तथा जटिल था।

विदेशी विनिमय की उपलब्धता	विदेश यात्रा तथा अन्य उद्देश्यों के लिये विदेशी मुद्रा का आहरण सरल हो गया है।	ये प्रावधान पहले कठोर और जटिलता ।
उल्लंघन पर सजा	फेमा का उल्लंघन करने वालों के मामलों का निपटान सिविल अपराधों की तरह किया जायगा अपराधी को केवल अर्थदण्ड भुगतान होना सजा नहीं।	उल्लंघनकर्ता को जेल तथा अर्थदंड की सजा का प्रावधान था।
अर्थदण्ड की सीमा	फेमा की दशा में प्रावधानों का उल्लंघन करने पर दंड की राशि संबद्ध राशि के तीन गुना तक सीमित है।	फेरा मे यह अर्थ दंड संबद्ध राशि के पांच गुना तक हो सकता है।
अपराध सिद्ध करने का दायित्व	फेमा में अपराध सिद्ध करने का दायित्व प्रवर्तन एजेन्सी का होता है।	फेरा मे अपराध सिद्ध करने का दायित्व स्वयं अभियुक्त का होता था।

फेमा का उद्योग जगत ने स्वागत किया है। व्यापारिक अथवा अन्य किसी उद्देश्य जैसे सेमीनार कान्फ्रेन्स मे जाने के लिये 25 हजार डालर तक की राशि रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना ही भेजी जा सकती है। इसके अतिरिक्त पांच हजार डालर तक की राशि किसी को उपहार में दी जा सकती है।

15.14 विदेशी निवेश नीति का उदारीकरण (Liberalisation of Foreign Investiment Policy)

1 विदेशी विनियोग के दो पक्ष होते हैं एक विदेशियों द्वारा हमारे देश मे निवेश तथा दूसरे भारतीयों द्वारा विदेशों में निवेश। हर्ष का विषय है कि भारतवासियों द्वारा विश्व के अन्य राष्ट्रों में भी पूंजी निवेश किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय मंदी और व्याज दर मे कटौती के बाद विदेशों से आने वाले निवेश में वृद्धि होना स्वाभाविक है। विदेशी मुद्रा के अन्तर्प्रवाह के दबाव का सामना करने की इच्छा से रिजर्व बैंक ने भारतीय नागरिकों, नियमित इकाइयों व म्यूचुअल फण्डों को विदेशों में निवेश करने के प्रावधानों को बहुत उदार बना दिया है। विदेशों में निवेश की सीमा 1 लाख डालर से बढा कर 2 लाख कर दी गयी है। यही नहीं म्यूचुअल फण्डस को विदेशी अंश बाजार मे 7 अरब डालर तक निवेश की अनुमति प्रदान कर दी गयी है।

2 **सीमा व रूट में परिवर्तन** :– इसके अतिरिक्त विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की सीमाओं व रूट में भी परिवर्तन किया गया है। यह सुधार देश मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के नियमों को आसान बनाने और भारत को विदेशी निवेशकों के लिए एक आकर्षक गंतव्य बनाने का मार्ग प्रशस्त करेंगें। इन परिवर्तनों का विवरण निम्नानुसार है :–

1. **भारत में उत्पादित खाद्य सामग्री को प्रोत्साहन देने के लिए व्यापक बदलाव** :– खाद्य निर्मित या भारत में उत्पादित उत्पादों के संबंध मे व्यापार के क्षेत्र मे सरकारी अनुमोदन के तहत ई–कॉमर्स सहित 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अनुमति देने का निर्णय लिया गया है।
2. **रक्षा क्षेत्र में 100 प्रतिशत तक विदेशी निवेश** :– वर्तमान मे एफडीआई व्यवस्था के अंतर्गत स्वचालित मार्ग से एक कंपनी को इक्विटी में 49 प्रतिशत भागीदारी की अनुमति है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश मे 49 प्रतिशत से अधिक की भागीदारी की अनुमति सरकारी अनुमोदन के माध्यम से प्राप्त होगी और यह निर्णय प्रति मामले के अनुसार होगा। इसके साथ ही अत्याधुनिक प्रोद्यौगिकी तक पहुंच की शर्त को हटा दिया गया है। इस संबंध में रक्षा क्षेत्र मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति मे अन्य बातों के साथ साथ निम्नलिखित बदलाव किए गए हैं ।

कई विदेशी कम्पनियों का अधिग्रहण कर अपनी आक्रामक मंशा जता चुकी भरतीय कम्पनियों को आरबीआई ने अब और छूट प्रदान कर दी है । इसके तहत उन्हें विदेश स्थित संयुकत उपक्रमों या सौ प्रतिशत हिस्सेदारी वाली सब्सिडियरियों मे अपनी नेटवर्थ का 400 प्रतिशत तक ऑटोमैटिक रूट के जरिए निवेश करने की अनुमति दी गई है, भारत में पंजीकृत साझीदारी कम्पनियॉ भी इस नियम से फायदा उठा सकती है। इसके अलावा विदेशी शेयर बाजारों मे सूचीबद्ध भारतीय कम्पनियों की हिस्सेदारी बढाने इरादे से सरकार ने उन्हें अपनी नेटवर्थ का 50 प्रतिशत तक पोर्टफोलियों निवेश करने की अनुमति प्रदान की है अभी तक यह सीमा केवल 35 प्रतिशत ही थी।

सरकारी स्वचालित मार्ग से 49 प्रतिशत से अधिक विदेशी निवेश को खासकर उन मामलों मे जहॉ देश की आधुनिक तकनीक तक पहुंच हो और अन्य कारणों पर भी अनुमति प्रदान की गई है। अत्याधुनिक प्रोद्यौगिकी तक पहुंच होने की शर्त को समाप्त कर दिया गया है।

शस्त्र अधिनियम, 1959 के अनुसार रक्षा क्षेत्र के लिए तय की गई प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सीमा को छोटे हथियार और गोलाबारूद के निर्माण के लिए लागू किया गया है।

3. **प्रसारण कैरिज सेवाओं मे प्रवेश मार्गों की समीक्षा** :– प्रसारण कैरिज सेवाओं मे विदेश नीति में भी संसोधन किया गया है । नए क्षेत्रीय केन्द्र और प्रवेश द्वारा इस प्रकार है :–

क्षेत्र / गतिविधि	नयी सीमा और मार्ग
1. टेलीपोर्ट्स (जोडने वाले केन्द्रों (हब) की स्थापना / टेलीपोटर्स), 2. डायरेक्ट टू होम सेवा (डीटीएच) 3. राष्ट्रीय या राज्य या जिला स्तर पर सक्रिय केबल नेटवर्क (मल्टी सिस्टम ऑपरेटरों (एमएसओ) और नेटवर्क के आधुनिकीकरण की दिशा में डिजिटलीकरण और संबोधनीयता।) 4. मोबाइल टीवी 5. स्काई ब्रॉडकास्टिंग सर्विस (एचआईटीएस)	

केबल नेटवर्क (अन्य एमएसओ और लोकल केबल संचालक (एलसीओ) आधुनिकीकरण के लिए नेटवर्क के डिजिटलीकरण और संबोधनीयता को नहीं अपना रहे हैं)	
एक कम्पनी द्वारा क्षेत्रीय मंत्रालय से बिना लाईसंस और अनुमति के 49 प्रतिशत विदेशी निवेश का प्रयोग, स्वामित्व ढाचें में बदलाव या मौजूदा नए विदेशी निवेश की हिस्सेदारी का हस्तांतरण निवेशक द्वारा में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप, एफर्आपीबी की मंजूरी की आवश्यकता पडेगी।	

4. **औषधि** :– क्षेत्र में मौजूदा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति के तहत ब्राउनफील्ड फार्मा मे सरकारी अनुमति के अंतर्गत स्वचालित मार्ग से 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और ग्रीनफील्ड फार्मा में स्वचालित मार्ग के तहत 100 प्रतिशत एफडीआई का प्रावधान है। इस क्षेत्र मे विकास को बढावा देने के उद्देश्य से ब्राउनफील्ड फार्मास्यूटिकल्स मे स्वचालित मार्ग के तहत 74 प्रतिशत एफडीआई की अनुमति और सरकारी अनुमोदन के तहत 74 प्रतिशत से अधिक के लिए एफडीआई जारी रहेगा।
5. **नागरिक उड्डयन क्षेत्र** :– (1) मौजूदा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति के तहत हवाई अड्डों की अनुमति पर स्वचालित मार्ग से ग्रीनफील्ड परियोजनाओं मे 100 प्रतिशत तथा ब्राउनफील्ड परियोजनाओं मे स्वचालित मार्ग से 74 प्रतिशत एफडीआई की अनुमति है। ब्राउनफील्ड परियोजनाओं मे 74 प्रतिशत से अधिक एफडीआई सरकारी अनुमोदन के माध्यम से दी जाएगी। (2) मौजूदा हवाई अड्डों के आधुनिकीकरण और एक उच्च मानक स्थापित करने की दृष्टि से ओर मौजूदा हवाई अड्डों पर दबाव कम करने के लिए ब्राउनफील्ड हवाई परियोजनाओं मे स्वचालित मार्ग से 100 प्रतिशत एफडीआई को अनुमति देने का फैसला किया गया है। (3) वर्तमान एफडीआई नीति के अनुसार अनुसूचित वायु परिवहन सेवा/घरेलू अनुसूचित यात्री वायुसेवा और क्षेत्रीय वायु परिवहन सेवा मे स्वचालित मार्ग से 49 प्रतिशत तक विदेशी निवेश को अनुमति प्राप्त है। अब इसे बढाकर 100 प्रतिशत करने का निर्णय लिया गया है। जिसमें 49 प्रतिशत एफडीआई स्वचालित मार्ग से और 49 प्रतिशत से अधिक एफडीआई सरकार अनुमति के माध्यम से दी जाएगी। अनिवासी भारतीयों के लिए 100 प्रतिशत एफडीआई स्वचालित मार्ग से देने की अनुमति जारी रहेगी। हालांकि विदेशी एयरलाइन को मौजूदा नीति में निर्धारित शर्तों के आधार पर 49 प्रतिशत पूंजी का निवेश भारतीय कंपनियॉ अनुसूचित और ऑपरेटिंग गैर अनुसूचित हवाई परिवहन सेवाओं मे करने की अनुमति जारी रहेगी।
6. **निजी सुरक्षा एंजेसियां** :– सरकार अनुमोदन से मौजूदा नीति के तहत निजी सुरक्षा एंजेसियों मे 49 प्रतिशत एफडीआई की अनुमति है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 49 प्रतिशत तक स्वचालित मार्ग से अनुमति प्राप्त है। सरकार की मंजूरी के आधार पर इस क्षेत्र मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 49 प्रतिशत से अधिक और 74 प्रतिशत तक की अनुमति दी जाएगी।
7. **शाखा कार्यालय, संपर्क कार्यालय या परियोजना कार्यालय की स्थापना** :– देश में शाखा कार्यालय संपर्क कार्यालय या परियोजना कार्यालय या भारत

में किसी भी अन्य जगह में व्यापार की स्थापना के लिए आवेदक के रक्षा, दूरसंचार, निजी सुरक्षा या सूचना एवं प्रसारण जैसे मुख्य व्यवसाय से जुडे होन पर रिजर्व बैंक या पृथक सुरक्षा अनुमति के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी जहां आवेदक एफआईपीबी की अनुमति और संबंधित मंत्रालय द्वारा मंजूरी या लाइसेंस पहले ही प्रदान की जा चुकी है।

8. **पशुपालन** :– प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति 2016 के अनुसार, पशुपालन (कुत्तों के प्रजनन सहित), मछली पालन, जलीय कृषि और मधुमक्खी पालन में एफडीआई नियंत्रित परिस्थितियों में स्वचालित मार्ग से 100 प्रतिशत की अनुमति दी जाती है। इन गतिविधियों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए नियंत्रित परिस्थितियों की इस आवश्यकता को हटाने का फैसला किया गया है।

9. **एकल ब्रांड खुदरा व्यापार** :– स्थानीय सोर्सिंग मानदंडों पर तीन साल के लिए छूट देने और अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी उत्पादों का कार्य करने वाली एकल ब्रांड खुदरा व्यापार संस्थाओं को और पांच साल के लिए ढीली सोर्सिंग व्यवस्था प्रदान करने का निर्णय लिया गया है। आशा है प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति में किए गए संशोधनों से एफडीआई नीति को उदार और सरल बनाया जा सकेगा। जिससे देश में व्यापार करना आसान होगा और बडी मात्रा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश होगा। इसके परणिामस्वरूप देश में आय, रोजगार और निवेश को बढावा मिलेगा। इन परिवर्तनों के कारण भारत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के मामले में विश्व की सबसे बडी और सबसे उदार अर्थ व्यवस्था बन जायगा जिसके परिणाम स्वरूप भारत विश्व के अनेक राष्ट्रों के निवेशकों के लिये प्रथम गंतव्य सिद्ध हो सकेगा। एफडीआई रिपोर्ट 2017 के अनुसार भारत इस दृष्टि से चीन ओर अमरीका से भी आगे है।

3 **लिमिटेड लाइबिलिटी पार्टनर शिप फर्म में विदेशी निवेश की अनुमति** :– देश मे विदेशी निवेश को बढावा देने के लिए सरकार ने अब सीमित दायित्व वाली साझेदारी फर्मों (Limited Liability Partnership-LLP Firms) में भी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) को अनुमति प्रदान करने का फैसला मई 2011 में किया है । शुरू में ऐसे खुले क्षेत्रों में कार्यरत फर्मों में ही विदेशी निवेश की अनुमति दी जाएगी, जिनमें विदेशी निवेश की निगरानी की आवश्यकता नहीं होती कृषि, बागान, प्रिन्ट मीडिया व रीयल एस्टेट आदि क्षेत्रों मे कार्यरत LLPs में विदेशी निवेश की अनुमति नहीं होगी । इस आशय का फैसला आर्थिक मामलों पर मंत्रीमण्डलीय समिति की 11 मई, 2011 की बैठक में किया गया । एलएलपी मे एफडीआई लाने के लिए विदेशी निवेश प्रमोशन बोड (FIPB) की मंजूरी आवश्यक होगी।

ज्ञातव्य है क एलएलपी एक नई तरह की ऐसी फर्म है, इसमें पार्टनरशिप फर्म और कॉरपोरेट बॉडी, दोनों की ही विशेषताएं होती है । एलएलपी एक्ट 2008 को अप्रैल 2009 मे अधिसूचित किया गया था सरकारी ऑकडों के अनुसार 2 मई, 2011 तक 4679 एलएलपी फर्में कम्पनी मामलों के मंत्रालय के साथ पंजीकृत हो चुकी है।

4 **अनिवासी भारतीय एवं विदेशी विनियोग (Non Resident Indian and Foregin Investment)** :– अनिवासी भारतीय स्वभाव से तो भारतीय है भले ही

विदेश में रह रहा हो। वह स्टाक एक्सचेंज से अंश खरीदने के लिये अधिकृत है वशर्ते वह पोटफोलियो इन्वेस्टर न हो। पर उसे अंश पंजीकृत ब्रोकर के माध्यम से प्राप्त करना चाहिये। साथ ही यह प्रतिबंध है कि अनिवासी भारतीय तभी स्टाक एक्सेजेन्ज से अंश क्रय कर सकता है जब उसके पास पहले से ही विनियोग है और सेबी के प्रावधानों के अनुरूप वह कंपनी पर नियंत्रण रखता है।

इस उद्देश्य के लिये अनिवासी भारतीय को इसी निमित्त निर्दिष्ट बैंक की शाखा के माध्यम से व्यवहार करना हेगा। यह आवश्यक है कि यह बैंक पोर्टफोलयों इन्वेस्टमेण्ट का काम करती है।

कोई एक अनिवासी भातरीय किसी भातरीय कंपनी में प्रदत्त अंश पूंजी के 5 प्रतिशत अंश क्रय कर सकता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि सारे अनिवासी भारतीय सामूहिक रूप से 10 प्रतिशत से अधिक अंश क्रय नहीं कर सकते यद्यपि कंपनी के निवेशक मण्डल को यह सीमा 24 प्रतिशत तक बढाने का अधिकार है पर इसकी पुष्टि सामान्य रूप में होना आवश्यक है। निदेशक मण्डल द्वारा एक प्रस्ताव द्वारा तथा आम सभी में विशेष प्रस्ताव द्वारा यह स्वीकृति प्रदान की जा सकती है।

5 विदेशी उद्यम पूंजी अथवा साहस पूंजी विनियोग (Foreign Venture Capital Investiment) :– विदेशी उद्यम पूंजी विनियोक्ता का सेबी में पंजीकृत होना अनिवार्य है ऐसा विनियोक्ता निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्यरत भारतीय कंपनी की प्रतिमूतियों में विनियोग कर सकता है :–

1. बयोटेक्नोंलोंजी
2. इन्फोरमेशन टेक्नोलोजी से संबंधित हार्डवेयर या सोफटवेयर विकास में कार्यरत
3. नैनोटेक्नोलोंजी
4. बीज अनुसंधान एंव शोध विकास
5. दवाइयों के क्षेत्र में नये रसायन की खोज एवं विकास में लगे उद्यम
6. डेयरी उद्योग
7. मुर्गीपालन उद्योग
8. जैविक ईधन का उत्पादन
9. होटल तथा 3 हजार से अधिक की क्षमता वाले कन्वेन्शन हाल
10. अवसंरचना में विकास उद्योग

15.15 विदेशी विनियोग की भावी संभावनायें (Prospects of Foreign Invetment)

भारत मे आर्थिक सुधारों के परिणाम स्वरूप विदेशी विनियोग के लिए अनुकूल वातावरण बना है। दूसरे भारत की अंतर्राष्ट्रीय साख बहुत बढी है। विश्व के अनेक राष्ट्रों के साथ व्यापार व विनियोग के समझौते हुये है। भारत एक आर्थिक शक्ति के रूप में स्थापित हो रहा है। शीघ्र ही भारत विश व की तीसरी आर्थिक महाशक्ति बनने जा रहा है । इस सबके प्रकाश में भारत में विदेशी विनियोग का भविष्य उज्जवल है। विश्व के सभी समुन्नत राष्ट्र भारत का आर्थिक विनियेाग की दृष्टि से सुरक्षित स्थान मान रहे हैं और तकनीक प्रोद्यौगिकी एंव पूंजी निवेश के लिये नये नये प्रकल्प लेकर अनुबंध हो रहे हैं।

भारत स्वयं भी विश्व के बाजारों में अपनी धाक जमा रहा है। यहॉ बहुराष्ट्रीय निगम बनते जा रहे हैं ।यह एक सुखद संयोग है कि भारत की विदेश नीति और

आर्थिक नीति के गठजोड से विश्व में भारत की छवि सुधर गयी है। ऐसे में विदेशी विनियोग का बडा मोहक और आकर्षक बहुरंगी चित्र उभर रहा है । संभावनायें अपार है भविष्य सुखद है और राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित । यह राष्ट्र की सुचितित आर्थिक नीति का ही परिणाम है।

15.16 सारांश

कच्चा माल, श्रम, पूंजी, तकनीक व प्रोद्योगिकी किसी भी उद्यमी की पूर्व आवश्यकताएं हैं। अगर ये तत्व उद्यमी के पास निजी स्तर पर उपलब्ध नहीं है तो इन्हें बाहर से जुटाया जाता है। इन तत्वों में सबसे महत्वपूर्ण तत्व है पूंजी । क्योंकि धन के रूप में विद्यमान पूंजी में अन्य साधनों को क्रय करने की सामर्थ्य होती है।

पूंजी की उपलब्धता राष्ट्र की सीमाओं के अंदर से भी हो जाती है और आवश्यक होने पर देश के बाहर से भी जुटायी जा सकती है। राष्ट्र की सीमाओं से बाहर किया गया निवेश विदेशी विनियोग कहलाता है।

विदेशी विनियोग में विनियोगकर्ता राष्ट्र को व्याज या लाभांश के रूप में आय होती है तो जिस राष्ट्र में विनियोग किया जाता है वहां की आर्थिक क्रियाये इस पूंजी निवेश से जीवन्त हो उठती है। विदेशी विनियोग दोनों ही पक्षकारों के लिये हितकारी है।

विदेशी विनियोग का एक प्रकार प्रत्यक्ष विदेशी विनियेाग होता है जिसमें विनियोगकर्ता व्यक्ति संस्थायें व सरकार अपनी पहल पर दूसरे राष्ट्र मे पूंजी निवेश करते हैं। यह दो प्रकार से होता है स्वतः आटोमेटिक जिसमें सरकारी अनुमति और सहमति की आवश्यकता नही होती दूसरा सरकार और रिजर्व बैंक की अनुमति से किया गया निवेश।

विदेशी निवेश को बेलगाम छोडना देश के लिए संकट का कारण बन सकता है। अतः विदेशी विनियोग का नियमन अति आवश्यक है । इस हेतु फेरा के स्थान पर फेमा पारित किया गया है जो विदेशी विनियोग की दशा औ र दिशा को नियंत्रित और नियमित रखता है।

15.17 शब्दावली

विदेशी विनियोग : एक राष्ट्र के व्यक्तियों, संस्थाओं, तथा सरकार द्वारा दूसरे राष्ट्र में किया गया पूंजी निवेश।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश : जिस राष्ट्र में विनियोग किया जाता है उस राष्ट्र की सरकार की अनुमति सहमति के आधार पर अथवा बिल अनुमति के ही किया गया पूंजी निवेश

अंतर्प्रवाह : दूसरे राष्ट्र से आने वाले पूंजी निवेश का अनवरत क्रम।

वहिर्प्रवाह : दूसरे राष्ट्र को जाने वाले पूंजी निवेश का अनवरत क्रम।

विदेशी विनिमय नियमन अथवा विदेशी मुद्रा नियमन : विदेशों से आने अथवा विदेशों को जाने वाले पूंजी निवेश को अनुशासित बनाये रखने की व्यवस्था।

विदेशी मुद्रा प्रंधन अधिनियम (फेंमा) : विदेशी मुद्रा प्रवाह को नियमित व नियंत्रित करने के वैधानिक प्रावधानों से युक्त अधिनियम ।

15.18 बोध प्रश्न

बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य :–

1. विनियोग दो प्रकार का होता है (सत्य/असत्य)
2. किसी राष्ट्र की सरकार ही दूसरे राष्ट्रों में विनियोग कर सकती है। व्यक्ति नहीं (सत्य/असत्य)
3. विदेशी विनियोग दो प्रकार का हो सकता है अंतः प्रवाही और वहिर्प्रवाही (सत्य/असत्य)
4. विदेशी विनियोग से केवल विनियोगकर्ता राष्ट्र को लाभ होता है। (सत्य/असत्य)
5. विदेशी विनियोग एक निरापद और निर्दोष वित व्यवस्था है। (सत्य/असत्य)
6. विदेशी विनियोग से मेजवान राष्ट्र में पूंजी निर्माण की दर बढ जाती है। (सत्य/असत्य)
7. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हेतु मेूजवान राष्ट्र की अनुमति की कोई आवश्यकता नहीं होती (सत्य/असत्य)
8. प्रायः विदेशी निवेश की प्रकृति दीर्घकालिक होती हे। (सत्य/असत्य)
9. भारत में रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता लागू है।
10. अब रक्षा क्षेत्र में विदेशी निवेश की सीमा 100 प्रतिशत हो गयी है।

15.19 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. असत्य
6. सत्य
7. असत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. सत्य

15.20 स्वपरख प्रश्न

1. विदेशी विनियोग से आप क्या समझते है ?
2. विदेशी विनियोग से उत्पन्न लाभ/हानि का विवेचन कीजिय?
3. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश क्या है ?
4. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के मार्गों (रूट्स) का वर्णन कीजिये ?
5. विदेशी विनियोग के नियंत्रक की क्या आवश्यकता है ?
6. विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए ?
7. भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की भावी संभावनाओं पर एक संक्षिप्त लेख लिखिये ?

15.21 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.

2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई –16 विदेशी व्यापार एवं आर्थिक प्रगति (Foreign Trade and Economic Growth)

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 विदेशी व्यापार : आशय एवं अवधारणा
16.3 विदेशी व्यापार की विशेषतायें
16.4 विदेशी व्यापार का क्षेत्र
16.5 विदेशी व्यापार के लाभ
16.6 विदेशी व्यापार की संभावित हानियॉ
16.7 विदेशी व्यापार की विशेष समस्यायें व जटिलतायें
16.8 आयात की प्रक्रिया
16.9 निर्यात की प्रक्रिया
16.10 विदेशी व्यापार (विकास एवं नियमन) अधिनियम
16.11 भारत के विदेशी व्यापार का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
16.12 नवीन विदेशी व्यापार नीति की घोषणा
16.13 विदेशी व्यापार का सामाजिक आर्थिक विकास में योगदान
16.14 भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका
16.15 आयात निर्यात की मदें
16.16 विश्व व्यापार संगठन और भारत
16.17 विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना
16.18 सारांश
16.19 शब्दावली
16.20 बोध प्रश्न
16.21 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.22 स्वपरख प्रश्न
16.23 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- विदेशी व्यापार की अवधारणा का ज्ञान प्राप्त कर सके।
- विदेशी व्यापार की आवश्यकता का वर्णन कर सके।
- आयात व निर्यात की प्रमुख मदों का वर्णन कर सके।
- द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय समझौतो का वर्णन कर सके।
- विदेशी व्यापार नियमन प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर सके।
- विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के उद्देश्य एवं विदेशी व्यापार नियमन में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका का मूल्यांकन कर सके।
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कें मतभेदों का वर्णन कर सके।

16.1 प्रस्तावना

प्रकृति ने अपने सभी उपहार किसी क्षेत्र विशेष या राष्ट्र विशेष को नहीं सौंपे हैं वरन सभी राष्ट्रों को वितरित किये हैं। किसी क्षेत्र को कुछ दिया है तो

किसी क्षेत्र को कुछ ताकि एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र पर निर्भर रहे। यही परस्परता विश्व के सभी राष्ट्रों को दसरे राष्ट्रों से जोडती है।

एक राष्ट्र के पास जो भी कुछ आवश्यकता से अधिक अति प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है उसे दूसरे राष्ट्रों को बेच कर और वहॉ से अपनी आवश्यकता की वस्तु मंगा कर काम चलता है। विश्व व्यापार के औचित्य का यही एक आधार है।

कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से वस्तुओं व सेवाओं का आयात करता है तो कोई दूसरा राष्ट्र अपने पास उपलब्ध विक्रय योग्य आधिक्य का दूसरे राष्ट्रों को निर्यात करता है। आयात निर्यात का यह क्रम और कर्म विदेशी व्यापार कहलाता है। एक राष्ट्र आयात करता है तो कोई राष्ट्र निर्यात करता है। आयात के बिना निर्यात तथा निर्यात के बिना आयात संभव नहीं है।

विदेशी व्यापार की आयात और निर्यात की इन गतिविधियों को नियमित और नियंत्रित किये जाने की आवश्यकता है। वैज्ञानिक अनुसंधान तीव्र गति के यातायात तथा संवाद संप्रेषण की त्वरित सुविधा के साधनों की उपलब्धता तथा उदारीकरण वैश्वीकरण के कारण दुनिया बहुत छोटी हो गयी है। विश्व व्यापार को नियमित करने की दृष्टि से विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की गयी है। भारत इस संगठन का सदस्य है तथा विश्व व्यापार की नीतियों की अनुपालन करते हुये आर्थिक क्रियाओं की सक्रियता के माध्यम से अर्थव्यवस्था को सुदृढ बना रहा है।

16.2 विदेशी व्यापार : आशय एवं अवधारणा (Meaning and Concept of Foreign Trade)

व्यापार वस्तुओं व सेवाओं के क्रय विक्रय की प्रक्रिया है । जब व्यापार किसी राष्ट्र की सीमाओं के अन्दर ही किया जाता है अर्थात क्रेता और विक्रेता एक ही राष्ट्र के निवासी होते हैं तो इसे घरेलू या देशी व्यापार कहा जाता है। ।

यदि व्यापार दो भिन्न राष्ट्रों के नागरिकों के मध्य सम्पन्न हो तो ऐसा व्यापार विदेशी व्यापार कहलाता है। विदेशी व्यापार में क्रेता किसी एक राष्ट्र का नागरिक होता है और विक्रेता किसी दूसरे राष्ट्र का नागरिक होता है। क्रेता विक्रेता व्यक्ति के स्थान पर संस्थाएं भी हो सकती है।

विदेशी व्यापार दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच सम्पन्न होता है अतः इसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी कहा जाता है।

विदेशी व्यापार के दो पक्ष होते है आयात तथा निर्यात । जब कोई राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वस्तुओं व सेवाओं को दूसरे राष्ट्र से मंगाता है तो इसे आयात (Import) कहा जाता है। सीमा शुल्क अधिनियम 1962 के अनुसार आयात का आशय भारत के बाहर किसी स्थान से भारत में माल लाना है। आयात का उद्देश्य प्रायः व्यापारिक होता है। किसी वसतु को ज्यों का त्यों अथवा रूप परिवर्तित कर उसमें उपयोगिता का सृजन कर विक्रय योग्य बनाने के लिये लायी गयी वस्तु आयातित वस्तु (Imported Goods) कहलाती है। इसके विपरीत जब कोई राष्ट्र अपने पास उपलबध वसतुओं व सेवाओं को दूसरे राष्ट्र को उपलब्ध (Export) कराता है अर्थात बेचता है तो इसे निर्यात कहा जाता है।

अर्थशास्त्री स्टीफैन्सन के अनुसार,"विदेशी व्यापार से आशय उस व्यापार से है जो देशों की सीमाओं के बाहर किया जाता है। विदेशी व्यापार का आकार आयात निर्यात दोनों को मिला कर तय होता है।

यदि आयातकर्ता व निर्यातकर्ता राष्ट्रों की सीमायें जुडी हो और दोनों के बीच रेल व सडक यातायात सुविध हो तो विदेशी व्यापार रेल परिवहन अथाव सडक परिवहन द्वारा भी संभव हो सकता है यदि दोनों राष्ट्रों के बीच थल संपर्क न हो तो विदेशी व्यापार नभ यातायात या समुद्री परिवहन जल यातायात द्वारा संभव होता है।

16.3 विदेशी व्यापार की प्रमुख विशेषतायें (Salient Features of Foreign Trade)

विदेशी व्यापार की प्रमुख विशेषतायें निम्नवत है –

1 **सरकारी अनुमति एंव देखरेख (Government Permission and Supervision)** :– विदेशी व्यापार अर्थात आयात निर्यात हेतु सरकारी अनुमति आश्यक है बिना सरकारी अनुमति के किया गया व्यापार अवैध होता है और इसे स्मगलिंग (तस्करी) की संज्ञा दी जाती हैं विदेशी व्यापार सरकारी देखरेख में सरकारी नियम अनुशासन के आधीन सम्पन्न होता हे। विदेशी व्यापार लाइसंन्स (अनुज्ञा पत्र) के द्वारा अथवा बिना लाइसेन्स (अनुज्ञा पत्र) के भी सम्पन्न हो सकता है पर यह सब सरकारी नीति पर निर्भर करता है।

2 **वस्तुओं का आदान प्रदान (Exchange of Goods)** :– विदेशी व्यापार में क्रय विक्रय (आयात निर्यात) होता है अतः इसमें वस्तुओं का आदान प्रदान होता है और आयातकर्ता द्वारा निर्यातकर्ता को मूल्य का भुगतान किया जाता है।

3 विदेशी मुद्रा का प्रयोग **(Use of Foregin Currency)** :– एक राष्ट्र की मुद्रा उस राष्ट्र की सीमाओं तक ही विधिमान्य होती है । अतः विदेशों से आयात किये गये माल का भुगतान विदेशी मुद्रा में किया जाता है। यह भुगतान विदेशी अर्जित विनियम कोष से किया जाता है अथवा फिर निर्यात द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा से किया जाता है तभी यह कहा जाता है निर्यात आयात का भुगतान करते है

4 **भाषा भेद (Difference of language)** :– यह आवश्यक नहीं हेाता है कि आयात व निर्यात करने वाले दोनों राष्ट्रों में एक जैसी भाषा का प्रयोग होता है। भिन्न भाषाएं होने के कारण भाषा भेद और भाषा भेद के कारण भाव सम्प्रेषण कठिन हो जाता है।

5 **विदेशी व्यापार में जोखिम की सघन मात्रा (Intense Risk in Foreign Trade)** :– विदेशी व्यापार मे जोखिम की मात्रा अधिक हेाती है। विनिमय दरों में उतार चढाव वायु यातायात व समुद्री यातायात में यात्रा संबंधी जोखिम, माल की धोखाधडी की जोखिम हो सकती है।

6 **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं सदभाव का प्रतीक (Symbol of International Cooporation at Goodness)** :– विदेशी व्यापार से आयातकर्ता तथा निर्यातकर्ता राष्ट्रों के मध्य केवल व्यापारिक संबंध ही नहीं बाते सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक संबंध भी पुष्ट होते हैं जिससे अंन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव और सहयोग में वृद्धि हेाती है।

16.4 विदेशी व्यापार का क्षेत्र (Scope of Foreign Trade)

विदेशी व्यापार का क्षेत्र अति व्यापक है । उसमें निम्नलिखित मदें सम्मिलित हैं :–

1 **वस्तुयें (Goods)** :– विदेशी व्यापार की प्रमुख मद वस्तुयें है। वस्तुयें जो या तो सीधे ही उपभोग योग्य हैं या प्रसंस्करण द्वारा उन्हें उपयोग योग्य बनाया जा सकता है। वस्तुये उद्योग अथवा व्यापार के उपयोग योग्य भी हो सकती हे। कच्चा माल, उपभोक्ता वस्तुयें, औद्योगिक वस्तुयें, मशीन वस्तुओं के उदाहरण है।

2 सेवाएं (Services) :– विदेशी व्यापार मे वस्तुओं का ही नहीं सेवाओं का भी आयात निर्यात होता हैं। बैंकिग बीमा, परिवहन, बीमा व्यवसाय होटल विजनैस, चिकित्सा तथा शिक्षा तकनीक एवं प्रोद्यौगिकी सेवाओं का भी व्यापार होता है।

3 विदेशी निवेश (Foreign Investment) :– आज पूंजी भी वस्तुओं एवं सेवाओं की ही तरह विपणनशील है और इसीलिये विदेशी व्यापार का मद है। निवेश के दो स्वरूप है – विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment) तथा पोर्टफोलियों इन्वेस्टमेण्ट (Portfolio Inverstment)

16.5 विदेशी व्यापार के लाभ (Advantages of Foreign Trade)

विदेशी व्यापार से आयातक व निर्यातक दोनों राष्ट्रों को लाभ होता है –

1 **आयातक राष्ट्र को लाभ (Advantages to Importing Country)** :–

- उपभोक्ताओं को उपभोग हेतु नाना प्रकार की वस्तुयें सुलभ हो जाती है। विदेश की वस्तुओं से उपभोग से उपभोक्ता को मनोवैज्ञानिक लाभ होता है।
- कच्चा माल तकनीक और औद्योगिक वस्तुओं के आयात से उत्पादकता और उत्पादन बढती है।
- श्रम व पूंजी से रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है।
- जीडीपी तथा प्रति व्यक्ति आय बढती है।
- अंतर्राष्ट्रीय परस्परता तथा सहयोग व समन्वय में वृद्धि होती है।
- देशी उत्पादकों के बीच प्रतिस्पर्द्धा के कारण वस्तुओं व सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार होता है।
- आयात की गयी वस्तुओं के उपभोग से जनता के जीवन स्तर में वृद्धि होती है क्योंकि आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वस्तुयें प्राप्त हो जाती है।
- आयातों के भुगतान के लिये विदेशी मुद्रा कोष बढाने के लिये प्रयासरत रहने से राष्ट्र में आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहन मिलता है और निर्यात में वृद्धि होती हैं । क्योंकि निर्यात द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा से ही आयात का मूल्य चुकाना सकसे अधिक उचित माना जाता है।

2 **निर्यातक राष्ट्र को लाभ (Advantages to the exportenign Countries)** :–

- विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है क्योंकि निर्यात किये गये माल का मूल्य विदेशी मुद्रा में प्राप्त होता है।
- वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार होता है क्योंकि निर्यात की गयी वस्तुयें अंतर्राष्ट्रीय स्तर की और श्रेष्ठ होती है।
- निर्यात करने के लिये वस्तुओं का उत्पादन बढाने से श्रम व पूंजी का समुचित उपयोग होता है रोजगार में वृद्धि होती है।

- सकल कुल उत्पादन (जीडीपी) तथा प्रति व्यक्ति आय बढने से राष्ट्र की सम्पन्नता बढती हैं
- निर्यातकर्ता राष्ट्र की सरकार के राजकोष में करों के रूप में प्राप्त आय की वृद्धि होती है।
- निर्यातकर्ता राष्ट्र के उन सभी राष्ट्रों से अच्छे संबंध स्थापित हो जाते हैं जिन्हें निर्यात किया जाता है अतः परस्परता और अंतराष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि होती है।
- विशिष्टीकरण पर आधारित श्रम विभाजन के लाभ प्राप्त होते हैं।
- द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय समझौतों के आधार पर आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक संबंधों का विस्तार होता है।

16.6 विदेशी व्यापार की संभावित हॉनियां (Possible Disadvantages of Foreign Trade)

दुनिया में जो कुछ है उसमें गुण व दोष दोनों का समन्वय होता है। ऐसा कुछ नहीं है जो केवल अच्छा हो या केवल बुरा हो। विदेशी व्यापार के संभावित दोष (हांनियां) निम्नवत हैं –

- अति उत्पादन का भय :– विदेशी व्यापार के लिये सभी राष्ट्र अति उत्पादन के लिये प्रयासरत हो जाते हैं निर्यातकर्ता विदेशी मुद्रा कमाने के लिये आयातकर्ता खरीदे गये माल को भुगतान करने के लिय व विदेशी मुद्रा कमाने के लिये अति उत्पादन करने लगते हैं।
- संसाधनों का अति शोषण अति उत्पादन के लिये प्राकृतिक भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का सीमा से अधिक उपयोग और शोषण किया जाता है।
- पर्यावरण को हानि :– विदेशी मुद्रा अर्जन के लाभ के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग होने से पर्यावरण प्रदूषण होने लगता हैं। जल और वायु दोनों के प्रदूषण से जलवायु प्रभावित होने लगती है। जैव विविधता ओर जैवीय संतुलन बिगडने लगता है।
- उपभोक्तावाद को बढावा – विदेशी व्यापार विश्व भर में उपभोक्तावाद को प्रोत्साहित करता है जिससे लोगों मे अस्वस्था प्रतिस्पर्द्धा, अनावश्यक प्रदर्शन और ईर्ष्या द्वेष बढता है।
- **अंतर्राष्ट्रीय गुटबन्दी** :– व्यापारिक संबंध धीरे धीरे राजनीतिक संबंधों में परिवर्तित हो जाते है और इससे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रों के गुट बनने लगते हैं। क्षेत्रीय संगठन अंतराष्ट्रीय संगठनों पर भारी पडने लगते हैं। इससे विश्वशांति को खतरा उत्पन्न होने लगता है । युद्ध या शीत युद्ध जैसी स्थितिया बनने लगती हैं
- **आर्थिक उपनिवेशवाद का भय** :– अनियंत्रित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आर्थिक उपनिवेशवाद को जन्म देता है जिससे शोषण और भ्रष्टाचार बढता है। राजनीतिक दासता का भय बढता है और राष्ट्रों में अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा बढती है। उक्त संभावित हॉनियों से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के गुण और लाभों में कोई कमी नहीं आती । क्योकि इन दोषों का निराकरण किया जा

सकता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आज के युग की आवश्यकता और वास्तविकता है।

16.7 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की विशेष समस्यायें व जटिलतायें (Problems and Complexities of International Trade)

यह विश्व अनेक विषमताओं व जटिलताओं का समूह है । विदेशी व्यापार भी इन विषमताओं व जटिलताओं से अछूता नहीं है। विदेशी व्यापार की कुछ जटिलतायें निम्नलिखित हैं –

1 **भाषा का अंतर** :– आयातकर्ता तथा निर्यातकर्ता राष्ट्रों में प्रयोग की जाने वाली भाषायें भिन्न होती है। जिससे भाव संप्रेषण तथा संदेश वाहन की समस्यायें उत्पन्न हो सकती है। यद्यपि प्रौद्योगिकी और तकनीक के विकास से अनुवाद की सुविधा उपलब्ध हो जाने से यह कठिनायी कम हुयी है।

.2 **मुद्रा की विविधता** :– आयातकर्ता और निर्यातकर्ता राष्ट्रों में अलग अलग प्रकार की मुद्रा प्रयोग में आती है । इससे विनियम दर के निर्धारण और भुगतान में असुविधा हो सकती है। विनिमय दरों में नित्य परिवर्तन हो सकते है। विनिमय दरों में नितय परिवर्तन होने से यह समस्या और जटिल हो जाती है।

3 **कानूनों की विविधता** :– आयातकर्ता तथा निर्यातकर्ता राष्ट्र में अलग अलग तरह के कानून लागू होते है। कानूनों की इस विविधता से विदेशी व्यापार में समस्या आ जाती है । क्योंकि एक देश में रहने वालों का दूसरे देश के कानूनों का पूरा ज्ञान नहीं होता।

4 **विदेशी व्यापार की प्रक्रिया की भिन्नता**:– सभी राष्ट्रों की सरकारें अलग अलग हेाती है और इन सरकारों के नियम कानून अलग होते हैं। इसके कारण सभी राष्ट्रों में आयात निर्यात की प्रक्रिया भी भिन्न हो जाती है जिसके कारण समस्यायें आना स्वाभाविक है।

5 **क्षेत्रीय संगठनों की उपस्थिति** :– क्षेत्रीय स्तर पर अलग अलग और अनेक संगठनों के कारण विश्व व्यापार की जटिलता बढ जाती है। दक्षेस (सार्क), ओपेक, जी8, जी20, ब्रिक्स, साफ्टा, एक्टा आदि संगठन विश्व व्यापार की जटिलताएं बढाने का काम करते हैं।

16.8 आयात की प्रक्रिया (Process of Import)

आयात विदेशों से माल संगाने की प्रक्रिया का नाम है। आयातकर्ता को इस प्रक्रिया से गुजरना होता है। यह एक चरणबद्ध प्रक्रिया है जिसके प्रमुख चरण इस प्रकार हैं :–

1 **बाजार का सर्वेक्षण** :– आयातकर्ता व्यापार के उद्देश्य से वस्तुऐं मंगाता है अतः उसे बाजार का पूरी तरह सर्वेक्षण करके यह तय करना चाहिये कि वह किस वस्तु का और कितनी मात्रा में आयात करे। उसे बाजार सर्वोक्षण से यह ज्ञात हो सकता है कि बाजार में किन वस्तुओं की मांग अधिक है और किन वस्तुओं की मांग बढने की संभावना है।

2 **आयात की नीतियों, प्रक्रियाओं व अंतर्राष्ट्रीय समझौतों का ज्ञान** :– आयातकर्ता को सरकार की आयात नीति, निर्धारित प्रक्रिया व अंतर्राष्ट्री एवं क्षेत्रीय समझौतों की जानकारी कर लेना चाहिये

3 **पंजीकरण** :– आयातकर्ता को विदशी व्यापार महानिदेशालय में पंजीकरण कराना आवश्यक है यहां से उसे आयात निर्यात कोड संख्या (आई सी) प्राप्त करना आवश्यक है। आयात निर्यात करने वाले प्रतयेक व्यक्ति व संगठन को दस अंकों वाला यह आई सी कोड प्राप्त करना अनिवार्य है।

4 **विदेशी आपूर्तिकर्ता की विश्वसनीयता की जांच** :– विदेशी व्यापार में ठगे जाने से बचने के लिये यह आवश्यक है कि आपूर्तिकर्ता की विश्वसनीयता की भली भांति जांच कर ली जाये। इस काम में विदेशों में स्थिति भारतीय वाणिज्यिक मिशन की सहायता ली जा सकती हे।

5 **आयात की जाने वाली वस्तु की श्रेणी का ज्ञान** :– आयात की जाने वाली वस्तुओं को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है–

6 मुक्त आयात हेतु घोषित वस्तुयें जिनके आयात के लिये लाइसेन्स की आवश्यकता नहीं है।

7 प्रतिबंधित वसतुयें जिनके आयात के लिये सरकार से लाइसेन्स लेना अनिवार्य है।

8 सूची वस्तुयें जिन्हें केवल राज्य व्यापार निगम या अन्य सरकारी संगठन मंगा सकते हैं।

9 पूरी तरह प्रतिबंधित वस्तुयें जिनका आयात नहीं किया जा सकता है। सरकारी सभी श्रेणियों में आने वाली वस्तुओं की सूची समय समय पर घोषित करती रहती है।

10 **विदेशी व्यापार नीति विशेषतः आयात नीति का अध्ययन** – सरकार समय समय पर अपनी विदेशी व्यापार नीति की घोषणा व पूर्व में घोषित नीति में परिवर्तन करती रहती है। इसी के साथ आयात नीति की भी घोषणाा की जाती है। आयातकर्ता को इस नीति का भलीभांति अध्ययन करना चाहिये। पशुधन उत्पाद, मत्स्य पालन क्षेत्र तथा बागवानी के लिये सरकार ने स्पष्ट और पृथक नियम बना रखे हैं। आयातकर्ता को आयात नीति का अध्यन करने के बाद ही आयात का निश्चत करना चाहिये।

11 **विदेशी मुद्रा की व्यवस्था** :– आयात की गयी वस्तुओं के मूल्य का भुगतान निर्यातक राष्ट्र की मुद्रा में करना होता है अतः आयातकर्ता को रिजर्व बैंक या किसी अन्य अधिकृत बैंक से धन की व्यवस्थ करना होता है।

12 **इण्डेण्ट अथवा आदेश का प्रेषण** :– आयात लाइसेन्स प्राप्त होने तथा विदेशी मुद्रा की व्यवस्था के पश्चात आयातकर्ता अपनी इच्छित वस्तुओं का ओदश प्रेषित कर देता हे। कुछ विद्वानों ने बताया है कि यदि आदेश सीधे विक्रेता या उत्पादक को भेजा जाता है तो इसे आदेश कहते है और यदि आदेश निर्यात एजेण्ट को भेजा जाता है तो इसे इन्डेण्ट कहा जाता है।

13 **साख पत्र प्रेषण** :– यदि आयातकर्ता और निर्यातकता में पूर्व परिचय नहीं है तो आयातकर्ता अपने बैंक के माध्यम से एक साख पत्र भेज देता है जो बैंक की दृष्टि में आयातकर्ता की आर्थिक सुदृढता का प्रमाण है।

14 **निर्यात्कर्ता अथवा एजेण्ट द्वारा माल का प्रेषण तथा माल प्रेषण की सूचना का प्रेषण** :– निर्यातकर्ता अथवा निर्यात एजेण्ट आयातकर्ता द्वारा आदेशित माल एकत्रित कर माल प्रेषित कर देता है और आयातकर्ता को माल प्रेषण की सूचना प्रेषित कर देता है। माल प्रेषण की सूचना के साथ बीजक जहाजी बिल्टी, बिल

आदि की प्रति और आवश्यक होने पर विनियम बिल आयातकर्ता को प्रेषित कर दिया जाता है।

15 **अधिकार पत्रों की प्राप्ति की व्यवस्था** :– जब आयातकर्ता को माल आने की सूचना प्राप्त हो जाती है तो वह बैंक से अधिकार पत्र पाने की व्यवस्था करता है। यदि उसे बिल स्वीकार करना है तो बिल स्वीकार कर लेता है।

सीमा शुल्क का भुगतान :– सरकार व्यापार के उद्देश्य से आयतित वस्तुओं पर आयात शुल्क लगाती है । यह सीमा शुल्क आयातकर्ता द्वारा नामित बैंक में डिपोजिट अकाउण्ट के माध्यम से जमा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भुगतान बैंक ड्राफ्ट या बैंकर्स चैक द्वारा भी किया जा सकता है। भुगतान दो दिन के अंदर हो जाना चाहिये अन्यथा आयातकर्ता को व्याज देना पडता है। आयातकर्ता को प्रविष्टि बिल के रूप में एक घोषणा पत्र दाखिल करना होता है जिसके माध्यम से आयातक यह सूचना देता है कि निर्दिष्ट बिल और मूल्य की वस्तुयें देश मे प्रवेश कर रही है।

16 **ग्रीन चैनल सुविधा** :– ग्रीन चैनल सुविधा आयातकर्ताओं को दी गयी ऐसी सुविध है जिसके धारकों को आयात की गयी वसतुओं का बिना रूटीन परीक्षण के ले जाने की सुविधा रहती है।

ग्रीन चैनल सुविध सीमा शुल्क विभाग द्वारा साफ सुथरी छवि वाले आयातकों को प्रदान की जाती है।

17 **निकासी प्रतिनिधि की नियुक्ति** :– यदि आयातकर्ता का स्थान माल की सुपुर्दगी वाले स्थान से दूर स्थित है तो सुपुर्दगी प्राप्त करने का अधिकार सौपते हुए एक निकाली प्रतिनिधि की नियुक्ति करता है जो माल पर लगने वाले सीमा शुल्क का भुगतान करता है। बन्दगाह शुल्क का भुगतान करता है तथा माल लेकर आयातकर्ता का प्रेषित कर देता है।

18 **आयातकर्ता द्वारा माल की सुपुर्दगी लेना** – आयातकर्ता द्वारा माल की सुपुर्दगी प्राप्त होने के साथ ही आयात की प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है।

19 **आयात व्यापार में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख प्रलेख** (Important Documents Used in Import Trade) आयात व्यापार में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख प्रलेख निम्नलिखित हैं :–

1. आयात लाइसेन्स (Import Licence)
2. इण्डेण्ट (Indent)
3. बीमा पत्र (Insurance Policy)
4. निर्यात बीजक (Export Invoice)
5. जहाजी बिल्टी (Bill of Lading)
6. प्रवेश बिल (Bill of Entry)
7. विदेशी विनिमय पत्र (Foreign Bill of Exchange)
8. बंदरगाह शुल्क चालान (Port trust Challan)
9. डाक वारन्ट (Dock Warrant)
10. सुपुर्दगी आदेश (Delivery Order)

16.9 निर्यात की प्रकिया (Process of Export)

एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र को माल भेजने की प्रक्रिया निर्यात कहलाती है। किसी आयातकर्ता द्वारा सीधे ही आदेश अथवा एजेण्ट को प्राप्त इण्डेण्ट के आधार

पर माल का आदेश प्राप्त होने पर निर्यात की प्रक्रिया का जन्म होता हे। कभी स्वयं निर्माता अपनी ओर से उत्पादित वसतुओं को विदेशी बाजार में बेचना चाहता है। यह निर्यात की इच्छा का प्रतीक है। निर्यात की प्रक्रिया के निम्नलिखित चरण हैः–

1 विदेशी बाजार का सर्वेक्षण एवं संभावित क्रेता व्यापारियों व संस्थाओं से संपर्क करके निर्यात की सभावनाओं का पता लगाना चाहिये।
2 इण्डेण्ट की प्राप्ति अथवा व्यापारियों से आदेश की प्राप्ति
3 निर्यात लाइसेन्स की प्राप्ति
4 निर्यात किये जाने वाले माल का संग्रह
5 यदि आयातकर्ता अपरिचित है तो साख पत्र मांगा जाता है।
6 माल भेजने की तैयारी
7 आवश्यक होने पर प्रेषक एजेन्ट की नियुक्ति
8 माल भेजने के लिये बन्दरगाह तक भेजना
9 निर्यात बीजक तैयार करना
10 आयातकर्ता को सूचना भेजना

आयातकर्ता द्वारा माल प्राप्त होने के साथ ही निर्यात की प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है।

11 निर्यात व्यापार में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख प्रलेख (Important Documents to be used in Exprot Trade)

निर्यात व्यापार में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख प्रलेख निम्नलिखित हैं :–

1. इन्डेन्ट (Indent)
2. जहाजी आदेश (Shipping Order)
3. जहाजी बिल (Shipping Bill)
3. डाक रसीद (Dack Receipt)
4. मेट की रसीद (Mates Receipt)
5. जहाजी बिल्टी (Bill of Lading)
6. बीमा पॉलिसी (Insurance Policy)
7. निर्यात बीजक (Export Invoice)

16.10 विदेशी व्यापार (विकास एवं विनियम) अधिनियम 1992

भारत मे विदेशी व्यापार का नियमन विदेशी व्यापार (विकास एवं विनियम) अधिनियम 1992 की व्यवस्थाओं एवं प्रावधानों के अनुसार होता है। भारत का आयात और निर्यात व्यापार इसी अधिनियम की व्यवस्थाओं द्वारा अनुशासित होता है भारत सरकार का वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय इसी अधिनियम की व्यवस्थाओं के आलोक मे व्यपार नीति का निर्माण करता है।

विदेशी व्यापार नीति अर्थव्यवस्था के प्रमुख अवयव – कृषि, हस्तकला एवं हथकरघा उद्योग, रत्न और आभूषण, चमडा और जूते आदि के विकास द्वारा रोजगारों के अवसरों में वृद्धि , सकल कुल आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हेतु प्रयासरत रहती है।

अधिनियम निर्यातपरक उद्योगों को विशेष संरक्षण प्रदान करता है तथा आयात प्रतिस्थापन की दिशा में उत्पादन व वितरण करने वाली इकाइयों का विशेष ध्यान रखा जाता है।

उन व्यक्तियों, संस्थाओं व उद्योगों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाता है जो आयात प्रतिस्थापन अथवा निर्यात संवर्द्धन हेतु विशेष सक्रिय हैं ।

निर्यात की दृष्टि से महत्वपूर्ण शहरों अहमदाबाद, अमृतसर, बडौदा बंग्लौर, भोपाल, कोलकत्ता, चंडीगढ, मुम्बई आदि नगरों में निर्यात हेतु वस्तुयें बनाने बेचने में अधिक रूचि का प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से विशेष प्रावधान किये गये हैं।

16.11 भारत के विदेशी व्यापार का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Historical Perspective of Indian Foreign Trade)

भारत के विदेशी व्यापार के आकार, प्रवृति, दशा और दिशा का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

1. स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी व्यापार
2. स्वतंत्रता के पश्चात उदारीकरण से पूर्व विदेशी व्यापार
3. उदारीकरण के पश्चात विदेशी व्यापार
4. योजना काल में विदेशी व्यापार

1 स्वतंत्रता से पूर्व भारत का विदेशी व्यापार

भारत के विदेशी व्यापार का स्वर्णिम अतीत रहा है। विश्व के आज के सम्पन्न राष्ट्र जब आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछडे थे, भारत विश्व बाजार की एक महतवपूर्ण इकाई था। इतिहास साक्षी है कि 12वीं, 13वीं और 14वीं शताब्दी मे विश्व बाजार का 25 से 30 प्रतिशत भाग भारत के कब्जे में था। भारत को सोने की चिडिया कहा जाता था। भारत के जहाज भारत में उत्पादित मसाले कपडा आदि लेकर विश्वभर के बाजारों में जाते थे और वहॉ से सोना लाद कर आते थे। संस्कृति, सभ्यता, सम्पन्नता और समृद्धि की दृष्टि से भारत विश्व के आकर्षण का केन्द्र था। विदेशी आक्रांताओं ने यहॉ आकर उपनिवेश बना लिये और भारत राजनीतिक दृष्टि से परतंत्र हो गया। विदेशी शासकों ने इस अर्थव्यवस्था को लूट लूट कर कंगाल कर दिया। अंग्रेजों की स्वार्थपरक नीति के परिणाम स्वरूप भीतर केवल कच्चा माल उत्पादित करने वाला राष्ट्र रह गया, अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान हो गयी और हम उपभोग की सामान्य वस्तुओं के लिये भी बाहर के बाजारों पर निर्भर हो गये। आयात आयात और केवल आयात परिणाम स्वरूप भारत का विदेशी विनिमय कोष रिक्त हो गया और स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमारी अर्थव्यवस्था दीन हीन थी और विश्व बाजार में हमारी कोई पहचान नहीं थी।

2 स्वतंत्रता के पश्चात उदारीकरण से पूर्व विदेशी व्यापार

स्वतंत्रता के बाद के 35 वर्ष अफरा तफरी और अव्यवस्था के रहे। विभाजन की त्रासदी ने विदेशी व्यापार के संबंध मे अधिक सोच पाने का अवसर ही नहीं दिया तथापि इस युग के विदेशी व्यापार के समंक निम्नवत हैं

वर्ष	निर्यात करोड रू0	आयात करोड रू0	व्यापार शेष करोड रू0
1950-51	606	608	-2
1960-61	642	1112	-480
1970-71	1535	1634	-99
1980-81	6711	12549	-5838
1990-91	32553	43198	-10645

इस अवधि में आयात अधिक करने पडे और निर्यात कम हो सके । अतः व्यापार शेष सदैव नकारात्मक ही रहा ।

3 उदारीकरण के पश्चात विदेशी व्यापार

1991 में भारत ने उदारीकरण की नीति अपनायी । अतः नियमों को शिथिल बना कर निर्यातों को बढावा दिया गया। परिणामस्वरूप स्थिति में परिवर्तन हुआ यद्यपि व्यापार शेष अभी भी नकारात्मक है क्योंकि भारत को निर्माण काल में आयात अधिक करना पडा है।

विदेशी व्यापार (करोड रू0 में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष
1991-92	44041	47851	-3810
1992-93	54688	63375	-9687
1993-94	69751	73101	-3350
1994-95	82674	89971	-7297
1995-96	106353	122678	-16325
1996-97	118817	138920	-20103
1997-98	130101	144176	-24075
1998-99(p)	141604	176099	-34495

2000 के पश्चात भारत के विदेशी व्यापार की दशा और दिशा में सुधार हुआ है। भारत विश्व के 190 राष्ट्रों को लगभग 7500 वस्तुयें निर्यात करता है तथा 140 देशों से लगभग 6000 वस्तुओं का आयात करता है। निम्न सारणी के समंक भारत के विदेशी व्यापार के प्रमाण हैं।

भारत का विदेशी व्यापार (विलियन अमेरिकन डालर में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष
2000	43.1	60.8	-17.7
2005	69.18	89.33	-20.15
2010	201.1	327.0	-125.9
2015	310.3	447.9	-137.6

4 योजना काल में विदेशी व्यापार (Foreign Trade Deering Please Period) :– नियोजन काल में भारत के विदेश्ज्ञी व्यापार में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है और विशेषकर वर्ष 1965–66 के बाद विदेशी व्यापार में तेजी से वृद्धि हुई हैं यह वृद्धि व्यापार की मात्रा एवं मूल्य दोनों में हुई है

योजनाकाल में विदेशी व्यापार (रू0 करोड में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष
1950-51	606	608	-2
1960-61	642	1122	-480
1970-71	1535	1634	-99
1980-81	6711	12549	-5838
1990-91	32553	43195	-14645
2000-01	200571	230875	-27302
2001-02	209018	245200	-36182

2002-03	255137	293206	-42069
2003-04	293367	359108	-65741
2004-05	375340	501065	-125725
2005-06	456418	660409	-203991
2006-07	571779	840506	-268727
2007-08	655864	1032312	-356448
2008-09			
2009-10	845534	1363736	-518202
2010-11	1142922	1683467	540545
2011-12	1465959	2345463	-839504
2012-13	1634319	2669462	-8034343
2013-14	1905011	2715434	-
2014-15	1896348	2737087	-840738
2015-16	1708841	2481367	-772526

- **2015–16 में विदेशी व्यापार के ऑकडे** :– वैश्विक अर्थव्यवस्था में शिथिलता के चलते भारत के विदेशी व्यापार मे भी लगातार गिरावट का सिलसिला जारी है इसी के चलते लगातार दूसरे वर्ष देश के निर्यातों व आयातों में ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की गई है, पूर्व वर्ष 2014–15 में देश के वस्तुगत निर्यातों में 1.23 प्रतिशत की व आयातों में 0.59 प्रतिशत की गिरावट (ऋणात्मक वृद्धि) आई थी, विदेशी व्यापार में गिरावट का यह सिलसिला 2015–16 में और भी अधिक प्रबल रहा है, इस वित्तीय वर्ष में देश के वस्तुगत निर्यातों में डॉलर मूल्य में 15.85 प्रतिशत की गिरावट (–15.85 प्रतिशत की वृद्धि) दर्ज की गई है जिससे सन्दर्भित वर्ष में यह निर्यात 261.137 अरब डॉलर के ही रहे पूर्व वर्ष 2014–15 में भारत के वस्तुगत निर्यात 310.338 अरब डॉलर के थे, विदेशी व्यापार के यह अनंतिम ऑकडे वाणिज्य मंत्रालय द्वारा 18 अप्रैल 2016 को जारी किये गये, इन ऑकडों के अनुसार 2015–16 में भारत के आयातों में वृद्धि भी ऋणात्मक ही (–15.28 प्रतिशत) रही है तथा इस वित्तीय वर्ष में देश के कुल वस्तुगत आयात 379.596 अरब डॉलर के रहे हैं, जो पूर्व वित्तीय वर्ष 2014–15 में 448.033 अरब डॉलर के थे, इससे 2015–16 के डॉलर देश का व्यापार घाटा निर्याता की तुलना में आयातों का आधिक्य) 18.459 अरब डॉलर रहा है। पूर्व वर्ष 2014–15 में व्यापार घाटा 137.695 अरब डॉलर रहा था। 2015–16 के दौरान डॉलर मूल्य में भारत के वस्तुगत निर्यातों व आयातों में गिरावट जहॉ क्रमशः 15.85 प्रतिशत व 15.28 प्रतिशत रही है, वही रूपए मूल्य मे निर्यातों में 9.89 प्रतिशत की व आयात में 9.34 प्रतिशत की ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की गई है। वाणिज्य मंत्रालय के इन अंतिम ऑकडों के अनुसार 2015–16 के दौरान भारत के वस्तुगत निर्यात (रूपयों में) रू0 17,08,841 करोड के रहे ळें, जो पूर्व वष 2014–15 में रू0 18,96,348 करोड के थे। 2015–16 में रू0 मूल्य में भारत के वस्तुगत आयात रू0 24,81,367 करोड के आकलित किए गए हैं, जो पूर्व वर्ष

2014–15 में रू 27,37,087 करोड के थे, इस प्रकार रूपए मूल्य में 2015–16 में भारत का व्यवहार घाटा रू0 7,72,526 करोड रहा है।

- 2015–16 में देश के निर्यातों में 15.85 प्रतिशत की यह गिरावट स्वतंत्रता के प्श्चात दूसरा सबसे खराब निर्यात निष्पादन है, इससे पूर्व 1952–53 में निर्यातों में 18.7 प्रतिशत की ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की गई थी।

16.12 नवीन विदेशी व्यापार नीति (2015–20) की घोषणा

देश की वस्तुओं और सेवाओं को विश्व के बाजारों में पहुचाने की दृष्टि से निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिये 2015 में एक पांचवर्षीय विदेश व्यापार नीति (2015–20) घोषित की गयी । इस नीति के माध्यम से 2020 तक निर्यातों को 900 अरब डालर तक पहुचाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है । इससे विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी 2 प्रतिशत बढ कर 3.5 प्रतिशत हो सकेगी।

इस नवीन विदेशी व्यापार नीति के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं :–

- वस्तुगत निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए पहले से चल रही पॉच योजनाओं फोकस प्रोडक्ट स्कीम, मार्केट लिंक्ड फोकस प्रोडक्ट स्कीम, फोकस मार्केट स्कीम, एग्री इन्फ्रास्ट्रक्चर इन्सेंटिव स्कीम, वीकेयीजूवाई का नई प्रस्तावित एमईआईएस (MEIS) योजना में विलय।
- अधिसूचित उत्पादों के अधिसूचित बाजारों देशाों में निर्यात के लिए MEIS के तहत देय पुरस्कार निर्यात के fob मूल्य की प्राप्ति के प्रतिशत के रूप मे विदेशी मुद्रा में ही देय होगा। सेवाओं के निर्यात को बढावा देने के लिए सर्व्ड फ्रॉम इंडिया स्कीम SFIS के स्थान पर नई सर्विस इक्सप्रोट्स फ्रॉम इंडिया स्कीम SFIS लाई गई । नई SFIS योजना भारतीय सेवा प्रदाताओं (Indian Service Providers) की बजाय भारत से सोवा प्रादाताओं (Service Providers Located in India) पर लागू होगी। इसके तहत देय पुरस्कार राशि निर्यातित सेवा से अर्जित निवल विदेशी मुद्रा के आधार पर देय हेागी।
- पूॅजीगत सामान घरेलू उत्पादों से ही खरीदने की स्थिति में ईपीसीजी योजना के तहत निर्यात दायित्व 90 प्रतिशत से घटाकर 75 प्रतिशत किया गया इससे मेक इन इंडिया को बढावा मिलेगा।
- पूॅजीगत सामान के देश मे ंही उत्पादन को बढावा देने के लिए ईपीसीजी अथॅराइजेशन योजना के तहत किए गए । आयातों को एण्टी डम्पिंग ड्यूटी सैफगाई ड्यूटी व ट्रांजिशनल प्रोडक्ट स्पेसिफिक सेफगार्ड ड्यूटी से छूट नहीं दी जाएगी।
- कारेाबारी दशाएं आसान करने के लिए अधिकांश आवेदन व अन्तर मंत्रालयिक कार्यवाहियों 24 x 7 घण्टे ऑनलाइन करने की सुविधा।
- एक्सपोर्ट ओरिएंटेड यूनिट व निर्यात गृहों के लिए विशेष सुविधाएं।
- एडवांस अथॉराइजेशन के तहत किए गए आयात भी अब ट्रांजिशनल प्रोडक्ट स्पेसिफिक सेफगार्ड ड्यूटी।

- कालीकट एयरपोर्ट केरल व अराकाणम आईसीडी तमिलनाडु भी अब आयात व निर्यात के लिए पंजीकृत पोट्स के रूप में अधिसूचित ।
- 33 शहरों का टाउंस ऑफ एक्सपोर्ट एक्सीलेंस के रूप मे अभी तक अधिसूचित थे। दो अन्य शहर विशाखापत्तनम व भीमारवम आन्ध्रप्रदेश इस सूची में जोडे गये हैं।
- 33 लीस्ट डेवलप्ड कंट्रीज LDCs के लिए लागू ड्यूटी फ्री टैरिफ प्रिफरेंस DFTP स्कीम को अब विदेश व्यापार नीति के तहत अधिसूचित किया गया।
- निर्यात के मामले में बेहतर निष्पादन करने वाली इकाइयों को एक्सपोर्ट हाउस, स्टार एक्सपोर्ट हाउस, ट्रेडिंग हाउस, स्टार ट्रेडिंग हाउस, प्रीमियर ट्रेडिंग हाउस आदि दर्जे अभी तक प्रदान किए जाते थे। इस वर्गीकरण को समाप्त कर आगे से वन, टू, थ्री, फोर व फाइव स्टार एक्सपोर्ट हाउस के दर्जे दिए जाएंगे। इसके लिए निर्यात प्राप्तियों का रूपए के स्थान पर डॉलर मूल्य में आकलन हागा। चालू वर्ष व पिछले 2 वर्षों में 30 लाख डॉलर की निर्यात प्राप्तियॉ पर वन स्टार, 2.50 करोड डॉलर की निर्यात प्राप्तियों पर टू स्टार, 10 करोड डॉलर की निर्यात प्राप्तियों पर थ्री स्टार, 50 करोड डॉलर की निर्यात प्राप्तियों पर फोर स्टार तथा 200 करोड डॉलर की निर्यात प्राप्तियों पर फाइव स्टार एक्सपोर्ट हाउस का दर्जा ।

16.13 विदेशी व्यापार का सामाजिक आर्थिक विकास मे योगदान (Role of Foreign Trade in Socio Economic Development of India)

कहा जाता है व्यापार वसते लक्ष्मी। व्यापार ही आर्थिक समृद्धि का पथ प्रशस्त करता है। व्यापार को राष्ट्र के विकास का इंजन कहा गया है। जैसी इंजन की गति (स्पीड) होती है वही गति सारी गाडी की होती है। विदेशी व्यापार के माध्यम से आयात किसी देश के लोगों को उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वस्तुऐं और सेवाएं सुलभ कराते हें तो निर्यात विदेशी मुद्रा का अर्जन कर राष्ट्रको समृद्ध करते हैं।

नवीन विदेशी व्यापार नीति (2015–20) के प्रावधान (MEIS) Merchandise Export from Indai Scheme (SEIS) Services Export from Indai Scheme ने वस्तुओं व सेवाओं के बाजार को विस्तार दिया है सेज ने देश की अर्थ व्यवस्था में नाना प्रकार के रंग भर दिये हैं। विदेशी व्यापार का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव निम्न विवेचन स्पष्ट है :–

- कृषि उपज में वृद्धि
- सूक्ष्म एवं मध्यम आकार के उद्योगों का विकास
- बडे उद्योगों में उत्पादकता और उत्पादन में वृद्धि
- बढते निर्यात से विदेशी विनिमय कोष में वृद्धि
- आयात प्रतिस्थापन को बढावा
- निर्यात संबर्द्धन पर कूल
- मेक इन इंडिया नीति को प्रोत्साहन
- डिजिटल इंडिया नीति का विस्तार

- विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना व विस्तार
- SEIS उन सभी सेवा प्रदान करने वाली संस्थाओं को लाभान्वित करेगी जो भारत में स्थित है।
- तकनीक पर आधारित उद्यमिता का विकास
- गुणवत्ता युक्त प्रबंधन का विकास
- ग्रामीण क्षेत्रों का व्यापक विकास
- शिक्षा का प्रसार
- सांस्कृतिक और सामाजिक विकास
- एक दूसरे राष्ट्र की संस्कृति का परिचय
- ई–व्यापार को बढावा
- डम्पिंग (वस्तुराशि पालन का लाभ)
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सुधार
- भारत की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा में वृद्धि

विदेशी व्यापार से आयातकर्ता तथा निर्यातकर्ता दोनों ही राष्ट्र लाभान्वित होते हैं और उनकी आर्थिक विकास होता है। विदेशी मुद्रा कोष के प्रवाह (अंतर्प्रवाह एवं बहिप्रभाव Inflow and Outflow) से अर्थव्यवस्थायें समृद्ध होती है। रोजगार के अवसर बढते हैं, उत्पादन क्रियायें बढती है बाजार का विकास होता है और राजकोष में आय बढती है।

16.14 भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका (Role of Foreign Trade in the Development of Indian Economy)

भारतीय अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि प्रधान है, ग्राम्य आधारित है। गांवों में कृषि पदार्थों तथा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के उपयोग से छोटे छोटे उद्योग धंधे एवं व्यापारिक क्रियाये संचालित होती है जो प्रायः गांव के आस पास के लोगों द्वारा अपने उपयोग और उपभोग के नगरों में आर्थिक क्रियाओं का चक्र तेजी से चलता है। अर्थव्यवस्था के प्रायः तीन अवयव माने जाते हैं –

1. कृषि
2. व्यापार एवं उद्योग तथा
3. सेवा क्षेत्र

इन्हें क्रमशः प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र भी कहा जात है अतः अर्थ व्यवस्था के तीन चरण खेत्र कहलाते हैं

अ) प्राथमिक क्षेत्र
आ) द्वितीयक क्षेत्र
इ) तृतीयक क्षेत्र

प्राथमिक क्षेत्र अर्थ यवस्था की जड द्वितीयक क्षेत्र तना तथा तृतीयक क्षेत्र फूल पत्ते और फल कहे जाते हैं।

जिस प्रकार जड वृक्ष का आधार है तना स्तंभ है और फूल पत्ते पौधे शोभायुक्त परिणाम । उसी प्रकार कृषि अर्थव्यवस्था का आधार है व्यापार एवं उद्योग रीढ है और सेवा क्षेत्र अर्थ व्यवस्था की शोभा है। विदेशी व्यापार जिसमें आयात निर्यात

दोनों समाहित होते हैं अर्थ व्यवस्था के सभी अवयवों को पुष्टि और सुदृढता प्रदान करता है।

आयात से प्राप्त वस्तुयें प्रत्यक्ष उपभोग में ही काम में नहीं आती । उनका प्रसंस्करण कर उद्योगों द्वारा उन्हें उपयोग योग्य बनाया जाता है और देश का सेवा क्षेत्र इससे सुदृढ होता है। आगे विदेशी व्यापार का अर्थ व्यवस्था के विभिन्न अवयवों पर पडने वाले संभावित प्रभावों का विवेचन किया गया है।

1 **विदेशी व्यापार का कृषि पर प्रभाव (Impact of Foreign Trade on Agricuture)** :– आयात के माध्यम से उन्नत किस्म के बीज, खाद, कीटनाशक तथा कृषि प्रोद्यौगिकी के प्रयोग से कृषि को प्रतयक्ष लाभ होता है।

इसी के साथ कृषि पदार्थों व उत्पादों के प्रत्यख निर्यात से विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है। कुछ खाद्यान्न, मसाले, जडी बूटियॉ हमारे निर्यात की परम्परागत वस्तुयें हैं। कृषि जन्य पदार्थों के प्रसंस्करण के माध्यम से उपभोग योग्य बना कर अनेक वस्तुओं का निर्यात किया है । इससे कृषि को प्रत्यक्ष लाभ हेाता है। कृषि पदार्थों के उत्पादकों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य प्रापत होता है।

2 **विदशी व्यापार का उद्योगों व व्यापार पर प्रभाव (Impact of Foreign Trade on Industry and Commerce)** :– उद्योग व व्यापार किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की रीढ होते हैं। उद्योग वस्तुओं का उत्पादन कर बहुसंख्यक जनता को प्रत्यक्ष रोजगार सुलभ कराते हैं तथा उन वस्तुओं को उपयोग हेतु सुलभ कराने के लिये बाजार तंत्र विकसति करने में सहायता करते हैं। व्यापारी देश विदेश से माल खरीद कर उपभोक्ताओं को वसुयें बेचते हैं और स्वरोजगार सृजन करने के साथ ही अन्य अनेक लोगों को काम के अवसर देकर अर्थ व्यवस्था का समृद्ध करते हैं।

विदेशी व्यापार अर्थात आयात निर्यात से उद्योग का व्यापार दोनों समृद्ध होते हैं। उद्योग आवश्यक कच्चा माल, मशीन, तकनीक व प्रोद्यौगिकी आदि का आयात कर औद्योगिक अर्थ व्यवस्था को बल देते हैं । व्यापारी आयातित वस्तुओं का विक्रय कर लाभ कमाते हैं इसी प्रकार निर्यात के माध्यम से विदेशी मुद्रा और विदेशी पूंजी प्राप्त होती हैं ।

3 **सेवा क्षेत्र के विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका (Impact of Foreign Trade ofn Service sector)** :– सेवा क्षेत्र मौलिक एवं आधारभूत क्षेत्र न होकर आश्रित और आधारित क्षेत्र है। कृषि, उद्योग एवं व्यापार के विकास से सेवा खेत्र विकसित होता है तथा पल्लवित, पुष्पित एवं घलित होता है।

विदेशी व्यापार में वदिेशी मुद्रा वस्तुओं एवं सेवाओं के आदान प्रदान से देश का बैंकिंग खेत्र, थल, नम एवं वायु यातायात, बीमा क्षेत्र, कम्प्यूटर की गतिविधियां, लेखांकन एवं अंकक्षण सभी की क्रियाओं का भरपूर उपयोग होता है इससे रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है और सभी क्षेत्रों को भरपूर काम के माध्यम से समृद्धि बढती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता हे कि विदेशी व्यापार के माध्यम से विदेशी मुद्रा वस्तुओं एवं सेवाओं के आवागमन से अर्थव्यवस्थ के सभी क्षेत्र प्रभावित होते हैं। लोगों को उपभोग की विविध वस्तुयें सुलभ हेाती है जीवन स्तर का विकास होता है और हर दिशा में खुशहाली बढती है। विदेशी व्यापार के समंक राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था की समृद्धि और सुदृढता के प्रतीक होते हैं।

16.15 आयात निर्यात की मदें (Items of Import at Export)

भारत वर्ष में विदेशी व्यापार की परम्परा बहुत प्राचीन है। विदेशों से व्यापारिक संबंधों के आधार पर आयात निर्यात व्यापार सम्पन्न हेाता हे। जो वस्तुयें परम्परागत रूप से आयातित और निर्यात की जाती रही है उन्हें परम्परागत आयात और परम्परागत निर्यात कहा जाता है। बाद में बदली हुयी परिस्थितियों के कारण जिन वस्तुओं का आयात निर्यात किया जाने लगा उनहें अपरम्परागत आयात या अपरम्परागत निर्यात की मदें कहा जाता है।

1 **आयात की मदें** :– वर्तमान में आयात होने वाली प्रमुख 10 मदों का वर्णन वर्गीकृत रूप से निम्न प्रकार है :–

(अ) खाद्य एवं उपभोग की वस्तुयें :– खाद्यान्न दलहन एवं अन्य उत्पाद

(ब) कच्च माल एवं अर्द्ध निर्मित वस्तुयें :– खाद्य तेल, पेट्रोलियम तेल एवं स्नेहक, लोहा एवं इस्पात, मोती माणिक और बहुमूल्य रत्न, उर्वरक एवं कीट नाशक रासायनिक तत्व एवं यौगिक

(स) पूंजीगत वस्तुयें विद्युत मशीनरी, गैर विद्युत मशीनरी, परिवहन संबंधी उपकरण

2 **निर्यात की मदें** :– प्राचीन समय से भारत कपास मसाले खुशबू आदि का निर्यात करता रहा है पर अब स्थिति में परिवर्तन आया है अब भारत परम्परागत निर्यातों के साथ प्रोद्यौगिकी, इलेक्ट्रीकल और इलोक्ट्रोनिक्स वस्तुओं का निर्यात कर रहा है। निर्यात होने वाली प्रमुख 10 मदों का वर्णन वर्गीकृत रूप से निम्नवत है।

(अ) प्राइमरी उत्पाद

1. कृषि एवं संबद्ध वस्तुयें
2. कच्ची धातु एवं खनिज

(ब) विनिर्मित वस्तुयें

1. रत्न एवं जेवरात
2. बने बनाये वस्त्र
3. चमडा एवं चमडे की वस्तुयें
4. रसायन एवं संबद्ध उत्पाद
5. धागे तथा फैब्रिक
6. इंजीनियरिकंग वस्तुयें
7. इलेक्ट्रीकल एवं इलेक्ट्रोनिक वस्तुयें

(स) पैट्रोलियम एवं पैट्रोलियम पदार्थ

3 **आयात निर्यात व्यापार की दशा और दिशा में परिवर्तन** :– स्वतंत्रता के पश्चात आयात निर्यात की मदों मे ही नहीं प्रवृति में अंतर हुआ था। स्वतंत्रता पूर्व काल की स्थिति यह थी भारत कच्चे माल का निर्यात करता था। तथा निर्मित माल का आयात करता था।

पर स्वतंत्र भारत के विदेशी व्यापार की संरचना में परिवर्तन आया है। औपनिवेशिक ढांचा पूरी तरह बदल गया है। भारत के आयात निर्यात की विविधता अब भारत के अपने हितों पर आधारित होती है। विदेशी व्यापार का आकार ही नहीं प्रकार भी बदला है। वैश्वीकरण और उदारीकरण की अवधारणा ने विदेशी व्यापार संरचना का काया कल्प कर दिया है। विश्व बाजार में भारत की प्रतिष्ठा बढी है। भारत

अब किसी राष्ट्र का पिछलग्गू राष्ट्र नहीं हैं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में भारत की बात गंभीरता से सुनी और मानी जाती है। भारत विश्व व्यापार में नेतृत्व की ओर अग्रसर है। संस्थागत ढांचा नीतियां सुढृढ हुयी है। अवसंरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) में सुधार हुआ है और यह कहा जा सकता है कि भारत के विदेशी व्यापारा की दशा और दिशा में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है ।

16.16 विश्व व्यापार संगठन और भारत (World Trade Organisation & India)

विश्व व्यापार संगठन सभी राष्ट्रों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन है। सभी राष्ट्रों के बीच वस्तुओं, सेवाओं व्यक्तियों तकनीक एवं प्रोद्यौगिकी के अवाध अंतरण्ट की दृष्टि से विश्व व्यापार संगठन ने कुछ नियम बनाये और लागू किये हैं।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के बीच अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करने तथा सीमा शुल्क के बंधनों को कम करने के उद्देश्य से की गयी है। वास्तव में यह विभिन्न राष्ट्रों के मध्य हुया बहुपक्षीय समझौता है। यह एक बहुपक्षीय संधि है जो विश्व व्यापारा को प्रोत्साहित और नियमित करने के लिये की गयी है।

विश्व व्यापार संगठन 1 जनवरी 1995 को अस्तिवत्व में आया । इससे पूर्व विश्व व्यापार का नियमन गैट (General Agreemennt on Trade and Tariff) द्वारा किया जाता था। गैट (तटकर एवं व्यापार पर सामान्य समझौता) की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात 1948 में 23 राष्ट्रों द्वारा संयुक्त रूप से की गयी थी। सदस्य राष्ट्र समय समय पर बैठक कर समस्याओं का समाधान किया करते थे। GATT के अंतर्गत 1994 तक आठ व्यापार वार्ताएं आयोजित की गयी । अंतिम वार्ता 3 रूप में सम्पन्न हुयी जहॉ GATT के स्थान पर WTO स्थापित करने का निर्णय किया गया।

विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय गैट के मुख्यालय की तरह ही जेनेवा (स्विटजरलैण्ड) में स्थित है।

भारत विश्व व्यापार संगठन का संस्थापक सदस्य है और WTO की गैर विभेदात्मक परस्परता तथा पारदर्शिता के सिद्धान्तों से लाभान्वित हुआ है यद्यपि व्यापार संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार (TRIPS) Trade Related Intellectval Properly Right के कुछ प्रावधान भारत के व्यापारिक हितों के विपरीत है। भारत ने उदारीकरण व वैश्वीकरण को अपनाकर विश्व की अर्थव्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। भारत विकासशील अर्थ व्यवस्थाओं के प्रमुख की भूमिका का निर्वाह करते हुये वस्तुओं सेवाओं तथा पूंजी और तकनीकी प्रोद्यौगिकी के आयात निर्यात की नीतियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निवाह रहा है भारत ने आयात शुल्कों में भारी कमी कर दी है तथा विदेश मुद्रा नियमन अधिनियम FERA के स्थान पर विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम FEMA लागू कर दिया है।

चालू खाते में रूपये को परिवर्तनशील बना दिया गया है । भारत को विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता से सबसे बडा लाभ यह हुआ है कि भारत ने एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप मे अपनी स्वीकृति बना ली है और विश्व मंच पर भारत की बात प्रभावशाली तरीके से सुनी जाती है।

बिना भेद भाव व्यापार की नीति से विश्व व्यापार में एकरूपता आयी है। व्यापार प्रतिबंध हटने से विश्व व्यापार की गति में तीव्रता आयी है। बैंकिंग बीमा, दूर संचार,डाक सेवायें, र्प्यटन, तेल व गैस उत्पादन, शिक्षा, पेयजल स्वास्थ्य सुविधाओं, अपशिष्ट निपटान, आपदा प्रबंधन आदि दिशाओं में संख्यात्मक तथा गुणात्मक वृद्धि हुयी है ।

16.17 विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना (Estatbleshment of Special Economic Zone)

भारत एशिया का पहला देश है जिसने विशेष आर्थिक क्षेत्र स्थापित कर निर्यात संवर्द्धन हेतु प्रयास किये हैं। निर्यात संवर्द्धन मे निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र की महत्ता स्वीकार करते हुय निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (Export Processing Zone EPZ) बनाये गये हैं।

निर्यातोन्मुख इकाइयों को प्रोत्साहन देने के लिये सरकार ने शत प्रतिशत निर्यात करने वाली औद्योगिक इकाइयों को अनेक प्रकार के प्रोत्साहन प्रदान किये गये हैं। इन इकाइयों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता हेतु सक्षम बनाने के लिये कच्चा माल, प्रोद्यौगिकी, मशीन, उपकरण आदि का आयात करने में उदार नीति के द्वारा संरक्षण प्रदान किया है। निर्यात गृह, निर्यात व्यापार गृह तथा स्टार ट्रेडिग गृहों की स्थापना की गयी है। जिन इकाइयों की अनेक वर्षों से अच्छे निर्यात कर्ता की ख्याति इन्हें स्टार ट्रेडिग गृह घोषित कर अनेक रियायतें प्रदान की गयी हैं।

निर्यात संवर्द्धन औद्योगिक पार्कों की स्थापना की गयी है । इस योजना में उद्यमियों को परियाजना लागत का 75 प्रतिशत तक (अधिकतम 10 करोड रू0) केन्द्रीय अनुदान की व्यवस्था है। यह महत्वपूर्ण है कि इन पार्कों की स्थापना हेतु भूमि की व्यवस्था राज्य सरकारों द्वारा की जायेगी। मुख्यता विकसित क्षेत्रों में इन पार्कों की स्थापना की जायेगी। ऐसे एक औद्योगिक पार्क की स्थापना में आने वाली लागत अनुमानतः 25 करोड होगी । केन्द्र सरकार विभिन्न राज्यों में अब तक 25 पार्क की स्थापना को स्वीकृति प्रदान की है। ये पार्क निर्यात उन्मुख औद्योगिक इकाइयों को वरदान सिद्ध होगें ऐसा विश्वास है।

16.18 सारांश

विदेशी व्यापार दो राष्ट्रों के बीच होने वाले आयात निर्यात का समुच्चय है। प्राकृतिक संसाधन, मानवीय श्रम व उपलब्ध तकनीक के आधार पर एक राष्ट्र कुछ वस्तुओं के उत्पादन में विशेषता प्राप्त कर लेता है और अपने पास उपलब्ध विक्रय योग्य आधिक्य को दूसरे राष्ट्रों को निर्यात कर देता है। इस एकत्रित विदेशी विनिमय से उसे विदेशों से माल आयात करने की आर्थिक सामर्थ्य प्राप्त हो जाती हे। आयात निर्यात का यह व्यापार कुछ निश्चित नियमों व अधिनियमों के निर्देशन मे सम्पन्न होता है। विदेशी व्यापार अधिनिचयम 1992 इस दिशा में नियंत्रणकारी और पथ प्रदर्शक है।

विदेशी सरकार केन्द्र सरकार की अनुमति और सहमति से सम्पन्न होता है। इस व्यापार से आयातक और निर्यातक दोनों देशों को लाभ प्राप्त होता है। अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव बढ जाता है। विश्व शांति के प्रति आसक्ति बढती है और परस्परता बढने से सहयोग व समन्वय बढता है।

भारत की विश्व बाजार में अच्छी स्थिति है जो भारत स्वतंत्रता के समय सुई तक आयात करता था । अब तकनीक और तकनीकी वस्तुओं का निर्यातक बन गया है। भारत की बहुराष्ट्रीय कंपनियॉ विदेशों में वस्तुओं का निर्माण और निर्यात कर रही हैं।

16.19 शब्दावली

- **आयात** :– दूसरे राष्ट्रों से माल खरीद कर अपने राष्ट्र में लाने को आयात कहा जाता है।
- **निर्यात** :– अपने राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र को माल बेचने और भेजने की प्रक्रिया निर्यात कहलाती है।
- **विश्व व्यापार संगठन** :– 1 जनवरी 1995 को गैट के स्थान पर गठित विश्व व्यापार को नियमित, नियंत्रित और अनुशासित करने वाली बैश्विक संस्था जिसका मुख्यालय जेनेवा में है।
- **आयात निर्यात नीति** :– सरकार द्वारा आयात निर्यात व्यापार को नियमित करने के उद्देश्य से बनायी गयी नीतियों का समूह जो केन्द्र सरकार द्वारा बनायी और घोषित की जाती है।
  - **वैश्वीकरण (भू मण्डलीकरण)** :– अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वस्तु, व्यक्ति तथा पूंजी के अवाध आवागमन को सुगम बाने का आर्थिक दर्शन जो उदारीकरण के भाव से अनुप्राणित है।
  - **द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय समझौते** :– दो राष्ट्रों के बीच हुये समझौतें द्विपक्षीय तथा दो से अधिक राष्ट्रों के बची हुये समझौते बहुपक्षीय कहलाते हैं।
  - **विशेष आर्थिक क्षेत्र** :– उत्पादन और विक्रय, आयाता निर्यात में करों की छूट के साथ अन्य सुविधाओं से युक्त क्षेत्र विशेष आर्थिक क्षेत्र कहलाते हैं।
  - **आयात प्रतिस्थापन** :– विदेशों के आयात की जाने वाली वसतुओं का अपने ही देश में उपलब्ध वैकल्पिक वस्तओं का प्रयोग आयात प्रतिस्थापना कहलाता है।
  - **निर्यात संवर्द्धन** :– निर्यातों को बढावा देने के लिये किये गये सभी उपाय निर्यात संवर्द्धन के प्रयास कहलाते हैं निर्यात संवर्द्धन का आशय है निर्यात को बढावा

16.20 बोध प्रश्न

बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य

1. विदेशी व्यापार नीति की घोषणा विदेश मंत्रालय द्वारा की जाती है। (सत्य/असत्य)
2. विदेशी व्यापार नीति की घोषणा प्रतिवर्ष की जाती है। (सत्य/असत्य)
3. विदेशी व्यापार से केवल निर्यातकर्ता राष्ट्र को लाभ होता है अयातक को नहीं । (सत्य/असत्य)
4. विदेशी व्यापार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाता है। (सत्य/असत्य)

5. विदेशी व्यापार विश्व व्यापार संगठन की नीतियों व नियमों से अनुशासित होता है। (सत्य/असत्य)
6. विश्व व्यापार संगठन की स्थापना 1995 में हुयी ।(सत्य/असत्य)
7. विदेशी व्यापार से कुछ अहित भी होता है। (सत्य/असत्य)
8. विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना निर्यात संवर्द्धन के उद्देश्य से की जाती है। (सत्य/असत्य)
9. निर्यात आयात का भुगतान करते हैं। (सत्य/असत्य)
10. **"निर्यात करों अन्यथा नष्ट हो जाओंगे"** यह नारा भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं0 नेहरू ने दिया था। (सत्य/असत्य)

16.21 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.22 स्वपरख प्रश्न

1. विदेशी व्यापार के अर्थ सामाजिक लाभों का वर्णन कीजियें ?
2. अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना वृद्धि में विदेशी व्यापार की क्या भूमिका है ?
3. विदेशी व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का वर्णन कीजिये ?
4. आर्थिक उपनिवेशवाद से आप क्या समझते हैं ?
5. विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थाना कब और क्यों की गयी थी ?
6. भारत विश्व व्यापार में सर्वश्रेष्ठ कैसे बन सकता है ?
7. बिल ऑफ लेडिंग से आप क्या समझते हैं ? विदेशी व्यापार में बिल ऑफ लेडिंग की क्या भूमिका हैं ?
8. विश्व व्यापार संगठन (WTO) गॉट GATT से किस प्रकार भिन्न है ?
9. आयात निर्यात मे काम आने वाले प्रलेखों का वर्णन कीजिये ?
10. **"विदेश व्यापार आर्थिक विकास का इंजन है"** इस कथन को स्पष्ट कीजिये ?
11. आयात निर्यात की प्रमुख मदों का वर्णन कीजिये ?
12. विदेशी व्यापार (विकास एवं नियमन) अधिनियम 1992 के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिये ?
13. विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zone) से आप क्या समझते है ?
14. द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौतों से क्या आशय है ?
15. भारतीय संदर्भ में विदेशी व्यापार की समस्याओं का वर्णन कीजिये ?

16.23 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.

4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई –17 विदेशी व्यापार नीति/ निर्यात आयात नीति

(Foreign Trade Policy Export Import Policy)

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 विदेशी व्यापार नीति से आशय
17.3 विदेशी व्यापार नीति की आवश्यकता उपयोगिता एव उद्देश्य
17.4 स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी व्यापार नीति
17.5 स्वतंत्रता के पश्चात नियोजन काल से पूर्व की आयात निर्यात नीति
17.6 नियोजन काल में आयात निर्यात नीति
17.7 आयात निर्यात नीति पर वैश्वीकरण का प्रभाव
17.8 नयी विदेशी व्यापार नीति की घोषणा
17.9 नवीन विदेशी व्यापार नीति के महत्ता पूर्ण बिन्दु
17.10 सारांश
17.11 शब्दावली
17.12 बोध प्रश्न
17.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.14 स्वपरख प्रश्न
17.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- आयात निर्यात नीति के आशय का ज्ञान प्राप्त कर सके।
- आयात निर्यात नीति की आवश्यकता का वर्णन कर सके।
- स्वतंत्रता से पूर्व काल की आयात निर्यात नीति का ज्ञान प्राप्त कर सके।
- नवीनतम विदेशी व्यापार नीति की घोषणा का वर्णन कर सके।
- विदेशी व्यापार नीति के प्रमुख तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर सके।
- विदेशी व्यापार की नवीन प्रवृत्तियों का वर्णन कर सके।

17.1 प्रस्तावना

प्रकृति ने अपने उपहार विश्व के सभी राष्ट्रों में इस प्रकार वितरित किये है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से परस्परता के भाव से जुडा रहे। एक दूसरे की जरूरत महसूस करता रहे तथा वस्तुओं का विनिमय करता रहे। जिस वस्तु को वह बना सकता है बनाये। कच्चे माल की सुलभता श्रम शक्ति की उपलब्धता तकनीकी विशेषज्ञता और विपणन कौशल के आधार पर एक राष्ट्र वस्तुएं बनाने तथा बना कर बेचने में दक्ष हो जाता हे। दूसरे राष्ट्रों की तुलना में कम लागत पर वस्तु बनाने के कारण यह राष्ट्र विश्व बाजार में वस्तुओं की निर्यात करता है तथा जिन वस्तुओं की आवश्यकता हेाती है उनका आयात करता है।

निर्यात आयात को नियंत्रित करने के लिये प्रत्येक राष्ट्र को एक सुव्यवस्थित निर्यात आयात नीति की आवश्यकता होती है। अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुये प्रत्येक राष्ट्र अपनी स्पष्ट आयात निर्यात नीति का निर्माण करता है।

स्वतंत्रता से पूर्व की दशा में भारत की निर्यात आयात नीति का निर्माण अंग्रेज सरकार करती थी । अतः राष्ट्र हित के स्थान पर अंग्रेजों के हित साधने वाली नीति बनती थी। पर स्वतंत्रता के पश्चात आयात निर्यात नीति का निर्माण भारत की जनता के हितों को ध्यान में रख कर किया जता है। विदेशी विनिमय कोष बढाने के लिए उदार निर्यात और नियंत्रित आयात पर बल दिया जाता है।

17.2 आयात निर्यात नीति अथवा विदेशी व्यापार नीति से आशय (Meaning of EXIM Policy)

निर्यात आयात नीति से आशय उस नीति से है जो राष्ट्र के निर्यात आयत को नियमित करने के लिये बनायी जाती है। नीति कुछ नियमों का समूह होती है। इन नियमों के द्वारा कुछ कार्य करने और कुछ न करने का निर्णय किया जाता है। निर्यात आयात नीति को संक्षेप में एक्जिम नीति कहा जाता है। Expert का EX तथा Import का IM लेकर EXIM नाम रखा गया है।

इस नीति में निर्यात एवं आयात संबंधी नीतियों का उल्लेख किया जाता। निर्यात नीति से निर्यात तथा आयात नीति से आयात प्रक्रिया प्रभावित हेाती है।

निर्यात नीति से यह निर्देशित किया जताा है कि देश से किन किन वस्तुओं का निर्यात किया जा सकता है। निर्यात की प्रक्रिया क्या होगी कौन कौन से कर लगाये जायेगे। सरकार द्वारा द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौतों से भी निर्यात नीति प्रभावित होती है। इसी प्रकार आयात नीति में यह उल्लेख रहता है कि किन किन राष्ट्रों से किन किन वस्तुओं का कितनी मात्रा में आयात किया जा सकेगा। आयात की प्रक्रिया क्या हेागी तथा आयात के संबंध में कितना कर देय होगा।

सरकार समय समय पर आयात निर्यात नीति की घोषणा करती रहती है जिसके माध्यम से पुरानी नीतियॉ आवश्यकतानुसार संशोधित होती रहती है। आयात निर्यात नीति विदेशी व्यापार से संबंधित हेाती है अतः विदेशी व्यापार नीति भी कहा जाता है।

स्वतंत्रता के बाद से 2014 तक इसे EXIM Policy ही कहा जाता था पर 2015 में घोषित नीति को विदेशी व्यापार नीति कहा गया। विदेशी व्यापार नीति मे विदेशी व्यापार संबंधी भुगतानों का आचरण भी परिभाषित किया जाता है। विदेशी व्यापार नीति का काल 1 साल 3 साल 5 साल 10 साल कुछ भी हो सकता है। विदेशी व्यापार नीति को घोषणा उद्योग व्यापार मंत्रालय द्वारा की जाती है।

17.3 विदेशी व्यापार नीति की आवश्यकता उपादेयता एवं उद्देश्य (Importance of Objects for Foreign Trade Policy)

विदेशी व्यापार को नियमित तथा नियंत्रित करने के उद्देश्य से एक स्पष्ट नीति का होना परम आवश्यक है। नीति से अनुशासन बना रहता है और कार्य कुछ निर्धारित परम्पराओं एवं व्यवस्थाओं के अनुसार संचालित हो जाता है।

स्वतंत्रता से पूर्व सभी नीतियों का निर्माण विदेशी हितों को साधने के लिये किया जाता था पर स्वाधीनता के पश्चात राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के उद्देश्य से नीतियॉ बनायी और लागू की जाती है।

विदेशी व्यापार नीति की आवश्यकता और उपादेयता निम्न विवेचन से स्पष्ट है :–

आयातों को नियंत्रित करना :'– आयातों का भुगतान विदेशी मुद्रा अथवा स्वर्ण कोष से किया जाता है । अतः यह आवश्यक है कि केवल अत्यावश्यक होने पर

ही आयात किया जाय। किन वस्तुओं का और कितनी मात्रा में अयात हो यह एक नीति के माध्यम से तय होना आवश्यक है। भारत विकासशील राष्ट्र है अतः विदेशी विनिमय कोष का औचित्य के आधार पर उपयोग अति आवश्यक है।

आयात प्रकिया को नियमित करना :– आयात प्रकिया के माध्यम से ही विदेशों से वस्तुये मंगाई जा सकती है। अतः एक सुनिश्चित नीति पर आधारित प्रकिया का अपनाया जाना अति आवश्यक है।

आयात संबंधी नियमों का निर्माण :– राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बने नियामक ढांचे के अनुकूल नियमों का निर्माण किया जताा है। इन्हीं नियमों के आधीन आयात की प्रकिया सम्पन्न होती है। नियमों के निर्माण के लिये एक स्पष्ट नीति का निर्माण करना अति आवश्यक है।

आयात प्रतिस्थापन हेतु उपाय :– भारतीय अर्थव्यवस्थाा को सुदृढ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि विदेशों से अयात की जाने वाली वस्तुओं का निर्माण देश मे किया जाये इससे विदेशी विनिमय की बचत होगी और राष्ट्र में वस्तुओं के उत्पादन को बढावा मिलेगा। रोजगार के अवसर बढेगें तथा सकल घरेलू उत्पाद एंव प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होगी।

आयात प्रतिस्थापन का कार्यक्रम स्पष्ट नीति के आधार पर ही किया जा सकता है।

नियति संवर्द्धन हेतु नीति :– राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को वास्तविक सुदृढता प्राप्त करने के लिये निर्यातों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। एक स्पष्ट विदेशी व्यापार नीति ही इस दिशा में प्रभावी हो सकती है। इसी नीति के आधार पर विश्व के भिन्न भिन्न राष्ट्रों में अपनी वस्तुओं का बाजार पैदा किया जताा है।

यह कहा जाता है कि निर्यात व्यापार किसी राष्ट्र के विकास के इंजन का कार्य करता है वहीं विकास की गति निर्धारित करता है और अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी में राष्ट्र की भूमिका निर्धारित करता है।

नियति प्रकिया का निर्धारण :– विदेशी व्यापर नीति के आधार पर ही निर्यात की प्रकिया निर्धारित की जाती है। निर्यात के नियमन हेतु विभिन्न नियमों का निर्माण किया जताा है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी राष्ट्र की विदेशी व्यापार नीति ही विदेशी व्यापार अर्थात आयात एवं निर्यात की दशा और दिशा का निर्धारण करती है। इसी नीति के आधार पर विदेशी व्यापार का नियामक ढांचा तैयार किया जाता है तथा विभिन्न संगठनों व निगमों का निर्माण किया जाता है।

आयात निर्यात नीति के उद्देश्य (Objectives of EXIM Policy) :– आयात निर्यात नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत होते हैं :–

- निर्यातों में वस्तुओं और मूल्य के आधार पर वृद्धि करना, विविधता उत्पन्न करना और निर्यात की मदों में नयी नयी वसतुओं और सेवाओं का समावेश करना।
- कृषि उत्पाद तथा भारतीय उद्योगों की उत्पादता गुणवत्ता और प्रतिस्पर्द्धात्मकता को बढाना एवं प्रोत्साहित करना ।
- वैश्वीकरण के संदर्भ में वस्तुओं और सेवाओं में विश्व स्तरीय प्रामाणिकता और स्वीकार्यता उत्पन्न करना।

- इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रीकल तथा रसायन क्षेत्र मे पूंजीगत क्षेत्र में तथा तकनीकी एंव प्रोद्यौगिकी क्षेत्र में निर्यात की संभावनाओं को बढाना।
- देश के नौजवानों को रोजगार के नये नये अवसर उपलब्ध कराना।
- उपभोक्ताओं को उपयोग हेतु श्रेष्ठ गुणवत्तावाली वस्तुएं उपलब्ध कराना।
- वस्तुएं एवं सेवाये श्रेष्ठ गुणवत्ता के साथ उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना।
- शेष विश्व के राष्ट्रों के साथ परस्परता का भाव उत्पन्न करना तथा विश्व बाजार में अपनी रेंक में सुधार करना।
- विदेशी मुद्रा के अनुकूलतम उपयोग द्वारा राष्ट्र की आवश्यकतानुसार विदेश से कच्चा माल, तकनीक और प्रोद्यौगिकी का आयात करना।

विदेशी व्यापार की किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास में अप्रतिम भूमिका है। सम्पूर्ण विश्व के सभी राष्ट्रों में एक दूसरे से जुडने और जुडे रहने के लिये विदेशी व्यापार आवश्यक है। व्यापार व्यवस्था बनाये रखने में सहायक है तथापि व्यवस्था व्यापार की पूर्व शर्त हें

किसी राष्ट्र का विदेशी व्यापार उस राष्ट्र की विदेशी व्यापार नीति से अनुशासित हेाता है। विदेशी व्यापार नीति 3 प्रकार की हो सकती है।

1. पूरी तरह स्वतंत्र व्यापार नीति (मुक्त व्यापार नीति)
2. पूरी तरह नियंत्रित व्यापार नीति (प्रतिबंधित व्यापार नीति)
3. मिश्रित व्यापार नीति

पूरी तरह स्वतंत्र व्यापार नीति :– इस दशा में आयात निर्यात पर कोई नियंत्रण नहीं होता। व्यक्ति व्यापारिक संगठन एवं संस्थान चाहे जिस राष्ट्र से जो चाहे आयात करें जो चाहें निर्यात करें। सरकार का इस स्थिति में कोई हस्तक्षेप नही होता । इस अवाध व्यापार नीति या मुक्त व्यापार नीति भी कहते हैं। इसमें लाइसेंस, कोटा, परमिट, कस्टम, टैक्स, सबसिडी या कर उसका शुल्क प्रशुल्क का कोई स्थान नहीं होता । ऐसा प्रायः खुली अर्थव्यवस्था वाले अति विकसित राष्ट्रों में होता है।

पूरी तरह नियंत्रित व्यापार नीति :– इस दशा में देश के विदेशी व्यापार पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है। किस राष्ट्र से आयात किया जा सकेगा वह भी क्या ? और कितना ? तथा इसी प्रकार किस राष्ट्र को क्या और कितना निर्यात किया जा सकेगा ? इसका निर्णय स्वंय सरकार करती है। सरकार अनुज्ञा पत्र निर्गत करके आयात निर्यात को पूरी तरह अपने नियंत्रण मे रखती है। इसे प्रतिबंधित व्यापार नीति भी कहा जाता है।

मिश्रित नीति :– मिश्रित नीति की दशा में सरकार कुछ क्षेत्र मे स्वतंत्रता प्रदान करती है तो कुछ क्षेत्रों को पूरी तरह नियंत्रित रखती है। भारत सरकार इसी नीति का अनुपालन करती है। भारत में आयात निर्यात व्यापार विदेशी व्यापार (विकास एवं नियमन) अधिनियम 1992 के प्रावधानों से अनुशासित रहता है। इस अधिनियम के आधीन समय समय पर नियम, उपनियम एवं आदेश निर्गत होते रहते हैं जो आयात निर्यात व्यापार को दिशा एंव गति प्रदान करते हैं।

वस्तुओं एवं सेवाओं का भौतिक स्थानान्तरण कस्टम अधिनियम 1962 के नियमों के आधीन होता है। वस्तुओं और सेवाओं की गुणवत्ता के नियमन के लिये निर्यात

गुणवत्ता नियंत्रण एवं निरीक्षण अधिनियम 1963 बना दिया गया है। विदेशी विनिमय व्यवहारों का नियंत्रण विदेशी विनिमय प्रबंधन (फेमा) अधिनियम 1999 के नियमों के आधीन किया जाता है।

मिश्रित नीति में यह ध्यान रखा जाता है कि जिन उद्योगों व व्यापारिक क्रियाओं को संरक्षण की आवश्यकता है उन्हें संरक्षण प्रदान किया जाये और जहॉ नियंत्रण की आवश्यकता है नियंत्रण रहे।

स्वतंत्रता के पश्चात से हम लोग इसी मध्य मार्ग का पालन करते रहे। 1991 में नयी आर्थिक नीति की घोषणा ने उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा निजीकरण का द्वारा खोला और अर्थव्यवस्था बन्द अर्थव्यवस्था से खुलेपन की ओर चल पडी भारत 1947 में गाट (जनरल एग्रीमेण्ट आन टेरिफ एण्ड ट्रेड) अर्थात प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता का संस्थापक सदस्य था और 1995 में विश्व व्यापार संगठन (WTO) का भी सदस्य है।

17.4 स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी व्यापार नीति (Foreign Trade Policy before Independence)

स्वतंत्रता से पूर्व भारत मे अंग्रेजों का राज्य था और विदेशी शासन के शोषण परक दृष्टिकोण के कारण भारत को कृषि प्रधान तथा कच्चा माल पैदा करने वाला राष्ट्र बना कर रखा गया। सारा विदेशी व्यापार भारत से कुछ वस्तुओं के निर्यात (कपास, नील, मसाले, औषधीय जडी बूटियां तथा अनेक वस्तुओं मशीन, कपडा, दैनिक उपयोग की वस्तुयें) के आयात तक सीमित था। किन राष्ट्रों से क्या आयात किया जायेगा और किन राष्ट्रों को क्या निर्यात किया जायगा। इस सबका निर्णय अंग्रेजी सरकार अपने संबधों तथा नीतियों के आधार पर करती थी। स्वतंत्रता से पूर्व हमार सारा विदेशी व्यापार ब्रिटेन तथा राष्ट्र मण्डल के राष्ट्रों तक ही सीमित था और हर अपने यहा पैदा होने वाली चाय, जूट, कपास मसाले इन राष्ट्रों को भेज कर उनसे पैट्रोल, केमिकल, मशीने, परिवहन के उपकरण, लोहा इस्पात, वेजिटेबिल आयल तथा नाना प्रकार की रसायनिक वस्तुये आयात करते रहे। इस अवधि में हमारे विदेशी व्यापार की संरचना का स्वरूप निम्नवत था।

1. भारत से कच्चे माल का निर्यात होता था।
2. भातर में विदेशों (विशेषतः ब्रिटेन) से निर्मित वसतुओं का आयात हेाता था।

इन परिस्थितियों के आलोक में तकनीकी दृष्टि से हमारी कोई स्पष्ट आयात निर्यात नीति नहीं थी । विदेशी शासकों द्वारा निर्धारित नीति ही हमारी भाग्य लिपी थी अर्थात 1947 तक भारत के व्यापार का स्वरूप एक परम्परागत औपनिवेशक और कृषि प्रधान राष्ट्र की भांति ही था। भारत का सारा विदेशी व्यापार इंग्लैण्ड और इग्लैण्ड के साम्राज्य वाले राष्ट्रों तक ही सीमित था। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत केवल 50 वस्तुओं का निर्यात करता था जबकि आयातों की श्रंखला बहुत लम्बी थी।

स्वतंत्रता से पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था पूरी तरह कृषि प्रधान थी। अंग्रेज शासकों की नीति के कारण भारत कच्चा माल पैदा करने वाला राष्ट्र था। इस कच्चे माल को इंग्लैण्ड ले जाकर इसे उद्योगों के माध्यम से उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराने की शोषण पूर्ण नीति के कारण भारत केवल आयातकर्ता राष्ट्र था। जडी बूटियॉ मसाले और कृषि जन्म उत्पाद ही यदा कदा निर्यात किये जाते थे।

ग्रेट ब्रिटेन का उपनिवेश होने के कारण भारत की अपनी कोई स्वतंत्र विदेश नीति नहीं थी । अतः भारत का शेष विश्व के साथ संबंध अंग्रेज शासकों की इच्छा से निर्धारित होता था। विश्व व्यापार में भारत की स्थिति नगण्य थी क्योंकि भारत का अपना कोई स्वतंत्र निर्णय नहीं था। यहा तक कि विश्व युद्धों में भारत की भूमिका भी अंग्रेजों द्वारा ही निर्धारित की गयी थी। शेष विश्व के साथ भारत का संबंध ग्रेट ब्रिटेन के माध्यम से ही होता था। अतः किस राष्ट्र से क्या आयात करेंगे और किस राष्ट्र को क्या और कितना निर्यात किया जायगा इसका निर्णय लन्दन से किया जाता था, भारत से नहीं।

17.5 स्वतंत्रता के पश्चात नियांजन काल से पूर्व विदेशी व्यापार नीति (Foreign Trade Policy of Independence India during Pre plan Peroid)

स्वतंत्रता प्राप्ति का समय देश के विभाजन की दुखद घटना से प्रभावित रहा। बडी संख्या में लोगों का आना जाना हुआ । अतः सरकार का सारा ध्यान तथा कथित पाकिस्तान से आये हुये भातरीय नागरिकों की व्यवस्था करने पर केन्द्रित रहा । अतः इस काल खण्ड में किसी स्पष्ट विदेशी व्यापार नीति का निर्माण नहीं हो सका।

दुर्भाग्य की बात यह थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हम अपनी दैनिक आवश्यकताओं की औद्योगिक वस्तुये भी आयात करते थे। अतः उन दिनों राष्ट्र स्वतंत्रता पूर्व काल में बनी नीतियों से ही निर्देशित होता रहा।

निर्यात व्यापार वही कृषि उत्पाद जूट कपास, चाय और नील आदि तक ही सीमित रहा । यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि यह काल नीति निर्माण की दृष्टि से शून्य काल ही था क्योंकि इस अवधि में राजनीतिक उथल पुथल के कारण सरकार तात्कालिक समस्याओं के त्वरित समाधान में फसी रही। कुछ नया कर पाने का न तो अवसर था और न संकल्प शक्ति क्यांकि सरकार के सामने विस्थापित नागरिकों को किसी प्रकार से समायोजित करने की जटिल समस्या विद्यमान थी सो सरकार की सारी शक्ति पुरानी परम्परागत नीतियों के आधारपर येन केन प्रकारणे काम चला लेने भर की थी।

17.6 नियोजन काल में 1990 तक आयात निर्यात नीति (EXIM Policy in Plan Period Upto 1990)

पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारम्भ से आर्थिक क्रांति का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री और योजना आयोग के अध्यक्ष पण्डित नेहरू ने आर्थिक विकास के लिये विदेशी मुद्रा की आवश्यकता का महत्व समझते हुये आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात संबर्द्धन पर बल दिया। निर्यात बढाने की सबसे बडी आवश्यकता पर जोर देते हुये उन्होने राष्ट्र को एक नारा दिया – निर्यात करों अन्यथा राष्ट्र तवाह हो जायगा (EXPORT OR PERISH) । उन्होने जनता का आवाहन किया कि वस्तुओं का घरेलू उपयोग न करते हुये निर्यात करने की आवश्यकता है। अपने उपभोग को नियंत्रित कर वस्तुओं को विदेशी बाजार में भेज कर विदेशी मुद्रा अर्जित करना राष्ट्र की बडी आवश्यकता है।

1948 से 1990 तक आयात निर्यात की स्थिति निम्न तालिका से स्पष्ट हैः–

वर्ष आयात निर्यात व्यापार शेष (अमरीकी मिलियन डालर में)

1948-51	650	647	-3

1951-56	730	622	-108
1956-61	1080	613	-467
1961-66	1224	747	-477
1985-90	28,874	18033	-10841

1964 में नेहरू जी के निधन के पश्चात आये लगभग सभी प्रधानमंत्री नेहरू युग की ही देन थे । अतः आर्थिक चिन्तन की दृष्टि से नेहरू जी का अर्थशास्त्र ही प्रभावी रहा। सार्वजनिक क्षेत्र का प्राधान्य, भारी उद्योगों में सरकारी सक्रियता, बैकिंग बीमा, बिजली, सडक, रेल, हवाई, परिवहन सभी में सार्वजनिक क्षेत्र का वर्चस्व रहा। आयात निर्यात की दशा और दिशा में कोई बहुत उल्लखनीय परिवर्तन नहीं आया 1990 तक नेहरू दर्शन पर आधारित आयात निर्यात नीति ही चलती रही।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत की आयात निर्यात नीति दो वर्गो में विभाजित कर समझी जा सकती है।

1. 1991 से पूर्व की नीति
2. 1991 से पश्चात की नीति

1991 में वैश्वीकरण के दौर से देश की आर्थिक नीति में आये आमूल चूल परिवर्तन से देश की विदेशी व्यापार नीति में व्यापक परिवर्तन हुआ है। देश के भुगतान संतुलन में असाम्यता को ध्यान में रखते हुये आयात निर्यात नीति आयातों पर नियंत्रण और निर्यातों को बढावा देने की रही है ताकि विदेशी विनिमय की दृष्टि से कोई समस्या उत्पन्न न हो। इस हेतु विदेशी व्यापार नीति का दर्शन आयातों में कटौती और निर्यातों में वृद्धि से अनुप्राणित रहा है। नीति के आधार निम्नवत रहे हैं :–

1. केवल आवश्यक होने पर ही आयात किया जाये।
2. विलासिता की वस्तुओं का आयात नहीं किया जाना चाहिये।
3. आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनाना चाहिये।
4. आयातों को नियंत्रित करने के लिये कोटा, परमिट, लाइसेंसे की नीति बनाना चाहिये।
5. आयात करें को बढा दिया जाये ताकि आयात मंहगे हो जाये और लोग कम आयात करें।
6. निर्यात करों में कमी की जाये।
7. बहुपक्षीय समझौते किये जाये।
8. निर्यातकों को करों की छूट सहित विशेष सुविधाएं प्रदान की जाये। अपने उत्पादन का शत प्रतिशत निर्यात करने वाली व्यावसायिक इकाईयों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।
9. विशेष आर्थिक क्षेत्रो की स्थापना हो।
10. अपरम्परागत वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

17.7 निर्यात नीति पर वैश्वीकरण का प्रभाव (Impact of Globalisation on EXIM Policy)

1991 का वर्ष भारतीय अर्थचिन्तन की दिशा मे एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। क्योंकि इस वर्ष भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पी0वी0नरसिंहा राव और वित मंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह जी ने विश्व की अर्थधारा से प्रभावित होकर नयी

आर्थिक नीति की घोषणा कर दी। यह घोषणा उदारीकरण और वैश्वीकरण के साथ निजीकरण की भूमिका की स्वीकार्यता का उद्घोष था।

इस अवधि में बनी आयात निर्यात नीति उदार शर्तो वाली थी। कोटा परमिट लाइसेन्स से मुक्त केवल आवश्यकता से प्रेरित। जो जरूरी है उसका आयात किया जाये। किसी राष्ट्र विशेष , किसी ग्रुप विशेष से नहीं जहॉ से भी सुगमता और उचित मूल्यों पर उपलब्ध हो मंगाया जाये और जहां अपने उत्पाद का उचित मूल्य मिले निर्यात किया जाये 1991 के पश्चात भारत का विदेशी व्यापार निम्नतालिका से स्पष्ट व्यापार

(मूल्य करोड रूपये में)

क्रम0 सं0	वर्ष	निर्यात	प्रतिशत वृद्धि	आयात	प्रतिशत वृद्धि	व्यापार संतुलन	कुल व्यापार
1	1991-1992	44042	-	47851	-	-3809	91893
2	1992-1993	53688	21.9	63375	32.44	-9686	117063
3	1993-1994	69751	29.92	73101	15.35	-3350	142852
4	1994-1995	82674	18.53	89971	23.08	-7297	172645
5	1995-1996	106354	28.64	122678	36.35	-16324	229032
6	1996-1997	118818	11.72	138920	13.24	-20102	257738
7	1997-1998	129278	8.8	154176	10.98	-24899	283454
8	1998-1999	139753	8.1	178332	15.67	-38579	318085
9	1999-2000	159562	14.17	215528	20.86	-55967	375090
10	2000-2001	203571	27.58	230873	7.12	-27302	434444
11	2001-2002	209018	2.68	245200	6.21	-36182	454218
12	2002-2003	255137	22.06	297206	21.21	-42069	552343
13	2003-2004	293367	14.98	359108	20.83	-65741	652475
14	2004-2005	375340	27.94	501065	39.53	-125725	876405
15	2005-2006	456418	21.6	660409	31.8	-203991	1116827
16	2006-2007	571779	25.28	640506	27.27	-268727	1412285
17	2007-2008	655864	14.71	1012312	20.44	-356448	1668176
18	2008-2009	840755	28.19	1374436	35.77	-533680	2215191
19	2009-2010	845534	0.57	1363736	-0.78	-518202	2209270
20	2010-2011	1136964	34.47	1683467	23.45	-546503	2820431
22	2011-2012	1465959	28.94	2345463	39.32	-879504	3811422
23	2012-2013	1634318	11.48	2669162	13.8	-1034844	4303480
24	2013-2014	1905011	16.56	2715434	1.73	-810423	4620445
25	2014-2015	1896348	-0.45	2737087	0.8	-840738	4633435

17.8 नवीन विदेशी व्यापार नीति 2015–2020 की घोषणा

विदेश व्यापार नीति की घोषणा भारत सरकार के वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय द्वारा की जाती है। नवीन नीति 1 अप्रैल 2015 को घोषित हुयी है।
इस पंचवर्षीय नीति में वस्तुओं व सेवाओं के निर्यातों को बढाने के साथ साथ रोजगार सृजन और मेक इन इंडिया विजन का ध्यान रखा गया है।

17.9 नवीन विदेशी व्यापार नीति के प्रमुख तत्व

इस नीति के प्रमुख बिन्दु निम्नवत है :–

1. दो नयी योजनाओं की घोषणा :– पहले से चली आ रही अनेक योजनाओं के स्थान पर दो योजनाओं की घोषणा की गयी एक भारत से वस्तु

निर्यात योजना (MEIS Merchandise Exports from India Scheme) तथा दूसरी भारत से सेवा निर्यात योजना (SEIS, Sorvice Export from India Scheme) भारत से वस्तु निर्यात योजना (MEIS) का उद्देश्य विशेष बाजारों को वस्तुओं का निर्यात तथा सेवा निर्यात योजना का उद्देश्य भारत से सेवाओं के निर्यात पर दृष्टि रखना और उसे प्रोत्साहित करना है।

2. निर्यात संवर्द्धन पूंजीगत सामान योजना ईपीसीजीएस EPCGS (Export Promotion Capital Goods Scheme) :– यह योजना पूंजीगत वस्तुओं के निर्यात संबर्द्धन की दृष्टि से संचालित की गयी है। इस योजना के अंतर्गत प्रोद्यौगिकी में सुधार तथा बेहतर सेवाओं के लिये शून्य सीमा शुल्क पर पूंजीगत वस्तुओं के आयात की अनुमति वस्तुओं के निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिये यथा संभव प्रयास किये जायेगें। अधिसूचित उत्पादों के अधिसूचित बाजारों व राष्ट्रों में MEIS के अंतर्गत देय पुरूस्कार विदेशी मुद्रा में ही देय होगा।

सेवाओं का निर्यात बढाने के लिये SFIS (Servied from India Scheme) के स्थान पर सर्विस एक्सपोर्ट फ्रोम इंडिया (SEIS) स्कीम लायी गयी। यह योजना भारत के सेवा प्रदान कर्ताओं Indian Service Providers के स्थान पर भारत से सेवा प्रदाताओं पर लागू हेागी।

- पूंजीगत सामान घरेलू उत्पादों से ही खरीदने की स्थिति मे ईपीसीजी योजना के अंतर्गत निर्यात दायित्व 90 प्रतिशत से घटाकर 75 प्रतिशत कर दिया गया इससे मेक इन इंडिया योजना को प्रात्साहन मिलेगा।
- व्यापार करने मे सुगमता की दृष्टि से सारे कार्यालय 24X7 के आधार पर रात दिन अनवरत सेवा करते रहेगें।
- निर्यात उन्मुख इकाइयों व निर्यात गृहों को विशेष सुविधायें प्रदान किये जाने की प्रावधान है।
- 33 सबसे कम विकसित राष्ट्रों के लिये शुल्क मुक्ति योजना (DFTP) Duty Free Tarrif Preference योजना को अब विदेशी व्यापार नीति के तहत स्वीकार कर लिया गया ।
- निर्यात के क्षेत्र में अच्छा काम करने वाले निर्यातक व्यावसायिक संगठनों को उनकी श्रेष्ठता प्रमाणित करते हुये एक स्टार दो स्टार तीन स्टार, चार स्टार और पांच स्टार दिये जाने की योजना है। पिछले 2 वर्षों में 30 लाख डालर के निर्यातकर्ता को एक स्टार प्रदान किया गाया 2.5 करोड डालर के निर्यातक को दो स्टार प्रदान किये जायेगा। 50 करोड डालर के निर्यात पर चार स्टार तथा 200 करोड डालर के निर्यात की दशा में फाइव स्टार प्रदान किये जाने का प्रावधान है।

17.10 सारांश

प्रत्येक संयुक्ता सम्पन्न राष्ट्र अपनी विदेश नीति के आलोक में विदेशी व्यापार नीति का निर्माण करता है। किसी भी नीति का प्रमुख उद्देश्य सीमाओं का निर्धारण, नियमों का निर्माण तथा आचरण की रणनीति का निर्माण करना होता है।

क्या किया जायगा और क्या नहीं इन बिन्दुओं को निश्चित करना होता है। नीति का अंतिम उद्देश्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति और हितों की रक्षा करना होता है।

विदेशी व्यापार के दो पक्ष होते हैं आयात एवं निर्यात । अतः विदेशी व्यापार नीति से आशय उस नीति से है जिसके आधीन आयात निर्यात की प्रक्रिया, सीमा और प्रकृति निर्धारित की जाती है। संक्षेप में विदेशी व्यापार नीति विदेशी व्यापार के सभी पक्षों को सम्मिलित करते हुये बनायी गयी नीति है।

भारत में लम्बे समय तक विदेशी व्यापार नीति को निर्यात आयात नीति Export Import Policy संक्षेप में EXIM Policy कहा जाता रहा हैं । भारत की निर्यात आयात (विदेशी व्यापार नीति) नीति विदेशी व्यापार (विकास तथा नियमन अधिनियम 1962 के प्रावधानों के अनुसार बनायी और लागू की जाती है) भारत सरकार का विदेश व्यापार महा निदेशालय (Director General of Foreign Trade) आयात निर्यात के सभी क्रियाकलापों को अनुशासित करता है।

अपनी संपूर्णता में आयात निर्यात नीति आयात निर्यात संबंधी नियमों व निर्देशों का उल्लेख पत्र है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी आवश्यकता के अनुसार वस्तुओं का आयात करता है तथा अपने यहॉ निर्मित वस्तुओं का निर्यात करता है। पर यह आयात निर्यात अबाध और स्वतंत्र रूप से नहीं होता है। इसे नियमित तथा नियंत्रित करने के लिये एक स्पष्ट नीति बनायी जाती है। आयात के लिये आयात नीति तथा निर्यात के लिये निर्यात नीति बनायी जाती है। दोनों को संयुक्त रूप से निर्यात आयात नीति कहा जाता है।

विश्व का कोई भी राष्ट्र यह नहीं सोच सकता कि वह पूरी तरह आत्य निर्भर है उसे कहीं किसी राष्ट्र से कुछ मंगाने की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति ने अपने सभी उपहारों का विश्व के सभी राष्ट्रों में इस प्रकार वितरण किया है कि प्रत्येक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र पर निर्भर करना होता है। यह निर्भरता और परस्परता ही विदेशी व्यापार की जननी है। विदेशी विनिमय कोष के सृजन तथा भुगतान संतुलन और साम्य की दृष्टि से भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अपनायी गयी आयात निर्यात नीति का ही प्रतिफल होता है।

17.11 शब्दावली

आयात :– वस्तुओं और सेवाओं का दूसरे राष्ट्रों से खरीद कर मंगाने की प्रक्रिया का नाम आयात है।

निर्यात :– किसी दूसरे राष्ट्र को आदेशानुसार वस्तुएं एवं सेवायें भेजने की क्रिया निर्यात कहलाती है।

विदेशी व्यापार नीति :– विदेशों से माल और सेंवाएं प्राप्त करने तथा विदेशों को वस्तुऐं और सेवायें भेजने की प्रक्रिया को नियमित और निर्देशित करने वाली नीति विदेशी व्यापार नीति कहा जाता है। पहले इस नीति को EXIM Policy आयात निर्यात नीति कहा जाता था।

मुक्त व्यापार नीति :– जब आयात निर्यात पर कोई सरकारी प्रतिबंध नहीं होता अर्थात कोई भी वस्तु या सेवा किसी भी राष्ट्र से किसी भी मात्रा में मंगायी जा सकती है या भेजी जा सकती है तो इसे मुक्त व्यापार नीति कहा जाता है।

प्रतिबंधित व्यापार नीति :– जब आयात निर्यात सरकारी नीति नियमों से अनुशासित हो तो यह प्रतिबंधित व्यापार नीति होती है।

वस्तु निर्यात योजना (MEIS- Merchandise Exports from India Scheme) :– नवीन आयात निर्यात नीति (व्यापार नीति) में विपणन योग्य वस्तुओं के निर्यात हेतु विशेष नीति बनायी गयी है।

सेवा निर्यात योजना (SEIS Service Exporty from Indai Scheme) :– विश्व के बाजारों में सेवाओं के निर्यात हेतु विशेष योजना बनायी गयी है।

निर्यात संबर्द्धन पूंजीगत सामान योजना (EPCGS) Export Promotion Capital Goods Scheme) :– यह योजना पूंजीगत वस्तुओं के निर्यात संवर्द्धन की दृष्टि से संचालित की गयी है। इस योजना में प्रोद्यौगिकी में सुधार और सेवाओं में सुधार हेतु शून्य आयात शुल्क पर पूंजीगत वस्तुओं को आयात की अनुमति है जिससे बढानें में सहायता मिलेगी।

शुल्क मुक्ति योजना (DFTP Duty Free Tarrif Plan) :– कम विकसित राष्ट्रों को निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार ने शुल्क मुक्ति प्रदान करने की घोषणा की है।

17.12 बोध प्रश्न

(अ) बहु विकल्पीय प्रश्न

1. निम्न में से क्या विदेशी व्यापार नीति का उपकरण नहीं है
   (अ) आयात कोटा (ब) अैरिफ शुलक
   (स) सबसिडी (द) ये सब
2. व्यापार नीति बनायी जाती है।
   (अ) प्रति वर्ष (ब) हर तीसरे साल
   (स) हर पांच वर्ष पर (द) आवश्यकतानुसार कभी भी
3. भारत में विदेश व्यापार नीति बनाने और घोषित करने का अधिकारी है
   (अ) भारत के राष्ट्रपति महोदय (ब) प्रधानमंत्री कार्यालय
   (स) उद्योग एवं व्यापार मंत्रालय (द) विदेश मंत्रालय
4. आयात निर्यात नीति की घोषणा से पूर्व इसका परीक्षण करता है
   (अ) विश्व व्यापार संगठन (ब) वित मंत्रालय
   (स) भारतीय रिजर्व बैंक (द) इनमें से कोई नहीं
5. भारत की विदेश व्यापार नीति का सूत्र है
   (अ) मुक्त व्यापार (ब) निबोधावादी नीति
   (स) नियंत्रित मुक्त व्यापार (द) ये सब

(ब) बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य

1. विदेश व्यापार नीति आयात निर्यात नीति का ही नाम है । (सत्य/असत्य)
2. विदेश व्यापार नीति विदेश मंत्रालय द्वारा घोषित की जाती है। (सत्य/असत्य)
3. वित्त मंत्रालय विदेश व्यापार नियमन की सर्वोच्च संस्था है। (सत्य/असत्य)
4. विश्व व्यापार संगठन बहुपक्षी समझौतों का स्वरूप है। (सत्य/असत्य)
5. निर्यात हेतु निरीक्षण का प्रमाण पत्र निर्यातक के जनपद के जिलाधिकारी द्वारा निर्गत किया जाता है। (सत्य/असत्य)
6. विदेश व्यापार नीति प्रतिवर्ष घोषित की जाती है। (सत्य/असत्य)

7. नवीनतम विदेश व्यापार नीति ने विदेशी व्यापार को सुगम बना दिया है। (सत्य/असत्य)
8. निर्यात की दशा में जी0एस0टी0 लागू नहीं होती। (सत्य/असत्य)
9. नोट बन्दी का विदेशी व्यापार पर कोई प्रभाव नहीं होता।(सत्य/असत्य)
10. भारत से सेवाओं का निर्यात सरकार द्वारा नियंत्रित मात्रा में ही किया जा सकता है। (सत्य/असत्य)

17.13 बोध प्रश्न के उत्तर

17.14 स्वपरख प्रश्न

1. विदेश व्यापार नीति के उद्देश्य का वर्णन कीजिये।
2. विदेश व्यापार में आयात निर्यात बैंक की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
3. भारत सरकार द्वारा घोषित नवीनतम विदेश व्यापार नीति अपनी पूर्ववर्ती नीतियों से किस प्रकार भिन्न है ?
4. वस्तु निर्यात योजना (MEIS Merchawdise Experts from India Scheme) क्या है ?
5. सेवा निर्यात योजना (SEIS-Service Exprot from India Scheme) से आप क्या समझते हैं ?
6. नवीन नीति निर्यात संबर्द्धन में किस प्रकार सहायक है ?
7. पूंजीगत वस्तुओं के निर्यात संबर्द्धन हेतु कौन सी योजना बनायी गयी है ? इसके क्या उद्देश्य हैं ?
8. विशेष आर्थिक क्षेत्र निर्यात संबर्द्धन की दिशा में किस प्रकार सहायक है ?
9. वैश्वीकरण का आयात निर्यात नीति पर क्या प्रभाव पडा है ?
10. विदेश व्यापार के नियमन में महा निदेशालय की क्या भूमिका है ?

17.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई –18 भुगतान संतुलन अथवा भुगतान शेष (Balance of Payment)

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 भुगतान संतुलन से आशय
18.3 भुगतान संतुलन की विशेषतायें
18.4 भुगतान संतुलन के घटक
18.5 भुगतान संतुलन का महत्व
18.6 व्यापार शेष अवधारणा एवं आशय
18.7 व्यापार शेष को प्रभावित करने वाले तत्व
18.8 व्यापार शेष एवं भुगतान शेष में अंतर
18.9 भुगतान संतुलन में असमानता की अवधारणा एवं कारण
18.10 भुगतान संतुलन में असमानता के कारण
18.11 भुगतान संतुलन में साम्य बनाये रखने के उपाय
18.12 भुगतान शेष में घाटे के कारण
18.13 प्रतिकूल भुगतान शेष के घाटे को दूर करने के उपाय
18.14 स्वातंत्र्योत्तर काल में भुगतान संतुलन की स्थिति
18.15 भुगतान संतुलन की भावी संभावनाये
18.16 सारांश
18.17 शब्दावली
18.18 बोध प्रश्न
18.19 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.20 स्वपरख प्रश्न
18.21 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- भुगतान शेष के स्वरूप की व्याख्या कर सकें।
- भुगतान शेष के अवयवों की व्याख्या कर सकें।
- भुगतान शेष एवं व्यापार शेष में अंतर को स्पष्ट कर सके।
- भुगतान शेष के आर्थिक प्रभाव की व्याख्या कर सकें।
- भुगतान संतुलन में साम्य को स्पष्ट कर सके।
- प्रतिकूल भुगतान शेष को अनुकूल बनाने की प्रक्रिया की व्याख्या कर सकें।
- भुगतान शेष की स्थिति एवं प्रकृति की व्याख्या कर सकें।
- भुगतान संतुलन के भावी परिदृश्य को स्पष्ट कर सके।

18.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विभिन्न राष्ट्रों के बीच माल एंव सेवाओं का आदान प्रदान होता है जिसे आयात निर्यात कहा जाता है। आयात निर्यात की राशि एक बराबर नहीं होती । अतः आयात निर्यात के बीच के अंतर को व्यापार शेष कहा

जाता है। अयातों की अपेक्षा निर्यात अधिक होने पर शेष धनात्मक अर्थात अनुकूल और निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होने पर शेष ऋणात्मक अर्थात प्रतिकूल कहा जाता है। व्यापार शेष धनात्मक होने पर विदेशी मुद्रा आता है जबकि भुगतान शेष नोट ऋणात्मक होने पर विदेशी मुद्रा के रूप में भुगतान करना पडता है। अतः ऋणात्मक शेष अर्थव्यवस्था के लिये चिन्ता का विषय है। और इसलिये यत्नपूर्वक इसे धनात्मक बनाया जाता है।

विश्व के सारे राष्ट्र परस्परता के सिद्धान्त से जुडे हैं। अतः एक दूसरे की आवश्यकता पडने पर सहायता करते हैं। सभी राष्ट्रों में एक दूसरे से माल का लेन देन होता है। दृश्य भौतिक वस्तुओं का आवश्यकतानुसार आयात निर्यात होता है। वस्तुये ही नहीं विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में सेवाओं, तकनीक, प्रोद्यौगिकी, श्रम पूंजी तथा उद्यमिता आदि का आदान प्रदान भी होता है जिसका विधिवत लेखा जोखा रखा जाता है। किसी एक अवधि में किसी राष्ट्र विशेष का शेष विश्व के साथ हुये लेन देन का विवरण भुगतान संतुलन कहलाता है। भुगतान संतुलन और भुगतान शेष दोनों शब्दों का प्रयोग प्रचलन में है। व्यापार शेष भुगान शेष का एक अंश है इससे सेवाओं तकनीक आदि का लेन देन तथा पूंजी अंतरण जोड कर भुगतान संतुलन कहलाता है।

18.2 भुगतान संतुलन से आशय (Meaning of Balance of Payment)

भुगतान संतुलन किसी अवधि में उस देश के निवासियों और विदेशियों के मध्य ये आर्थिक व्यवहारी अर्थात लेन देन का क्रमबद्ध विवरण है। सरल शब्दों में भुगतान संतुलन से आशय किसी अवधि में किसी देश द्वारा किये गये अंतर्राष्ट्रीय लेन देनों का संक्षिप्त विवरण है। लगभग ऐसे ही शब्दों में विभिन्न विद्वानों ने भुगतान संतुलन को परिभाषित किया है।

एल्सवर्थ के अनुसार ,''भुगतानों का संतुलन एक देश के निवासियों एवं शेष देशों के निवासियों के बीच हमें सभी लेन देनों का संक्षिप्त विवरण होता है। यह विवरण साधारणतयाः एक वर्ष से संबंधित होता है।''

किडाल वर्गर के अनुसार,''किसी देश को भुगतान संतुलन उस देश के निवासियों तथा दूसरे देश के निवासियों के मध्य एक समयावधि में होन वाले समस्त आर्थिक लेन देने का क्रमबद्ध विवरण है।''

अर्न्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार,''दी हुई समयावधि में भुगतान संतुलन को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है – यह उस समयावधि में संबधित देश के निवासियों के बीच समस्त आर्थिक लेन–देने का क्रमबद्ध विवरण है।''

विभिन्न राष्ट्रों के बीचभौतिक वस्तुओं का आदान प्रदान होता है। आयात और निर्यात की राशि सदैव और सर्वथा एक जैसी नहीं होती। कभी आयात अधिक हेाते हैं और निर्यात कम और कभी निर्यात आयातों से अधिक होते हैं। आयात–निर्यात का यह अंतर व्यापार शेष कहलाता है। निर्यात आयात से अधिक है तो व्यापार शेष धनात्मक या अनुकूल होता है और यदि आयात निर्यात से अधिक है तो व्यापार शेष प्रतिकूल (ऋणात्मक) होता है।

पर राष्ट्रों के मध्य केवल भौतिक वस्तुओं का ही आदान प्रदान नहीं होता है। सेवा तकनीक प्रोद्यौगिकी आदि अभौतिक वस्तुओं का भी आदान प्रदान होता है और इसका शेष भी घनात्मक या ऋणात्मक हो सकता है। भौतिक तथा अभौतिक वस्तुओं के व्यापार का शेष भुगतान संतुलन कहलाता है। भुगतान संतुलन शब्द

का प्रयोग भी दो अर्थों में किया जाता है। एक शास्त्रीय दृष्टि से उपयोग और दूसरा व्यवहार की दृष्टि से उपयोग। शास्त्रीय दृष्टि से भुगतान संतुलन एक निश्चित अवधि में किसी राष्ट्र का शेष विश्व के साथ हुये लेने देने का लेखा पत्र है जो सदैव संतुलित होता है उसमें कोई ऋणात्मक या घनात्मक घाटा या अतिरेक जैसी बात नहीं हेाती । वहीं खाते के सीधे सिद्धान्तों के अनुसार लेन देने सदैव बराबर होते हैं। इस आधार पर भुगतान साम्य या भुगतान संतुलन डेबिट क्रेडिट बराबर होने की स्थिति है।

व्यवहार की दृष्टि से भुगतान संतुलन को भुगतान शेष कहना अधिक उपयुक्त होगा। यह प्राप्य भुगतान और देय भुगतान के बीच का अंतर हे। यदि देय भुगतान प्राप्य भुगतान से अधिक है तो घाटों और प्राप्य भुगतान देय भुगतान से अधिक हो तो अतिरेक हेाता है।

यदि भुगतान शेष मे लेन देने की बराबरी स्वाभाविक गति से हो तो कोई चिन्ता की बात नहीं पर यदि चालू देय भुगतान प्राप्तियों से लगातार अधिक हो तो ये राष्ट्र के लिये चिंता का विषय है। इस स्थिति में संतुलन स्थापित करने के लिये राष्ट्र विदेशी ऋण का प्रयोग करता है या फिर विदेशी विनिमय कोष से विदेशी मुद्रा निकालता है।

प्रत्येक राष्ट्र अपने भुगतान शेष लेखे को दो भागों में विभक्त करके तैयार करता है एक तो चालू खाता और दूसरा पूंजी खाता। चालू खाते में दृश्य तथा अदृश्य दोनों प्रकार के आयात निर्यातों का लेखा किया जाता है अर्थात इसमें देय और प्राप्त भुगतानों का लेखा होता है। दूसरे भाग में पूंजीगत भुगतान और प्राप्यों का लेखा किया जाता है। चालू खाते और पूंजीखातों दोनों में मिलाकर देय और प्राप्य की राशि बराबर होतीा है और यदि कभी चालू खाते में प्राप्तियॉ और भुगतान पूंजीखाते की प्राप्तियों व भुगतान के बराबर नहीं हेाते तो इसे असंतुलन की स्थिति माना जाता है। भुगतान शेष लेखे के संबंध में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जब भुगतान शेष में घाटा होता है तो पूंजीखाते में उतनी ही राशि की अतिरिक्त प्राप्तियों द्वारा समायोजन किया जाता है इसी प्रकार यदि भुगतान शेष में अतिरेक हो तो ठीक उतनी ही राशि का समायोजन कर अतिरिक्त भुगतान किये जाते हैं ताकि भुगतान साम्य की स्थिति बन सके।

18.3 भुगतान संतुलन की विशेषतायें (Characteristics of balance of Payments)

- लेखांकन की दृष्टि से भुगतान संतुलन सदैव संतुलित रहता है इसमे व्यापार शेष की तरह घाटा या अतिरेक नहीं होता अर्थात सदैव ही भुगतान शेष समानता की स्थिति में रहते हैं। अर्थात भुगतान संतुलन में साम्य रहता है।
- भुगतान संतुलन के दो घटक होते हैं चालू खाता (Current Account) तथा पूंजी खाता (Capital Account)
- भुगतान शेष में यदि घाटा होता है तो पूंजी खाते में उतनी राशि का समयोजन प्राप्ति रूप में किया जाता है और यदि चालू खाते में अतिरेक (Surplus) होता है तो पूंजी खाते में उसी राशि के समयोजन हेतु भुगतान किया जाता हे।

18.4 भुगतान संतुलन के घटक (Constituents of Balance of Payment)

अर्थशास्त्र के प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार भुगतान संतुलन के दो प्राथमिक घटक है :– एक चालू खाता और दूसरा पूंजी खाता

जबकि IMF के अनुसार भुगतान संतुलन के 3 घटक हैं :– चालू खाता, पूंजी खाता तथा वित्तीय खाता ।

चालू खाता :– चालू खाते के व्यापार संतुलन की गणना व्यापार शेष (आयात निर्यात का अंतर) , शुद्ध घटक आय तथा शुद्ध एक तरफा अंतरण के आधार पर की जाती है। सूत्र रूप में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है ।

चालू खाता शेष :– व्यापार शेष. विदेश से प्राप्त शुद्ध आय (लाभांश और व्याज). शुद्ध अंतरण विदेश से प्राप्त (विदेशी सहायता आदि) घाटा (Deficit) चालू खाता अधिशेष (Surplus) या खाता अधिशेष देश की विदेशी मुद्रा आस्तियों में वृद्धि करता है। जबकि चालू खाते का घाटाा विदेशी मुद्रा आस्तियों में कमी लाता है। इस गणना मे ंसार्वजनिक (सरकारी) तथा निजी (प्राइवेट) दोनों प्रकार के भुगतान सम्मिलित किये जाते हैं।

वर्तमान अवधि में माल और सेवाओं की खपत होने के कारण इसे चालू खाता कहा जाता हैं। चालू खाते का प्रथम मद व्यापार शेष है । व्यापार शेष अर्थात आयात निर्यात या अंतर। यदि निर्यात आयात से अधिक हों तो शेष अनुकूल अर्थात घनात्मक मानते हैं और यदि आयात निर्यात से अधिक हो तो व्यापार शेष ऋणात्मक अथवा प्रतिकूल होता है इसे व्यापार घाटा भी कहा जाता है। विदेशों से प्राप्त आय मे ंभारतीय निवेश कर्ताओं को प्रापत व्याज एंव लाभांश तथा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) से प्राप्त व्याज इस श्रेणी में रखा जाता है। तीसरा वर्ग हस्तांतरण उपहार का है और इसमें अनिवासी भारतीयों द्वारा अपने परिवार को भेजी गयी सभी सम्मिलित की जाती है।

इस प्रकार चालू खाते को 3 भागों में विभाजित करके समझा जा सकता है।

1. आयात निर्यात का विवरण भारत की दशा मे यह सदैव ऋणात्मक रहता है क्योंकि हमारे आयात निर्यातों से कही अधिक होते हैं।
2. विदेशों से प्राप्य राशि जो भारतीय निवेश कर्ताओं को विदेश में किये गये विनियेाग से प्राप्त व्याज, प्रत्यक्षा विदेशी निवेश पर व्याज ।
3. अनिवासी भारतीयों द्वारा अपने परिवारों को भेजी गयी नकद उपहार राशि यह सदैव घनात्मक होता है क्योंकि विदेशों में भारी संख्या मे अनिवासी भारतीय रहते हैं अपने भारतीय संस्कारों के कारण अपने दायित्व का निर्वाह करते हुये पैसे भेजते हैं।

चालू खाता सही अर्थों मे व्यापार शेष (आयात निर्यात), शुद्ध घटक आय (लाभांश व्याज आदि) और शुद्ध अंतरण भुगतान (विदेशी सहायता तथा विदेश मे रहने वाले भारतीयों द्वारा प्रेषित राशि) का कुल योग है।

चालू खाता अधिशेष उतनी राशि से देश की कुल विदेशी मुद्रा संपतियों मे वृद्धि करता है, और चालू खाते का घाटाा इन संपत्तियों को कम करता है। चालू खाते की गणना मे सरकारी तथा निजी दोनों भुगतान सम्मिलित किये जाते हैं। इसे चालू खाता कहा जाता है क्योंकि यह वर्तमान अवधि से संबंधित होता है इस प्रकार चालू खात चालू खाते मे ंनिम्न विवरण रहता है।

1. आयात निर्यात का विवरण

2. विदेशों से प्राप्त आय (प्राप्त व्याज)
3. हस्तांतरण उपहार आदि

पूंजी खाता :– पूंजी खाते मे ंनिम्न मद सम्मिलित होते हैं –

- भारत में दूसरे राष्ट्रों से प्रापत प्रत्यक्ष निवेश की राशि
- विदेश से ऋण एवं विदेशी सहायता
- आदर्श स्थिति यह है कि चालू खाता और पूंजी खाता का योग बराबर रहना चाहिये यही भुगतान संतुलन की स्थिति है। यदि चालू खाता घाटे मे है तो पूंजी खाता में उतना ही अतिरेक हेाना चाहिये ताकि संतुलन बना रहे। भुगतान शेष संतुलित रहता है अर्थात चालू खाता पूंजी खाता और वित्तीय खाते के परिणाम (दोनों जमों और नाम) शून्य के बराबर रहते हैं ।

  सरल भाषा में इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि मानों भारत ने किसी राष्ट्र से आयात किया और उसका भुगतान किया। वह राष्ट्र उस मुद्रा राशि को भारत मे माल खरीदने में कुछ उत्पादन की प्रकिया चलाने में या फिर भारतीय कंपनियों के अंश/ऋण पत्र खरीदने में लगा देता है और भारत का पैसा फिर भारत मे लौट आयेगा । इसे भुगतान शेष के सिद्धान्त के अनुसार चालू खाता तथा पूंजी एवं वित्तीय खाते का शेष बराबर हो जाता है।

निम्न तालिका मे ंएक काल्पनिक देश के लिये भुगतान संतुलन का चित्र प्रस्तुत है।

शुद्ध संतुलन ($ अरब)		
भुगतान संतुलन के मद	**चालू खाता**	**टिप्पणी**
सामान में व्यापार के शेष राशि (क)	–20	यहॉ माल व्यापार मे ंघाटा है।
सेवाओं में व्यापार का शेष राशि (ख)	10	यहॉ सेवाओं में व्यापार अधिशेष है।
नेट निवेश आय (ग)	–12	यानी की नेट आउटफ्लो, अंतर्राष्ट्रीय निगमों के मुनाफे के कारण
नेट विदेशी सीानान्तरण (घ)	8	स्थानान्तरण की शुद्ध निवेश, जो अनिवासी नागरिकों से प्रेषण से उत्पन्न होती है।
क + ख + ग + घ = चालू खाता शेष जोडना	–14	चालू खाते में घाटे की स्थिति है।

वित्तीय खाता

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का शुद्ध संतुलन प्रवाह	+5	सकारात्मक एफडीआई शुद्ध निवेश
पोर्टफोलियों निवेश प्रवाह की शुद्ध संतुलन	2	शेयर बाजारों मे ंसकारात्मक शुद्ध निवेश,

अल्पावधि बैकिंग प्रवाह की शुद्ध संतुलन	2	संपत्ति आदि देश की बैंकिंग प्रणाली से मुद्रा का शुद्ध बहिर्वाह
संतुलन साधने की मद	2	डेटा गणना मे त्रुटियों और चूक प्रतिबिंबित करने के लिये
सोना और विदेशी मुद्रा का भंडार करने के लिए परिवर्तन	+7	इसका मतलब है कि सोने और विदेशी मुद्रा भंडार कम हो गई है।

18.5 भुगतान संतुलन का महत्व (Importance of Balance of Payment)

भुगतान संतुलन आर्थिक विकास के अध्ययन का महत्वपूर्ण अध्याय है। भुगतान संतुलन को आर्थिक विकास का बैरोमीटर कहा जाता हे। भुगतान सतुंलन ऐसा दर्पण है जिसमें राष्ट्र की आर्थिक स्थिति को चित्र दिखायी देता है। भुगतान संतुलन की मदों का विश्लेषण करके देश में आर्थिक परिवर्तनों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता हे। प्रमुख अर्थशास्त्री जेवन्स (Jevons) ने उचित ही कहा है कि जैस किसी रसायन विद को तत्वों की सामयिक तालिका महत्वपूर्ण है वैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्री के लिये भुगतान संतुलन की अवधारणा महत्वपूर्ण है।

भुगतान संतुलन किसी राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय लेनेदेन का विवरण हेाता है अतः इससे राष्ट्र की आर्थिक सामार्थ्य एवं सीमाओं का ज्ञान होता है।

भुगतान संतुलन हेतु भुगतान शेष के साम्य को स्थापित करने के लिये निम्न मदों का सहारा लिया गया है इससे राष्ट्र की आर्थिक प्रकृति का निश्चय होता है।

जैसे किसी व्यक्ति की आय व्यय का विवरण संतुलित रहता है वैसे ही राष्ट्र का भुगतान शेष संतुलित रहता है। यदि कोई व्यक्ति आय से अधिक व्यय कर दे तो इसकी पूर्ति या तो वह अपनी बचतों मे ंसे करता है या ऋण लेकर। उसी प्रकार यदि किसी राष्ट्र का व्यय आय से अधिक होता है तो अनेक उपायों द्वारा इस घाटे को पूरा किया जाता है। राष्ट्र या तो स्वर्ण का निर्यात करता है या फिर विदेशों मे ंकमाये गये लाभ के द्वारा घाटा पूरा करता है। भुगतान संतुलन के लिये विदेशों से ऋण भी प्राप्त किया जा सकता है।

18.6 व्यापार शेष : आशय एवं अवधारणा (Balance of Trade : Meaning and Coucept)

विदेशी (अन्तर्राष्ट्रीय) व्यापार किसी राष्ट्र के आयात और निर्यात का समेकित स्वरूप है। कोई राष्ट्र विश्व के अन्य राष्ट्रों से कुछ वस्तुये ंआयात करता है और कुछ वसतुयें निर्यात करता है । भौतिक रूप से विद्यमान दृश्य वस्तुओं के आयात निर्यात के अंतर को व्यापार शेष कहा जाता हैं । यह अंतर अनुकूल भी हो सकता है, प्रतिकूल भी। यदि आयात कम है निर्यात अधिक तो यह व्यापार शेष धनात्मक अथवा अनुकूल कहलाता है इसके विपरीत यदि निर्यात कम है और आयात अधिक है तो यह अंतर नकारात्मक अर्थात प्रतिकूल कहलाता है।

यह उल्लेखनीय है कि व्यापार शेष भौतिक पदार्थों के आयात निर्यात का अंतर है। इसमें केवल भौतिक रूप से विद्यमान वस्तुओं के आयात निर्यात का वर्णन होता है अन्य का नहीं।

18.7 व्यापार शेष को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Affecting Balance of Trade)

व्यापार शेष को प्रभावित करने वाले कुछ घटक निम्नवत है :–

- विदेशी मुद्रा विनिमय दर के परिवर्तन
- करों के रूप मे लगाये गये प्रतिबन्ध
- आयात एवं निर्यात की वस्तुओं एवं सेवाओं की लागत जो आयात कर्ता और निर्यात कर्ता राष्ट्रों में भिन्न भिन्न कारणों से प्रभावित होती है।
- अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रभाव

व्यापार शेष की गणना तब कठिन हो जाती है जब आयात निर्यात के सही समंक उपलब्ध न हो । नंबर दो की काली अर्थव्यवस्था के माध्यम से हुये व्यापार के समंक तो उपलबध ही नहीं होते ।

18.8 व्यापार शेष और भुगतान शेष में अंतर (Difference between Balance of Trade and balance of Payemnt)

व्यापार शेष और भुगतान शेष में निम्न लिखित अंतर होता है :–

अंतर का आधार	व्यापार शेष	भुगतान शेष
आशय	व्यापार शेष दृश्य वस्तुओं के आयात निर्यात का अंतर है।	भुगतान शेष दृश्य एवं अदृश्य आयात निर्यात का अंतर है।
गणना	व्यापार शेष की गणना अपेक्षाकृत सरल है।	भुगतान जटिल है ।
क्षेत्र	व्यापार शेष केवल वस्तुओं के आयात निर्यात पर आधारित होता है।	भुगतान शेष में वस्तुओं सेवाओं तकनीकी प्रोद्यौगिकी सब सम्मिलित हेाते हैं।
व्याप्ति	व्यापार शेष की व्याप्ति सीमित है।	भुगतान शेष अधिक व्यापक अवधारणा है इसमें व्यापार शेष सम्मिलित हैं।
साम्य की संभावना	व्यापार शेष अनुकूल या प्रतिकूल होता है अर्थात इसमें धनात्मक और ऋणात्मक होने की संभावनायें होती है अर्थात व्यापार साम्य की संभावना नही के बराबर है क्योंकि निर्यात आयात के बिल्कुल बराबर हो या सदैव संभव	भुगतान शेष का एक भाव भुगतान साम्य का हेाता है जिसमें यह माना जाता है कि भुगतान संतुलन में मुनीमी वही खाते की तरह डेबिट क्रेडिट बराबर होता है अतः भुगतान साम्य की स्थिति हेाती है अर्थात भुगतान संतुलन सदैव

	नहीं होता।	संतुलित होता है।
घटक	व्यापार शेष के केवल दो ही घटक हैं दृश्य वस्तुओं के आयात व निर्यात ।	भुगतान संतुलन में तीन तत्व समाहित हैं व्यापार शेष, सेवाओं व तकनीक का आयात निर्यात तथा पूंजी अंतरण ।
प्रभाव	व्यापार शेष का प्रभाव केवल विदेशी व्यापार तक सीमित है । अतः व्यापार शेष का प्रतिकूल होना चिंता का विषय नहीं है।	भुगतान शेष का प्रभाव अर्थ व्यवस्था के अन्य अवयवों रोजगार की स्थिति, राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय पर पडता है तो भुगतान शेष का घाटा चिंता का विषय है।

किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति की जानकारी के लिये व्यापार संतुलन की अपेक्षा भुगतान संतुलन का अधिक महत्व है। स्वतंत्रता से पूर्व भारत का ब्रिट्रेन के साथ व्यापार शेष प्रतिकूल रहता था जबकि भुगतान शेष अनुकूल होता था। भुगतान संतुलन सदैव संतुलित होता है । यह अर्थशास्त्र के सभी विद्वानों की धारणा है। जैसे किसी व्यक्ति का आय व्यय का विवरण सदैव बराबर होता है। आय में अधिक व्यय होने पर ऋण लेकर प्रतिपूर्ति की जाती है और आय से कम व्यय होने पर आय का व्यय पर आधिक्य बचत के रूप में रहता है पर खाता बराबर ही रहता है । भुगतान संतुलन में सभी अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवहार सम्मिलित होते हैं।

18.9 भुगतान संतुलन में असमानता की अवधारणा एवं कारण

लेखांकन के सिद्धान्त के अनुसार सारे लेन देन बराबर होते हैं अर्थात जमा और नाम खाते बराबर होना चाहिये । अतः भुगतान संतुलन में साम्य रहता है । परन्तु प्रत्येक राष्ट्र को यह ध्यान रखना होगा कि यह साम्य किस प्रकार स्थापित किया गया है। यदि अंतर्राष्ट्रीय लेन देन में समानता सामान्य स्थिति से प्राप्त हो तो कोई चिन्ता की बात नहीं । परन्तु यदि चालू भुगतान चालू प्राप्ति में से अधिक हो और यह घाटा विदेशी विनिमय कोष में रखी विदेशी मुद्राओं के उपयोग से पूरा हो अथवा विदेशी ऋण लिये गये हों तो स्थिति चिन्ता जनक होती है। चालू खाते की प्राप्तियॉ और चालू खाते के भुगतान समान नहीं होते तो यह स्थिति असमानता की मानी जाती है।

18.10 भुगतान संतुलन में असाम्यता के कारण

भुगतान संतुलन में असाम्यता के कारण निम्नवत हैं –

1. **अल्पकालीन संरचनात्मक असाम्य** :– अंतर्राष्ट्रीय पटल पर आयात निर्यात की मांग पूर्ति के साम्य में परिवर्तन तथा आय व्यय की मदों में परिवर्तन से भुगतान संतुलन का साम्य प्रभावित होता है।
2. **दीर्घकालीन संरचना में परिवर्तन** :– सिकी राष्ट्र की अर्थसामाजिक संरचना में दीर्घकालीन परिवर्तित होने से भी भुगतान साम्य प्रभावित होता है।

3. **तेजी मंदी के चक्र का प्रभाव** :– आर्थिक मंदी अथवा आर्थिक तेजी के प्रभाव से आयात निर्यात प्रभावित होते हैं जिससे भुगतान संतुलन का साम्य बदल जाता है।
4. **तकनीकी परिवर्तन** :– नवाचार तथा प्रोद्यौगिकी और तकनीक में परिवर्तन वस्तुओं और सेवाओं की लागत प्रभावित होती है । इससे आयात निर्यात की स्थिति बदलती है और भुगतान साम्य प्रभावित होता है।
5. **आय संरचना व अर्थ व्यवस्था में परिवर्तन** :– अर्थव्यवस्था के अवयव कृषि, उद्योग व्यापार तथा सेवा क्षेत्र के परिवर्तनों से अर्थ तंत्र प्रभावित होता है और अर्थ तंत्र के प्रभाव से राष्ट्रीय आय तथा प्रतिव्यक्ति आय प्रभावित होती है। उपभोग बदलता है इससे आयात निर्यात प्रभावित होते हैं और भुगतान संतुलन का साम्य भी प्रभावित होता है।
6. **अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र विपणन तथा वित्तीय प्रबंधन में परिवर्तन** :– विश्व अर्थ संरचना में परिवर्तन के कारण अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संबंध की नीतियों में सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक परिवर्तन परिलक्षित होता है जिससे अतंतः भुगतान साम्य प्रभावित होती है।

18.11 भुगतान संतुलन में साम्य बनाये रखने के उपाय

भुगतान संतुलन में साम्य बनाये रखने तथा असाम्यता को दूर करने के लिये निम्नलिखित उपाय प्रभावी सिंह होते हैं:–

1. **(मौद्रिक उपाय)** 2. **(अमौद्रिक उपाय)**

मौद्रिक उपाय :– राष्ट्र में मुद्रा की मात्रा मूल्य के माध्यम से भुगतान सुंलन में साम्य स्थापित किया जा सकता है। इसके लिये निम्न कदम उठाये जा सकते हैं :–

1. **मुद्रा का अवमूलयन (Devaluation of Currencey)** :– अपने राष्ट्र की मुद्रा का विदेशी मुद्रा के अनुपात में मूल्य कम करके आयातों को नियंत्रित किया जा सकता है तथा निर्यात बढाये जा सकते हैं। अवमूल्यन से आयात मंहगे हो जाते हैं तथा निर्यात विदेशों को सस्ते पडने लगते हैं।
2. **चलन में मुद्रा का संकुचन** :– सरकार चलन में मुद्रा की कमी करके मुद्रा के मूल्य मे वृद्धि कर देती है इससे मूलय स्तर को नियंत्रित किया जा सकता हे।

अमौद्रिक उपाय :– आयातों पर नियंत्रण रखने तथा निर्यातों को बढावा देने के लिये निम्न कदम उठाये जाते हैं :–

1. विलासिता की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किये जाने वस्तुओं के आयात को पूरी तरह प्रतिबंधित किया जा सकता है।
2. आवश्यक वस्तुओं के आयात में निरन्तर कमी की जाती है ।
3. आयात प्रतिस्थापन पर बल दिया जाना चाहिये । इन वस्तुओं को अपने ही राष्ट्र में उत्पादित कर उत्पादन बढाया जा सकता है जिससे रोजगार के अवसर बढते हैं और जीडीपी तथा प्रति व्यक्ति आय बढती है।
4. आयातों का परिसीमन करने के लिये कोटा प्रणाली का प्रयोग किया जाना चाहिये कोटा निर्धारित हो जाने से आयात स्वतः कम हो जाते हैं।
5. निर्यात को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। नये नये उत्पाद और नये नये बाजारों की खोज करके निर्यातों में वृद्धि संभव है।

6. निर्यात कर्ताओं को करों में छूट देकर निर्यात करने के लिये प्रेरित किया जा सकता है।
7. निर्यात कर्ताओं मे विशेष पैकेज और आर्थिक सहायता देकर निर्यातों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
8. विशेष आर्थिक क्षेत्र तथा विशेष निर्यात क्षेत्रों की स्थापना की जानी चाहिये।
9. विदेशी विनिमय कोष के उपयोग मे विशेष सावधानी रखना चाहिये।
10. विदेशी व्यापार नीति को संशोधित कर निर्यातोन्मुख बनाना चाहिये।

उपरोक्त उपायों से भुगतान संतुलन मे उत्पन्न असाम्य स्थिति को नियंत्रित किया जा सकता है।

18.12 भुगतान शेष में घाटे के कारण

विकास के चरण में भुगतान शेष के घाटे के निम्न कारण है

1. **व्यापार शेष का घाटा** :– आयात अधिक और निर्यात कम होने के कारण व्यापार शेष का घाटा निरन्तर बढता गया है जिससे भुगतान शेष प्रभावित हुआ है।
2. **अदृश्य मदों के अतिरेक में कमी** :– विदेशों में काम करने वाले भारतीयों द्वारा भारत मे रह रहे अपने स्वजनों को पैसा भेजने तथा विदेशी पर्यटकों द्वारा भारत मे पर्यटन मे पैसा खर्च करने से भारत अदृश्य मदों के व्यापार में अतिरेक कमाता रहा है पर अब इस अतिरेक में कमी आयी है । विदेशी विनियोग पर देय व्याज और लाभांश की वृद्धि तथा प्रौद्योगिकी के आयात बढने से भुगतान शेष की अनुकूलता में कमी आयी है।
3. **विदेशी ऋण वृद्धि** :– विदेशों से लिये गये ऋण पर देय व्याज व पूंजी भुगतान के कारण भुगतान सुंलन की प्रतिकूलता में वृद्धि हुई है।
4. **विदेशी सहायता में कमी** :– अंतर्राष्ट्रीय पटल पर ऋण और निवेश में तो वृद्धि हुयी है पर विदेशी सहायता की प्रवृत्ति में कमी आयी है।

भारत जैसे विकास की ओर तेजी से बढ रहे राष्ट्रों के प्रति विकसित राष्ट्रों में ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हुआ है। घाटे की पूर्ति हेतु इन राष्ट्रों मे ऋण लेने की प्रकृति बढी है। इससे निश्चय ही भुगतान संतुलन में अनुकूलता का भाव कम हुआ है और प्रतिकूलता बढी है।

18.13 प्रतिकूल भुगतान शेष के घाटे को दूर करने के उपाय

प्रतिकूल भुगतान शेष के घाटे को दूर करने के लिये निम्नलिखित प्रयास करना उचित होगा :–

1. **विनियमय नियंत्रण** :– विदेशी विनिमय कोष की मात्रा तथा उपयोग को नियंत्रित कर प्रतिकूल भुगतान शेष को अनुकूल बनाया जा सकता है।
2. **पर्यटन को बढावा** :– विदेशी यात्रियों को भारत मे पर्यटन हेतु प्रोत्साहित कर विदेशी मुद्रा कोष को बढाया जा सकता है।
3. **विदेशी पूंजी निवेश को प्रोत्साहन** :– विभिन्न प्रयासों के माध्यम से विदेशी पूंजीपतियों को भारत मे पूंजी निवेश के लिये आमंत्रित किया जाना चाहिये। विदेशी पूंजी निवेशकों को अश्वस्त किया जाना चाहिये कि भारत मे पूंजी निवेश सुरक्षित भी है और अधिक आय देने वाला भी। करों की

छूट तथा अन्य सुविधाओं के माध्यम से उन्हें आश्वस्त किया जाना चाहिये कि भारत पूंजी निवेश का श्रेष्ठ विकल्प है।

4. **आयात प्रतिस्थापन पर बल** :– भारतीय उपभोक्ताओं को उनके उपभोग की वस्तुयें देश में ही बना कर दी जाये ताकि स्वदेशी का भाव भी हो और भारत की पूंजी का विदेशों को वहिर्गमन भी रूकेगा। अधिकाधिक उद्योग खोलकर यह किया जाना चाहिये।
5. **निर्यात प्रोत्साहन** :– विदेशी मुद्रा अर्जित करेने के लिये देश से अधिक से अधिक वस्तुओं का अधिक से अधिक निर्यात किया जाना चाहिये । सरकार को निर्यात प्रोत्साहन की नीति अपना कर निर्यात करों में कमी करके तथा विशेष विज्ञापन (प्रचार प्रसार) करके निर्यातों को बढाना चाहिये।

18.14 स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत मे भुगतान संतुलन की स्थिति (State of Balance of Payment Since Indepencdance in India)

स्वतंत्र भारत की विदेशी व्यापार और औद्योगिक नीति के परिणाम स्वरूप भुगतान संतुलन की स्थिति की प्रमुख विशेषतायें निम्नवत हैं :–

1. अपवाद स्वरूप कुछ वर्षों को छोडकर भारत मे व्यापार शेष सदैव प्रतिकूल रहा है । क्योंकि निर्यात की अपेक्षा आयातों की मात्रा अधिक रही है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना काल में पूर्ववर्ती योजना की अपेक्षा व्यापार शेष की प्रतिकूलता की स्थिति में वृद्धि हुयी है।
2. इस काल में बजट का घाटा तथा राजकोषीय घाटा बढा है।
3. कमी अवमूल्यन के कारण और कमी किसी अन्य प्रभाव से भारतीय रूपया विदेशी मुद्रा के अनुपात में कमजोर हेाता गया है।
4. स्वतंत्रता के पश्चात विश्व के उन्नत राष्ट्रों व संगठनों से प्राप्त विदेशी सहायता राशि बढती गयी है। विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एशियन विकास बैंक आदि संगठनों से प्राप्त ऋणों के व्याज और मूलधन को चुकाने में विदेशी मुद्रा का उपयोग वर्ष प्रतिवर्ष बढता गया है।
5. पडोंसी राष्ट्रों से चल रहे सीमा विवाद के कारण विदेशी मुद्रा कोष का उपयोग विकास के लिये कम और सुरक्षा के लिये अधिक हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भुगतान शेष की स्थिति में अस्थिरता बनी रही। मुद्रा स्फीति के स्फीतिकारी प्रभाव ने संकट में और वृद्धि की है। पूंजी खाता तथा चालू खाता दोनों का घाटा वर्ष प्रतिवर्ष बढता गया है। इस सबसे भुगतान संतुलन की स्थिति अनुकूल नहीं रही है।

18.15 भुगतान संतुलन की भावी संभावनायें (Prospects of Balnace of Paymnet)

वस्तु व सेवाओं के आयातों की वृद्धि, प्रोद्यौगिकी की मॉग और इसी अनुपात में निर्यात न बढा पाने की विवशता के कारण व्यापार शेष और भुगतान शेष में प्रतिकूलता दृष्टिगत होती है पर भारतीय अर्थ व्यवस्था के समृद्धि की ओर सतत बढते कदम आश्वस्त करत हैं कि भविष्य में भुगतान संतुलन की स्थिति अनुकूल और सुखद होगी।

विश्व बाजार और वैश्विक अर्थव्यवस्था मे भारत की रेकिंग बढने तथा आर्थिक सुधारों, कर सुधारों और अनुकूल आयात निर्यात (विदेशी व्यापार) नीति से देश की आर्थिक स्वीकार्यता बढती जा रही है। रूपये की परिवर्तनीयता विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अनुकूल समंक यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि भुगतान संतुलन की स्थिति व संभावनायें अर्थ व्यवस्था की मजबूती का संकेत दे रही है।

हाल ही में विश्व में ईज आफ डूइंग विजनिस व्यवसाय में सुगमता की दृष्टि से भारत की स्थिति बेहतर हुयी है । इससे विदेशी निवेश के लिये दरवाजे खुलेगें और भारत विश्व भर के निवेशकों के लिये एक प्राथमिकता के क्रम का राष्ट्र बन सकेगा। विदेशी पूंजी और तकनीक के भरपूर आगमन से देश में विनिर्माण उद्योग, कृषि उत्पाद तथा प्रसंस्करण उद्योगों में प्रगति होगी। आयातों में कमी आयेगी और निर्यात बढेगें। देश की तकनीकी क्षमता के विकास तथा देश में तकनीकी शिक्षा के विस्तार और सुधार से स्थितियॉ अनुकूल होगी और इस प्रकार भुगतान संतुलन की भावी संभावनायें अति उज्जवल हैं।

18.16 सारांश

भुगतान संतुलन किसी देश की आय व्यय का बही खाता हेाता है । इससे यह पता चलता है कि एक राष्ट्र ने एक निश्चित अवधि में विदेशी मुद्रा की कितनी प्राप्ति की और कितना व्यय किया । भुगतान संतुलन के द्वारा यह ज्ञात हो जाता है विदेशी मुद्रा भण्डारण की स्थिति कैसी है।

भुगतान संतुलन के दो घटक होते हैं चालू खाता तथा पूंजी खाता। व्यापार एवं सेवाओं के क्रय विक्रय के लिये विदेशी मुद्रा के लेन देन को चालू खाता में सम्मिलित किया जाता है जब कि स्थायी संपत्तियों को एवं पूंजी के स्वामित्व के स्थानान्तरण हेतु विदेशी मुद्रा के लेन देन को पूंजी खाते में सम्मिलित किया जाता है।

एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से वस्तुओं एवं सेवाओं का आदान प्रदान करता है। जिसे आयात निर्यात कहते हैं । बीच बीच में नकदी का आदान प्रदान भी होता है। पर एक निश्चित अवधि के पश्चात बनाये गये हिसाब के फलस्वरूप एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से कुछ लेना देना शेष रहा जाता है। विभिन्न राष्ट्रों के बीच हुये लेनदेन का यह विवरण भुगतान शेष कहलाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी निश्चित तिथि को एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रों को चुकायी जाने वाली कुल राशि तथा दूसरे राष्ट्रों से उसे प्राप्त राशि का लेखा जोखा ही भुगतान संतुलन कहलाता है। यह संतुलन सरकार द्वारा बनाया जाता है। यदि देना अधिक है और प्राप्त होने वाली राशि कम तो सरकार या तो विदेशी ऋण लेकर या विदेशी मुद्रा केाष का प्रयोग कर संतुलन बनाती है। इसके विपरीत अतिरेक्य की स्थिति में संपत्तियों का निर्माण किया जाता है। भुगतान संतुलन के दो प्रमुख घटक हैं चालू खाता (Current Account) तथा पूंजी खाता (Capital Account)

वस्तुओं एंव सेवाओं के क्रमय विक्रय के लिये विदेशी मुद्रा के लेन देने को चालू खाते मे सम्मिलित किया जाता है। जब कि स्थायी परिसंपत्ति (भ्लूमिभवन आदि) एवं पूंजी के स्वामित्व के हस्तान्तरण हेतु विदेशी मुद्रा के लेन देने को पूंजी खाते में सम्मिलित किया जाता है।

चालू खाता किसी राष्ट्र के विनियोग व बचत का अंतर प्रदर्शित करता है। चालू खाते के प्रमुख उपाय तीन हैं –

1. व्यापार शेष की राशि (वस्तु एवं सेवाओं का निर्यात मूल्य – आयातित वस्तुओं सेवाओं का मूल्य)
2. विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय
3. हस्तांतरण का शुद्ध मूल्य (Net Current Transfers) :– चालू खाते के अवलोकन से किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति की दशा और दिशा का ज्ञान होता है। यदि देश के चालू खाते का अनुकूल शेष है तो इसका आशय है कि यह राष्ट्र शेष विश्व के राष्ट्रों का लेनदार हे जबकि चालू खाते का प्रतिकूल शेष प्रतिकूल है तो यह सिद्ध होता है कि यह राष्ट्र विश्व के अन्य राष्ट्रों का देनदार है। परन्तु चालू खाते का प्रतिकूल शेष सदैव बुरा नहीं हेाता अनेक बार यह विश्व व्यापार के चक्र का परिणाम भी हो सकता है।

18.17 शब्दावली

दृश्य निर्यात व दृश्य आयात – भौतिक वस्तुयें वे हैं जिनका भौतिक अस्तित्व होता है इनके आयात को दृश्य आयात कहते हैं और उनके निर्यात को दृश्य निर्यात ।

व्यापार शेष – दृश्य वस्तुओं के आयात निर्यात के अंतर को व्यापार शेष कहा जाता है।

भुगतान शेष या भुगतान संतुलन – भुगतान संतुलन में व्यापार शेष के अतिरिक्त अदृश्य वस्तुओं, सेवाओं व तकनीक के आयात निर्यात का अंतर तथा विदेशी मुद्रा का अंतरण सम्मिलित किया जाता है। भुगतान संतुलन में कोई शेष नहीं होता है । दोनों पक्ष बराबर होते हैं अर्थात भुगतान संतुलन सदैव संतुलित रहता है।

विदेशी विनिमय दर :– एक राष्ट्र की मुद्रा का मूल्य दूसरे राष्ट्र की तुलना में क्या है इसे विनिमय दर कहा जाता है अर्थात् दो राष्ट्रों की मुद्रा का विनिमय निर्धारित करने वाली दर विनिमय दर कहलाती है।

चालू खाता :– चालू खाते मे दृश्य और अदृश्य आयात निर्यात से संबंधित भुगतान और प्राप्तियों का लेखा जोखा होता है।

पूंजी खाता :– पूंजी खाते में पूंजीगत भुगतान व प्राप्तियों का लेखा जोखा होता हैं ।

18.18 बोध प्रश्न

(अ) बहु विकल्पीय प्रश्न :– सही विकल्प का चुनाव कीजिये

1. वस्तुओं के निर्यात व आयात का अंतर कहलाता है
   (अ) व्यापार शेष (आ) भुगतान शेष
   (इ) अदृश्य व्यापार (ई) ये सब
2. भुगतान संतुलन में सम्मिलित हैं
   (अ) आयात निर्यात की केवल दृश्य मदें
   (आ) आयात निर्यात की केवल अदृश्य मदें
   (इ) पूंजी अंतरण
   (ई) ये सब
3. भुगतान संतुलन में साम्य स्थापित करने के उपाय हैं –

(अ) निर्यात संबर्द्धन
(आ) आयात प्रतिस्थापन एवं आयातों में कमी
(इ) मुद्रा अवमूल्यन
(ई) ये सब

4. भुगतान संतुलन के विवरण पत्र में विदेशी ऋणों पर देय व्याज
(अ) नाम पक्ष की मद है
(आ) जमा पक्ष की मद है
(इ) दोनों ही पक्ष की मद है
(ई) दोनों में से किसी पक्ष की मद नहीं हैं

5. भुगतान संतुलन विवरण बनाने के लिये अधिकृत है
(अ) प्रधानमंत्री का कार्यालय
(आ) विदेश मंत्रालय
(इ) वित्त मंत्रालय
(ई) व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय

(ब) बतायें निम्न कथन 'सत्य' है या 'असत्य'

1. व्यापार शेष केवल भौतिक (दृश्य) वस्तुओं के आयात निर्यात का अंतर हेाता है।
(सत्य/असत्य)
2. भुगतान शेष व्यापार शेष का एक घटक है। (सत्य/असत्य)
3. भुगतान संतुलन में अनुकूल प्रतिकूल जैसी कोई बात नहीं वह तो संतुलित होता है। (सत्य/असत्य)
4. व्यापार शेष की अवधारणा केवल विदेशी व्यापार में है देशी व्यापार में नहीं।
(सत्य/असत्य)
5. भुगतान संतुलन राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। (सत्य/असत्य)

18.19 बोध प्रश्न के उत्तर

(अ)

1. अ
2. ई
3. ई
4. अ
5. ई

(ब)

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

18.20 स्वपरख प्रश्न

1. भुगतान संतुलन से आप क्या समझते हैं ?
2. व्यापार संतुलन क्या है ? व्यापार संतुलन तथा भुगतान संतुलन में क्या अंतर है ?
3. भुगतान संतुलन के विभिन्न घटक (अंग) या कारकों का वर्णन कीजिये।
4. भुगतान संतुलन साम्य से क्या आशय है ? भुगतान संतुलन में साम्य किस प्रकार स्थापित किया जाता है ?
5. भुगतान संतुलन में असाम्य से आप क्या समझते हैं ? भुगतान संतुलन में असाम्य की स्थिति को दूर करने के लिये क्या कदम उठाये जाने चाहिये ?
6. वैश्वीकरण के युग में भुगतान संतुलन की स्थिति का मूल्यांकन कीजिए ?
7. भुगतान संतुलन की दशा और दिशा पर प्रकाश डालिये ?
8. किसी राष्ट्र का भुगतान संतुलन प्रतिकूल क्यों होता है ? कारण स्पष्ट कीजिए।
9. भुगतान संतुलन के संदर्भ में चालू खाते से आप क्या समझते हैं ? चालू खाते की प्रमुख मदों का वर्णन कीजिए।
10. पूंजी खाता क्या है ? पूंजीखाते की प्रमुख मदों का वर्णन कीजिए।

18.21 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. MS-3, IGNOU Course Material. Economic and Social environment.
3. Tandon, BB, Indian Economy : Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
4. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5. मिश्रा जे0एन0, भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।
6. माथुर जे0एस0, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंत ए0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
8. सिन्हा, वी0सी0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा0लि0, आगरा।
9. मालवीया ए0के0 व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. सिंह एस0के0, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।